अवतार

मेहेरबाबा की जीवन गाथा

जीन एड्रियल, कैलिफोर्नियाँ द्वारा
आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन

लेखिका

जीन एड्रियल

अनुवाद

स्व. श्री केशव नारायण निगम

बी.ए., एलएल.बी.

हमीरपुर (उ.प्र.)

संपादन

डा. (श्रीमती) मेहेर ज्योति कुलश्रेष्ठ

एम.एससी., पीएच.डी.

1947

जे.एफ. रावनी प्रेस, सान्ता बारबरा, कैलिफ़ोर्नियाँ

प्रकाशक :

अवतार मेहेरबाबा कॉस्मिक फ़ाउन्डेशन

198-ए, बिशप रॉकी स्ट्रीट,

फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ

फ़ोन : 0522-2327477

0522-2350214, 011-46075921

मोबाइल : 09871608615, 9415080217

सर्वाधिकार सुरक्षित :

© जीन एड्रियल, ओजाई, कैलिकोर्नियाँ

© अवतार मेहेरबाबा परपेचुअल पब्लिक चेरीटेबुल ट्रस्ट,
अहमदनगर–महाराष्ट्र, 414001, भारत

अप्रैल 2009

मुद्रक :

शिवम् आर्ट्स, 211, पाँचवीं गली, निशातगंज, लखनऊ

फोन : 0522–2782348, 2782172

समर्पण

देहधारी ईसामसीह को, जिसकी सुंदरता को स्वर्ग भी प्राप्त नहीं कर सकता लेकिन जिसकी उपस्थिति प्रत्येक नम्र, प्रेम करने वाले हृदय में पाई जा सकती है।

मैं उन सभी—पूर्वी और पश्चिमी—भक्तों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहती हूँ जिनके पत्रों, डायरियों और मेहेरबाबा जरनल में प्रकाशित होने वाले लेखों से मैंने अपने गुरू की इस जीवन गाथा की अधिकांश सामग्री ली है।

जीन एड्रियल

"जब तुम सच्चे गुरु से मिलते हो, वह तुम्हारे हृदय को जगा देगा; वह तुम्हें प्रेम और अनासक्ति का रहस्य बतायेगा और तब तुम वास्तव में जान जाओगे कि वह इस ब्रह्माण्ड से परे हैं.......

जिस व्यक्ति को ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है, वह अनन्तता के मार्ग पर आता है : जो उसे (ईश्वर) प्राप्त करता है, वह जीवन और मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो जाता है।"

-कबीर

जब भारतवर्ष में मेहेरबाबा ने मुझको आज्ञा दी कि मैं अपना अधिकांश समय उनका ध्यान करने और उसका फल लिखने में लगाऊँ, तब मैंने यह किंचित विचार नहीं किया था कि वे फल प्रकाशित होंगे। वास्तव में मेरे भारतवर्ष से लौटकर अमरीका में लगभग चार वर्ष रहने के उपरान्त ही 'अवतार' नामक पुस्तक ने अपना मौजूदा रूप धारण करना प्रारम्भ किया।

मैंने मानसिक विकृतियों के विशेषज्ञ प्रख्यात डाक्टर फ्रिट्ज़ कंकेल द्वारा संचालित एक मनोवैज्ञानिक शिक्षण में दो सप्ताह व्यतीत किये थे। वह सबसे अधिक दैवी–स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला तथा रहस्य उद्घाटित करने वाला पखवारा था। उसका मेरे ऊपर वह प्रभाव पड़ा कि उसने मुझे अपनी निजी विशेष समस्याओं को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायता तो दी ही और साथ–साथ उसने मुझको वह गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान की जिससे मैं बाबा की अपने शिष्यों के प्रति व्यवहार में लाई गई टेकनीक (कला) के अनेक अधिकतर भ्रमकारी रूपों को देख सकती थी। उस टोली के केवल एक अन्य सदस्य को बाबा के प्रति रुचि थी, इसलिये मैं अपनी नवीन अन्तर्दृष्टियों को अधिकतर अपने ही तक सीमित रखने को मजबूर थी, किन्तु मैंने उन सबको अपनी नोटबुक में लिख लिया।

जैसे जैसे हमारे वहाँ ठहरने का अन्त निकट आता था, मैं अपने को उन रचनात्मक शक्तियों द्वारा अत्यंत उत्तेजित अनुभव करती थी जो मुझमें संचारित हो गई थीं, क्योंकि डाक्टर कंकेल ने हमारे हेतु "अन्तःपरावर्तन" के सही बोध एवं प्रयोग में अन्तर्निहित शक्तिमान सम्भावनाओं को उद्घाटित किया था जो (अन्तःपरावर्तन) उस शिक्षण का विषय था। उन्होंने सुझाव दिया कि उन सप्ताहों में जो भी जीवन वहन करने वाले बीज बोये गये थे हम उनको पनपने और फल धारण करने का अवसर दें। वे रचनात्मक अभिव्यक्ति के किसी रूप में व्यक्त किये जायें जो जीवन के एक पूर्ण रूप से नवीन मार्ग का प्रतीक हो। उनका एक ठोस सुझाव यह था कि हम लोग रचनात्मक प्रवाह प्रारम्भ करने के साधन के रूप में अपनी जीवन–गाथाएँ लिखें। मैंने उनकी सलाह पर कुछ दिनों तक तत्परतापूर्वक विचार किया।

अन्त में मैं इस निर्णय पर पहुँची कि मेरे लिये सबसे अधिक लाभदायक मार्ग यह होगा कि मैं अपने सद्‌गुरु मेहेरबाबा की जीवन–गाथा अपनी जानकारी के अनुसार लिखूँ, जिसमें मैं उनके साथ हुये अपने निजी अनुभवों पर विशेष ज़ोर दूँ।

अपने जीवन का पुनर्निरीक्षण करने पर, जो आध्यात्मिक अर्थ में अत्यन्त रंगीन एवं नाटकीय था, मुझे ज्ञात हुआ कि इसने अपनी सम्पूर्ण सार्थकता बाबा से प्राप्त की थी और, उनसे मेरे मिलन के पूर्व भी, इसने कई वर्षों तक अपना प्रबल वेग उनकी दैवी स्फूर्ति से पाया था। इसलिये 'अवतार' गाथा के भीतर एक गाथा है; एक जीवन के भीतर एक जीवन है; क्योंकि शिष्य का जीवन अनिवार्यरूप से सद्‌गुरु के जीवन में छिपा होता है।

लगभग दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं जब इस शिष्या को भारतवर्ष में आदेश दिया गया था कि जो कुछ भी इसकी अनुभूतियाँ हों, उनको यह लिख डाले, और सद्‌गुरु ने कहा था, "मैं तुम्हारे पीछे शक्तिवत् रहूँगा।" अब पुस्तक लिख जाने पर उनका सन्देश आया है कि वह अपना आशीर्वाद प्रदान करते हैं और उनकी इच्छा है कि यह ग्रन्थ विश्व को प्रदान किया जाये। उनके पुनः अमरीका पधारने की आशा में उनके हेतु दक्षिण कैरोलिना के मिर्टिल बीच नामक स्थान में एक 'केन्द्र' स्थापित किया गया है, और पश्चिमी समुद्रतट पर, अपर ओजाई घाटी में, 'मेहेर माउन्ट' नाम का एक सुन्दर स्थान उनकी बाट जोह रहा है।

—जीन ऐड्रियल

मेहेर माउन्ट
अपर ओजाई,
कैलिफ़ोर्निया।
1 सितम्बर, 1946 ई.।

अवतार मेहेरबाबा कॉस्मिक फ़ाउन्डेशन जीन एड्रियल, कैलिफोर्निया की पुस्तक "अवतार" के हिन्दी अनुवाद को पुस्तक रूप में प्रकाशित करके अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। स्वर्गीय श्री केशव नारायण निगम, जिन्हें अवतार मेहेरबाबा ने अपने हाथों से अधिकार पत्र (authority letter) देकर हमीरपुर ज़िले का मुख्य कार्यकर्ता (chief worker) नियुक्त किया था, अपने प्रारम्भिक दिनों में कृष्ण के उपासक थे और मेहेरबाबा के घोर विरोधी थे। वह भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी के साथ काम करते थे और दो बार जेल भी गये थे। उन्होंने पहली बार मेहेरबाबा का नाम जेल में ही सुना था और उनके अंदर मेहेरबाबा के लिये इतना अधिक विरोध था कि वह उनकी फ़ोटो सड़क पर फेंक देते थे ताकि लोग उन पर पैर रखकर चलें। इसी समय उन्होंने बाबा द्वारा भेजे गये एक गश्ती पत्र की पाँचवी आज्ञा का पालन करने का निर्णय लिया और इसी आज्ञा पालन की अवधि के दौरान उन्हें श्री आदि के. ईरानी से उनके पत्र दिनांक 9.7.1948 के साथ जीन एड्रियल कृत 'अवतार'नामक पुस्तक का वी.पी. पार्सल मिला। वह पत्र इस प्रकार था :—

"श्री बाबा के निर्देशानुसार, मैं आज आपको अमरीका में मुद्रित जीन एड्रियल कृत 'अवतार' नामक पुस्तक की एक प्रति 11 रु. (10 रु. मूल्य, 1 रु. डाक खर्च) मूल्य की वी.पी.पी. से भेज रहा हूँ।

"यह पुस्तक आपको बाबा की तीव्र इच्छा से भेजी जा रही है। यह असामान्य बात है कि एक प्रभु अपनी ओर से अपने भक्त से एक पुस्तक खरीदने की चाह करता है और इसीलिये उसकी यह चाह उस पुस्तक को केवल पढ़ने की अपेक्षा कहीं अधिक गूढ़ अर्थ रखती है। यह एक बहुमूल्य वस्तु है अतः वी.पी. पार्सल अवश्य स्वीकार करें।

"बाबा के आशीर्वाद के साथ......"

इस पुस्तक को पढ़ने के बाद केशव नारायण निगम ने मेहेरबाबा को अपने इष्ट कृष्ण के रूप में पहचाना और इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद

करने की अनुमति लेकर, हिन्दी में अनुवाद किया जो हिन्दी मासिक पत्रिका मेहेर पुकार में सितम्बर 1955 से सितम्बर 1959 तक श्रृंखला के रूप में प्रकाशित हुआ परन्तु यह अनुवाद पुस्तक रूप में श्री केशव नारायण निगम के जीवनकाल में प्रकाशित न हो सका।

अवतार मेहेरबाबा कॉस्मिक फ़ाउन्डेशन स्व. श्री केशव नारायण निगम की पुत्री डा. मेहेर ज्योति कुलश्रेष्ठ एवं उनके पति डा. दिनेश कुमार कुलश्रेष्ठ का अत्यंत आभारी है जिनके आर्थिक सहयोग से इस अनुवाद का पुस्तक रूप में प्रकाशन संभव हो सका। इस पुस्तक को पढ़ने से श्री केशव नारायण निगम की तरह अन्य प्रेमियों को भी अवतार मेहेरबाबा को अपने इष्ट के रूप में पहचानने में मदद मिलेगी ऐसा हमें विश्वास है।

लखनऊ — अवतार मेहेरबाबा कॉस्मिक फ़ाउन्डेशन

15 अप्रैल, 2009 — के सदस्य

समर्पण iii

आभार v

प्रस्तावना vii

हृदय के उद्‌गार ix

अध्याय–I **1**

आत्म–जागरण; दिवालियापन और उदारता, नवीन धागे, उदार भेंटों की वर्षा, (Fed By Ravens); सद्‌गुरु का आगमन; रूपान्तर; घूँघटों में पैठ; किताबी चेतना; दैवी उद्‌घाटन; मन का अध्ययन; हाड़ और माँस का लिबास; ज्वालाओं में लिखा हुआ; महान हर्ष का अन्त..........

अध्याय–II **44**

भारतवर्ष की देन; कृपा का अवरोह; दिव्य महिला; प्रभात की भूमिका; ईश्वर–जागृति; सन्तुलित चेतना; ईश्वरत्व की सार्थकता; सन्त की साक्षी; आध्यात्मिक अन्धकूप; ईश्वर का स्वरूप; परिपक्व समय आने पर; विश्व की शुद्धि..........

अध्याय–III **78**

आरम्भ, ईश्वरीय चुम्बक; पहला आश्रम; काम (Sex); विवाह; ब्रह्मचर्य; ईश्वरीय प्रेम; मंज़िल की स्मृतियाँ; स्वर्ग और नर्क; आध्यात्मिक तीर्थयात्रा; अहमदनगर में आश्रम; यह निर्बल मनुष्यों का खेल नहीं है; क्लेश में यात्रा; तरल क्रिया; नया आश्रम; अज्ञान और पक्षपात का विनाश; चलचित्र चिकित्सा; मौन का प्रारम्भ; सांकेतिक क्रिया; नवीन मचान का निर्माण; ईश्वर के हेतु निर्बुद्धि; एक निराला शिष्य; सद्‌गुरु की कार्यपद्धति; निखरते हुये रत्न; चमत्कार; आत्मा के मुक्तिकर्त्ता; अहंकार के विनाशक..........

अध्याय–IV **136**

मृत्यु; सन्तों के लिये प्रशिक्षण विद्यालय; ईश्वरीय प्रेम का जादू; एक अन्य बालक के प्रेम की वीरगाथा; पश्चिमी देशों की ओर ध्यान; चीता घाटी (Tiger Valley) में एकान्तवास; चीता घाटी में पश्चिमी देशों के शिष्य;

फ़ारस की तीसरी यात्रा; फ़ारस में बाबा की उद्घोषणा; परीक्षण तथा परिमार्जन; रेगिस्तान की विपदा में; बाबा और वेश्यायें; दैवी पृथकता; ईश्वर का खोजी; युक्ति के प्रतिकूल..........

अध्याय–V **174**

पश्चिमी देशों की यात्रा; भगवान बुद्ध के समान; क्रीड़ा का प्रारम्भ; हमारी हालीवुड की यात्रा; क्रीड़ा ज़ारी; प्रधान अभिनेताओं के बीच सहज; कसौटी में कसे और परखे गये; खेत की चिड़ियों के समान; चुनौती; इटली में छुट्टी का दिन; असीसी में आध्यात्मिक सभा; भारतवर्ष के लिये संदेश; तूफ़ानी यात्रा; संकेतपूर्ण साहसी कार्य; स्पेन की गलियों में; पश्चिम की ओर तूफ़ानी यात्रायें; अन्धकार तथा प्रकाश से होकर..........

अध्याय–VI **225**

भारतवर्ष के पथ पर; पूर्व और पश्चिम का मिलन; आश्रम डीलक्स; बड़े दिन (क्रिसमस) का भोज; मेहेराबाद की यात्रा; पवित्र तीर्थ स्थानों की यात्रा; महा संकट काल; जन्म दिवस का भोज; लय में परिवर्तन; सांकेतिक भ्रमण; वर्षा ऋतु का रहस्य; फाँसने में उस्ताद..........

अध्याय–VII **290**

बाबा के साथ यूरोप की यात्रा; संकट से होकर; फ़िल्म का खुलाव; जीभों की लपालप; आरोग्यता के लक्षण; मौन साथी..........

अध्याय–VIII **313**

बाबा के साथ यात्रा; सार्वभौम आध्यात्मिक केन्द्र; विचित्र नाटक; आध्यात्मिक शिकारी; पहियों पर चलता आश्रम; तूफ़ानी यात्रा; सन्तों का निवास स्थान ऋषिकेश; एकान्तवास का अन्त..........

अध्याय–IX **344**

प्रारब्ध की प्रस्तावना; अहंकार का नाश; आत्म समर्पण करना; मानसिक चिकित्साचार्य; कुञ्जी; बाबा की शिक्षा का सार; आध्यात्मिक विद्युत भंडार; आत्मा की घर की ओर वापसी..........

• • •

''यद्यपि मैं प्रत्येक अवतारिक काल में बिल्कुल भिन्न प्रतीत होता हूँ, तथापि मैं आदि से लेकर अन्त तक सदैव वही हूँ और सदैव वही रहता हूँ। जो ईश्वरीय जीवन मैं साथ साथ प्रस्तुत करता हूँ उसको आचरित करने में लोगों की सहायता करने के लिये, मैं सांसारिक जीवन व्यतीत करता हूँ जो दुनियाँ के लोग करते हैं। लोगों के हृदयों में स्थापित होने के लिये मुझे किन्हीं धार्मिक संगठनों की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत, धार्मिक संगठनों को मेरे अनुसार स्थापित होने के लिये मेरी आवश्यकता है। जो लोग मुझसे प्रेम नहीं करते वे मुझको समझने में असफल होते हैं, और जो लोग मेरे ईश्वरत्व का साक्षात्कार नहीं करते वे उसको समझने में असफल होते हैं।

- **अवतार मेहेरबाबा**

अवतार

मेहेरबाबा की जीवन गाथा

जीन एड्रियल, कैलिफोर्नियाँ द्वारा
आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन

लेखिका

जीन एड्रियल

अनुवाद

स्व. श्री केशव नारायण निगम

बी.ए., एलएल.बी.

हमीरपुर (उ.प्र.)

अवतार मेहेरबाबा कॉस्मिक फ़ाउन्डेशन

यद्यपि मैं चेतनरूप से किसी सद्गुरु की खोज नहीं कर रही थी, फिर भी मैं उस आध्यात्मिक पूर्णता की खोज में थी जो कितने ही वर्षों से मेरी आत्मा की उत्कट अभिलाषा बनी हुई थी। उसी समय सद्गुरु मेहेरबाबा से पहली बार मेरा बाहरी सम्पर्क हुआ।

जब मैं 21 वर्ष की थी तो ऐंग्लिकन चर्च के एक पुरोहित ने 'यथार्थता के राज्य' में मेरा प्रवेश कराया। इस आध्यात्मिक जागृति ने मुझमें चेतना की एक ऐसी अवस्था पैदा कर दी थी जिसमें मेरा समस्त इन्द्रिय–ज्ञान अचानक एक परम श्रेष्ठ 'उपस्थिति' के ज्ञान में विलीन हो गया, जो ज्ञान पहले कभी मेरे ध्यान में न आया था। यह 'उपस्थिति' अन्तरिक्ष के प्रत्येक अणु में प्रवेश कर रही थी और अपने दिव्य सौन्दर्य से समस्त जीवन को तीव्र कर रही थी। मनुष्य, पेड़, फूल और यहाँ तक कि पक्के रास्तों का कंक्रीट भी, जिसके ऊपर मैं चलती थी, एक अलौकिक प्रकाश से दीप्तिमान थे। चारों ओर की मलिन से मलिन वस्तुएँ भी उस ज्योति के भीतरी तेज से प्रकाशित थीं जिसको मैं 'ईश्वर की उपस्थिति' जानती थी। मुझे इसका ज्ञान इस कारण से था क्योंकि यह 'उपस्थिति' मेरे हृदय में जागृत हो गई थी।

इस प्रारम्भिक अनुभव के पश्चात् कई माह तक वह परम आनन्दमयी चेतना मुझमें बनी रही। उसके बाद तीखी माया तथा उसके द्वारा उत्पन्न की गई मन की भ्रमपूर्ण अवस्था के कारण मैंने उस ऊँची चेतना को खो दिया, और फिर वर्षों तक मैंने व्याकुल हृदय से आध्यात्मिक आनन्द तथा शान्ति की कुञ्जी की खोज की।

दूसरे बहुतेरे लोगों की तरह मेरा दृढ़ विश्वास था कि इसके आगे आध्यात्मिक पथ–प्रदर्शन अपने अन्तःकरण से ही प्राप्त होगा, इसलिये मैं ध्यान तथा आत्म–चेतना के उन अभ्यासों को ढूँढ़ने लगी जो मुझको फिर से स्वर्गीय आनन्द को प्राप्त कराने के लिये सबसे अधिक सहायक जान पड़ते थे। मेरा ऐसा मत था कि किसी बाहरी आधार पर निर्भर होने से वह पूर्णता अर्थात् परमात्मा से मिलाप–टल जायेगी जिसकी खोज मेरी आत्मा कर रही थी।

अब और भी गहरी समझ आ जाने से मुझे ज्ञान हो गया है कि जीवन एक अखण्डनीय पूर्णता है और जिसको हम 'बाहरी' कहते हैं यह केवल भीतरी प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष रूप है–आध्यात्मिक पथ–प्रदर्शक आत्मा की भीतरी पुकार का प्रत्यक्ष उत्तर है।

इसी अवधि के बीच में एक बार जबकि मैं एक दाँतों के डाक्टर के यहाँ नाईट्रस–आक्साइड गैस को साँस से ऊपर खींचती हुई कुर्सी में बैठी थी, तब मैं एक क्षण के लिए अचेत हो गई और उस थोड़े से समय में मुझको पुनः वह चेतना प्राप्त हो गई जो तीन परिमाण वाले अस्तित्व (स्थूलजगत) को लाँघ जाती है। मेरे अन्तःकरण में सृष्टि का विराट् दृश्य (Cosmic Panorama of Creation) -जीवन, मृत्यु तथा मानव का अन्तिम प्रारब्ध–प्रकाशित हो गया। मेरे सान्सारिक जीवन के सन्ताप तथा समस्यायें, जो मेरे आध्यात्मिक कन्धों के ऊपर भार स्वरूप होकर लदे रहे थे, आसानी से मुझसे अलग हो गये। मैं स्वतन्त्र थी ! सीमित मन की परिमिततायें लुप्त हो गई थीं। निश्चित संकल्प की शक्ति से मैं अन्तरिक्ष में ऊँचे उड़कर सूर्य से प्रकाशित एक पर्वत–शिखर पर पहुँच गई। तब मैंने नीचे की ओर, अपने नीचे फैली हुई विस्तृत घाटी पर, दृष्टि डाली। वहाँ पृथ्वी के लोग चक्की में पिस रहे थे (Milled), और यद्यपि वे अन्धकारमय छाया से ढके हुये थे और मैं उनसे मीलों ऊपर जान पड़ती थी, फिर भी मुझको उनके आकार आश्चर्यजनक रूप से साफ दिखाई पड़ते थे। उनकी गतियाँ अधिकांशतः लक्ष्यहीन प्रतीत होती थीं, परन्तु इधर–उधर कोई मनुंष्य किसी अनधिकृत मार्ग पर चल देता था और शीघ्र ही दूसरे लोग उसके पद–चिन्हों पर चलने के लिये मानवीय–भँवर से फूट कर चले जाते थे।

मैंने इन साहसी तीर्थ–यात्रियों को पर्वत की विस्तृत तलभूमि में अपने एकान्त मार्ग पर चलते हुए ध्यान से देखा। जैसे वे पर्वत की चढ़ाई में आगे बढ़े उनको भीषण संकटों का सामना करना पड़ा। प्रारम्भिक कठिनाइयों से हतोत्साहित हुये, तथा आगे आने वाली उनसे भी बड़ी कठिनाइयों से भयभीत होकर, निर्बल हृदय वाले लोग संसार की विशाल भँवर में फिर से नीचे गिर गये। अधिक दृढ़ निश्चय वाले दूसरे लोगों ने धीरे–धीरे पेचीदा मार्ग से ऊपर चढ़ना प्रारम्भ किया, जबकि थोड़े से–बहुत थोड़े से–लोग दृढ़तापूर्वक इधर उधर मुड़े बिना, प्रायः सीधे चोटी तक चढ़ गये। जिस समय वे महान पर्वत की चोटी पर पहुँचे, मैंने एक ही तरह की आत्माओं के आनन्दमय सम्मेलन को देखा जो एक ही परम लक्ष्य की खोज में थीं। इन साथियों ने आपस में एक शब्द भी नहीं बोला। यहाँ किसी शब्द की आवश्यकता भी न थी : यहाँ पर विचार प्रेम से प्रेरित होकर अपने आपको बिना वाणी के प्रगट करता था।

यहाँ पर अपने ''नियन्ता'' के साथ–जिसको हम ईश्वर कहते हैं – आत्मा के मिलन का मिलाप–स्थल था। भीतरी प्रकाशन की एक प्रक्रिया द्वारा मैंने समझा कि यह 'एक' ईश्वर समस्त वस्तुओं और प्राणियों में निवास करता है, फिर भी वह अपनी सृष्टि से स्वतन्त्र है। इसी ''एक'' से मिलन को प्रेमीजन अपने इष्टों में खोजते हैं। पृथ्वी के विजेता इसी ''एक'' की शक्ति को धारण करते हैं। इसी ''एक'' के ज्ञान को ही पृथ्वी के बुद्धिमान लोगों ने सदैव घोषित किया है। इसी ''एक'' की शान्ति तथा आनन्द को सभी युगों तथा धर्मो के सन्तों ने ढूँढ़ा और पाया है।

जैसे ही मुझको इस ''एक'' से मिलन का ज्ञान हुआ, मेरी चेतना के भीतर सृष्टि का आकार प्रकट हो गया। मैंने एक प्रकाशबिन्दु अन्तरिक्ष में भयंकर गति से चक्कर खाता हुआ देखा, और उसके चक्कर के भीतर से तारागण, नक्षत्र, तथा जगत आकारमय होते देखे! प्रकाश और अन्धकार एक दूसरे का सन्तुलन करते थे। अव्यवस्था के बीच व्यवस्था स्थापित की जा रही थी। तब मैंने प्रस्फुटित होते हुये जीवन की चेतना का अपने अन्तर में अनुभव किया–जो खनिज पदार्थों में अत्यन्त घना, फूलों में अत्यन्त कोमल, तथा वन पशुओं में अत्यन्त भयानक था। मैं मन्द वेदना,

धुँधली चेतना, भारी क्रूरता का अनुभव कर सकती थी जो जीवन की ये नीची योनियाँ अनुभव करती हैं, और मैंने पहिचाना कि ये मन्दतर जीवन–कम्पन (Slower Life-Tremors) मेरी ही जटिलतर आनन्दों एवं व्यवस्थाओं से युक्त आत्मा के मौलिक अंश थे। सृष्टि के हर रूप में विद्यमान उसकी निजी खास चेतना को मैं फिर कभी अस्वीकार नहीं कर सकती थी, और न तो मैं जीवन की स्वर–समता से किसी भावना को अलग कर सकती थी।

मेरे सामने यह उजागर हुआ कि मेरे पाप कितने कम महत्त्व के थे, और मेरे सद्गुण भी उतने ही महत्त्वहीन थे। मैंने स्पष्ट रूप से देखा कि भलाई और बुराई इस नश्वर जीवन के केवल प्रत्यक्ष रूप हैं, जबकि ईश्वर मूल रूप में समस्त द्वन्दों (Opposites) से परे है। इस महान यथार्थता का बुराई तथा भलाई के क्षुद्र–संसार की मेरी कल्पना से कोई सम्बन्ध न था। इस यथार्थता ने गरजते हुये, फिर भी शान्त स्वर में, मेरे अन्तर में यह सन्देश कहा–''सहज बनो ! जीवन के प्रति प्रत्युत्तर में पूर्णतया बन्धनहीन बनो।''

इसने परिवर्तनशील ढँग से (Kaleidescopically) प्रकट किया कि मेरे भीतर स्थित आत्मा ने–जो सबकी आत्मा तथा इस 'परमात्मा' के साथ एक थी–दुःख एवं सुखपूर्ण अनेक जीवनों से होकर चेतन–आत्मत्व के लिये अपनी क्षमता विकसित कर ली थी। इसने प्रदर्शित किया कि मेरी अलग की हुई (Individualized) आत्मा के लिये एक सुदृढ़ तथा लचीला लिबास बुनकर तैयार करने के हेतु तनाव तथा छुड़ाव के कितने रूपों की आवश्यकता हुई थी, और–सान्सारिक अनुभव की परिपूर्णता तक पहुँच जाने के बाद–अन्त में इसके प्राप्त हो जाने पर मेरी आत्मा किस प्रकार से विकास के अन्तिम क्रम के लिये–अर्थात् ईश्वर से चेतन रूप से पुनर्मिलन के लिये–तैयार होगी।

मुझको अब इस 'एक, सुदूर, दैवी घटना' का अनुभव हुआ जिसकी घोषणा सब युगों के कवियों ने की है। परम हर्ष के ज्वारभाटा की एक लहर में मेरी जीवात्मा (Lesser Self) का अन्तिम शेष अंश परमात्मा से मिलन में निमग्न हो गया। एक समयविहीन (Timeless) क्षण के लिये मैं

वही 'एक' थी। मेरे व्यक्तित्व का ह्रास नहीं हुआ था, वरन् वह ऊँचा उठकर अपार शक्तियों से सम्पन्न परमात्मा के अनुरूप हो गया था। आगे एक अनन्त भविष्य में तथा पीछे एक युगविहीन भूत में–जो एक परिमाणरहित वर्तमान में मिश्रित थे–मैंने बनते हुये और नष्ट होते हुये सन्सार देखे और एक अपार परमात्मा द्वारा, जो सन्ताप में भी निरन्तर अपनी सृष्टि के अनश्वर आनन्द का उपभोग कर रहा था, एक अपार खेल खेला जाते हुये देखा। एक अनन्त क्षण के लिये दाँतों के डाक्टर की वह कुर्सी 'अनन्तता' में मेरे हेतु एक विमान (Stratoplane) बन गई थी। यथार्थता की इस स्पष्ट झलक ने स्वाभाविक रूप से मुझमें अपने चेतन जीवन में उसके श्रेष्ठ विवेक को अधिक से अधिक पूर्ण करने के लिये स्फूर्ति तथा प्रेरणा उत्पन्न की। कुछ वर्षों के उपरान्त एक द्वार फिर खुला जिसने मुझको विस्तृत ज्ञान के एक और प्रचण्ड अनुभव तक कुछ सप्ताहों के लिये पहुँचाया। एक परम हर्ष ने, जिसने कि मुझको लगभग निमग्न कर लिया, मन की सम्पूर्ण क्रिया को बिल्कुल शान्त कर दिया। अग्नि की तरह, यह ऊँची उठी हुई तरंग मेरे शरीर तथा आत्मा में समा गई; यथार्थ में मुझको अब भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों के बीच में कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता था। दिव्यदृष्टि, दिव्यज्ञान, तथा वायु में मँडराने की आन्तरिक शक्तियाँ मुझमें जागृत हो गईं। एक दिन सबेरे जबकि धूप फैली हुई थी मैंने पाँचवी गली (Fifth avenue) से चलकर सेन्ट्रल पार्क में टहलते हुए अपने आप को महान स्वतन्त्रता तथा आनन्द के साथ पृथ्वी से लगभग चार फीट ऊपर उठकर पगडण्डी के नीचे की ओर हवा में उतरते हुये पाया, जब तक कि थोड़ी दूर पर आते हुये कुछ लोगों ने आकर मुझको नीचे खींचकर ज़मीन पर नहीं किया। मुझे इस घटना के सनसनीदार विज्ञापन का विषय बनने की कोई इच्छा न थी।

मेरे सामने एक भविष्य प्रगट हुआ जिसमें मैंने देखा कि यह विस्तृत चेतना अनेक लोगों के लिये आदर्श होगी। मेरी समझ में आ गया कि किस प्रकार से फूट तथा युद्ध अपने आप समाप्त हो जायेंगे जिस समय विश्वव्यापी प्रेम एवं आनन्द के वे गुण, जो उस समय मेरे अन्तर में प्रवाहित हो रहे थे, मनुष्य की आत्मा में संचरित हो जायेंगे। मैंने देखा कि किस प्रकार से उस आगामी समय में मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध

अधिकार–लिप्सा से रहित होंगे; किस प्रकार से मनुष्य भौतिक शरीर को जब तक चाहेगा तब तक धारण किये रह सकेगा, और किस प्रकार से मनुष्य की बन्धनरहित आत्मा उस शरीर (Vehicle) में जीवन को निरन्तर नवीन बनायेगी जिसमें (शरीर में) कोई मानसिक, भावात्मक, अथवा भौतिक दबाव उसको छिन्न–भिन्न करने के लिये नहीं होगा। मुझको यह भी प्रकट हुआ कि जब खण्डनात्मक मन में हृदय का समन्वय करने वाली आन्तरिक शक्ति का अभाव होता है, तब उसकी खण्ड करने वाली, अलग करने वाली तथा धीरे धीरे क्षय करने वाली प्रवृत्तियाँ आत्मा के कोमल स्पन्दनों के लिये कैसी विनाशकारी होती हैं।

आह, एक महीने के बाद मेरी यह तीव्र चेतना भी क्षीण हो गई। चूँकि उसके बिना जीवित रहना दुःखमय था, मैं अच्छी तरह से जानती थी कि उसको चेतना की स्थायी अवस्था के रूप में फिर से प्राप्त करने और क़ायम रखने से पहिले मुझको किस बात की पूर्ति करना थी। वह अनुभव मुझको शरीर का पुनरुत्थान होने पर ध्यान के द्वारा हुआ था; और मुझको यह बहुत स्पष्ट रूप से देखने में आया कि शरीर के इतने तीव्र स्पन्दन को सह सकने के पहिले उसके हर कोने को निर्मल करना आवश्यक था–नई प्राप्त हुई शक्ति के साथ एक लय में करना आवश्यक था; अहंकारी मन को शान्त करना था; अशान्त भावनाओं को पवित्र करना था। चेतना की इस ऊँची अवस्था को स्थायी रूप से निवास देने के लिए शरीर के हर तन्तु को तथा मन के हर छिद्र को शब्दशः फिर से ठीक बैठाना आवश्यक था।

यह अनुभव मुझमें उस दीप्तिमान जीवन–शक्ति के एक अंश को छोड़ गया जिससे वह भरा हुआ था–जिससे कि मैं तीव्र आवश्यकता के अवसरों पर उसका उपयोग कर सकूँ। बहिर्हाल, गम्भीर शान्ति तथा कारण रहित आनन्द, मुझमें ईश्वर के प्रति एक अत्यन्त उत्कट अभिलाषा छोड़कर, लुप्त हो गये। वास्तविकता के 'राज्य' के भीतरी जीवन का एक बार अनुभव कर लेने का अर्थ है ईश्वर का व्यसनी हो जाना। कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक सुख तथा कोई भी सान्सारिक आनन्द उस आत्मा की भूख को कभी शान्त नहीं कर सकता जिसने एक बार ईश्वर का स्वाद पा लिया हो, यद्यपि समस्त मानवीय आनन्द ईश्वरीय ज्ञान के द्वारा अपार रूप से बढ़ जाता है।

आगामी दो वर्षों के दौरान में मैंने अपने प्रिय साथी तथा पूर्व पति मैलकाम श्लास के साथ रहते हुये अपनी भीतरी खोज को जारी रक्खा, जबकि मैं, उनको न्यूयार्क में अपने आध्यात्मिक केन्द्र नार्थलोड पुस्तक–भण्डार को आर्थिक विफलता से बचाने में सहायता कर रही थी। उस पुस्तक–भण्डार के आखिरकार समाप्त हो जाने के बाद जो घटनायें घटित हुईं वे सद्‌गुरु मेहेरबाबा से मिलने की इस गाथा का मह त्वपूर्ण भाग हैं, और तब हम लोगों को उसके समाप्त हो जाने का कारण स्पष्ट हो गया। परन्तु उस समय उस दुकान का टूट जाना समझने में गूढ़ और स्वीकार करने में कठिन था।

उन अन्तिम घोर श्रमपूर्ण सप्ताहों में एक दिन एक अपरिचित मनुष्य पुस्तक–भण्डार में आया। मैलकाम से बात करने के बाद तथा उनकी रहस्यवादी कविताओं की एक किताब, "Songs to celebrate the sun" (सूर्य की स्तुति के गीत) खरीद कर वह मनुष्य मैलकाम के पास एक चिट्ठी छोड़ गया जो उसके पास हाल ही में एक अँग्रेज़ के यहाँ से आई थी, जिसमें उस अँग्रेज़ ने डैवनशायर में स्थित अपनी आध्यात्मिक शाला का वर्णन किया था। वह अपरिचित मनुष्य मैलकाम की कविताओं की खरीदी हुई पुस्तक को इसी अँग्रेज़ के यहाँ भेजना चाहता था जो स्वयं एक कवि था।

दूकान के समाप्त होते हुये जीवन में नई जान डालने के अन्तिम प्रयत्नों के भारी दबाव के कारण मैलकाम ने इस पत्र को एक ओर रख दिया था और उसके अस्तित्व को भूल गया था। एक दिन सन्ध्या समय उस पत्र को मैंने मैलकाम की मेज़ पर पड़ा हुआ देखकर उसे उठाया और पढ़ा। मैंने अपने को उस अनोखी और हलचल पैदा करने वाली शक्ति से उत्तेजित अनुभव किया जो उस पत्र के शब्दों से प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती थी।

मैंने मैलकाम से चिल्लाकर कहा, ''इस पत्र में हमारे लिए कुछ सामग्री है ! आओ मैं इसे पढ़कर तुम्हें सुनाऊँ।''

ज्यों ही मैंने उसको पढ़ा, मुझे मालूम हुआ कि यह शक्ति पत्र लिखने वाले की क़लम से नहीं बल्कि उससे परे कहीं से आ रही थी। इसलिये मुझको मैलकाम से यह जानकर आश्चर्य नहीं हुआ कि वह अँग्रेज़ भारतवर्ष में एक महान आध्यात्मिक सद्‌गुरु के साथ छः माह तक रहा था

और उस सद्‌गुरु के सुझाव से उसने इँगलैण्ड में आध्यात्मिकशाला स्थापित की थी, जिससे कि सद्‌गुरु द्वारा पश्चिमी जगत में पहली बार आने का निश्चय करने के समय तक उसके लिये मार्ग तैयार हो जाये।

अगले सप्ताहों की तेजी से घटने वाली घटनाओं के कारण वह पत्र हमारे तात्कालिक ध्यान से उतर गया। पिछले महीनों के आर्थिक दबाव के फलस्वरूप हमारे लिये अपने छोटे कमरे का किराया चुकाना असम्भव हो गया था, जो उसी होटल में स्थित था जिसमें हमारी किताबों की दूकान थी।

सप्ताह के अन्त में एक उत्सव से लौटने पर, जो हमने न्यूयार्क के बाहर मित्रों के साथ मनाया था, हमको हमारे कमरे हमसे छिनकर तालों से बन्द मिले और हमारा सब सामान ज़ब्त मिला। उन कपड़ों के अतिरिक्त जो हम अपने साथ ले गए थे हमारे पास लगभग ढाई शिलिंग* कीमत की सम्पत्ति रह गई थी। हमारी दिवालिया सम्पत्ति का नीलाम कुछ ही दिनों में होने वाला था, इसलिए किताबों की बिक्री से हमको किसी आर्थिक सहायता की आशा न थी। मैलकाम अपने परिवार के साथ रहने लगे और मैं अपनी मित्र शहज़ादी नोरीना मचबेली के कमरे में चली गई। धीरे धीरे, जैसे जैसे दूसरे मित्रों को हमारी दशा मालूम हुई हमारे पास रुपया पैसा तथा कपड़ों की भेंटे आने लगीं। बिना घर तथा बिना पैसों के हो जाने पर हमारे हृदय में जो पहला धक्का लगा था उससे संभल जाने के बाद हमारे अंदर अपनी भीषण परिस्थिति में साहसी कार्य करने की क्षमता आ गई। हमने अनुभव किया कि हमारे जीवन का एक पुराना अध्याय समाप्त हो गया था, और हमने उत्सुकता एवं आनन्द पूर्वक नया पृष्ठ पलटा और उसे एक मनोहर अवकाश की आशाओं से उज्ज्वल पाया। हमको न्यू हैम्पशायर के एक बड़े फ़ार्म में मित्रों की एक टोली के साथ ग्रीष्मकाल व्यतीत करने

(शिलिंग एक अँग्रेज़ी सिक्का है जिसका मूल्य भारतीय सिक्का में दस आना से बारह आना के बीच में घटता बढ़ता रहता है।)

का निमन्त्रण मिला। अन्त में जब हमारे प्रस्थान करने का दिन आया, तो हमारे पास गर्मी की ऋतु के सभी ज़रूरी कपड़े हो गये थे; हमने अपनी यात्रा का किराया चुका दिया था, और हमारे पास गर्मियों के खर्च के लिए 6.32 शिलिंग बच रहे थे।

हमने न्यूयार्क के अन्तिम सप्ताहों की झन्झटों के बाद खुली देहात की चंगा करने वाली शान्ति का स्वागत किया। किताबों की दूकान छिन जाने का तीखा नश्तर मैलकाम के ऊपर चल जाने के बाद उसको विशेष रूप से उस ताजगी की आवश्यकता थी जो उसको देवदार के वृक्षों से आने वाली हवा, खुली धूप और शान्त रातें प्रदान कर सकती थीं। अतएव गर्मी की एक ऋतु भर हमने बहुत थोड़ा कार्य करते हुए, बीच बीच में खेलते हुए, और नियमित अन्तर पर ध्यान चिन्तन करते हुए, हल्के रूप से तेज बनाये गये सागों पर जीवन बिताया। उस टोली का केवल एक सदस्य अपने को लिखने के कार्य में गम्भीरतापूर्वक लगाने में समर्थ प्रतीत होता था। हममें से शेष लोग धूप में सुस्त पड़े रहते थे, नदी में तैरते थे, देवदार के वृक्षों के नीचे अध्ययन अथवा ध्यान करते थे और बढ़िया शाकाहार करते थे जो हमने अपने ही बाग में उगाया था और जिसे हम खुद पकाते थे। इस प्रकार आकस्मिक रूप से हमने सामूहिक जीवन और उसके लाभ एवं उसकी कठिनाइयों का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त किया, और हममें से कम से कम दो जन उस दिन की बाट जोहते थे जबकि हम समान विचार वाले मित्रों के साथ देश में एक स्थायी स्थान बना सकेंगे, जो (मित्र) हमारे साथ भीतरी 'राज्य' के गुप्त खजानों को खोजने की चिन्ता करेंगे।

इस शान्त वनवास में एक दिन तीसरे पहर के समय हमारे पास एक विचित्र सन्देश आया। निकटवर्ती मैक डोवेल उपनिवेश (Mac Dowell Colony) से हमारी एक मित्र ने टेलीफोन द्वारा हमको सूचना दी कि वह मिलो (Milo) को हम लोगों से मिलाने के लिए वहाँ लाना चाहती थी। मिलो

हार्वर्ड विश्वविद्यालय का एक स्नातक था, जो उसी समय इंगलैंड से आया था जहाँ वह पिछले एक वर्ष भर एक आध्यात्मिक शाला में रहा था। उस आश्रम के संचालक वही अँग्रेज़ सज्जन थे जिनके पत्र ने कुछ सप्ताहों पहिले मेरे हृदय में गहरी हलचल पैदा कर दी थी, और उन्होंने इस युवक कवि को किसी विशेष कार्य के लिये अमरीका भेजा था जिसका प्रयोजन उन्होंने मिलो को नहीं बताया था। बहिर्हाल हमारी मित्र को यह निश्चित प्रतीत होता था कि मिलो मैलकाम तथा मुझसे सम्पर्क करने के प्रयोजन से अमरीका भेजा गया था। इस पर हमको मनोविनोद प्राप्त हुआ, परन्तु स्वाभाविकरूप से हमारी रुचि मिलो से मिलने और अँग्रेज़ी आश्रम में हुए उसके अनुभवों को उसी से सुनने की थी।

दूसरे दिन तीसरे पहर के समय वे चाय पीने के लिये आए, और ऐसा संयोग हुआ कि उस दिन हमारे टोली—परिवार के अन्य सब सदस्य बोस्टन में थे। हमने मिलो के सामने उन प्रश्नों की झड़ी लगा दी जो हमारे मनों में इकट्ठा होते रहे थे, खास कर भारतवर्ष के सद्गुरु के सम्बन्ध में, और हमको मालूम हुआ कि यह सद्गुरु, जिनको परिचित जन 'बाबा' कहकर पुकारते हैं, पहिली बार पश्चिमी देशों का भ्रमण करने के लिये उस शरद ऋतु में इंगलैण्ड आने वाले थे।

जैसे हमने उनके विषय में बातचीत की, मुझे महसूस हुआ कि मेरा आन्तरिक जीवन ज्वाला के रूप में प्रज्वलित हो रहा था। "मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर जल रहा था !" मुझे महसूस होता था कि मैं रहस्य और शक्ति के सम्मुख थी—खुद सद्गुरु कमरे में हमारे साथ रहे होंगे; वह अत्यन्त निकट जान पड़ते थे, और जैसे ही मेरे विचार तथा मेरे प्रश्न उनकी ओर होते थे वैसे ही एक प्रबल एवं सीधी लहर मेरे अन्तर में प्रवाहित हो जाती थी।

मुझको अन्तर्ज्ञान द्वारा महसूस हुआ कि मेरेडिथ स्टार नाम का अँग्रेज़, जिसकी चर्चा मिलो कर रहा था, सद्गुरु की तरंगों को प्रसारित करने का केवल प्रसारक स्टेशन था। परन्तु, ऐसी अतिश्रेष्ठ शक्ति का प्रसारक—यन्त्र भी सद्गुरु से मिलाप कराने के हेतु मार्ग तैयार करने का साधन हो सकता था, इसलिये कवि मिलो के सम्पर्क के अन्त में हमारे मन

पहिले ही इंगलैण्ड तथा डेवनशायर आश्रम की ओर जा रहे थे। कुछ दिनों के उपरान्त मिलो हमसे विदा होने के लिये पुनः हमारे यहाँ आया। उसको उसी समय इंगलैण्ड से तार मिला था कि वह इंगलैण्ड लौट जाये। यह स्पष्ट था कि उसके अमरीका आने का प्रयोजन पूरा हो गया था। वह हमारे पास एक सिली हुई छोटी पुस्तक छोड़ गया जिसमें उस अँग्रेज़ी आश्रम का वर्णन था और जिसमें अपने अनुभव तथा आध्यात्मिक लालसाओं की संक्षिप्त रूपरेखा लिखने के लिये भावी आगन्तुकों से निवेदन किया गया था। चूँकि मैलकाम की रहस्यवादी कवितायें—जो उसके आदर्शों और उसके भीतरी अनुभवों की स्वतःप्रदर्शक थीं—इस समय तक डेवनशायर पहुँच चुकी थीं, इसलिये मैंने इंगलैण्ड के लिये पत्र लिखा और उसमें अपनी आशा प्रकट की कि हम किसी दिन आश्रम पहुँचेंगे।

हम अपने निर्व्यापार जीवन पर पुनः आने वाले थे कि उसी समय इंगलैण्ड से मेरेडिथ स्टार की कविताओं की किताब मैलकाम के लिये आ पहुँची। उस किताब की अधिकांश कवितायें स्टार ने उस समय लिखी थीं जब वह भारतवर्ष में सद्गुरु के साथ था। उनमें उस अनुभव की छाप थी, और वे सद्गुरु के प्रेम एवं शक्तियों को इतनी अधिकता से हृदय में प्रविष्ट कराती थीं, कि जब हमने उन्हें अपनी टोली को सन्ध्या समय एक विशाल सेब के वृक्ष के नीचे सुनाया तो मुझे अपनी चेतना को अपने शरीर में स्थिर रखना कठिन हो गया। निःसन्देह यह आदमी, 'बाबा', जो दूसरे आदमी के शब्दों के माध्यम से किसी मनुष्य की अन्तरात्मा को इतनी प्रचण्डता से उत्तेजित कर सकता था, कोई साधारण मनुष्य न था। मैंने अब यह भी महसूस किया कि जब कभी मैलकाम और मैं उसके विषय में चर्चा करते थे, जैसा कि हम तीसरे पहर के विश्रामकाल में अनिवार्यरूप से किया करते थे, मेरे अन्तर में वही तीव्रता आ जाती थी।

ठीक उतने ही समय में जितना कि एक पत्र को इंगलैण्ड पहुँचने और वहाँ से उत्तर आने के लिये आवश्यक होता है, मेरेडिथ स्टार के यहाँ से हमारे पत्र का उत्तर आ गया। यह हमारे लिये एक हार्दिक प्रत्युत्तर था जिसमें हमें अपनी सुविधानुसार इंगलैण्ड आने के लिए निमन्त्रित किया गया था, और इस बात पर जोर दिया गया था कि यदि वहाँ आना हमारे

प्रारब्ध में होगा तो हमारे लिये रास्ता खुल जायेगा, जैसा कि मेरेडिथ स्टार को निश्चित रूप से महसूस होता था।

इस पत्र के आगमन के साथ उदारता के आश्चर्यजनक प्रकाशनों का ताँता लग गया। उसी डाक में स्टार के पत्र के साथ एक दूसरा पत्र इंगलैण्ड से हमारी टोली के एक सदस्य के पास किसी सज्जन का आया जो अपना नाम गुप्त रखना चाहते थे। उस पत्र में मैलकाम तथा मेरे लिये पचास डालर रक्खे थे। एक या दो दिन के उपरान्त हमारे प्रिय मित्र जूलियन लामर हमारे साथ इतवार का अवकाश बिताने के लिए आए, और हमसे विदा होते समय वह हमारे लिये पचीस डालर दे गए, और इस बात की क्षमायाचना हमसे करते गये कि वह हमको इतना थोड़ा पैसा ही दे सके थे। एक अन्य मित्र ने इतनी ही रकम डाक द्वारा मुझको भेजी, और हमारी टोली के दो जनों ने हमको तीस डालर दिये। तदुपरान्त एक मित्र का पत्र आया जो जरसी द्वीप (Isle of Jersey) में जाकर रहने लगा था, और जिसने केवल हाल ही में हमारी किताबों की दूकान के दिवालिया हो जाने के विषय में सुना था। उसने हमारी ज्यादा सहायता कर सकने में अपनी असमर्थता पर खेद प्रकट किया, किन्तु उसने हमको सुझाव दिया था कि हम प्राचीन तथा दुर्लभ पुस्तकों के उस संग्रह को, जो उसने हमारे पास भेजा था, बेच डालें और बिक्री से आई हुई रकम को अपनी आवश्यकताओं के लिए रक्खें।

इस समय तक हम अपने को आश्चर्य के प्रदेश में एलिसेज इन वन्डरलैण्ड (Alices in Wonderland) की कुछ कहानियों की भाँति महसूस करते थे, और हमारा विश्वास था कि उस समय कोई भी चीज सम्भव थी! और, वास्तव में ऐसा ही था, क्योंकि दूसरी डाक में—गोयाकि हमारे इस प्रश्न के उत्तर में कि हम किताबों को किस प्रकार बेचेंगे—एक मित्र का

अग्रसारित पत्र आया जिसने किताबों की दूकान के समाप्त हो जाने का समाचार नहीं सुना था। न्यूयार्क की ग्रीष्मकालीन गर्मी में हमको मुरझाता हुआ समझ कर उसने हमें देहात में अपने स्थान पर एक लम्बा अवकाश अपने साथ बिताने के लिये निमन्त्रित किया। उसके उत्तर में हमने उसको अपने इंगलैण्ड जाने के विचार तथा किताबों के प्रदर्शन के लिये न्यूयार्क में एक स्थान की अपनी ज़रूरत के विषय में बताया। दो दिन के बाद हमको उसका तार मिला जिसमें उसने हमको न्यूयार्क नगर में स्थित अपना घर दिल से सौंप दिया था और यह भी बताया था कि उस घर की कुन्जी हमें कहाँ मिलेगी।

सितम्बर माह के पहिले हफ़्ते में हम न्यूयार्क नगर लौट आए। हमारे हृदय एक नवीन आनन्द से ओत–प्रोत थे। मैंने स्टार को लिख दिया था कि हम जल्दी ही इंगलैण्ड के लिये प्रस्थान करने की आशा कर रहे थे और उसके उत्तर में हमको सन्देश मिला कि सद्‌गुरु मेहेरबाबा कुछ ही हफ़्तों के भीतर इंगलैण्ड आने वाले थे। इस समाचार से हमको किताबें बेचने के अपने प्रयासों में स्वाभाविक रूप से नवीन प्रेरणा मिली। मैलकाम भावी खरीददारों से मिला और पुनः पैसा बरसना प्रारम्भ हो गया। उन घटनाओं की लड़ी में सबसे प्रमुख घटना यह थी कि मुझको अपने जन्मदिवस, 21 सितम्बर, के दिन न्यूयार्क के एक बैंक से सूचना मिली कि एक गुमनाम भेजने वाले ने लन्दन के एक बैंक में सौ डालर जमा करके उसकी हुण्डी मेरे लिये न्यूयार्क के बैंक में भेजी थी।

हमें सन्देह था कि यह नई भेंट हमारे लिये उसी सज्जन ने भेजी थी जिसने हमको पचास डालर उस समय भेजे थे जिस समय हम न्यू हैम्पशायर में थे, और तदुपरान्त जब हमको उस दाता का परिचय मालूम हो गया तो हमारे अनुमान की पुष्टि हो गई।

हमारा वह गुमनाम हितैषी थामस ए. वाटसन था। उससे हमारी भेंट न्यूयार्क में उदार भेंटों के दिनों (raven days) के चन्द सप्ताहों के बाद हुई थी। उसकी आयु सत्तर वर्ष से ऊपर थी, और उसका हृदय ऐसा तरुण तथा सहानुभूतिपूर्ण था जैसा कि निर्भ्रष्ट जवान का होता है। अपनी जीवनवृत्ति के प्रारम्भ में उसने टेलीफ़ोन के आविष्कार तथा उसके निर्माण

में अलेक्जेंडर ग्राहम बेल के साथ कार्य किया था, और अपने लम्बे तथा उपयोगी जीवन भर वह रचनात्क विचारों एवं प्रवृत्तियों के प्रति जागरूक रहा था जो मानवता को श्रेष्ठतर तथा अधिक से अधिक ईश्वर द्वारा प्रेरित जीवन बिताने में सहायक होती हैं। जो कुछ वह दूसरों को सिखाता था उसको अपने दैनिक जीवन में आचरण द्वारा दिखलाता था। वह नवीन दैवी भावनाओं के प्रति इतना सहानुभूतिमय (Responsive) रहा था कि जब वह साठ वर्ष से ऊपर की आयु का हो चुका था तब वह शेक्सपीरियन रोड कम्पनी के सदस्य की हैसियत से अभिनय का अध्ययन करने के लिए इंगलैण्ड गया, और उस कम्पनी के साथ उसने कई वर्षों तक इंगलैण्ड के देहातों का सफ़र किया। हमसे उसकी मुलाकात होने के कुछ ही वर्ष पहले उसने चित्रकला का कार्य प्रारम्भ कर दिया था, और इस कला में भी उसने असाधारण योग्यता दिखाई थी।

उसके अनेक उपजीवी पुरुषों में से एक युवक कवि मिलो था, जो गर्मी की ऋतु में हमसे मिला था। मिलो के द्वारा वाटसन ने अँग्रेज़ी आश्रम तथा वहाँ बाबा के हाल ही में आने के विषय में सुना था। सद्‌गुरु के विषय में उसने जो वृत्तान्त सुने थे उनसे आकर्षित होकर उसने अपनी ग्रीष्मकालीन यात्रा के कार्यक्रम में डेवनशायर की यात्रा शामिल कर ली। जब हम उससे मिले तो उसने बाबा से अपने मिलने की अनोखी कहानी हमसे बयान की।

एक दिन वह अन्य कई लोगों की तरह यह आशा रक्खे हुए कि बाबा अगले दिन आश्रम में आवेंगे, रात को आश्रम में सो गया। जब वह बड़े तड़के जागा तो उसने देखा कि उसका तकिया उसके अनभ्यस्त आँसुओं से भीग गया था जो उस समय भी उसकी आँखों से चालू थे, और उसके हृदय में एक अकथनीय आनन्द था। वह अपनी खुली हुई खिड़की के सामने खड़ा हो गया, और डेवनशायर के देहात के शान्त सौन्दर्य का अपने नेत्रों से पान करते हुए थोड़े समय के लिए विचारमग्न हो गया। उसने सोचा कि आँसुओं की इस अजीब घटना–इस गम्भीर स्वच्छन्द आनन्द–का क्या अर्थ है ? जिस समय वह इस प्रश्न के उत्तर को टटोल रहा था उसने अपने कन्धे के ऊपर एक कोमल हाथ के स्पर्श का अनुभव किया। उस हाथ के स्पर्श तथा उसके पलट कर देखते ही, उसकी आँखों में आँखें

डालकर मुस्कुराते हुये सद्‌गुरु की आँखों ने उसको आखिरकार उस ईश्वरीय प्रेम का ज्ञान प्रदान किया जिसकी खोज में उसने अपना अधिकांश जीवन व्यतीत कर दिया था। ज्यों ही उसके हृदय के अंदर दैवी प्रेम की बाढ़ से हृदय के फाटक खुले, अतिशय आनन्द एवं प्रकाश की लहरें उसके अन्तर में फूट पड़ीं और उसके नेत्रों में आँसुओं की नई बाढ़ उमड़ पड़ी। उसको अपने अन्तर में ज्ञान हो गया कि बाबा से उसका यह मिलन 'सजीव–सत्यता' के लिये की गई उसकी खोज की चरम सीमा थी।

तदुपरान्त दिन में उसने मेरेडिथ स्टार से सुना कि उसने वह पत्र बाबा को दिखा दिया था जिसमें मैंने अपने आध्यात्मिक अनुभवों तथा लालसाओं का वर्णन किया था, और बाबा से आशा प्रकट की थी कि मैलकाम और मैं आश्रम पहुँचेंगे। इस पर बाबा का तात्कालिक उत्तर निकला था कि मैलकाम और मैं 'उनके ही' थे और उन्हें हमसे अवश्य मिलना था। सद्‌गुरु की इसी घोषणा ने प्रिय थामस वाटसन को हमारे इंगलैंड जाने के यात्रा व्यय के लिए पैसों की दो गुमनाम भेंटें भेजने के लिये प्रेरित किया था। उसका हृदय और उसके हाथ सहायता करने के लिये सदा तैयार रहते थे, उसकी उदारता सदैव अनुग्रहपूर्ण होती थी।

मिस्टर वाटसन से हमारी भेंट होने के समय, हमने पहिले ही अपनी विदेश–यात्रा के आज्ञापत्र प्राप्त कर लिये थे और हम अक्टूबर माह के मध्य में जलमार्ग से जाने के लिये जहाज में अपने स्थान सुरक्षित कराने वाले थे कि उसी समय हमको इंगलैण्ड–यात्रा स्थगित कर देने के लिये स्टार का तार मिला, क्योंकि वह और सद्‌गुरु का दल अमरीका आ रहे थे। इस उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा के दौरान में हमको कई तार मिले जिनमें से पहिले तार द्वारा हमसे पूछा गया था कि क्या हम उस टोली के एक सप्ताह ठहरने का प्रबन्ध कर सकेंगे। सद्‌गुरु के यजमान बनने की आशा से पुलकित होकर हमने यात्रा व्यय को अब इस प्रबन्ध में खर्च करने का निश्चय किया। मैंने एक मित्र से सम्पर्क किया जिससे हमने एक बार हारमन–आन–दी–हडसन (Harmon-on-the-Hudson) पर एक सुसज्जित कला–भवन किराये पर लिया था। मेरे पत्र के उत्तर में, जिसमें मैंने अपने प्रख्यात अभ्यागत का परिचय खोल दिया था, उसने सद्‌गुरु तथा उनके

सेवकों के स्वागत–सत्कार में अपने भागदान स्वरूप, क्रोटन नदी के जल के ऊपर झूमते हुये पेड़ों के बीच में ऊँचाई पर भूरे रंग के पत्थर से बने हुये, अपने सुन्दर भवन को प्रस्तुत करने का सौजन्य दिखाया।

इस महान अवसर के हेतु उस भवन को ठीक करने के लिये हारमन जाने के एक दिन पहिले मैं तीसरे पहर अपनी मित्र नोरीना मचबेली के साथ रही, जो उसी समय नगर में वापिस आई थी। मैंने उसको अपनी भावी योजनाओं के विषय में लिखा था–प्रथम, इंगलैण्ड जाने की हमारी आशा, तदुपरान्त निकट भविष्य में बाबा का अमरीका में आगमन। शरीर को जलाने वाले व्यंग्य किन्तु भावों के असाधारण संयम के साथ, नोरीना ने अपने प्रश्नों के द्वारा मेरे अन्तस्तल को टटोला और इस प्रश्न के साथ बात समाप्त की : ''यह सद्गुरु कौन है जिसके चरणों की पूजा तुम करोगी ?'' मैंने बाबा के विषय में जो कुछ थोड़ा बहुत सुना और पढ़ा था तथा मेरे हृदय ने प्रचुरता से जो कुछ मुझे बताया था वह मैंने उसको बताने का प्रयत्न किया। लगभग दस मिनट तक उसने ध्यान से सुना, फिर, रहने के कमरे के एक ओर से दूसरी ओर तक टहलते हुये, उसने मुझको डाँटना शुरू किया :–

''तुम 'किसी' मनुष्य के चरणों की पूजा कैसे कर सकती हो, चाहे वह अपने को 'सद्गुरु' ही कहता हो ? तुम्हें, जिसे खुद ही ऐसे गम्भीर भीतरी अनुभव हो चुके हैं, ईश्वर–प्राप्ति का मार्ग बताने के लिये किसी मनुष्य की आवश्यकता नहीं है। तुम अपने आपको ऐसी बेवकूफी में कैसे फँसने दे सकती हो ?''

मैं उत्तर देने की प्रतीक्षा में रही जब तक कि उसकी असम्मति का तेज़ प्रवाह समाप्त न हुआ। तत्पश्चात् मैंने उसको शान्ति से बताया कि मैं अपनी खुद की भीतरी प्रेरणा पर चलने के लिये अपने को दृढ़ता से प्रेरित महसूस करती थी, जिसको मैं अपने जीवन का गम्भीरतम अन्तर्ज्ञान (Intuition) जानती थी।

उन तमाम बातों में से एक, जो मैंने नोरीना को बाबा के विषय में बताई थीं, आँसुओं की असाधारण घटना थी जिसका अनुभव मिस्टर वाटसन तथा कई दूसरे लोगों को बाबा से पहिली बार मिलने पर हुआ था।

इसलिये उससे विदा होते समय ज्यों ही मैंने उससे प्रणाम किया, उसने हँसते हुए कहा : ''अच्छा, जब तुम्हारा 'सद्गुरु' आयेगा, तो मैं उससे अवश्य मिलूँगी। मैं भी रोना चाहती हूँ !''

अगले कुछ सप्ताह हमारे लिये व्यस्ततापूर्ण रहे, जिनमें हम श्वेत शिला–भवन को यूरोप से आने वाले अपने अभ्यागतों–मेहेर बाबा, उनके दो भारतीय शिष्य, अली व चाँजी, मेरेडिथ स्टार, मैलकाम, मैं तथा हमारे पाँच मित्र, जो हमारे साथ न्यू हैम्पशायर में रहे थे–के लिये खिड़कियों को लाल बेलबूटे तथा दरवाजे लगाकर सजाते रहे। कोई भी कार्य हमको कभी इससे बढ़कर आनन्द तथा जीवन प्रदान करने वाला प्रतीत नहीं हुआ था। फिर भी, जिस समय तैयारियाँ अन्तिम रूप से पूरी हो गईं उस समय, कदाचित् निर्बल शरीर के कारण, मुझमें नाममात्र को शक्ति शेष रह गई थी।

न्यूयार्क में बाबा के उतरने की तारीख छः नवम्बर निश्चित थी। उसकी पूर्व रात्रि को जब मैं थकी हुई शय्या पर पड़ी थी और इस बात पर आश्चर्य कर रही थी कि मैं ग्यारह लोगों के लिए रसोइया तथा गृह प्रबन्धक का कार्य करने के लिए पर्याप्त शक्ति कैसे पाऊँगी, मुझे अचानक ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरा कमरा प्रकाश से परिपूर्ण था, और उसके दूसरे क्षण ही दिव्य प्राणियों का एक समुदाय दिव्य संगीत गाता हुआ दीवारों व छत से निकल कर कमरे में भर गया, जिसकी सुन्दरता अकथनीय है। इन श्वेत वस्त्रधारी शक्लों के बीच में मैंने उस स्वर्गीय पुरोहित के रूप तथा अंगों को पहिचाना जिसने सोलह साल पहिले, मुझको सर्वप्रथम आत्मा के जीवन (Life of the spirit) में प्रविष्ट किया था। उस समय उसने भविष्यवाणी की थी कि कई वर्ष उपरान्त मुझको पृथ्वी पर स्वर्गीय राज्य की स्थापना करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी। अब ज्यों ही मैंने उसको इस जागृत आभास में देखा, वह मुझको देखकर मुस्कराया और बोला :

"जीन, यह वही क्षण है जिसकी भविष्यवाणी मैंने कई वर्ष पहिले की थी।" इसके पश्चात् वे स्वर्गदूत धीरे–धीरे अन्तर्ध्यान हो गए और मैं आनंद व विश्रामपूर्ण निन्द्रा में सो गई।

दूसरे दिन शाम को, जिस समय हमारा एक मित्र रसोई घर की खिड़की से बाहर, घर तक आने वाली सड़क पर छाए हुए नीरव अन्धकार में झाँक रहा था, एक मोटर कार की अगली बत्तियों का प्रकाश दूर पर दिखाई दिया, और हम जान गए कि हमारा वह अभ्यागत आ रहा था जिसकी आशा हम चिरकाल से किए थे। अभ्यागतों के दल की जहाज़ पर अगवानी करने तथा उनको व उनके सामान को ढोने के लिए उस दिन सुबह मेरे पति व हमारे अधिकांश मित्र तीन मोटर कारें न्यूयार्क ले गए थे। हम लोगों के लिए, जो पीछे रह गये थे, वह दिन आखिरी क्षण तक की तैयारियों में व्यस्त एवं उत्सुक आशा की बिजली से परिपूर्ण रहा था। अब वह महाक्षण पास आ रहा था।

मैं छोटे आँगन तक चलकर गई जिसमें कि प्रवेश–द्वार था और लटकती हुई लालटेन को जलाया, और फिर बीच के मार्ग में प्रतीक्षा करती हुई खड़ी हो गई। मोटर कारें भीतर आ गईं। पहिले मेरेडिथ स्टार हाथ उठाकर अभिनन्दन करता हुआ मोटर कार से बाहर आया। मैंने उसके अभिनन्दन का उत्तर दिया, परन्तु मेरी आँखें सद्गुरु को देख रही थीं, जो एक गम्भीर मुस्कान के साथ मुझको देखते हुए ठीक उसके पीछे थे। मैं नहीं जानती थी कि उनकी चितवन कितनी देर तक मेरे ऊपर रही, परन्तु किसी क्षण मेरेडिथ के नीचे लिखे शब्दों से मुझको सान्सारिक प्रदेश में होने का होश आया :–

"जीन, यह हैं श्री मेहेरबाबा।"

जैसे ही मेरी आँखें उनकी आँखों से मिलीं, वैसे ही उनसे मेरे प्रथम मिलन का अतिविशेष प्रभाव यह हुआ मानों मैं अपार प्रेम तथा कोमलता के अथाह सरोवरों में झाँक रही थी। मेरा हृदय भीषण उद्वेग से उछल रहा था और कुछ समय तक मैं बोल न सकी। मुझको महसूस हुआ कि एक अकथनीय ढँग से वह मेरे अस्तित्व के कारण थे, और इस क्षण से पहिले

मैं कभी भी यथार्थ में जीवित न थी, और वह मेरे लिए अगाधरूप से परिचित तथा अमूल्य थे यहाँ तक कि मैं उनके लिए अपरिचित न होकर, उनको अत्यन्त प्रिय थी।

आखिरकार मैंने कहा, "मुझको बहुत प्रसन्नता है कि आप आ गए।" अपने आपको यह कहते हुए सुनकर मैंने अपने इस अभिवादन की अपर्याप्तता तीक्ष्णतापूर्वक महसूस की, जिसने अभी अभी अथाह अनन्तता में काल तथा देश का विलीन होना अनुभव किया था जिसमें (अनन्तता में) सांसारिक नाटक, ईश्वर का चित्रण करता हुआ, युगों पुराने पात्रों के साथ, जो अपनी अपनी युगों पुरानी निर्धारित भूमिकाओं का पुनर्भ्यास कर रहे थे, पुनः खेला जा रहा था।

यहाँ मैं एक ऐसी बात लिखने के लिए प्रेरित हो रही हूँ जो पश्चिमी देशों के पाठकों को बच्चों की कल्पना अथवा पवित्रता को दूषित करने वाली प्रतीत हो सकती है। अपने बचपन के समय से ही मुझको सदैव महसूस होता था कि मैं किसी दिन सदेह ईसामसीह से मिलूँगी। मुझको याद है कि यह अनुभूति मुझको सबसे पहिले उस समय हुई जब मैं लगभग चार वर्ष की थी अैर एक रविवार शिशु पाठशाला (Sunday Infant School) में पढ़ती थी जहाँ हमने बच्चों का नीचे लिखा गीत गाया :

"जब मैं वह मीठी पुरानी कहानी पढ़ती हूँ तो मैं सोचती हूँ कि किस प्रकार से ईसामसीह यहाँ लोगों के बीच में थे, किस प्रकार से वह छोटे छोटे बच्चों को अपने पास बुलाते थे जैसेकि वह अपने बाड़े में भेड़ों के बच्चों को बुलाया करते थे, मैं चाहती हूँ कि उस समय मैं उनके साथ होती।"

मुझको वह अत्यधिक आनन्द याद है जिसमें मग्न होकर मैंने उस गीत की भावपूर्ण तीव्र लालसा में, और फिर इस स्पष्ट निश्चय में कि मैं उस समय उनके संग रही थी तथा पुनः उनके संग होऊँगी, प्रवेश किया।

मेरे बचपन का यह अनुभव मेरे उपमानस (Subconscious) में बैठ गया था और फिर वह वर्षों बाद पुरोहित की भविष्यवाणी के दिन से पहिले दोबारा कभी नहीं हुआ। अब जिस समय मैंने बाबा की प्रेम भरी आँखों में

भरे हुए देवत्व को देखा तो एक बार फिर वह अनुभव सजीव हो गया और मुझे ज्ञात हुआ कि वास्तव में यह एक क्षण, एक पुरातन एवं पवित्र सम्बन्ध को नया करने का था।

मैं जानती थी कि मैं जो कुछ कहने को लालायित थी किन्तु उसे कहने में असमर्थ थी, वह सब बाबा जानते थे। तदुपरान्त मैं उनको उनके कमरे में ले गई, और उनको अपनी टोली के सदस्यों का परिचय देते हुए उनके समीप दीवान (Divan) पर बैठ गई, और घर तथा अपनी सेवाओं को उनकी इच्छानुसार–प्रयोग के लिए उनके समक्ष प्रस्तुत कर दिया। इस सब बातचीत में केवल मैं बोलती रही थी, क्योंकि उस समय बाबा को मौन धारण किए हुए सात साल हो चुके थे। फिर भी उन्होंने मेरे हृदय में अनेक बातें कहीं, और अपनी छोटी वर्णमाला–तख्ती पर अँगुली रख रखकर उन्होंने मुझसे जो कुछ कहा, मेरेडिथ स्टार ने पढ़कर मुझको बताया: "मैं बहुत खुश हूँ, बहुत ज़्यादा प्रसन्न हूँ !" उनकी आँखों में आँसू भरे थे जो उस हृदय से उमड़ रहे थे जो केवल शाश्वत प्रेम जानता है। तब मैंने जाना कि यह मेरे लिए ही नहीं वरन् उनके लिए भी एक महत्त्वपूर्ण मिलन था, क्योंकि 'अपने ही' जनों से पुनर्मिलन होना सद्‌गुरु के लिए सदैव एक आनन्दमय अनुभव होता है।

अचानक उनके प्रसन्न मुख पर चिन्ता की घटा छा गई जैसे ही उन्होंने मेरे अँगूठे में पट्टी बँधी देखी। उस दिन शाम को उस अँगूठे में रोटी काटने वाली चाकू गहराई से लग गई थी। वह जानना चाहते थे कि अँगूठे में कैसे चोट आ गई थी। मैं उसको एक साधारण सी ही घटना बताकर टालना चाहती थी, जैसी वह यथार्थ में थी, परन्तु बाबा ने उसको विस्तारपूर्वक जानने का आग्रह किया। धीरे से उन्होंने अपना हाथ पट्टी के ऊपर रक्खा और अपनी वर्णमाला–तख्ती द्वारा प्रकट किया कि सुबह तक घाव बिल्कुल ठीक हो जायेगा। ऐसा ही हुआ। मैं इस घटना का उल्लेख इसलिए नहीं कर रही हूँ कि इसके द्वारा मैं बाबा का एक छोटा चमत्कार बताऊँ, परन्तु जो इससे भी बड़े महत्त्व की बात है, इसलिए कि यह एक ऐसे तथ्य का उदाहरण है जिसको देखने के मुझको इसके बाद अनेक अवसर मिले। वह तथ्य यह है कि मनुष्य की आवश्यकता अथवा पीड़ा से सम्बन्ध रखने वाली जीवन की कोई भी बात बाबा के कृपापूर्ण ध्यान के लिए

बिल्कुल तुच्छ अथवा महत्त्वहीन नहीं होती।

यह सुनकर कि बाबा साधारणतया अपने कमरे में एकान्त में भोजन करते हैं, मैंने बाबा को बताया कि मैंने उसी अनुसार प्रबन्ध किया था। इस पर वह धन्यवाद के रूप में मुस्कराए, परन्तु संकेत किया कि यदि हम चाहें तो वह उस रात को टोली के संग भोजन करेंगे। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि इससे हमें महान प्रसन्नता होगी। इसलिए हारमन में हमारे संघ के साथ प्रथम बार भोजन करने के लिए बाबा लम्बी मेज के सिरे की ओर बैठकर हम सबके ऊपर अपने मौन आशीर्वाद की वर्षा करते रहे। मेरा यह कथन केवल वाक्यालंकार नहीं है; बाबा की मौजूदगी इतनी बिजली जैसी आध्यात्मिक शक्ति से भरी होती है कि उनके साथ एक कमरे में होना भी, और उससे भी कहीं अधिक एक ही मेज पर होना, आत्मा का मन्थन करने वाला अनुभव होता है। जैसे ही हम मेज के चारों ओर बैठ गए उनके प्रकाशमय काले नेत्रों ने एक एक चेहरे को देखना प्रारम्भ किया, और मुझको महसूस हुआ कि वह हम सब के आन्तरिक जीवन का आत्मिक निरीक्षण कर रहे थे। फिर भी उन्होंने हमारे हृदयों में जो कुछ देखा उससे उनके चेहरे पर दोषारोपण अथवा आलोचना का कोई चिन्ह नहीं आया–गम्भीर सहिष्णुता एवं समझ का यही एकमात्र प्रमाण है।

रात्रि–विश्राम के लिए जाने से पहिले उन्होंने कहा कि अगले दिन वह केवल हमारे संघ–परिवार के सदस्यों से ही मिलेंगे, और चूँकि मैं घर की प्रबन्धक थी इसलिए वह मुझसे सबसे पहिले मिलेंगे। अतः दूसरे दिन सुबह नाश्ते के बाद मैं ऊपर बाबा के कमरे में गई, जबकि हमारे मित्र नीचे वाले कमरे में उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते थे। मुझको प्रतीत हुआ कि मैं उनकी उपस्थिति में केवल खामोश होना चाहती थी, और पाँच आश्चर्यजनक मिनटों तक उन्होंने मुझे अपने साथ चुपचाप बैठा रहने दिया। फिर अपनी वर्णमाला–तख्ती पर अंगुली चलाते हुए उन्होंनें मुझसे पूछा : "तुम क्या सोच रही हो ?"

मैं अपने विचारों को शब्दों द्वारा प्रकट करने में असमर्थ थी। मैंने बाबा से बताया कि वे सचमुच इतने क्षीण थे कि मुझको याद भी नहीं आते थे। उन्होंने उत्तर दिया, "तुम्हें प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। मैं जानता

हूँ कि तुम क्या सोच रही थी। मैं जानता हूँ कि तुमने कल क्या सोचा था, और अबसे एक वर्ष बाद तुम क्या सोचोगी।'' एक लम्बे क्षण तक मैं अवाक रह गयी। इससे पहिले कभी भी मैंने ऐसे अहंकाररहित अनन्त ज्ञान का सामना नहीं किया था। फिर भी मैंने उनके कथन को स्वाभाविक रूप से, बिना शंका किए हुए, स्वीकार किया। उस कथन के पीछे उनकी पवित्र सच्चाई (Integrity) की शक्ति थी। तब मेरे मुख से बोल निकला : ''क्या इसका यह कारण है कि आप चीज़ों को अशेष रूप में–समय के बन्धन से परे–देखते हैं ?'' उन्होंने अपना सिर हिलाकर इसकी पुष्टि की। उनको आगे लिखा हुआ उत्तर देने से पहिले मैं फिर से कुछ क्षणों तक मौन बैठी रही : ''बाबा, यहाँ आपके साथ इस प्रकार बैठा हुआ होना अत्यन्त परिचित प्रतीत होता है। मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं सदैव इस प्रकार बैठती रही हूँ।'' उन्होंने मुझको विश्वास दिलाया कि बिल्कुल यही बात थी, और कहा, ''तुम युगों से मेरे साथ रही हो।''

इस समय तक मेरे कृत्रिम आवरण का भंग होना सम्यक् रूप से चालू हो गया था। बिना किसी भावात्मक आकर्षण के, जोकि बोले हुए शब्दों में अन्तर्निहित होता है, बल्कि पवित्र अस्तित्व के अधिक मर्मस्पर्शी प्रभाव के द्वारा उन्होंने अहंभावी ममत्व, भय तथा अज्ञान की दुःखदायी गाँठों एवं बन्धनों का प्रारम्भिक रूप से खोलना पूर्ण कर दिया था। मैं आँखों से आँसू बहाती हुई कमरे के बाहर आई। वे पवित्र करने वाले आँसू थे जिनमें आनन्द व पीड़ा का विचित्र मिश्रण होता है; वे लज्जा–रहित आँसू थे जो मनुष्य को विनम्र एवं ऊँचा दोनों बनाते हैं। तदुपरान्त हमारे परिवार के अन्य सदस्य सद्गुरु से ऊपर के कमरे में मिले और वे सब बिना अपवाद के आन्तरिक मुक्ति के उसी महान आनन्द को लेकर दैनिक जीवन की दुनियाँ में फिर से उतर आए; एक ऐसी दुनियाँ में वापिस आए जिसको इस समय तक वाणी की ईश्वरीय रसायन–विद्या ने आश्चर्य एवं सौन्दर्य के प्रदेश में बदल दिया था।

पतित से पतित लोगों के भी पर्दा के भीतर घुस जाने की बाबा की शक्ति का कारण है उनका लोगों के अन्तर में शाश्वत आत्मा को देखना। चूँकि यह आत्मा प्रत्येक में पूर्ण होती है इसलिए स्वाभाविक रूप से यह

नतीज़ा निकलता है कि बाबा के, उसको सहजरूप से स्वीकार करने के द्वारा, उसे मनुष्य की चेतना में लाने के कारण अनेक लोग अपनी रोज़ रोज़ की सीमित चेतना से अस्थायी मुक्ति का अनुभव करते हैं। जिन लोगों के अहंकार की जीवशक्ति उच्चतर चेतना की पूर्व झलकों की टक्कर के द्वारा, अथवा जीवन–अनुभव के अनुशासनकारी हाथ के द्वारा क्षीण हो चुकी है वे लोग बाबा से मिलने के क्षण एक कल्याणकारी पीड़ा से मिले हुए उत्कृष्ट आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रतिकूल वेदना के बावजूद जो उनकी मौजूदा सीमित चेतना उनमें उत्पन्न करती है, पूर्णता का आइना, जो बाबा उन लोगों की चेतना के सामने करते हैं, उनकी ही यथार्थता के उनके अन्तर्ज्ञान को बल पहुँचाता है। निःसन्देह अन्य लोग, जो अपने मनोविकारों, वासनाओं तथा विचारों में गहराई से ठोस बन गए हैं, अपनी आत्माओं में होने वाली ईश्वर की इस निर्मल करने वाली क्रिया का अवरोध करते हैं। उनके आत्माभिमान को बाहर निकालने की यह क्रिया उनके बाबा से विमुख और बहुधा विरुद्ध हो जाने का कारण बन जाती है।

दूसरे दिन हमारे न्यूयार्क निवासी मित्रों से मुलाकातें शुरू हुईं जिनके पास हमने बाबा के आगमन की सूचना भेज दी थी। नोरीना मचबेली, जिसने उपहास करते हुए कहा था कि वह भी ''रोने के लिए इच्छुक थी।'', पहले पहुँचने वाली टोली में थी। जब मैंने उसे पिछली बार देखा था तबसे उसके बाद कोई असाधारण बात स्पष्ट रूप से घटित हो गई थी। उसकी आँखों में इच्छित आँसू आ चुके थे और उसकी अवस्था एक चकित बच्चे की जैसी थी। उसकी इस अवस्था तथा उसके सामान्य आत्म–विश्वास में बड़ा अन्तर था।

जब मैं उसको रहने के कमरे की ओर ले चली, तो उसने मुझसे फुसफुसा कर कहा, ''मुझको उसके बारे में बताओ।''

मैंने उत्तर दिया, ''कुछ ही क्षणों में तुम खुद देख लोगी। परन्तु तुम्हें क्या हो गया है ?''

तब उसने मुझको बताया कि अमरीका में बाबा के चरण रखने के क्षण से वह रोती ही रही थी। वह अपने तमाम सामाजिक कार्यक्रमों को रद्द कर देने के लिए मज़बूर हो गई थी। उसकी धृष्टता की पुरानी उष्णता के स्थान में बच्चों का जैसा आश्चर्य आ गया था। तब सन्देश आया कि बाबा उससे मिलेंगे। लगभग दस मिनट के बाद मैलकाम को बाबा के कमरे को जाने वाली सीढ़ियों से गुजरने का संयोग हुआ। उसने देखा कि नोरीना, एक गहरी आकुल अवस्था में, अपने को साधने के लिए सीढ़ियों के कठघरे का सहारा लिए हुए नीचे उतर रही थी। वह उसको सहारा देने के लिए दौड़कर ऊपर गया और उसको सहारा देते हुए रहने के कमरे में ले आया जहाँ वह रोती हुई मेरे हाथों के ऊपर गिर पड़ी मानो उसका हृदय अत्यन्त हर्ष से भरी पीड़ा के कारण फटा जा रहा हो। माया का एक और आवरण हटाया जा रहा था। चूँकि दूसरे मित्रों का आना प्रारम्भ हो गया था इसलिए मैं नोरीना को ऊपर अपने कमरे में ले गई जहाँ वह दिन भर मेरी शय्या पर विश्राम करती रही। लगभग हर घन्टे में बाबा मेरे साथ मेरे कमरे में जाते थे और अपनी चंगा करने वाली उपस्थिति के मरहम से नोरीना को सान्त्वना देने के लिए कुछ क्षणों तक उसके पास ठहरते थे। शाम को जब वह घर जाने लगी तब बाबा ने उससे इच्छा प्रकट की कि जब तक वह हारमन में ठहरे रहें तब तक नोरीना रोज़ वहाँ आवे।

नोरीना को अपने जीवन में पर्याप्त आध्यात्मिक अनुभव हो चुके थे इसलिए सद्गुरु के प्रति उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया में आध्यात्मिक अर्थो का निहित होना स्वाभाविक ही था। जब बाबा के कमरे में घुसने पर उसने उन्हें पहिले पहल सुदूर किनारे पर नीचे दीवान पर, श्वेत कपड़े पहने हुए तथा पाल्थी मारे, बैठे हुए देखा, तो वह कुछ क्षणों के लिए प्रकाश की उस प्रचण्डता से चकाचौंध हो गई जो उनसे फूट कर निकल रहा था और जो खिड़की से आने वाले सूर्य के तेज प्रकाश को फीका कर रहा था। सद्गुरु के एक शिष्य का सहारा लिए हुए वह लड़खड़ाती हुई कमरे के पार गई, और बाबा के समीप घुटने टेकते हुए उसने उनसे विनती कीः–

''मुझको इससे बाहर निकालिये। आह, मुझे इस सबसे उबारिये !''

कुछ सप्ताहों पहिले मुझसे विदा होते समय जब नोरीना ने इतने हल्केपन से मुझसे अभिवादन किया था तब उसको ज़रा भी सन्देह नहीं हुआ था कि उसको केवल 'रोना' ही न पड़ेगा बल्कि बाबा उसके पूज्य आध्यात्मिक सद्गुरु बन जायेंगे और उनके मौन ईश्वरीय शब्द उसकी धर्म–संहिता बनेंगे। न तो वह यह जानती थी कि अगले तीन वर्षों तक वह अपने जीवन के अभ्यस्त मार्ग के बाहरी व्यापारों को पूर्ववत् करती रहेगी जबकि वह अन्दर से नए जीवन के लिए तैयार की जा रही थी। और, न तो वह यह ही जानती थी कि इस अवधि के अन्त में उसके पति युवराज मचबेली मर जायँगे और उसको अपना पूरा समय, अपना पूरा अस्तित्व, तथा अपनी समस्त प्राणशक्ति, सद्गुरु की सेवा में लगाने के लिए मुक्त कर देंगे।

बाबा के पास रहने के चार सप्ताहों में नोरीना को यह अनुभव कम ज्यादा अंशों में कई बार हुआ। पुरुष और स्त्रियाँ–डाक्टर, वकील, मानसिक रोगों के चिकित्सक तथा कठोर बुद्धिजीवी एवं भावनारहित प्रमुख उद्योगी–बाबा से मिलने के लिए उस ऊपरी कमरे में गए। कुछ लोग तो बाबा से मिलने के लिए कौतूहल वश आए थे, थोड़े से लोग बाबा को अपनी श्रद्धा अर्पित करने के लिए आए थे, अन्य लोग कदाचित् बाबा का उपहास करने के लिए आए थे, परन्तु बिना अपवाद के वे सब के सब बाबा के पुजारी बन गए।

उदाहरण के लिए, पश्चिमी दर्शनशास्त्र के प्रसिद्ध प्रोफेसर डाक्टर फ्रेडरिक केटनर की प्रतिक्रिया थी, जिन्होंने पूर्व तथा पश्चिम के ज्ञान का गम्भीर अध्ययन किया है और जो बाइसोफी (Biosophy) नाम से प्रसिद्ध विचारधारा की नींव डालने वाले हैं। बाबा के सामने वह भी अपने घुटने टेक कर रह गए और मुख से कुछ भी न बोल सके। वह अपनी आँखों में आँसू भरे हुए चकित अवस्था में कमरे से बाहर आए।

बुद्धिप्रधान भूमिका वाले एक अन्य पुरुष एल.एच. का अनुभव देखने में कम प्रकट था परन्तु एक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक होने के कारण उसकी साक्षी प्रकाश देने वाली है। यद्यपि उसकी शिक्षा ने उसमें यह धारणा स्थिर कर दी थी कि मानव प्रकृति का पार केवल विज्ञान के द्वारा पाया जा सकता है, फिर भी उसने मुझसे स्वीकार किया कि उसको विवेकपूर्ण मस्तिष्क द्वारा दी गई अन्तर्दृष्टि से बढ़कर आन्तरिक गहरी अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता बहुत समय से प्रतीत हो रही थी। जिस अन्तर्दृष्टि के लिए वह लालायित था उसको उसने बाबा में महसूस किया जो उसके इन शब्दों से प्रकट होता है:– ''वह सभी पर्दों (Veils) के आरपार देखते हुए प्रतीत होते हैं और उनसे अपनी थोड़ी ही देर की मुलाकात के पश्चात् मेरा विश्वास है कि वह ऐसे पथप्रदर्शक हैं जो ऐसी ही दृष्टि प्राप्त करने में मेरी सहायता कर सकते हैं।''

बाबा के समीप कुछ क्षणों के लिए होना भी हर एक मिलने वाले के अन्तस्तल में हलचल पैदा करता हुआ और उनके भीतर चिरकाल से छिपी हुई छायाओं तथा साथ ही साथ प्रकाश को ऊपरी सतह पर लाता हुआ प्रतीत होता था। छिपे हुए पाप को उधारने की बाबा की शक्ति का एक मर्मभेदी उदाहरण उस माता की घटना थी जिसकी पुत्री को आज्ञा दी गई थी कि वह बाबा के चले जाने के बाद, बसन्त ऋतु में उनके फिर से आगमन की तैयारी में, मैलकाम को कार्यालय के कार्य में सहायता देवे। एक दिन सन्ध्या के समय जैसे ही हम लोग भोजन करने के लिए बैठ रहे थे वह लड़की नाचती हुई भोजनालय में आई और उसने हम लोगों को यह खुशी का समाचार सुनाया जो बाबा ने उसको उसी समय दिया था। हम सब लोगों ने उसके इस आनन्द में भाग लिया, सिवाय उसकी माता के जिसके चेहरे पर दुर्भावना के काले बादल छा गए। उसके चेहरे पर दुर्भावना के लक्षण बिल्कुल स्पष्ट थे जिनमें लेशमात्र सन्देह होने की गुन्जाइश न थी। उसकी पुत्री को परिवार–समुदाय में वह स्थान प्राप्त हो गया था जिसके लिए वह खुद व्यर्थ में लालायित रही थी। भोजन के पश्चात् तुरन्त ही बाबा ने हम सब लोगों को मिलने के लिए अपने कमरे में बुलाया। केवल हम लोगों ने, जो भोजन करने के लिए बैठ गये थे, इस

छोटी सी दुखद घटना को देखा था जो वहाँ मूकरूप से चरितार्थ हुई थी; और हममें से कोई भी स्थान छोड़कर नहीं गया था।

हम सब लोग बाबा के समीप एकत्रित होकर कुछ मिनट तक चुपचाप बैठे रहे और बाबा अपनी छोटी वर्णमाला तख्ती को अपनी अँगुलियों से घुमाते रहे। अचानक उन्होंने माता के कन्धे पर हाथ रखते हुए अपनी वर्णमाला तख्ती द्वारा उससे पूछा :–

''क्या तुम प्रसन्न हो ?''

वह चौंक पड़ी और उसने अपना आश्चर्य चकित चेहरा बाबा की ओर किया।

''बाबा क्या आप जानते हैं कि मैं क्या सोच रही हूँ ?''

बाबा ने उसकी आँखों में गहराई से दृष्टि डालते हुए, अपना सिर हिलाकर 'हाँ' सूचक इशारा किया।

''और आप मुझे दोषी नहीं समझते ?''

अपनी आँखों से दया की वर्षा करते हुए, बाबा ने धीरे से अपना सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत किया। दूसरे ही क्षण वह बड़े वेग के साथ रो पड़ी, और उसने अपना मुँह बाबा के घुटनों के भीतर छिपा लिया। माता के अज्ञान का कठोर आवरण फोड़ दिया गया था।

ऐसी ही सीधी–सादी तथा अनिवार्य रीतियों से बाबा हमारे मनोविकारों को, जिनको आजकल के मनोवैज्ञानिक हमारी 'छाया' (Shadow) कहते हैं – अर्थात्, हमारे अचेतन आत्मिक जीवन में तमाम प्रतिकूल तथा निन्दनीय तत्वों का प्रतीक–प्रकाश में लाते हैं, जो हम सबमें विद्यमान होते हैं परन्तु जिनका ज्ञान हममें से इने गिने लोगों को ही होता है।

ऐसी ही एक और नाटकीय घटना हुई जबकि एक बदनाम झगड़े के दोनों दलों के मुखिया 'संयोगवश' हमारे घर में आ मिले। कई माह से उनके बीच कटुता और एक दूसरे के ऊपर दोषारोपण ही होता रहा था, जो न्यूयार्क के एक प्रसिद्ध अध्यात्मविद्या के शिक्षक के दूर दूर तक जाहिर आर्थिक हथकण्डों के कारण बढ़ रहा था। बाबा से उनकी मुलाकातें होने से पहिले, जब उस शिक्षक की धर्मपत्नी तथा उसके दो मुख्य विरोधियों का

सामना पुस्तकालय में हो गया तब दैवयोग से मैं वहाँ पर थी। वे अपने अपने रास्तों पर रुक गईं; और उनके चेहरे रोष, तीखे द्वेषभाव तथा ठोकर खाए हुए आत्म–अभिमान की हृदय को गलाने वाली तीव्र भावनाओं से तमतमा उठे। यह केवल उनकी सभ्यता की पृष्ठभूमि (Background) की रुकावट थी जो उन्हें एक दूसरे के बाल नोचने तथा टेंटुवा दबाने से रोके हुए प्रतीत होती थी ! आत्म–उद्धार करने वाले, इस बाबा से ओतप्रोत वातावरण में उनकी पशुप्रवृत्तियाँ (Caveman Tendencies), जो अब तक दबी हुई थीं, उभाड़कर उनकी चेतना के धरातल पर लाई जा रही थीं।

तदुपरान्त, जब वे बाबा के समीप केवल कुछ मिनट तक रहने के पश्चात् एक एक करके रहने के कमरे में आईं, तो यह विलक्षण रूप से साफ़ दिखाई पड़ रहा था कि उन सबमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया था। मुझको मालूम नहीं है कि उस ऊपरी कमरे में क्या हुआ; परन्तु जब वे उसके बाहर निकलीं तो उनके चेहरे एक ऐसे भीतरी प्रकाश से जगमगा रहे थे कि उसमें कटुता व बैरभाव के सब चिन्ह पूर्णतया लुप्त हो गए थे। ईश्वरीय प्रेम की प्याली (Crucible, धातु गलाने की घरिया) में उनकी भावनाओं का मैल क्षार हो गया था। तत्व सम्बन्धी गुप्त शक्तियों को उभारा गया था और उनके ऊपर विजय प्राप्त की गई थी। लगभग बीस मिनट पहिले ये महिलायें एक दूसरे की जानी दुश्मन थीं। अब अपनी आँखों में प्रेम के आँसू भरे हुए वे एक दूसरे से गले लगकर मिलीं।

हारमन में अपने एक माह के प्रवास में बाबा ने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने में अपनी श्रेष्ठता के कई उदाहरण दिए, जिन्होंने एक नाटकीय व अचूक ढँग से हमारे उपमानस में छिपे हुए भय, रुकावटों तथा प्रतिहिंसाओं को उभारा। मुलाकात करने वालों की सूची से बाबा ने कुछ खास लोग चुन लिए थे और मैलकाम व नोरीना को आज्ञा दी थी कि, भारतवर्ष व फारस में आध्यात्मिक आश्रमों की स्थापना के लिए, वे उन लोगों से दान लेने के लिये जायें। नोरीना ने यह कार्य सहर्ष स्वीकार किया, किन्तु मैलकाम का

प्रत्युत्तर गम्भीर अविश्वास से भरा था। बाबा से मुलाकात करने के बाद बाहर आने वाले अपने मित्रों से दान माँगना–अर्थात् पैसा के लिए उनसे मुँह–फट प्रार्थना करके बाबा से उनकी उस पहली मुलाकात के महान आनन्द में बाधा डालना–मैलकाम को एक अरुचिकर तथा आकुल करने वाला कार्य प्रतीत होता था। उसकी यह प्रतिक्रिया उस विषय पर उसके विचारों के अनुरूप थी। चिरकाल से उसका यह विश्वास था–और अपनी किताबों की दूकान रूपी मकतब में उसने इसका अभ्यास किया था– कि आध्यात्मिक शिक्षकों को कभी भी पैसा न माँगना चाहिए। उसका यह अटल विश्वास था कि आध्यात्मिकता और पैसा दोनों के ऊपर जोर देने का मेल नहीं बैठ सकता। वास्तव में बाबा को मैलकाम का यह दृष्टिकोण मालूम था और वह इस आज्ञा के पालन में मैलकाम की अनिच्छा की प्रत्याशा करते थे। उन्होंने मैलकाम को अपने कमरे में बुलाकर डाँटा फटकारा।

बाबा ने अपनी वर्णमाला तख्ती द्वारा प्रकट किया :– ''महत्त्व पैसे का नहीं है, किन्तु इस बात का है कि तुम बिना हिचक के तथा बिना किसी मीनमेख के मेरी आज्ञाओं का पालन करो, ठीक जिस तरह से अर्जुन ने कृष्ण की आज्ञा का पालन किया था जब कि कृष्ण ने उसको आज्ञा दी थी कि वह अपने बन्धु–बान्धवों का वध करे।''

पश्चिमी देश के एक बुद्धिप्रधान मनुष्य के गले के नीचे उतरने के लिए यह बहुत भारी आज्ञा थी। मैलकाम को खुद आश्चर्य हुआ कि उसने सद्गुरु की डाँट–डपट को सहजता से कैसे स्वीकार कर लिया और उस कष्टप्रद कार्य को पूरा करने के लिए तेजी के साथ कैसे जुट गया।

मैलकाम ने अपने इस अनुभव का खुलासा करते हुए कहा, ''मैंने अपने जीवन में किसी की भी आज्ञाओं को उचित शिष्टता के साथ स्वीकार नहीं किया था। फिर भी बाबा की लेशमात्र इच्छा मेरे लिये पवित्र धरोहर बन गई, एक ऐसी आज्ञा बन गई जिससे निकल भागना असम्भव था; और यह उस समय हुआ जबकि मेरे विचार गुरु–शिष्य सम्बन्ध की भावना में परिवर्तित नहीं हुये थे।''

इस सौंपे गये कार्य के एक भाग स्वरूप मैलकाम को आदेश दिया गया कि वह हमारे एक अतिथि–ब्रह्मवाद के एक प्रसिद्ध अध्यापक–से पूछकर मालूम करे कि क्या वह, पश्चिमी प्रदेश में स्थित अपने घर वापिस जाने पर, बाबा के कार्य के लिए धन इकट्ठा करने का भार अपने ऊपर लेगा। हमारे उस मेहमान ने यह कार्य करने से साफ इनकार कर दिया; क्योंकि कई वर्षों से उसका भी दृष्टिकोण यही था जैसा कि मैलकाम का था, और वह उसको बदलने के लिए तैयार न था। इस घटना का वृत्तान्त बाबा को बताने का संयोग किसी को भी नहीं मिल पाया था कि बाबा ने मुझको अपने कमरे में बुलाया और इस बात पर बहाने के रूप में गहरा खेद प्रकट किया कि हमारा वह मित्र उस प्रार्थना का ऐसा गलत अर्थ लगा रहा था मानो बाबा को धन की लेशमात्र परवाह हो। मैंने कहा कि हमारे मित्र की वह प्रतिक्रिया तर्क विरुद्ध नहीं थी, क्योंकि बाबा पैसे के ऊपर काफी ज़ोर देते रहे थे। मुझको कुछ खेदपूर्ण चितवन से देखते हुए बाबा ने संकेत किया कि चाहे उन्होंने पैसा माँगा हो अथवा न माँगा हो, हमारे मित्र को यह जान लेना चाहिए था कि बाबा को भौतिक चीजों में कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं है; और पैसा खुद न तो अच्छा है और न बुरा, परन्तु उसके प्रति मनुष्य की प्रवृत्ति ही उसको अच्छा या बुरा बनाती है। पश्चिमी देशों में, खासकर अमरीका में, धन उस मिथ्या मूल्य के कारण दूषित हो गया है जो कि लोग उसको देते हैं। इसलिए इस विनाशकारी गलत मूल्य–निर्धारण (Misvaluation) को बदलना चाहिये।

मैंने बाबा के कथनों की पूर्णता को महसूस किया। उनसे अपने प्रथम मिलन के समय से ही मुझको समस्त सान्सारिक बातों के प्रति उनकी पूर्ण निर्लिप्तता का ज्ञान था। तदनन्तर बाबा से मेरा और भी घनिष्ट सम्बन्ध होने पर, मुझको ज्ञात हुआ कि वह अपने खुद के लिये कुछ भी अपने पास नहीं रखते–यहाँ तक कि अपनी निजी एक पाई भी नहीं रखते। बाबा को जो कुछ भी पैसा दिया जाता है वह उनके कार्य की वर्तमान आवश्यकताओं में खर्च कर दिया जाता है, अथवा उस कार्य के विश्वव्यापी विस्तार वाले महत्वपूर्ण कार्यों की आवश्यकता के लिए एक ट्रस्ट–कोष में रख दिया जाता है।

इस कोष से बाबा, अन्य बातों के अतिरिक्त, सैकड़ों निराश्रित भारतीय परिवारों को जीविका प्रदान करते हैं जो उनके घनिष्ठ प्रभावक्षेत्र के भीतर होते हैं और जिनको अपने गुजारे के लिए पर्याप्त धन्धा नहीं मिलता। भारतवर्ष की वर्तमान दशाओं में बारम्बार आने वाले भीषण संकटकालों में बाबा हजारों लाखों पीड़ितों को आवश्यक भोजन व कपड़े बाँटते हैं, वरना वे नष्ट हो जायें। इसके अतिरिक्त वह, पूर्वी जगत के सद्‌गुरुओं की प्राचीन परम्परा के अनुसार, अपने उन भारतीय पुरुषों व स्त्रियों की प्रत्येक भौतिक आवश्यकता की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं जिनको उन्होंने अपना शिष्य स्वीकार कर लिया है।

बाबा को मिली हुई नितान्त निजी भेंटों तक को बाबा या तो दूसरों को दे देते हैं या दूसरों को उनमें भागी कर लेते हैं। एक चीज, जिससे वह सदैव गहरी आसक्ति रखते हुए मुझको प्रतीत हुए हैं, उनका एक जर्जर कोट है जिसमें इतने पैबन्द लगे हुये हैं और जो इतना जीर्ण–शीर्ण हो गया है कि उसका असली कपड़ा नहीं दिखाई पड़ता। और मेरे विश्वास में यह कोट भी उन्हें केवल बोझ से लटकती हुई जेबों के कारण प्रिय है जिनमें वर्षो तक उनके भक्तों के प्रेम से भरे पत्र ठसाठस भरे रहे हैं।

अपने प्रवास के बीच में एक बार बाबा ने न्यूयार्क के आर्थिक जिला (financial district) का मोटरकार द्वारा भ्रमण करने की अपनी इच्छा प्रकट की। वह इतवार का दिन था। जैसे ही हमारी मोटरें वाल स्ट्रीट के ऊपर झुके हुए संकीर्ण पहाड़ी दर्रों से होकर गुज़री, जो प्रदेश उस समय एक शान्त तथा ऊजड़ प्रेत–नगरी की भाँति प्रतीत होता था, हमने ऊपर की ओर ठोस तथा प्रभावशाली बैंक घरों व खाली स्टाक एक्सचेंज को देखा जिनमें सप्ताह के अन्य दिनों में लालच तथा भय की बलवती भावनाओं की हद्द दर्जे की बहुतायत छाई रहती है। मैंने सोचा, ''धन का यह पागलपन कितना क्षण–भंगुर तथा मिथ्या है।'' इसके दूसरे ही क्षण बाबा मेरी ओर देखकर मुसकुराये और इमारतों की ओर संकेत करते हुए प्रकट किया– ''यह सब पानी का बुलबुला है। यह बड़ी आसानी से फूट जाता है !''

परन्तु, हमारे ब्रह्मवादी मित्र ने इस भेद को अभी तक नहीं सीखा था, और न इस जन्म में उस भेद को सीखना उसके प्रारब्ध में था। बाबा ने

प्रकट किया कि वह अपना कार्य अविश्वास के वातावरण में, कर्मकौशल में क्षीणता आए बगैर, नहीं चला सकते थे। जिस कारण से ईसामसीह ने सन्देह रखने वालों को अपने दैवी कार्यक्षेत्र से हटा दिया था, उसी कारण से बाबा ने मुझको अपने पश्चिमी अभ्यागतों से ऐसा कहने के लिए आदेश दिया कि वह (बाबा) सन्देह के वातावरण में अपना कार्य जारी नहीं रख सकते थे अतः वह हमारे घर से चले जायेंगे। स्वाभाविक रूप से, जब हमारे अतिथियों ने यह सुना तो उन्होंने कहा कि वे ही मकान से चले जायेंगे। जब मैंने बाबा को उनके इस निश्चय की सूचना दी तो बाबा ने आदेश दिया कि उन चौबीस घन्टों में, जो उनके प्रस्थान की तैयारियों के लिए आवश्यक थे, वे हमारे साथ भोजन न करके अकेले ही भोजन करें। बस, ठीक इसी स्थल पर मुझको अपनी ही 'छाया' के एक अंश का सामना करना पड़ा। अप्रिय बात को जानबूझकर कहने अथवा करने के व्यवहार की मैं चिरकाल से अभ्यस्त न थी ! मुझको सबके अनुरूप रहना अत्यधिक पसन्द था, मैं चाहती थी कि लोग मुझको चाहें। मैं उनकी अप्रसन्नता से डरती थी। तीखी किन्तु कभी कभी आवश्यक बात कहने की मेरी अनिच्छा वास्तव में अपने बड़ों की अनुमति प्राप्त करने के मेरे बचपन के आदर्श की ओर पलट रही थी। अपने अचूक सहजज्ञान द्वारा बाबा ने मेरे चरित्र की इस निर्बलता को पकड़ लिया था और ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी थी जो मुझको उस निर्बलता का सामना करके उसके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए बाध्य कर रही थी।

बस मैं कड़ुवा घूँट पी गई, और मैंने अत्यन्त शिष्टता पूर्वक यह दुखद सन्देश उन अतिथियों को दे दिया। हमारे मित्र ने बाबा के लिए आगे लिखा हुआ सन्देश छोड़कर प्रस्थान किया– ''उनसे कहना कि मैं उनसे प्रेम करता हूँ, परन्तु मैं उनको ठीक से समझता नहीं हूँ।'' इस कथन का कोई भी उत्तर बाबा ने न दिया; किन्तु उन्होंने अवश्य वही कहा होता जो कि कालान्तर में उन्होंने भारतवर्ष में मेरी जानकारी में कई बार प्रकट किया– ''सच्चा प्रेमी अपने आप के लिए कुछ भी नहीं रखता; वह न सौदा करता है और न सन्देह करता है।''

यह पहिला स्मरणीय प्रसंग था जिसमें बाबा की कार्यशैली ने मुझको यह स्पष्ट ज्ञान कराया कि अहंकारी बुद्धि अपने पूर्वनिर्णीत विचारों एवं अविचारपूर्ण निर्णयों (Prejudices) के द्वारा गम्भीरतर आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि के मार्ग को किस प्रकार घातक रूप से रोक सकती है। उस समय से मैंने कई बार उसी ड्रामा की पुनरावृत्तियाँ देखी हैं। ऐसे अनेक लोग हैं जो बाबा के लिए तैयार नहीं हैं। मेरी समझ में, केवल इसी एक कारण से उनमें से अधिकतर लोग बाबा के विरुद्ध हो गए हैं। वे अभूतपूर्व चीजें जो बाबा बहुधा कहते अथवा करते हैं उन लोगों के लिए अयोग्य होती हैं जिनमें आध्यात्मिक तैयारी नहीं है, और इसलिए वे उनकी बुद्धि को उत्तेजित कर देती हैं जो, बाबा के मतानुसार अहंकार की साझीदार हैं। विशेषतः मनुष्यों के लिए, सारता (Value) के श्रेष्ठतम दर्जे आमतौर पर बुद्धि निश्चित करती है, और चूँकि बाबा की आध्यात्मिक कार्यविधि के सबसे कठोर रूप का लक्ष्य है अहंकार का नाश करना इसलिए स्वाभाविक रूप से इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि बाबा की टेकनीक (कार्यविधि) के कारण अहंकार की घनिष्ट साझीदार बुद्धि बहुत व्याकुल हो जाती है। अनिवार्यरूप से, उन लोगों के अन्तर में एक महान संघर्ष पैदा हो जाता है जो अब भी अपने अहंकारी विचारों व माहात्म्यों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

प्रारम्भ में मैलकाम के प्रिय दृढ़विश्वासों ने बाबा के दैवी प्रभाव के सामने उसके पूर्ण आत्मसमर्पण करने के मार्ग में रोड़े अटकाए। फिर भी धीरे धीरे उसको मालूम हुआ कि उसकी अत्यन्त कीमती धारणायें एक एक करके छूटती जा रहीं थीं।

ये उसी के शब्द हैं, ''मैं सद्‌गुरु की खोज में नहीं था। मैं शिष्य नहीं बनना चाहता था। फिर भी हमारे मेहमान की हैसियत में एक पुरुष था जो एक परम सद्‌गुरु होने का दावा करता था–अर्थात, ईश्वर का एक अवतार, एक ईसामसीह, एक कृष्ण, एक बुद्ध–और जो दिन और रात के हर क्षण में अपने गुरुत्व को सिद्ध कर रहा था, अपने दावे को स्थापित कर रहा था।''

बहिर्हाल, बाबा के आगमन की बारहवीं रात तक मैलकाम ने पूर्ण खुले दिल से आत्मसमर्पण नहीं किया था। हमारे पश्चिमी अतिथि भोजन करने के बाद रहने के कमरे में एकत्रित थे, जहाँ मेरेडिथ स्टार टोली के कुछ लोगों को भीतरी लौकिक भूमिकाओं के विषय में बाबा के उपदेश समझा रहा था।

मैलकाम अब स्वीकार करता है, ''मैं अकस्मात् शब्दों से ऊब गया। मुझे प्रसन्नता थी कि कम से कम बाबा तो मौन थे।'' अपने आप को क्षमा करते हुए वह अपने कमरे में जाकर सोने की तैयारी करने लगा। परन्तु, उसके लेटने से पहिले मेरेडिथ उसके कमरे में जाकर रुका और उसने मैलकाम को बाबा की इच्छा बताई कि प्रत्येक आदमी सोते समय बाबा का चिन्तन करे। गुरु–शिष्य नाते के वांछित होने के विषय में अब भी मैलकाम का मत स्थिर न होने के कारण–कम से कम जहाँ तक उसका वास्ता था–उसने बाबा की इस प्रार्थना को स्वीकार न करने का संकल्प कर लिया। वह अपने आप को ऐसी स्थिति में नहीं रखना चाहता था जहाँ उसका दृष्टिकोण प्रभावित हो सकता था। उस समय वह किसी मनुष्य का ध्यान करने में विश्वास नहीं करता था। उसने ऐसा कभी नहीं किया था, और न वह अब ऐसा करना चाहता था।

परन्तु जब वह सोने को हुआ तो उसने अपने संकल्प के विपरीत अपने को बाबा का चिन्तन करते हुए पाया। वह बाबा को अपने मन से न हटा सका। उसने इसका सम्बन्ध सूचक–शक्ति (Power of Suggestion) से ठहराया, जिसमें भागी न बनने का उसने निर्णय किया। उसने किसी अन्य वस्तु पर ध्यान एकाग्र करके इस पर विजय प्राप्त करने की सोची।

''मुझको प्रतीत हुआ कि मैं अपनी धर्मपत्नी जीन ऐड्रियल पर, जिसको मैं बहुत प्यार करता था, बिना हिचकिचाहट के ध्यान एकाग्र कर सकता था। इसलिए मैंने उसका ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया, और मैं शान्तिपूर्वक सोने ही वाला था कि अचानक बाबा का विचार मेरे मन में घुस आया–जीन के संसर्ग में बाबा का विचार। और, अचेत निद्रा में निमग्न होने के पूर्व मेरा यही अन्तिम चेतन विचार था।''

आधीरात के लगभग उसकी नींद खुली। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे, और उसके मन में बाबा के वास्तविक रूप तथा उनके नियत कर्त्तव्य का अनुभव था। वह साक्षात्कार इतना श्रेष्ठ था तथा समझने में मनुष्य के मन से इतना परे था, फिर उसका वर्णन करने की बात ही कैसे कही जाये, क्योंकि वह उसको शब्दों द्वारा प्रकट करने में असमर्थ था। पन्द्रहवीं शताब्दी के महान भारतीय कवि तथा सद्‌गुरु कबीर ने ऐसे अनुभव के विषय में कहा है :–

''वह मुख के शब्दों द्वारा कभी नहीं बताया जा सकता,
वह कभी कागज पर नहीं लिखा जा सकता।''

मैलकाम को दृढ़ विश्वास हो गया कि बाबा ने उसको अपना विराट स्वरूप दिखा दिया था, जैसा कि कृष्ण ने अर्जुन को दिखाया था– और इस विराट दर्शन ने उसके समस्त संकोचों तथा संशयों को नष्ट कर दिया। अब उसको बाबा के वास्तविक रूप का ज्ञान हो गया। उसको बाबा के उद्देश्य का ज्ञान हो गया; और उसको यह भी ज्ञान हो गया कि उसके प्रारब्ध में उनकी सेवा करना था।

दूसरे दिन सुबह मैलकाम से भेंट होने पर बाबा ने उसको अपनी छाती से लगा लिया और अपने नेत्रों में एक जगमगाहट लिए हुए उससे अपनी वर्णमाला तख्ती के द्वारा पूछा कि क्या रात को वह ठीक तरह से सोया था। मैलकाम ने अपना सिर हिला दिया, और फिर चिल्ला उठा : ''आह, बाबा ! जिस तरह से गत रात्रि को आपने अपने को मेरे सम्मुख प्रकट किया था उसी तरह से आप अपने स्वरूप को सबको क्यों नहीं दिखाते ? तब कभी भी युद्ध तथा संघर्ष न होंगे।''

बाबा का एकमात्र उत्तर था गम्भीर ज्ञानयुक्त एक मुस्कराहट तथा मैलकाम का एक और कोमल आलिंगन। परन्तु उस समय से बाबा ने हमको विश्वास दिला दिया है कि जब उनके बोले हुए शब्दों के द्वारा मानवजाति चेतना की उच्चतर अवस्था में पहुँच जायेगी, तब युद्ध के तमाम कारण छिन्न भिन्न हो जायेंगे। ''यह विचार कि आत्मा (Self) एक सीमित तथा पृथक अस्तित्व है लुप्त हो जायेगा। प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग आ जायेगा; भय की जगह निश्चय ले लेगा; लोभ के स्थान में

उदारता आ जायेगी; शोषण का नाम न रहेगा। जब मैं बोलूँगा तो मैं एक परमात्मा को प्रकट करूँगा जो हर एक में विद्यमान है।''

बाबा के यहाँ रहने के शुरू से आखीर तक, उनकी हमारे भीतरी से भीतरी विचारों तथा इच्छाओं का अध्ययन करने की असाधारण योग्यता हमारे सामने असंख्य बार प्रकट हुई। बाबा के मन के इस अत्यन्त असाधारण गुण को कदाचित कोई और घटना इतनी अच्छी तरह चित्रित नहीं करती जितना हमारे एक मित्र का अनुभव, जो सद्‌गुरु मेहेरबाबा से मुलाकात करने आया था।

हैरी बर्नहार्ट ने लोगों के मनों का सही अध्ययन करने की आन्तरिक शक्ति लड़कपन से ही पाई थी। सद्‌गुरु से मिलना और उसके मन का अध्ययन करना उसके लिए निस्सन्देह एक अपूर्व अनुभव होगा। ऐसा ही साबित हुआ ! हमारा मित्र इस बात पर चकित रह गया कि वह घोर प्रयत्न करने पर भी बाबा के मन का कुछ भी अध्ययन न कर सका। उसको यह विचित्र इन्द्रिय–ज्ञान हुआ कि बाबा का मन पूर्ण रूप से शून्य था; उसमें अध्ययन करने के लिए कुछ भी प्रतीत न होता था।

बाद में उसने हम लोगों को समझाया, ''फिर भी मुलाकात के आद्योपान्त मैं जानता था कि बाबा मेरे हर विचार तथा मेरी प्रत्येक भावना का अध्ययन कर रहे थे !'' जब उस दिन शाम को हम लोगों ने इसके विषय में बाबा से बात की, तो उन्होंने उत्तर दिया, ''मन के प्रचलित अर्थ में मेरे मन नहीं है–ईश्वर एक विश्वव्यापी मन है, जिसका अध्ययन करने के लिए एक विश्वव्यापी मन चाहिए।''

जब बाबा के सेक्रेटरी चाँजी ने इस अनुभव के विषय में सुना तो उसने हमको एक भारतीय वकील के विषय में बताया जो कई प्रश्न लेकर बाबा से उनका उत्तर लेने की इच्छा से बाबा के पास आया था। उस वकील ने सेक्रेटरी की ओर देखते हुए, जो उसको बाबा के पास ले गया था, बाबा से कहा कि उसके सवाल अत्यन्त व्यक्तिगत ढँग के थे इसलिए

उसने उनको बिल्कुल एकान्त में बाबा से पूछने की आज्ञा माँगी। इसलिए बाबा ने उसको आज्ञा दी कि वह कमरे के दूसरे सिरे में जाकर बैठे और सवालों को एक स्लेट पर लिख देवे। फिर बाबा ने दूसरी स्लेट अपने लिए मँगाई। जब उस वकील ने अपने सब प्रश्न स्लेट पर लिख लिए और अपनी स्लेट बाबा को जाकर दी तो उसके बदले में बाबा ने अपनी स्लेट उसको दे दी। जैसे ही उसने बाबा की स्लेट के ऊपर दृष्टि डाली, उसके चेहरे पर एक आश्चर्य का भाव छा गया। उस स्लेट में उसके सब प्रश्नों के उत्तर उसी क्रम में लिखे हुए थे जिसमें उसने अपने प्रश्न अपनी स्लेट पर लिखे थे। बाबा ने अपने उत्तर उसी समय लिखे थे जिस समय वह वकील अपने प्रश्न लिखने में तत्पर था।

सद्‌गुरु के प्रवास के अन्तिम समय मैं एक मुलाकात में मौजूद थी जिसके बीच में एक शक्की पुरुष थामस ने, जो चेतना की उच्चतर अवस्थाओं के विषय में बौद्धिक सिद्धान्तों से पगा हुआ था, बाबा को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वह क्यों उन लोगों से सहमत न था जो बाबा को ईश्वर–प्राप्त सद्‌गुरु मानते थे।

उसने बाबा से बहस की, ''आपका मन कैसे अपार हो सकता है ? आप उस रूप तक सीमित हैं जिसे आप बाबावत् प्रयोग करते हैं, ठीक जिस तरह से मैं अपने रूप तक सीमित हूँ। आपके द्वारा 'मैं' और 'मेरा' 'तू' और 'तेरा' का प्रयोग ही आपके अलगाव पन का भाव सूचित करता है।''

निस्सन्देह उसे यह भान न था कि वह अपनी ही चेतना की परिमितताओं को सद्‌गुरु के ऊपर फेंक रहा था। बाबा ने मुस्कराते हुए अपनी वर्णमाला तख्ती द्वारा प्रकट किया :–

''नहीं, मैं इस रूप से सीमित नहीं हूँ। मैं इसका प्रयोग लिबास की तरह करता हूँ, जिससे तुम मुझको देख सको; इसके बिना तुम मुझको नहीं देख सकते थे। और मैं शब्दों के द्वारा तुमसे भाव प्रकट करता हूँ, जो

(शब्द) तुम्हारी समझ के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। यदि मैं अपनी ही चेतना की भाषा का प्रयोग करूँ, तो तुम न जान सकोगे कि मैं क्या बात कर रहा हूँ।''

इस मुलाकात के कुछ ही समय के उपरान्त मुझको उस सुगमता को देखने का अवसर प्राप्त हुआ जिसके साथ बाबा अपने शरीर को 'लिबास की तरह' प्रयोग में लाते हैं। दो मोटर कारों में भरे हुए हम लोग थोड़े समय के लिए बोस्टन जा रहे थे। मैं बाबा के निकट ही बैठी थी। अचानक उन्होंने अपनी गोद में पड़े हुए नीले लबादे को अपने सिर के ऊपर डाल लिया। इसके दूसरे ही क्षण उनका शरीर निर्जीव हो गया। आत्मा की शक्तिशाली तेजपूर्ण मूर्ति बाबा अब मेरे निकट नहीं थे। मैं चौंक पड़ी और एक क्षण के लिए भयभीत हो गई। फिर मुझको याद आई कि मेरे समीप वाला कोमल शरीर किसी साधारण मनुष्य का शरीर न था। मुझे इस असाधारण प्राणी के विषय में काफी जानकारी हो गई थी जिससे मुझको भयभीत होने का कोई कारण न था, चाहे वह जो कुछ भी करते अथवा चाहे जिस बात का सूत्रपात करते; इसलिए मैं, मौन आश्चर्य में, बिना हिले–डुले बैठी रही। लगभग पाँच मिनट के उपरान्त मैंने जीवनशक्ति को उनके शरीर में पुनः लौटते हुए अनुभव किया। दूसरे ही क्षण मुझको लबादे के नीचे एक हल्की सी हरकत मालूम हुई। फिर बाबा सीधे होकर बैठ गये और अपने सिर से लबादा हटा दिया। जब उन्होंने मेरी ओर अपनी चितवन की तो मुझको ज्ञात हो गया कि मैंने जो कुछ देखा था वह मतिभ्रम नहीं हो सकता था। उनकी आँखें अधिक गम्भीर और अधिक काली थीं जैसा मैंने उनको पहिले कभी नहीं देखा और वे तनिक विह्वल प्रतीत होती थीं। उनसे यह भाव प्रकट होता था जैसे वे अथाह गहराइयों में खोज करने के लिए सुदूर यात्रा करती रही हों। दस घन्टों की इस अद्भुत बोस्टन–यात्रा में बाबा एक दर्जन बार तो अवश्य अपने शरीर के बाहर व भीतर गए तथा आए होंगे। बाद में उन्होंने हमको समझाया कि विश्व से उनके अन्तःकरण में लगातार पुकारें आती रहती हैं, जिनमें प्रायः बाबा से इस ढँग का आवश्यक कार्य यथेष्ट होता है जिससे थोड़े समय के लिए बाबा की मौजूदगी अन्यत्र आवश्यक हो जाती है। उन्होंने कहा कि ऐसी आध्यात्मिक यात्राओं के दौरान में, जिनमें देश और काल की सीमा नहीं

होती, यह अनिवार्य होता है कि वह अपने भौतिक शरीर का बोझ छोड़ दें और लौटने पर उसे पुनः ले लें।

यद्यपि अदीक्षित मनुष्यों को यह मनमौजी कल्पना मालूम हो सकती है, फिर भी मुझको सन्देह है कि उस पूरे दिन की यात्रा में मेरे स्थान पर कोई भी मूढ़ से मूढ़ अविश्वासी मनुष्य भी इस बात का दृढ़ विश्वास किए बिना नहीं रहा होता कि उसकी ही आँखों के सामने एक ऐसी बात बारम्बार घटित हो रही थी जो विवेकपूर्ण मन से परे थी, फिर भी जो पूर्ण रूप से बाबा के अधिकार में थी। उसमें कोई बनावट अथवा छलकपट न था, और न जल्दी प्रभावित होने वाले नए शिष्यों के ऊपर प्रभाव जमाने का कोई प्रयत्न था। न तो चमकती हुई जीवन शक्ति से निर्जीव शिथिलता की अवस्था में जाने तथा पुनः अपनी साधारण सजीवता में वापिस आ जाने के वे आकस्मिक परिवर्तन किसी शारीरिक गड़बड़ी अथवा मानसिक विषमता के कारण थे, जैसा कि वैज्ञानिक बुद्धि पहले अनुमान लगा सकती थी। कोई भी मनुष्य मेरी तरह इस प्रचण्ड समाधि तथा बाबा की दिन भर उत्तेजित करने वाली तीक्ष्ण चेतना को देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता था कि इस अद्भुत घटना के पीछे एक गुप्त कारण था तथा एक उत्कृष्ट एवम् निर्देशित प्रयोजन था। मुझको उस समय से मालूम हो गया है कि बाबा कभी भी अचेत नहीं होते, कभी भी क्रियारहित नहीं रहते; ये उनकी दो महान विशेषताएँ हैं। फिर भी, हर समय उनके ऊपर गम्भीर शान्ति तथा पूर्ण निर्लिप्तता की छाप रहती है।

यह दिखावे में विचित्र चमत्कार बाबा में ही देखा जाने वाला चमत्कार नहीं है, इसकी पुष्टि इसी प्रकार शरीर से बाहर जाने के लिखे हुए उदाहरणों से होती है जिसके कुछ उदाहरण रोरिच (Roerich) ने अपनी कृति 'अलटाई हिमालय' (Altai Himalaya) में दिए हैं, जिसमें उसने तिब्बत के लामाओं का वर्णन किया है जो प्रायः अपने सिर को कपड़े से उन अवसरों पर ढँक लेते हैं जिन्हें वे अपनी पेशियाँ (Hearings) कहते हैं। वह ट्याना निवासी अपोलोनियस के शिष्य डैमियस के कथन का भी स्मरण कराता है कि किस प्रकार अपोलोनियस 'कोमल शब्द' (Soft voice) सुनते ही सदा अपने को ऊपर से नीचे तक एक लम्बे ऊनी दुपट्टा से ढँक लिया

करता था। परम्परा द्वारा यह लेख भी मिलता है कि कामटे डी सेन्ट जरमेन (Comte De St. Germain) के समकालीन लोग उसको देखकर कैसे आश्चर्यचकित होते थे जब वह कभी कभी अपने को विचित्र रीति से कपड़े से ढँक लेता था।

बाबा के आगमन की पाँचवी रात एक नाटकीय घटना से सुंदर बन गई थी, जो अपनी सांकेतिक सार्थकता के लिए प्रकाश देने वाली है। आधी रात के लगभग मैं सामने के द्वार से लगातार आने वाली धीमी धीमी पुकारों से जाग उठी। बाबा तथा अन्य सोते हुए मेहमानों का ध्यान रखते हुए मैं धीरे–धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरी और एक उत्तेजित जन समूह के लिए मैंने किवाड़ खोले। वे हमारे बाहरी आगन्तुक थे जो नदी के उस पार एक मेहमानघर में सोते रहे थे। इस मेहमानघर को भी हमारी मित्र ने रहने को मुफ़्त दे दिया था। उनकी घबड़ाई हुई कानाफूसियों को सुनने से मुझको ज्ञात हुआ कि मेहमानघर आग से जल गया था। वे भावना के वेग तथा मध्य–नवम्बर की रात की तीक्ष्ण हवा के कारण काँप रहे थे, इसलिए मैंने उनको रसोईघर की ऊष्णता में इकट्ठा कर दिया जहाँ उन्होंने मुझको उस दुर्घटना का मार्मिक वृत्तान्त बताया। उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेहमानघर के रखवाले ने भट्ठी में ऊँचाई तक कोयला भरकर नीचे वाला दरवाजा खुला छोड़ दिया था। इससे हवा का खिंचाव प्रचण्ड हो गया था जिसके कारण आग की लपटें बीच के विशाल कमरा के फ्लोर–रजिस्टर (Floor-register) से होकर ऊपर बढ़ गई, दरियों और पर्दों में आग लगा दी, और कुछ ही मिनटों में पूरे घर में आग लगा दी। यह घटना उस समय हुई जब वे सब सो गए थे और यद्यपि तेजी से फैलती हुई लपटों ने मेहमानघर में टिके हुए लोगों को अपने प्राण बचाने का समय कठिनाई से दिया, फिर भी वे सब चमत्कारिक ढँग से बचकर सही सलामत निकल आए। केवल एक मेहमान को खिड़की से होकर सरकते समय जरा सी खरोंच लग गई थी।

उन सबके सही सलामत बच जाने के समाचार से शान्ति पाकर, मैंने उस दुर्घटना से पीड़ित लोगों के लिए रात भरके वास्ते स्थान जुटाने के लिये घर के एक एक कोने को देखा, और भाग्यवश मैंने उसका प्रबन्ध अपने सोते हुए मेहमानों को जगाए बिना कर लिया। जब सुबह होने पर मैंने इस घटना का वर्णन बाबा से किया, तो उन्होंने कोई आश्चर्य प्रगट नहीं किया; केवल इतना पूछा, ''कोई घायल तो नहीं हुआ ?'' जब मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि सब मेहमान सही सलामत बच कर निकल आए थे, तब उन्होंने पूछा, ''क्या हमारी यजमानिन को आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी ?''

मैंने बाबा को बताया, ''इसके विपरीत, संयोगवश उसको मेहमानघर की अपेक्षा रुपये की ज़्यादा ज़रूरत है, और वह उस रक़म से लाभ उठावेगी जो उसको बीमा कम्पनी अदा करेगी।''

बाबा बहुत प्रसन्न प्रतीत हुए, और हमारे लिए उन्होंने उस घटना की सार्थकता का खुलासा किया, ''चूँकि इस अनुभव के कारण किसी को कठोर पीड़ा न होगी इसलिए हमको इस घटना के घटित होने पर आनन्द मनाना चाहिए। यह एक अच्छा लक्षण है। जिन्होंने इस अग्नि दुर्घटना में अपनी थोड़ी सी सम्पत्ति से हाथ धोया है वे एक नया जीवन प्रारम्भ करेंगे। जिन्होंने अपनी सम्पत्ति बचा ली है उन्हें नए सिरे से प्रारम्भ करनेके लिए कुछ समय तक इन्तज़ार करना पड़ेगा।''

और इस प्रकार उस क्षण से अक्षरशः ऐसा ही सिद्ध हुआ है।

अपने आगमन के ठीक एक माह पश्चात् बाबा ने यूरोप तथा भारतवर्ष जाने के लिए अमरीका से प्रस्थान किया। यह महीना सैकड़ों मनुष्यों के लिए गहरे आन्तरिक अनुभव देने वाला महीना रहा था, विशेषतः हममें से उन लोगों के लिए जिनको बाबा के साथ एक ही मकान में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हम लोगों के लिए यह पूर्वकालीन ईसाइयों द्वारा भगवान ईसामसीह के रात्रिभोज के सम्बन्ध में दिए गए प्रीतिभोज (Agape)

के समान एक सतत प्रीति–भोज (Love-feast) था जिसमें सब दैनिक समस्यायें तथा संघर्ष रहस्यपूर्ण ढँग से दैवी प्रेम की शक्ति से समाप्त हो रहे थे जो निरन्तर तथा सहज रूप से बाबा से प्रवाहित होता था, और जिसमें हम सब भागी होते थे।

शोकपूर्ण हृदयों से हमने बाबा को विदाई दी। फिर भी, जब मैं पिछले वर्षों पर दृष्टि डालती हूँ, जिनके दौरान बाबा से मेरे ये कष्टदायी वियोग बारम्बार हुए थे, तो मुझको दिखाई पड़ता है कि वे वियोग के समय इतने ज़रूरी थे जितने ज़रूरी आनन्दमय मिलन के क्षण थे। बाबा से हमारे समागम के प्रारम्भिक दिनों में वे हममें से कुछ लोगों को, हमको अपने भौतिक शरीरों में बनाए रखने के लिए, आवश्यक थे क्योंकि सद्‌गुरु से लम्बा निकट सम्पर्क उसके शिष्यों की आन्तरिक गति को इतना तीव्र कर देता है कि, जब तक उनके शरीर क्रमशः उसकी लय में नहीं आ जाते, तब तक उनको अधिक तीव्र लहर के प्रभाव को भोगना पड़ेगा।

मेरे ही उदाहरण में, नया जीवन देने वाली प्रक्रिया इतनी प्रचण्ड थी कि मैं पाँचवें दिन अपने घर के प्रबन्ध के कार्य को अपने एक मेहमान को सौंपने तथा बाबा की आज्ञा से अपना अधिकांश समय अपने कमरे में आराम करते हुए व्यतीत करने के लिए मज़बूर हो गई थी। इस अवधि में मुझको बाबा का चेहरा हर चीज़ में दिखाई पड़ता था–आकाश में, पेड़ों में, पानी में, दूसरे लोगों के चेहरों में, मेरे कमरे की दीवारों में, स्वयं मेरे हाथ में–प्रत्येक वस्तु में जिस पर मेरी दृष्टि ठहरती थी। इसलिये, यह आश्चर्य की बात न थी कि मुझको भौतिक भोजन की कोई इच्छा न थी। जब मेरे कमरे में थाल लाया जाता था तो मैं एक क्षण तक उसको देखती थी, उस भोजन को खाने का निश्चय करती थी जो बहुत कृपापूर्वक तैयार किया गया था; परन्तु तत्काल ही बाबा का चेहरा प्रत्यक्ष होकर भोजन व थालियों को लुप्त कर देता था। जब बाबा को मालूम हुआ कि मैं भोजन नहीं करती थी, तो उन्होंने भोजन के समय मेरे कमरे में आने का नियम बना लिया। वह चारपाई के किनारे पर बैठकर मुझको एक प्रेमी पिता की भाँति कोमलतापूर्वक खुद भोजन कराते थे, जब तक मैं अन्ततः इस कृपापूर्ण कार्य से व्याकुल होकर अपने को खाने के लिए मज़बूर न करती थी।

यद्यपि आध्यात्मिक खुराक अपार रूप से अधिक सन्तुष्ट करने वाली है, फिर भी इस भूमिका पर शरीर के लिए खुराक आवश्यक है जिससे वह हमको आकाश और पृथ्वी के बीच संतुलन बनाए रखने में सहायक हो, और जिससे समग्र मानव (Whole man), अपनी मानवीय आवश्यकताओं और साथ साथ अपनी दैवी लालसाओं सहित, परमात्मा में पहुँचाया जा सके। जैसा बाबा ने बहुधा कहा है, पृथ्वी पर आए हुए अवतार का प्रयोजन अचेतन को चेतना में लाना है–अत्यधिक तीव्र श्रेष्ठ रूपान्तर के द्वारा चेतना को उमड़ा देना नहीं है। ऐसे वेगपूर्ण परिवर्तनों से तो ईश्वर का प्रयोजन ही निष्फल हो जायेगा।

बाबा ईश्वरीय नियमों के पूर्ण ज्ञान के साथ कार्य करते हैं; वह जानते हैं कि किसी भी समय उनके शिष्यों में ठीक कितनी मात्रा में 'दिव्य–भोजन' पचाने की क्षमता है। केवल जिस समय वे सद्‌गुरु की कृपा से दिये गए दैवी यथार्थता के सन्देशों को अपनी चेतना में पूर्णतया परिपूर्ण कर लेते हैं, तभी सद्‌गुरु आध्यात्मिक राज्य के भीतरी प्रदेशों में प्रवेश करने के द्वार को और अधिक खोलता है।

•

कल तक पश्चिमी देशों के निवासियों के एक बड़े बहुमत की दृष्टि में भारतवर्ष सँपेरों तथा महाराजाओं का देश था, और रहस्य तथा वैभव से सम्पन्न एक उप महाद्वीप था। भारतवर्ष के यथार्थ महत्त्व को मानवजाति का विशाल समुदाय लेशमात्र भी नहीं जानता था; और न तो औसत दर्जे के मनुष्य के ध्यान में यह कभी आया था कि भारतवर्ष के 40 करोड़ लोग मानवता के भाग्य–निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। परन्तु, आज सारी दुनियाँ की आँखें भारतवर्ष की ओर हैं, और मुट्ठी भर लोगों के बजाय करोड़ों मनुष्य हर स्थान में पूछ रहे हैं कि– यह किस प्रकार का देश है ? हम संसार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस देश से किस देन की आशा कर सकते हैं ?

भारतवर्ष के विषय में कुछ खुद देखा–सुना ज्ञान रखने के कारण मुझको दृढ़ विश्वास है कि उसकी सबसे बड़ी देन उसकी सम्भावित सम्पत्ति तथा उसकी जनशक्ति से इतनी अधिक प्राप्त न होगी जितनी कि उसकी आत्म–प्रकाशित आत्माओं से होगी, उसके ईश्वर–पुरुषों से प्राप्त होगी जिनमें मानवता के लिए आत्मा को तीव्र करने की शक्ति है जिसकी उसे अत्यधिक आवश्यकता है, यदि इस पृथ्वी से सभ्यता को पूर्णतया नष्ट नहीं होना है।

भारतवर्ष में 'ईश्वर–पुरुष' संज्ञा के साथ कोई अविचारपूर्ण (Prejudiced) अर्थ नहीं लगाया जाता जैसा कि हम पश्चिम के लोग करते हैं। हमारे लिए, जो ईसामसीह के धर्म में पगे हुए हैं, केवल एक ईश्वर–पुरुष, हमारे महान प्रभु ईसामसीह हैं। और मैं, जिसका आध्यात्मिक बोध सबसे पहले उस भगवान ईसामसीह के प्रति आत्मसमर्पण करने से उद्दीप्त हुआ था, उनकी कीर्ति, सुन्दरता तथा पूर्णता में एक अणु की भी कमी मानने के लिए तैयार नहीं हो सकती। परन्तु, स्थायी आन्तरिक शान्ति तथा आनन्द के लिये की गई उत्कट खोज के लम्बे समय के दौरान में प्राप्त हुआ आत्म–अनुभव मुझको यह सत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य करता

है कि जीवन एक अपार साहसपूर्ण कार्य है–एक सनातन खेल है जो परमपिता परमात्मा अपने बनाये हुए बच्चों के साथ खेलता है–और जब विकास के विशेष समयों में मानव को पृथ्वी पर चेतना का प्रसार करने के लिए ईश्वर के साकार रूप की आवश्यकता होती है, तब परमात्मा मानवरूप धारण करता है और फिर से हमारे बीच में निवास करता है।

एक सुसंस्कृत संस्कृत भारतीय के लिए यह बात एक स्वतः सिद्ध सत्य है। उसके लिए यह स्वीकार करना बिल्कुल सहज है कि ईसामसीह, बुद्ध, जुरथस्त्र, मुहम्मद और कृष्ण समान आत्मशक्ति तथा ज्ञान से सम्पन्न ईश्वर–पुरुष थे–यद्यपि उन्होंने उस शक्ति तथा ज्ञान को तत्कालीन युग की आवश्यकताओं की माँग के अनुसार विभिन्न रूपों तथा प्रकारों में प्रकट किया था– और ऐसा स्वीकार करने में उसके सामने कोई बौद्धिक रुकावटें नहीं आतीं। पूर्वी देशों के निवासी प्राचीन लोग हैं– उनमें से कम से कम बुद्धिमान लोग कुछ अर्थों में हमारे यहाँ के बड़े से बड़े पण्डितों से अधिक बुद्धिमान होते हैं, क्योंकि उनकी बुद्धिमत्ता आत्मा से सम्बन्ध रखती है न कि बुद्धि से।

नित्यता के विषय में उनका अपना निजी ज्ञान है, जो इस बात को स्वीकार करता है कि एक बार प्राप्त हुई चेतना की पूर्णता सदैव प्रत्यक्ष रूप में पुनः पुनः प्रकट होती है, क्योंकि ऐसी चेतना में अन्य सब चेतन प्राणियों को उसी पूर्णता की प्राप्ति में सहायता करने की इच्छा स्वाभाविक रूप से विद्यमान होती हैं। भारतीय लोागों के मन में यह विचार तक नहीं आ सकता कि ईश्वर को अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ पूर्णपुरुष के रूप में युग युगान्तर में बारम्बार प्रगट न होना चाहिए। उनका पवित्र साहित्य ईश्वर–पुरुषों के वृत्तान्तों से–अर्थात उन आत्माओं के वृत्तान्तों से जिन्होंने ईश्वर का पूर्ण तथा स्थायी साक्षात्कार कर लिया था–भरा पड़ा है, जो अपने युग के ऊपर अपने अमर जीवनों की छाप छोड़ गए हैं। और, जब ''दुनियाँ में धर्म का ह्रास और अधर्म व अन्याय की बढ़ती होती है'', तब दुनियाँ के महान ईश्वरीय ग्रन्थों में से एक श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार ''भगवान दुष्टों का नाश करने के लिए और साधु पुरुषों की रक्षा करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए,'' अवतार अथवा मसीहा के रूप में अवतरित होता है।

निश्चय ही आज दुनियाँ को एक मसीहा की इतनी अधिक आवश्यकता है जितनी कि मानवजाति के इतिहास में पहले कभी नहीं रही। उसे एक पूर्णपुरुष की आवश्यकता है जो अपने ज्ञान व शक्ति के द्वारा मानव को अज्ञान से निकालने और उसको लोभ, स्वार्थ तथा भय के स्वयं लादे हुए बन्धन से मुक्त करने में समर्थ हो।

इस समय हमारी रुचि एक ऐसी शान्ति स्थापित तथा स्थिर करने के प्रयत्नों में है जिससे कि मानव की भाषण देने की, कार्य करने की तथा धर्माचरण की मौलिक स्वतन्त्रताएँ सुरक्षित हो जायें, ताकि दूसरी ही पीढ़ी के भीतर और भी अधिक भीषण युद्ध की पुनरावृत्ति न होवे। मुझे विश्वास है कि कोई भी मनुष्य इन लक्ष्यों के महत्त्व को अस्वीकार न करेगा। परन्तु लड़ाइयाँ और उनके बाद उत्पन्न हुई परिस्थितियाँ व्यक्तिगत संघर्ष के ही रूपान्तर हैं, जो बढ़ते बढ़ते राष्ट्रीय अथवा विश्वव्यापी रूप धारण कर लेते हैं। इसलिए किसी ऐसे साधन की आवश्यकता है जो मनुष्य की आन्तरिक हलचल को समाप्त करके उसके लिए सच्ची स्वतन्त्रता स्थापित करे–अर्थात् उसके लिए आत्मा की स्वतन्त्रता तथा चेतना की स्वतंत्रता स्थापित करे जो उसके जेल में सड़ने अथवा एक निरंकुश शासक की गुलामी के बन्धन में होने की अवस्था में भी उसके साथ रहेगी। ऐसी स्वतन्त्रता ईसामसीह को प्राप्त थी, अन्य ईश्वर–पुरुषों को प्राप्त थी, और वही स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रत्येक प्रमाण श्री मेहेरबाबा देते हैं जिनके विषय में मैं लिख रही हूँ। वह ऐसी स्वतन्त्रता है जो उन लोगों को प्रदान की जा सकती है जो अपनी बुद्धि द्वारा निर्णय की गई त्रैलोक्य चिन्तामणि (Panacea) के दिवालियापन से अपना मुख मोड़ लेते हैं, और अपने अन्तस्तल से ईश्वर को सहायता के लिये पुकारते हैं।

बाबा के पहली बार अमरीका आने पर उनके भक्त व सेक्रेटरी चाँजी ने हम लोगों से पहली बार उस कथा का वर्णन किया कि किस प्रकार बाबा को अपने ईश्वरत्व का तथा अपने अवतारिक कार्य का ज्ञान हुआ था।

तत्पश्चात् भारतवर्ष में बाबा के भाइयों तथा बाबा के अन्य शिष्यों ने इस कहानी का विस्तृत वर्णन हम लोगों से किया और उसको कई बार हम लोगों को बताया।

18 वर्ष की आयु में श्री मेहेरबाबा, जो उस समय मेहेरवान नाम से पुकारे जाते थे, पश्चिमी भारतवर्ष के पूना नगर में एक गर्म तथा धूल से भरी हुई सड़क पर साइकिल से जा रहे थे। वह पूना के डेकन कालेज में पढ़ते थे, और उस समय कालेज से घर जा रहे थे। जैसे ही वह छायादार नींबू के विशाल वृक्ष के पास पहुँचे, एक अत्यन्त बूढ़ी महिला उस पेड़ के नीचे बैठे हुए जनसमूह के बीच से उठी और आगे बढ़कर उनसे मिलने के लिए आई। वह अपनी साइकिल से उतर पड़े और दोनों ने एक दूसरे पर अपनी चितवन डाली। उसके बाद उस महिला ने भौंहों के बीच में उनके मस्तक को चूमा, और फिर वह प्रतीक्षा करते हुए जनसमूह के पास लौट गई। उन दोनों ने अपने मुख से एक शब्द भी नहीं निकाला। किशोर बालक अपनी साइकिल पर फिर से सवार होकर अपने घर को चला गया। ऐसी साधारण तथा दिखने में तुच्छ घटना सन् 1913 ई. में मेहेरवान शेहरयार ईरानी के साथ घटित हुई। फिर भी उस मिलन के प्रतिघातों ने उनके अन्तर में चेतना की ऐसी प्रलयंकारी क्रांति उत्पन्न कर दी कि उसके पश्चात् कुछ वर्षों तक उनके कुटुम्बी जन तथा मित्र उन्हें एक प्रसन्न चित्त पागल मनुष्य समझते रहे।

बाबा ने वर्णन किया है कि उस वृद्ध महिला से उनका स्पर्श होते ही एक बिजली की जैसी प्रचण्ड लहर उनके शरीर में दौड़ गई, और वह एक अलौकिक महान आनन्द की अनुभूति अपने पीछे छोड़ गई। वह कई महीने तक उनके अन्तर में रही, यहाँ तक कि एक दिन रात के समय ठीक सोने के पहले उनको अपने स्थूल शरीर की कोई चेतना न रही और उन्होंने अपने को एक अत्यन्त ऊँची चेतना की अवस्था में उठा हुआ पाया।

पश्चिमी देशों के लोगों के तर्क प्रधान मन में यह बात अविश्वसनीय रूप से अत्यन्त मनोकल्पित हो सकती है कि इस वृद्ध महिला से बाबा के विचित्र मिलन की ऐसी दिखने में छोटी घटना उनके अस्तित्व में ऐसे स्मरणीय परिवर्तन पैदा कर सकती थी। परन्तु पूर्वी देशों के लोगों को ऐसा

प्रतीत नहीं हो सकता, जिनके पवित्र साहित्य का विशाल भण्डार आध्यात्मिकता में आगे बढ़ी हुई आत्माओं के संसर्ग से उत्पन्न की गई चेतना की असाधारण अवस्थाओं के ऐसे ही वृत्तान्तों से भरा पड़ा है।

उस विलक्षण महिला का नाम बाबाजान था जो ऐसे नाटकीय रूप में बाबा के जीवन में आई। वह पूर्णपुरुष अथवा सद्‌गुरु के रूप में प्रसिद्ध थीं। पूर्वी देशों में यह शब्द उन थोड़े से दुर्लभ मानव प्राणियों के लिए प्रयुक्त होता है जिनकी चेतना सीमित अहम् की परिमित सीमाओं को लाँघ जाती है। उनके मन ईश्वर के विश्वव्यापी मन में निमग्न होने के कारण उन्हें, भौतिक शरीर की चेतना तथा उसके ऊपर उनके स्वामित्व का ह्रास हुए बगैर, अचेतन सत्ता की पूर्ण चेतना होती है। सद्‌गुरु बाहरी अर्थों में साधारण स्त्री–पुरुषों की भाँति कार्य करते हैं, जबकि साथ साथ वे अपने अन्तर में ईश्वरत्व के तमाम अधिकारों तथा ज़िम्मेदारियों का आनन्द लेते हैं।

स्त्री–जाति में सद्‌गुरूत्व के कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों में से बाबाजान का एक उदाहरण है। सूफ़ी परम्परा के अनुसार स्त्रीजाति में बाबाजान की आध्यात्मिक पूर्णता का प्रकटीकरण पुरानी विश्वव्यवस्था के अन्त का द्योतक है और वह नये युग के प्रारम्भ की घोषणा करता है जिसमें स्त्री चेतना में वह परिवर्तन करने में मनुष्य के बराबर अपना स्थान ग्रहण करेगी, जो (परिवर्तन) जीवन के नारी सिद्धान्त–अर्थात् हृदय–को ऊँचा उठाकर श्रेष्ठता के यथोचित स्थान तक पहुँचा देगा।

बाबाजान अफ़गानिस्तान में एक सम्पन्न तथा कुलीन मुसलमान परिवार में पैदा हुई थीं। उनका बचपन का नाम गुलरुख (पुष्पमुखी) था जिसको वह भलीभाँति सार्थक करती थीं क्योंकि बहुत वृद्ध अवस्था में भी उनका रंग एक बालिका के रंग जैसा साफ था। उनको एक कुलीन अफ़गानी मुस्लिम परिवार की परम्परा के अनुसार शिक्षा दी गई थी। अपने बाल्यकाल में ही उन्होंने पूरी कुरान याद कर ली थी, और बाद में उन्होंने

अरबी, फ़ारसी तथा भारतीय भाषाओं पश्तो व उर्दू का पढ़ना और बोलना सीख लिया था। अपनी आयु तथा पृष्ठभूमि की अधिकांश लड़कियों से भिन्न उनको ध्यान–चिन्तन करने तथा एकान्त में रहने में अधिक आनन्द प्रतीत होता था जिससे उनके माँ बाप को, अत्यधिक निराशा होती थी। अपने दृष्टिकोण से वे यह सोच भी नहीं सकते थे कि उसकी ऐसी जाति, परम्परा तथा सुन्दरता वाली लड़की अपने नारी–कर्तव्य को विवाह तथा मातृत्व के एकमात्र मार्ग के द्वारा पूरा न करे, जो मार्ग उनके विचार से स्त्रियों के लिए खुला था।

उस आन्तरिक आनन्द ने, जो इस विचित्र बालिका को अपने उस जीवन से प्राप्त होता था, उसको दृढ़तापूर्वक अपने माँ–बाप की पारम्परिक अभिलाषा के विरुद्ध कर दिया। गुलरुख ने निश्चय कर लिया था कि उसको विवाह नहीं करना था। परन्तु उसके माता–पिता उसका विवाह करने का हठ कर रहे थे, और जब उन्होंने उसको एक अनिच्छित विवाह सम्बन्ध में जबर्दस्ती बाँधने का प्रयत्न किया, तब वह वहाँ से निकल भागी और पेशावर, भारतवर्ष, और तत्पश्चात् रावलपिण्डी आ गईं। पर्दा–प्रथा के कठोर एकान्तवास में पालन की गई उसकी पृष्ठभूमि की एक छोटी आयु वाली बालिका के लिए यह एक अभूतपूर्व तथा महान साहसपूर्ण कार्य था।

निःसन्देह उसके महान आध्यात्मिक प्रारब्ध ने रास्ता पार करने में उसको सहायता की जब तक कि वह भारतवर्ष के सुरक्षित शरण–स्थल में नहीं पहुँच गई।

यहाँ उसने बहुत समय तक ध्यान–चिन्तन तथा उपवास के द्वारा अपने आध्यात्मिक लालसापूर्ण जीवन को ज़ारी रक्खा, और अन्त में एक हिन्दू सद्‌गुरु के पास पहुँची जिसने उसको आध्यात्मिक मार्ग में दीक्षित किया। इस दीक्षा के उपरान्त लगभग 17 माह तक उसने एक पहाड़ की कन्दरा में एकान्तवास करके कठोर आध्यात्मिक संयम किया।

सैंतीस वर्ष की आयु में वह एक मुसलमान सद्‌गुरु के पास पहुँची जिसने उसको ईश्वर से पृथकता के भ्रम से मुक्त करके उसके आध्यात्मिक संघर्षों का अन्त कर दिया। फिर भी वह जानती थी कि उसकी चेतना में आगे एक और सुधार होने को था। यदि उसको अपने समय का प्रमुख

सद्‌गुरु बनने का उसके अन्तर में प्रकाशित कार्य पूर्ण करना था, और यदि उसके प्रारब्ध में नये युग के अवतार को उसके ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट कर्त्तव्य के प्रति जाग्रत करना तथा अपने आध्यात्मिक नेतृत्व को उसको सौंप देना था, तो उसके ईश्वरत्व की सिद्धि तथा उसकी स्थूल चेतना में पूर्ण सन्तुलन होना आवश्यक था।

चेतना की इस अन्तिम सीढ़ी को प्राप्त करने के लिए वह फिर से उस हिन्दू सद्‌गुरु के पास पहुँची जिसने पहले उसको मार्ग दिखाया था। उनकी क्रियाओं से उसको चेतना की अन्तिम अवस्था प्राप्त हो गई और तत्पश्चात् वह अपने समय की आध्यात्मिक सत्ता की प्रधान बन गई।

इस परम सिद्धि को प्राप्त करने के थोड़े ही समय पश्चात् उसने भारतवर्ष के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक की यात्रा की, और इसी बीच में वह उत्तरी भारत के पंजाब प्रान्त में एक समय ठहर गई। जब वह वहाँ ठहरीं थीं तो एक दिन ईश्वरीय परमानन्द के दौरान में उन्होंने घोषित किया कि ''मैं ईश्वर हूँ !'' पंजाब के धार्मिक कट्टर पन्थियों के लिए यह घोषणा हद दर्जे की ईश्वर–निन्दा थी; इसलिए क्रोध में आकर उन्होंने बाबाजान को ज़िन्दा ही दफ़न कर दिया। अपनी अलौकिक शक्तियों के द्वारा, जो ईश्वर साक्षात्कार हुए समस्त सद्‌गुरुओं को प्राप्त होती है किन्तु जो बुद्धि प्रधान मन की समझ से परे होती है, वह बचकर निकल आईं और बम्बई (अब मुंबई) से एक सौ बीस मील दक्षिण–पूर्व की ओर स्थित पूनानगर में रहने लगीं। यहाँ जब बलूची रेजीमेण्ट के कुछ सैनिकों ने देखा कि वह महिला, जिसको उन्होंने कई वर्ष पहले ज़िन्दा दफ़न कर दिया था, एक बड़े पेड़ के नीचे प्रचुर पुनर्जीवन से परिपूर्ण तथा भक्तों से घिरी हुई बैठी है, तो वे आश्चर्य से घबड़ा गये। उनकी आध्यात्मिक महत्ता से भयभीत होकर उन्होंने बाबाजान के कुछ शिष्यों की उपस्थिति में बाबाजान को साष्टांग प्रणाम किया और तत्पश्चात् पास में खड़े हुए लोगों को उन्होंने बताया कि उन्होंने किस प्रकार बाबाजान को ज़िन्दा दफ़न कर दिया था। इस घटना के फलस्वरूप बाबाजान की सन्त के रूप में ख्याति दूर दूर तक फैल गई।

बाबा की एक महिला शिष्य ने, जिसे बाबाजान को भली–प्रकार जानने का सौभाग्य प्राप्त था, मुझसे बताया कि बाबाजान की उपस्थिति इतनी अधिक आकर्षक थी कि उनके पास से निकलने वाला कोई भी मनुष्य उनको दुबारा देखे बिना नहीं रह सकता था। वह कद में छोटी थीं, चाल में दृढ़ तथा तेज थीं; उनकी त्वचा गौर वर्ण की तथा धूप में झुलसी हुई थी, उनका मुखड़ा चौड़ा था जिसमें गालों की ऊँची हड्डियाँ थीं, और घने सफेद बाल उनके कन्धों तक खुले लटकते थे। उनकी वाणी गम्भीर तथा मधुर थी, और उनके नेत्र पनीले, नीले प्रकाश के अथाह कुण्ड थे।

पूनानगर में, दिखावे में एक भिखारी के रूप में, कई वर्ष तक इधर उधर घूमने के पश्चात् और जहाँ उनका जी चाहता था वहीं बैठते अथवा विश्राम करते हुए, उन्होंने अपना स्थायी आसन (Seat) एक नींबू के पेड़ के नीचे जमाया जहाँ कई वर्ष उपरान्त उनसे मिलने का प्रारब्ध बाबा को प्राप्त हुआ था। उस समय यह विशेष स्थान धूल, निर्जनता तथा भद्देपन के कारण आँख को खटकने वाला था; और वह ताऊन (प्लेग) तथा महामारी को पनपाने वाला स्थान था तथा वह नगर के अधम लोगों का प्रिय अड्डा था। यहाँ बाबाजान ने कुछ लकड़ियों तथा बोरों के टुकड़ों से एक नाममात्र की झोपड़ी बना ली और उसी में वह बरसात की मूसलाधार वर्षा तथा भारतवर्ष की ग्रीष्म–ऋतु की झुलसाने वाली गर्मी में बनी रहती थीं।

दस वर्ष के भीतर उनका स्थान हजारों आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए तीर्थयात्रा का एक केन्द्रबिन्दु बन गया। उसके आसपास का क्षेत्र कूड़ा करकट तथा गन्दगी से भरे एक मैले कुचैले स्थल से बदलकर आध्यात्मिक सम्पत्ति तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण बाज़ार बन गया। नई इमारतें खड़ी हो गईं; और पुरानी इमारतों का पुनरुद्धार हो गया। चाय की दुकानें प्याली और तश्तरियों की आतिथ्यपूर्ण खड़खड़ाहट तथा बाबाजान के प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करने के हेतु प्रतीक्षा करते जनसमूह की बातचीत से प्रतिध्वनित होने लगीं। सड़कों में गाने वाले अपने आध्यात्मिक संगीत से जनसमुदाय का मनोविनोद करने लगे। सम्पूर्ण धर्मों तथा श्रेणियों के सैकड़ों प्रसन्न, हँसते हुए तथा उत्सुक लोग बाबाजान के चरणों की धूल मिलने के क्षण की प्रतीक्षा में धीरज के साथ खड़े रहते थे। और, चूँकि यह

भारतवर्ष था, जहाँ जीवन के मायावी पहलू (Shadow-side) की कभी पूर्णतया अवहेलना नहीं की जा सकती और न उसका दमन किया जा सकता है, सर्वत्र विद्यमान रहने वाले भिखारी लोग भीख के लिए दयनीय शब्दों में घिघियाते हुए भीड़ के बीच से चले जाते थे। स्वयं बाबाजान के निकट मधुर सुगन्धवाली धूप के बादल ऊपर उठते थे और वे तीर्थयात्रियों के हृदयों से बरसने वाली भक्ति से मिल जाते थे। केवल पूर्वी देशों में ही मिलने वाला यह दृश्य देखने वाले के मन तथा हृदय पर अमिट प्रभाव डालता था।

इन दैनिक प्रदर्शनों ने नगर के अधिकारियों के सामने एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी। सवारियों व जनता का आना जाना रुक रहा था, और चारों ओर मीलों तक घनी भीड़ फैली रहती थी। वे बाबाजान की गद्दी को अधिक बाहरी तथा कम घने बसे हुए क्षेत्र में ले जाना चाहते थे, परन्तु वे जानते थे कि वह कभी इसके लिए राजी न होंगी। फिर भी कुछ उपाय तो करना ही था, उनकी स्थानीय प्रतिष्ठा खतरे में थी। अब वह एक ऐसी प्रसिद्ध हस्ती हो गईं थीं कि उनके रहने के लिए एक अधिक उपयुक्त स्थान की आवश्यकता थी। एक पेड़ के नीचे बोरों से छाई गई झोपड़ी में उनका रहना भद्दा प्रतीत होता था। इसलिए नगर के अधिकारियों ने बाबाजान के द्वारा खुद चुने हुए स्थान से कुछ फीट की दूरी पर उनके लिए एक बढ़िया निवासस्थान बनवा दिया। बाबाजान ने इसका कोई विरोध नहीं किया, परन्तु जब इमारत बनकर तैयार हो गई और अधिकारियों ने उचित धार्मिक संस्कार के साथ उनको उसमें प्रवेश करने के लिए आमन्त्रित किया तब उन्होंने साफ इनकार कर दिया। अधिकारीगण आश्चर्य से घबड़ाकर अवाक् हो गए, परन्तु अन्त में यह कठिनाई नई इमारत में एक नया हिस्सा जोड़कर हल की गई जिसने नई इमारत को बाबाजान की नीबू के पेड़ के नीचे की पुरानी गद्दी से मिला दिया।

अन्य सद्‌गुरुओं की भाँति वह बहुत कम सोती थीं, और उनकी वह थोड़ी निद्रा भी उनका ऊँची चेतना के क्षेत्र में चला जाना था। अचेत निद्रा सद्‌गुरु के जीवन में कोई कार्य नहीं करती। वह थोड़ा और अनियमित रूप से भोजन करती थीं, और बहुधा तेज, काली भारतीय चाय पीती थीं,

जो हट्टे कट्टे शरीर को भी क्षीण करने के लिए काफी होती थी। परन्तु सद्‌गुरु बाबाजान के लिए वह स्पष्ट रूप से पूर्ण आहार होता था। वह एक सौ बीस वर्ष से अधिक परिपक्व अवस्था तक जीवित रहीं। वह खाना खाने को "शरीर में थिगड़ी जोड़ने का काम" कहा करती थीं।

यदि कोई मनुष्य उन्हें "माता" कहता था, तो उनकी आँखें लाल हो जाती थीं और वह चिल्ला पड़तीं थीं, "मैं पुरुष हूँ; स्त्री नहीं हूँ !" इस कथन द्वारा वह दर्शाती थीं कि उनकी चेतना स्थूल शरीर के विकार से मुक्त थी और हज़रत मुहम्मद के इस कथन की पुष्टि करती थी कि "ईश्वर के प्रेमी पुरुष हैं; स्वर्ग के प्रेमी हिजड़े हैं; दुनियाँ के प्रेमी स्त्रियाँ हैं।"

ऐसा कहा जाता है कि बाबाजान ने कई चमत्कार किये थे, उनमें से एक घाव चंगा करने का दयापूर्ण कार्य था। इस बात में उनका तरीका अद्वितीय था। वह रोगग्रस्त हिस्से पर अपना हाथ रखती थीं अथवा उसको अपनी उँगलियों के बीच में कर लेती थीं, और किसी दैवी प्राणी को पुकारते हुए वह रोगग्रस्त स्थान को झटका देती थीं अथवा उसको चलाती थीं और साथ साथ कष्टदायी सत्त्व को चले जाने की आज्ञा देती थीं। यह कला तत्काल राहत देती थी और कुछ क्षण पूर्व पीड़ित व्यक्ति प्रसन्न तथा मुस्कराता हुआ विदा होता था।

इस बात को समझाने के लिए बाबाजान के विषय में सैकड़ों घटनाएँ बयान की जाती हैं कि जब दुनियाँ द्वारा त्यागे हुए पापी लोग उनके सामने आ जाते थे तब किस प्रकार उनके लिए उनका महान प्रेम तथा उनकी दया उमड़ पड़ती थी। इन घटनाओं में से सबसे विचित्र घटना यह है जबकि एक मनुष्य ने उस क़ीमती दुशाला को चुराने का प्रयत्न किया जिसको ओढ़े हुए बाबाजान सो रही थीं, और जो उनके एक भक्त ने उनको भेंट किया था। उस दुशाले का एक छोर बाबाजान के शरीर के नीचे दबा हुआ था जिससे उस चोर को उसको निकालने में बहुत कष्ट हो रहा था क्योंकि उसकी यह कोशिश थी कि बाबाजान जागने न पावें। परन्तु उस व्यक्ति की इच्छापूर्ति में सहायता करने के लिए बाबाजान ने अपनी आँखें मीचे हुए अपने शरीर को थोड़ा सा उठा दिया।

एक दूसरे अवसर पर एक धनवान भक्त ने बाबाजान की कलाइयों में सोने के दो ठोस चूड़े पहिना दिए थे। अपनी घात लगाए हुए एक चोर ने उनको बाबाजान की कलाइयों से इतनी बुरी तरह से खींचा कि उन्होंने निष्ठुरता से उनकी कलाइयों के माँस को फाड़ दिया। उनके अनुयाइयों को बहुत देर बाद यह घटना मालूम हुई। वे बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने चोर को पकड़ने के लिए भारी शोर–शराबा किया। जब स्थानीय पुलिस चोर को पकड़ कर बाबाजान के सामने लाई, तो हर मनुष्य यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि बाबाजान ने चोर को तो भुला दिया और उसको दोष लगाने वालों को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस को कहा।

अनेक घटनाओं में से ये केवल कुछ घटनाएँ हैं जो हमारे लिए इस अद्वितीय 'दिव्य महिला' के चरित्र को प्रकाशित करती हैं, जो बालक मेहेरवान को देखकर तत्काल पहिचान गईं कि यह उनका चिरकाल से प्रतीक्षित आध्यात्मिक बेटा था। मेहेरवान के मस्तक में ईश्वरीय चुम्बन देने के पश्चात् बाबाजान ने अपने शिष्यों को बताया कि यह आत्मा (मेहेरवान) अपनी ईश्वरीय शक्ति तथा प्रेम से दुनियाँ को चकित कर देगी। उनको खुद अपनी भीतरी ज्योति प्राप्त करने के समय से यह ज्ञात हो गया था कि मेहेरवान को उसके महान ईश्वरीय कर्तव्य के प्रति जागृत करना उनके प्रारब्ध में था। सनातन अवतार को भी हर बार उसके ईश्वरीय कर्तव्य के प्रति पुनः जागृत करने की आवश्यकता होती है। बाबा के पश्चिमी देशों में प्रथम बार जाने के समय, 21 सितम्बर 1931 ई. को बाबाजान का काम पूरा हो गया, और उन्होंने अपने भौतिक शरीर को छोड़ दिया।

हम पश्चिम के लोग गूढ़ घटनाओं से इतने दूर होते हैं कि हमको ऐसी विचित्र कृतियों को समझना कठिन प्रतीत होता है। हम केवल उन्हें तथ्यों के रूप में स्वीकार करते हैं। पूर्वी धर्मग्रन्थ इस विषय पर स्पष्ट हैं। वे सद्गुरुओं द्वारा दृष्टि, स्पर्श, अथवा शब्द के माध्यम से अपने किसी भी चुने हुए जन को इच्छानुसार तत्काल आध्यात्मिक कृपा प्रदान करने के अनेक उदाहरणों का वर्णन करते हैं। ऐसे क्षणों में सद्गुरु की पूर्णतया सिद्ध, समस्त ईश्वरीय शक्ति पूर्वनिश्चित (Predestined) शिष्य की चेतना में सुई की नोक जैसी तीक्ष्णता के साथ केन्द्रित हो जाती है, जिससे एकाएक उसको स्वयं अपने ईश्वरत्व का ज्ञान हो जाता है।

यद्यपि पूर्वी ज्ञान ऐसी तात्कालिक मुक्ति के लेखों से भरा पड़ा है, फिर भी एक ऐसे मनुष्य के ऊपर, जो चेतनरूप से ईश्वर की खोज में नहीं रहा था, ऐसी कृपा–वर्षा के वृत्तान्त दुर्लभ हैं। आमतौर पर यह कृपा बहुत समय तक तत्परता से किए गए प्रयास तथा सान्सारिक माहात्म्यों के पूर्ण त्याग के पश्चात् प्राप्त होती है। परन्तु मेहेरवान के लिए यह स्वर्ग से स्वतन्त्र भेंट के रूप में आई हुई प्रतीत होती थी, जिसकी कोई आशा नहीं की गई थी और न चेतनतया खोज की गई थी। वह अपनी सान्सारिक क्रियाओं की सीमा से बाहर किसी वस्तु को खोज नहीं रहा था। वह पूर्व तथा पश्चिम दोनों की कविता व साहित्य का प्रेमी था, और दोनों को उत्सुकतापूर्वक पढ़ता था। वह पढ़ने तथा खेल–कूद में सबसे बढ़कर था; अपनी टोली का नेता था, और उसके स्वाभाविक रूप से शरारती होने पर भी उसके मित्र तथा अध्यापक उसको बहुत चाहते थे। वह सब प्रकार से एक साधारण, तन्दुरुस्त तथा प्रसन्नचित्त बालक प्रतीत होता था जिसे सुन्दरता से प्रेम और नीचता तथा क्षुद्रता से घृणा थी।

उसके पिता जुरथस्त्र को मानने वाले एक पारसी थे, और वह बचपन से ही ईश्वर के उत्कट खोजी रहे थे। वास्तव में उन्होंने उस खोज में अपने जीवन को लगा देने तथा संन्यासी होने–अर्थात् आध्यात्मिक फ़कीर बनने–का निश्चय कर लिया था, जबकि एक आन्तरिक वाणी ने उनको अपना वैराग्य त्याग देने तथा विवाह करके सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी। उस 'वाणी' ने घोषित किया कि इन बच्चों में से एक बच्चा पिता के घोर प्रयासों को फलीभूत करेगा और वह मनुष्यों के एक महान आध्यात्मिक नेता के रूप में प्रसिद्ध होगा। पिता ने उस भीतरी आज्ञा का पालन किया और उसके उपरान्त शीघ्र ही एक सजातीय पारसी महिला से विवाह कर लिया जिसके पूर्वज उसी प्रकार से फारस से आकर बम्बई (अब मुंबई) के पास बस गए थे। इस विवाह सम्बन्ध से 5 सन्तानें हुई जिनमें मेहेरवान दूसरी सन्तान था जिसका जन्म 25 फरवरी 1894 ई. को हुआ था।

मेहेरवान के बचपन की एक परिस्थिति कुछ अन्शों में उसके स्वभाव के चिन्तनशील पहलू में सम्भवतः सहायक हुई होगी, यद्यपि मेरी समझ में ऐसी आध्यात्मिक मुक्ति, जैसी कि मेहेरवान ने अनुभव की थी, वातावरण अथवा भौतिक वंशपरम्परा से सम्बद्ध नहीं होती और न उन पर निर्भर होती है। आत्मा की परिपक्वता के अर्थ में आध्यात्मिक तैयारी इस विषय में निश्चय करने वाली वस्तु है।

मेहेरवान पारसी शान्ति–स्तूप (Tower of Silence) के निकट रहता था जहाँ पारसी लोग अपने मुर्दों को ले जाते हैं और उन्हें गिद्धों के खाने के लिए वहाँ छोड़ देते हैं जो काले बादलों के रूप में स्तूप के चारों तरफ उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं। बालक मेहेरवान बहुधा इस डर उत्पन्न करने वाले स्थान को देखने जाता था, और वहाँ कभी कभी केवल गिद्धों तथा सूखी हड्डियों के बीच में घण्टों बैठा रहता था। कदाचित् वहीं उसको जीवन तथा मृत्यु को लाँघने वाले अपने अमरदायित्व का प्रथम धुँधला भान प्रारम्भ हुआ। किसी भी सूरत में, यह एक स्वभाव से चिन्तनशील, अर्थात् अन्तर्मुखी, प्रकृति का संकेत करता है। मेहेरवान के बचपन की इस परिस्थिति को छोड़कर उसके चारों ओर का वातावरण उन्नत तथा धार्मिक, पारसी मतावलम्बी माँ बाप से उत्पन्न हज़ारों अन्य पारसी बच्चों का जैसा था।

उसने सेन्ट विन्सेन्ट हाई स्कूल में प्रारम्भिक दर्जों की पढ़ाई उच्च गौरव के साथ पूरी की और उसके बाद 17 वर्ष की आयु में डेकन कालेज (Deccan College) में प्रवेश किया, जो उस समय पश्चिमी भारत के दक्षिण प्रान्त में सबसे अच्छी संस्था थी। मेहेरवान की मुख्य रुचि साहित्य में थी और उसने उत्सुकतापूर्वक शेक्सपियर, वर्ड्सवर्थ, शेली तथा साथ साथ अन्य कई अँग्रेज़ी, भारतीय तथा फ़ारसी कवियों का अध्ययन किया। फ़ारसी के महान कवि हाफ़िज़ में उसकी विशेष रुचि थी। वह उसके गम्भीर रहस्यवाद से अत्यन्त मग्न हो जाता था, यद्यपि उस समय उसका खुद कोई रहस्यवादी अनुभव नहीं था। इस कवि से प्रेरित होकर मेहेरवान ने फ़ारसी में तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनेक कवितायें लिखीं जो बम्बई (अब मुंबई) के सर्वप्रिय देशी पत्र 'सांज वर्तमान' में कल्पित 'हुमा'

नाम से प्रकाशित हुई थीं। उसने अँग्रेज़ी में भी कवितायें लिखीं थीं। उसको संगीत से प्रेम था और उसका स्वर सुन्दर, संगीतमय था। उसकी प्रकृति के इस अधिक सौन्दर्यमय पहलू के विपरीत रहस्यवादी कहानियों में उसकी उत्कट रुचि थी, और 25 वर्ष की आयु में उसने अपने प्रिय पत्र 'दी यूनियन जैक' के लिए एक कहानी लिखी थी, जो स्वीकृत होकर प्रकाशित कर दी गई थी।

प्रारम्भिक स्कूल तथा कालेज में मेहेरवान स्वाभाविक नेता माना जाता था। लड़ाई झगड़ों का फैसला करने के लिए वह पंच बनाया जाता था, और लड़के सब विषयों में सलाह लेने के लिए उसके पास आते थे। डेकन कालेज में 'कास्मोपोलिटन क्लब' (Cosmopolitan Club) नाम का एक संगठन उसने तैयार किया था। जाति अथवा सम्प्रदाय के भेदभाव के बिना कोई भी उसका सदस्य बन सकता था। उसके नियमों में जुआ खेलने, अश्लील भाषा का प्रयोग करने तथा कलह करने की मनाही थी।

मेहेरवान कालेज के दूसरे वर्ष में था जबकि यह महान आन्तरिक रूपान्तर उसके अन्तर में घटित हुआ। बाबाजान से शुरू में मिलने के पश्चात् मेहेरवान ने कालेज में पढ़ना ज़ारी रखा, परन्तु रोज शाम को घर लौटते समय वह थोड़े समय के लिए पूज्य सन्त बाबाजान से भेंट करने के लिए रुक जाता था जो उस समय 100 वर्ष से अधिक आयु की प्रसिद्ध थीं। वृद्ध अवस्था के कारण उनके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं थीं, परन्तु आयु के साथ साथ उनकी भीतरी शक्तियाँ प्रचण्ड हो गईं थीं। उनकी दृष्टि तथा सुनने की शक्ति पूर्णतया ठीक थी, और वह ऐसी तेज चलती थीं जैसी एक जवान लड़की चलती है। जब मैं भारतवर्ष में थी तो उनसे परिचित कई लोगों ने मुझे बताया कि उनसे प्रवाहित होने वाला प्रेम इतना महान था कि लोग कठिनाई से उनको छोड़ते थे।

जनवरी सन् 1914 में एक दिन संध्या समय बाबाजान बात करने की मौज में थीं और मेहेरवान रोज की अपेक्षा अधिक समय तक उनके पास

ठहरा रहा। उसने उनके हाथ चूमे और नम्रतापूर्वक उनके सामने खड़ा हो गया। बाबाजान की गम्भीर चितवन उसके ऊपर जमी थी। उन्होंने अपनी अँगुली से उसकी ओर संकेत करते हुए कहा, "मेरा यह बच्चा दुनियाँ में एक महान सनसनी पैदा करेगा और मानवता का भारी उपकार करेगा।" मेहेरवान कुछ और क्षणों तक उनके सामने आदरपूर्वक खड़ा रहा, और फिर अनिच्छापूर्वक घर चला गया। उस समय लगभग आधी रात का समय था। वह घर जाते ही शैय्या पर लेट गया। कुछ मिनटों के भीतर ही उसने अपने शरीर में असाधारण रोमांचों का अनुभव करना प्रारम्भ किया मानो उसको भारी ताकत के बिजली के झटके लग रहे हों। और जब वेदना से मिला हुआ अकथनीय आनन्द ज्यादा प्रचण्ड हुआ तो उसको कुछ भय मालूम पड़ा। इस अत्यन्त हर्ष के कुछ घण्टों के उपरान्त वह समस्त भौतिक चेतना से परे हो गया।

मेहेरवान को इस दशा में सबसे पहले उसकी माता ने देखा, जिन्होंने उसको सुबह शैय्या पर पूरे खुले हुए शून्य (Vacant) नेत्रों के साथ लेटा हुआ पाया। उसको बहुत ज्यादा बीमार समझकर माता ने उसको फिर से लिटा दिया। तीन दिन तक वह इसी हालत में रहा। यद्यपि उसकी आँखें खुली थीं, फिर भी वह कुछ नहीं देखता था। चौथे दिन उसको अपने शरीर की धुँधली चेतना आ जाने के कारण उसने थोड़ा इधर उधर चलना फिरना प्रारम्भ किया। इस आधी समाधि जैसी अवस्था में वह लगभग 9 महीने तक रहा। उसको अपने कर्मों का ज्ञान नहीं था और जो कुछ वह करता था वह उसके चेतन मन की प्रेरणा के प्रत्युत्तर में नहीं होता था। उसको भौतिक जगत की बिल्कुल चेतना न थी। वह न कुछ खाता था न पीता था, और कोई कार्य प्रारम्भ कर देने पर वह उसको एक ही समय घन्टों तक करता रहता था। एक बार इस अवधि में वह खंडवा गया, और वहाँ पारसी शान्ति–स्तूप के पीछे तीन दिन तक पड़ा रहा। वह सोता नहीं था और उसको जो खाना दिया जाता था उसे वह कुत्तों को दे देता था अथवा उसको भिखारियों को देने के इरादे से अपनी जेबों में रख लेता था।

उसके माता पिता निराश थे। वे स्वाभाविक रूप से सोचते थे कि उसका दिमाग ख़राब हो गया था, और अपने प्यारे बेटे को साधारण

अवस्था में लाने के अपने प्रयत्नों में उन्होंने उसका हर सम्भव इलाज कराया। परन्तु कोई भी इलाज कारगर न हुआ, और न मेहेरवान को किसी इलाज का होश था। उसे डाक्टरों का ज्ञान न था और न उसकी चमड़ी में छेदी गई सुइयों तक ने उसको डाक्टरों का ज्ञान कराया और न उसके दिमाग़ में कोई संवेदना पैदा की।

10 माह के बाद नवम्बर 1914 ई. में उसको हल्की भौतिक चेतना प्राप्त हुई और तब उसने, जैसा कि उसने बाद में कहा था, एक अन्तर्ज्ञान से सम्पन्न स्वयंचालित यन्त्र की तरह व्यापार करना प्रारम्भ किया। उसकी आँखों की शून्यता समाप्त हो गई; उनमें जीवन आ गया, और उसने फिर से नियमित रूप से भोजन करना प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि वह बहुत कम मात्रा में भोजन करता था। इस आंशिक भौतिक चेतना के लौटने के एक माह बाद एक मित्र बेहरामजी ईरानी नामक धनहीन नवयुवक को मेहेरवान से मिलाने के लिए लाया। वह नवागन्तुक तत्काल ही मेहेरवान का भक्त बन गया और बाद में उसका एक घनिष्ठतम शिष्य हो गया। मेहेरवान ने उसको फ़ारसी पढ़ाने का प्रस्ताव रखा। इससे उसके माँ बाप अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि यह उसके अधिक साधारण व्यापार करने का ठोस प्रमाण था। इस क्रिया को तेज करने के लिए वे लोग उसके पढ़ाने के लिए और ज्यादा शिष्य ले आए परन्तु उसने उनको स्वीकार करने से इनकार कर दिया। फिर भी उसने बेहरामजी को पढ़ाना ज़ारी रक्खा जिसकी प्रगति प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती थी, यद्यपि उस समय मेहेरवान को बहुत साधारण चेतना थी। वह उसको अपने सहजज्ञान से पढ़ाता था, अपने बौद्धिक ज्ञान से नहीं।

यह हल्की चेतना प्राप्त होने पर मेहेरवान को इस आवश्यकता का अधिकाधिक ज्ञान हुआ कि कोई ऐसा व्यक्ति ढूँढा जाय जो उसे पुनः पूर्ण सन्तुलन प्राप्त कराने में उसकी सहायता करे। वह अन्तर्ज्ञान द्वारा यह जानता था कि भौतिक क्षेत्र में उसका सन्तुलन कराना बाबाजान का कार्य

नहीं था, जिन्होंने उसको सांसारिक माया से मुक्त किया था। वह जानता था कि इसके लिए उसको दूसरा सद्‌गुरु ढूँढ़ना पड़ेगा।

आध्यात्मिक देवदूत–मण्डल जो सद्‌गुरु कहलाता हैं, एक पूर्णतया अखण्ड समुदाय होता है, जो ईश्वर चेतना में एकरूप होकर कार्य करता है, और आन्तरिक रूप से एक दूसरे को जानता हैं। उनमें से हरएक के करने के लिए एक अलग तथा अद्वितीय नियत कर्त्तव्य होता है, इसलिए वे एक दूसरे के कार्यक्षेत्र को कभी नहीं लाँघते। यद्यपि वे अपार बुद्धिमत्ता तथा ज्ञान से सम्पन्न होते हैं और इसलिए अपनी इच्छानुसार किसी भी कार्य को करने में समर्थ होते हैं, फिर भी उनका लौकिक उद्देश्य अत्यन्त विशेष क्रियाओं में बँटा होता है। सद्‌गुरुओं में यह विशेषता होती है कि अपने द्वारा की जाने वाली हर बात में वे प्रयास की अधिक से अधिक मितव्ययता प्रगट करते हैं।

जिस सद्‌गुरु को मेहेरवान के लिए पूर्ण व्यापार की प्रक्रिया पूरी करने का भाग्य प्राप्त था वह उपासनी महाराज थे। उपासनी महाराज से उसका प्रथम मिलाप ऐसे सद्‌गुरुओं की विचित्र रीतियों को प्रदर्शित करता है। ऊपर से उनके अनेक कार्य विचित्र रूप से असंगत प्रतीत होते हैं–और भद्दे तक प्रतीत होते हैं–फिर भी अधिक गहराई से उनका विश्लेषण करने पर उनका अन्तर्निहित अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

जिस समय मेहेरवान पहली बार उपासनी महाराज से मिलने के लिए उनके निकट पहुँचा, तो सद्‌गुरु उपासनी महाराज ने पत्थर का एक टुकड़ा उठाया और उसको मेहेरवान के ऊपर फेंक कर मारा। उन्होंने मेहेरवान को भौतिक जगत के प्रति पुनः जागृत करने के प्रयोजन से यह पत्थर मारा था। उस पत्थर के लगने से मेहेरवान का मस्तक ठीक उसी जगह छिल गया जहाँ कि बाबाजान ने उसका चुम्बन किया था, और बाबा ने वर्णन किया है कि उस क्षण से उनका मानसिक सन्तुलन फिर से आना प्रारम्भ हो गया और वह धीरे धीरे उस असाधारण धरातल से नीचे उतर कर, जिस पर वह बाबाजान द्वारा प्रवेश कराने के समय से व्यापार करते रहे थे, सांसारिक भूमिका पर सन्तुलित चेतना में आ गए। बाबाजान का चुम्बन प्रतीक के रूप में 'ईश्वर की श्वास' रहा होगा जिसने मेहेरवान को ऊँचा

उठाकर ईश्वर का साक्षात्कार करा दिया; उपासनी महाराज का पत्थर प्रतीक रूप में पृथ्वी का टुकड़ा रहा होगा जो उसको नीचे उतारकर उस क्षेत्र में ले आया जहाँ उसको पृथ्वी के बच्चों के बीच में कार्य करना था।

उपासनी महाराज से सम्पर्क स्थापित करने के प्रारम्भ में मेहेरवान उनके पास एक समय में केवल एक या दो दिन के लिए जाया करते थे, और बीच का समय अपने परिवार के साथ व्यतीत किया करते थे। उसके माता पिता अब भी उस महान आध्यात्मिक रूपान्तर को, जो उनके बेटे की चेतना में हो रहा था, समझने के अधिकारी न होने के कारण उसको अब भी पागल दिमाग वाला समझते थे। पत्थरों पर अपने मस्तक को पटककर, ज़ोर लगाकर भौतिक चेतना में वापस आने के लिये वह घण्टों शान्ति–स्तूप के पास बैठा रहता था। फिर वह चोटों को अपने घर के लोगों से छिपाये रखने के लिये अपने सिर को रूमाल या पगड़ी से लपेट लेता था। बाद में बाबा ने अपने शिष्य वर्ग को बताया कि पत्थरों के ऊपर अपना सिर पीटने से उनको जो पीड़ा होती थी उससे कुछ अन्शों में उनको उस महान आध्यात्मिक वेदना से राहत मिल जाती थी जिसमें वह उस समय निमग्न थे।

जैसे जैसे मेहेरवान की चेतना अधिक और अधिक सन्तुलित होती जाती थी, वैसे वैसे उसकी माता की अपने बेटे को साधारण जिन्दगी के वातावरण में पुनः स्थापित देखने की चिन्ता और भी अधिक बढ़ती जाती थी। उन्होंने मेहेरवान को कोई पेशा अथवा व्यवसाय करने को कहा, इसलिए माता को प्रसन्न करने के लिए तथा उनकी चिन्ता को शान्त करने के लिए उन्होंने कितने ही व्यवसायों में अपना हाथ आजमाया। इसी अवधि में ही वह कुछ समय के लिए एक ड्रामा कम्पनी में मैनेजर हो गए। सांसारिक जीवन में इन साहसिक यात्राओं के प्रति मेहेरवान की कैसी प्रतिक्रिया थी वह उनके एक मित्र को भेजे गए पत्र में संक्षेप में दी हुई है। उस पत्र में उन्होंने एक ऐसे जीवन के प्रति अपनी अरुचि प्रगट की थी जो उन्हें अपनी प्रकृति के विरुद्ध भोजन करने को बाध्य करता था और जिसमें उन्हें बंदी बनाने वाले कपड़े पहनना आवश्यक थे। और, यह दोनों बातें उनको हृदय से नापसन्द थीं।

जब उस ड्रामा कम्पनी का मालिक मर गया, तो मेहेरवान खुशी के साथ पूना लौट आए। यहाँ उनको अपने पिता की चाय की दूकान का प्रबन्ध सौंप दिया गया। परन्तु जिस बालक के मस्तक का स्पर्श दो सद्गुरु कर चुके थे उसके प्रारब्ध में एक चाय की दुकान के मैनेजर के रूप में विख्यात होना नहीं था। उनका मन ऊँचे विषयों में इतना अधिक निमग्न रहता था कि उन्हें धूर्त ग्राहकों की ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं था जो उनको धोखा देने में प्रसन्न होते थे।

फिर भी चाय की दुकान से एक लाभप्रद प्रयोजन पूरा हुआ, और शायद उसी कार्य के लिए वह थी। उस दूकान के द्वारा उन्होंने एक मित्र मण्डली बनाना प्रारम्भ किया, जो उनकी सनकों के बावजूद उनकी ओर गम्भीर रूप से आकर्षित महसूस करते थे। इस छोटी मण्डली के एकत्रित होने के लिए मेहेरवान ने दूकान के पास एक छोटा सा कमरा किराये पर ले लिया और उसको बाबाजान व उपासनी महाराज तथा अन्य सन्तों व सद्गुरुओं के चित्रों से सजाया। इस कमरे में रोज सन्ध्या समय वह मण्डली आध्यात्मिक नियम किया करती थी, और सप्ताह में दो बार 4 बजे सुबह किया करती थी—जिस समय बाबा को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था, और बाबा ने अपने शिष्यों को बताया है कि इसी बेला में उनको भी ईश्वर की चेतना प्राप्त होगी।

जिस समय चाय की दुकान का दायित्व मेहेरवान के ऊपर था तो उनके काम में बोतलों व तश्तरियों को धोने तथा फ़र्श में झाड़ू लगाने के कार्य भी शामिल थे। आश्चर्य की बात है कि काम के इस पहलू से उनकी शान्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। इसके विपरीत वे अधिक से अधिक नीच कर्मों को करने में आनन्द लेते हुए प्रतीत होते थे। बाद में आने वाले वर्षों में उनकी यही प्रवृत्ति दिखाई दी जबकि वह प्रथम आश्रम के दिनों में घरेलू कामों में सहायता किया करते थे, और तत्पश्चात् जब वह छोटी उम्र के बच्चों के लिए खोले गए अपने स्कूल में उनके सण्डास साफ किया करते थे।

मेहेरवान को सबसे नीचे धरातल के जीवन को सांकेतिक रूप से अनुभव करने की प्रेरणा प्रतीत होती थी जिस प्रकार से उन्होंने सर्वोच्च जीवन का अनुभव यथार्थ में कर लिया था।

इसका दूसरा मर्मभेदी उदाहरण बेहरामजी द्वारा वर्णन किया गया है जिसने उस घटना के विषय में बताया है जबकि मेहेरवान ने एक भंगी से पाखाने से भरी टोकरी ले ली और उसको लेकर वह मकान के सबसे ऊपरी खण्ड में चले गए। वहाँ वह टोकरी को अपने सिर पर लिए हुए 36 घण्टों तक रहे। जब वह बाहर आए तो वह सिर से पैर तक टट्टी से ढके हुए थे और पूर्णतया थक गए थे। उनके भक्त मित्र बेहरामजी ने उनके शरीर का वह पाखाना साफ किया।

जौलाई सन् 1921 ई. में मेहेरवान अपने सद्गुरु उपासनी महाराज के केन्द्र स्थान साकोरी को चले गए। यहाँ वह प्रतिदिन कई घण्टे मौन रहकर व्यतीत करते थे; और केवल कभी कभी गाना गाते हुए मौन तोड़ते थे। दिसम्बर के अन्त तक वह चेतना की पूर्ण सन्तुलित अवस्था में फिर से आ गए। इस महत्त्वपूर्ण घटना को सूचित करते हुए उपासनी महाराज ने अपने शिष्यों से कहा, ''मैंने अपनी 'कुञ्जी' मेहेरवान को दे दी है। अब वह मेरी शक्ति का भण्डार है।''

और, तदुपरान्त उन्होंने अपने शिष्यों तथा भक्तों की उपस्थिति में एक बार फिर से कहा था— ''मेहेरवान इस युग का प्रमुख सद्गुरु है। वह दुनियाँ को हिला देगा और उसके कार्य से पूरी मानवता लाभ प्राप्त करेगी।''

बाबा के मित्र बेहरामजी से उन्होंने कहा, ''मेहेरवान सद्गुरु हैं। तुमको उसकी हर आज्ञा का पालन करना चाहिए।''

इस प्रकार मेहेरवान 28 वर्ष की आयु में सद्गुरु हो गए। उस समय से वह मेहेरबाबा कहे जाने लगे जिसका अर्थ है दयालु पिता।

सन् 1922 ई. के प्रारम्भ में जब बाबा ने साकोरी को छोड़ा तो उपासनी महाराज ने अपने कुछ अनुयायियों को उन्हें सौंप दिया, जिनका संरक्षण वह उस समय तक के लिए कर रहे थे जब तक कि उनके प्रारब्ध द्वारा निर्धारित सद्गुरु मेहेरबाबा उनको लेने के लिए तैयार हो रहे थे। उपासनी महाराज ने उन शिष्यों को फिर से चेतावनी दी कि वे सदैव बाबा की आज्ञा का पालन करें जो अब उनको ईश्वर का साक्षात्कार कराने में सहायता देने की शक्ति रखते थे जैसे कि वह खुद थे।

बाबा ने हमें बताया है कि अपने भौतिक शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने से ईश्वर–साक्षात्कार की उनकी ऊँची चेतना की अवस्था किसी प्रकार से कम नहीं हुई है। बाबाजान के माध्यम से वह अपने ईश्वरत्व के प्रति जागृत हो गए थे। इस ऊँची अवस्था में उनको इस जीवन के तथा पिछले अवतरण के अपने इस प्रारब्ध का ज्ञान हो गया कि उनको ईश्वरीय नेता के रूप में सेवा करना है, जो जन–चेतना में वह तीव्रता लाता है जो मानवता की पुनः पुनः होने वाली महानतम आवश्यकता है। बाबाजान ने उनके अन्तर में उनके ईश्वरत्व के स्रोत को खोल दिया था परन्तु मानवता के उपकार के हेतु इस अतिश्रेष्ठ ज्ञान का प्रयोग कर सकने के लिए उनकी चेतना का भौतिक क्षेत्र में सन्तुलन, ईश्वर–ज्ञान का ह्रास हुए बगैर, पुनः होना आवश्यक था।

तदनुसार दूसरे सद्‌गुरु उपासनी महाराज के प्रारब्ध में बाबा के जीवन में प्रवेश करना और उनको यह सेवा करने के लिए मध्यस्थ बनना था।

बाबा ने इसको संक्षेप में प्रगट किया है, ''बाबाजान ने मुझको ईश्वर दिया; उपासनी महाराज ने ज्ञान दिया।''

इस प्रकार उनमें दो महान धर्मों की धारायें मिली थीं–बाबाजान के द्वारा इस्लाम धर्म, उपासनी महाराज के द्वारा हिन्दू धर्म, और इनके द्वारा उनमें ईश्वरीय मातृत्व तथा पितृत्व के पहलुओं का मेल भी प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त अपने भौतिक जन्म के द्वारा उन्होंने जुरथस्त्र की महान परम्परा विरासत में पाई थी, जबकि ईसाई स्कूलों में शिक्षा पाने से वह ईसामसीह के उपदेशों व सिद्धान्तों से परिचित हो गए थे। इस प्रकार यह सब एक सार्वभौमिक विरासत थी जो उनको विस्तृत विश्वव्यापी कार्य के लिए प्रदान की गई थी।

चूँकि यह गाथा उस पुरुष के सम्बन्ध में है जिसकी चेतना की अवस्था ईश्वर के अवतार की है, और चूँकि पश्चिमी देशों के हम लोगों में

से थोड़े लोग ही इस परम सिद्धि के विषय में ज्यादा जानते हैं, इसलिये यह उचित प्रतीत होता है कि इस विषय में खुद बाबा के उपदेश इस जीवन–चरित्र में सम्मिलित किए जायँ। वह हमको बतलाते हैं कि यद्यपि ईश्वर–साक्षात्कार मनुष्य का परम लक्ष्य है, फिर भी किसी भी युग में इसको बहुत कम लोग प्राप्त कर पाते हैं। और, उन लोगों में से जो इस परम सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं, **सद्‌गुरु** सबसे ऊँचा होता है। **सद्‌गुरु** वह पुरुष है जो मायावी चेतना की छः भूमिकाओं (Planes) को पार कर गया है– जिनमें ईश्वर से अलग होने का ज्ञान निहित होता है– और जो सातवीं भूमिका में प्रवेश कर गया है जहाँ ईश्वर से अन्तिम तथा स्थायी मिलन का अनुभव प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसने आत्मा की इस परम श्रेष्ठ दशा का सन्तुलन अपनी भौतिक जगत की चेतना से कर लिया है।

आध्यात्मिक यात्रा का यह अन्तिम लक्ष्य–ईश्वर से मिलन– दो श्रेणी की अन्य ईश्वर प्राप्त आत्माओं को भी प्राप्त होता है। वे हैं **मुक्त** तथा **मजजूब।** परन्तु, वे भौतिक शरीर के ऊपर वह प्रभुता नहीं रखते जो **सद्‌गुरु** रखता है। **मुक्त** आत्मायें मुक्ति के क्षण ही स्थूल शरीर को त्याग देती हैं, और सान्सारिक क्षेत्र को छोड़ देती हैं। **मजजूब** मानव शरीर को धारण किए रहते हैं और इस संसार में शरीर की **चेतना** पुनः प्राप्त किए बिना कार्य करना ज़ारी रखते हैं। किन्तु केवल थोड़ी आत्मायें, अर्थात् **सद्‌गुरु**, ईश्वर होने की अपनी अखण्ड चेतना को खोये बग़ैर भौतिक चेतना को फिर से प्राप्त कर लेती हैं। सद्‌गुरु ईश्वरीय पर्वत–शिखर से उतरकर भूमण्डल की घाटी में वापिस आता है। अपने **ईश्वरत्व** को सिद्ध कर लेने के पश्चात् वह नाशवान् मानव के धरातल पर उतर कर उन सब लोगों की सहायता करने के लिए आता है जो महान चढ़ाई पर चढ़ने के लिए आध्यात्मिक रूप से परिपक्व होते हैं।

ऐसे छप्पन सद्‌गुरु हर समय अवतरित रहते हैं। हमारे युग में वे पूर्वी भूभाग में रहते हैं जहाँ का आध्यात्मिकतापूर्ण वातावरण उनके गूढ़ कार्य के लिए अधिक उपयुक्त है। यद्यपि ये चेतना में एक होते हैं, फिर भी उनके कर्तव्य भिन्न होते हैं। इन 'छप्पन' में से केवल पाँच सद्‌गुरुओं को जनता

की मान्यता प्राप्त होती है। शेष को दुनियाँ नहीं जान पाती। वे या तो तपस्वियों की भाँति पहाड़ की एकान्त गुफाओं में अथवा वनों में रहते हैं, अथवा अपना आन्तरिक कार्य गुप्त रूप से करते हुए साधारण मनुष्यों की भाँति रहते हैं, और उनके घनिष्टतम संगी लोग भी उनके ईश्वर–प्राप्त होने का सन्देह नहीं कर पाते। वे पाँच, जो प्रधान **परिषद** के रूप में कार्य करते हैं, पृथ्वी पर मानव के प्रारब्ध को निश्चित करते हैं। केवल वही निर्णय जो सर्वसम्मति से होते हैं कार्रवाई के लिए मुक्त किए जाते हैं तथा कार्यरूप में रखने के लिये सौंपे जाते हैं। इस महामहिम परिषद् का शासन–प्रमुख 'शहंशाह' कहलाता है।

दुर्लभ अवकाशों में–विश्वव्यापी तीक्ष्ण संकटकालों में–मानव जाति अवतारी कालचक्रों से होकर गुजरती है। ऐसा ही समय ईसामसीह तथा बुद्ध का था, और बहुतेरे लोगों का विश्वास है कि मानवता ने अब ऐसे ही दूसरे कालचक्र में प्रवेश किया है। अवतारी कालों में **परिषद** का **प्रमुख सद्गुरु** दुनियाँ में **उद्धारक** अथवा **अवतार** के रूप में प्रसिद्ध होता है।

इस उच्चतम कार्य के सिवाय, **सद्गुरुत्व** की श्रेणियाँ समानरूप से पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए खुला होती हैं। अवतार सदैव पुरुष शरीर में अवतरित होता है। वह वही 'सनातन पुरुष' है जो अपने ईश्वरत्व की पूर्ण चेतना प्राप्त करने वाला सबसे पहिला मानव था।

अवतारी काल चक्रों के बीच की अवधियों में **एक अवतार** अपने दावाधिकारों को अखण्डित रूप से ज़ारी रखता है, किन्तु जो स्थितियाँ वह पृथ्वी पर धारण करता है वे कम **विश्वव्यापी** आध्यात्मिक सार्थकता की होती हैं, यद्यपि उसका नियत कर्त्तव्य सदैव संघर्ष करती हुई मानवता की हितकारी सहायता करने का होता है। कुछ ऐसे समय होते हैं– जब सन्सार की परिस्थितियाँ इसका तकाज़ा करती हैं– कि वह एक ही समय में अनेक शरीर धारण करता है। मेधावी कलाकार के रूप में वह मानव की उच्चतर चेतना को सजीव करता है; कविता के आचार्य के रूप में वह विश्वरूपी गुलाब (Cosmic rose) की एक और पंखुड़ी मनुष्य के लिए खोलता है; एक स्फूर्तिपूर्ण वैज्ञानिक के रूप में वह मानवता के लिए प्रकृति के गुप्त भेदों को उघारता है; धर्म अथवा राज्य के महान नेता के रूप में वह मानवजाति को ऊँचा उठाकर उसको जीवन की **अधिक विस्तृत कल्पना** प्रदान करता है; अथवा **मनुष्य की पृथ्वी** पर विचरने वाले नामरहित मनुष्य के रूप में वह **हतोत्साहित लोगों को ढाढ़स** देता है और मनुष्य के बोझों को हल्का करता है। **कोई भी पीढ़ी** ऐसी नहीं होती जिसमें उसका साकार रूप किसी न किसी शक्ल में न रहता हो, यद्यपि उसका सत्य स्वरूप बहुधा छिपा रहता है–पृथ्वी पर उसकी मौजूदगी मानवजाति को **अज्ञात रहती है।**

जब हम भारतवर्ष में थे, तो बाबा के एक प्रमुख शिष्य रमजू ने हमसे अपने एक निजी अनुभव का वर्णन किया, जो उस स्थान की सर्वोच्चता को प्रमाणित करता है जो बाबा को आध्यात्मिक देवदूत मण्डल में प्राप्त है।

बाबा ने रमजू को भारतवर्ष के एक नगर में एक सन्त से सम्पर्क करने के लिए भेजा था। जब वह उस स्थान में पहुँचा तो उसे मालूम हुआ कि वह सन्त, जिसकी खोज में वह था, ठीक उसी दिन सुबह गायब हो गया था और यह किसी को न मालूम था कि वह कब वापिस आवेगा। परन्तु, चूँकि रमजू को उससे मिलने की हिदायत दी गई थी इसलिये उसने उस सन्त के जल्द ही वहाँ फिर आ जाने की आशा में वहाँ कुछ समय तक उसकी प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। दो दिन के अधिकांश समय तक रमजू ने मुख्य सड़क के किनारे पर चौकसी रक्खी। जैसे वह पास से निकलने वाले लोगों को ध्यान से देख रहा था कि एक फूहड़ बुढ़िया ने अजीब तरह से बड़बड़ाते हुए उसके सामने से कई बार इधर से उधर निकलकर उसके ध्यान को अपनी ओर खींचा। उसको किसी भी बाहरी चीज अथवा मनुष्य का बिल्कुल भान प्रतीत न होता था, और अदीक्षित लोगों ने तो उसको पागल समझा होता। पास से निकलने वाले एक मनुष्य से पूछने पर रमजू को ज्ञात हुआ कि वह महिला पास पड़ोस में एक ईश्वर–प्राप्त आत्मा की तरह पूजी जाती थी, जो अति–चेतन भूमिका पर कार्य करती थी।

अचानक वह बुढ़िया रमजू के सामने रुक गई और अपने काले तथा बेधने वाले नेत्रों की चितवन उसके ऊपर डाली। उस समय उसकी तल्लीनता तथा अन्यमनस्कता के सारे चिन्ह गायब हो गए थे।

उसने पूछा, ''तुम्हारे सद्‌गुरु का क्या नाम है ?''

जब रमजू ने उत्तर दिया, ''मेहेरबाबा'', तो वह अपनी गहरी एकाग्रता की पूरी शक्ति रमजू के अन्तःप्राण में डालती हुई प्रतीत हुई, और फिर जोर से कह उठी :

''आह, वह हम सबके शहंशाह हैं !''

फिर कुछ कहे बगैर वह अपना मुँह फेर कर चल दी और स्थानीय बाजार की भूलभुलैयों में गायब हो गई।

बाद में रमजू को ज्ञात हुआ कि सद्‌गुरुओं द्वारा अपने कार्य में इस्तेमाल किए गए रहस्यपूर्ण और बहुधा पेंचदार भागों को प्रमाणित करते हुए, बाबा ने उसको वास्तव में इसी महिला सन्त से बाहरी सम्पर्क करने के लिए भेजा था, न कि उस मनुष्य से जो ऐसे असुविधाजनक रूप से गायब हो गया था।

बाबा अपने शिष्यों से जो अक्षरशः आज्ञापालन चाहते हैं वह हम पश्चिमी देशों के लोगों को विचित्र और कदाचित् निरंकुश प्रतीत हो सकता है। परन्तु, माया की आत्मिक तथा मानसिक भूमिकाओं के अन्धकूपों का गम्भीरतर ज्ञान होने पर, जिनसे होकर शिष्य को अवश्य गुजरना पड़ता है, सद्‌गुरु की यह प्रक्रिया दयापूर्ण समझ में आती है। उन्नत चेतना की पहली तीन भूमिकायें शिष्य को महान आत्मिक शक्तियाँ प्रदान करती हैं जिनमें आन्तरिक बोध जागृत होते हैं और उनको उपयोग में लाया जाता है; जबकि चौथी और पाँचवी भूमिकायें उन लोगों को, जो इन तक पहुँच जाते हैं, विज्ञानमय शक्तियाँ प्रदान करती हैं, जैसे मुर्दा को ज़िन्दा करना अथवा अपरिमित समय तक शरीर धारण किए रहना। जब तक मनुष्य निजी स्वार्थ के तमाम मैल से पूर्णतया मुक्त नहीं हो जाता, ये भूमिकायें

आध्यात्मिक तीर्थयात्री के लिए एक भयानक खतरा होती हैं। इसी खतरे के कारण ही सद्‌गुरु अपने शिष्यों को उनकी आँखें बन्द किए हुए उनके दीक्षा शिक्षण से होकर ले जाते हैं। आध्यात्मिक अन्तर्ज्ञान की छठवीं भूमिका, अथवा ऋषि–पद, पर अहंकारी व्यापार का खतरा समाप्त हो जाता है, किन्तु अब भी ईश्वर से अलग होने का बोध बना रहता है; इसलिए यह अब भी माया के प्रदेश में होता है। केवल सातवीं अथवा **एकपन** की भूमिका पर आत्मा समस्त द्वैत से तथा सीमित करने वाले संस्कारों के बोध से मुक्त होती है—चाहे वे संस्कार ऊँचे दर्जे के क्यों न हों। यहाँ, आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर, व्यक्तिगत आत्मा पूर्णतया अपार परमात्मा में विलीन हो जाती है।

बाबा हमको विश्वास दिलाते हैं कि पूर्ण ईश्वर–ज्ञान की यह अवस्था जो सद्‌गुरुओं को प्राप्त होती है, सब मानव प्राणियों के लिए सम्भव है। वास्तव में यह रंग, जाति, धर्म अथवा राष्ट्रीयता के भेदभाव के बिना हर आत्मा का जन्म सिद्ध अधिकार है। एक प्रश्नकर्ता को बाबा ने एक बार उत्तर दिया था– ''ईसामसीह ने आत्मवत् ईश्वर का अनुभव किया; तुमको **अपनेवत्** ईश्वर का साक्षात्कार करना है।'' फिर भी यह इतना कठिन कार्य है कि केवल जीवट वाले वास्तविक वीर ही इसको लम्बे तथा कठोर संघर्ष के बाद प्रापत कर सकते हैं।

न्यू टेस्टामेन्ट में **दी प्रोडिगल सन** (The Prodigal Son) की कथा में ईसामसीह ने आत्मा की इस महान साहसी यात्रा का वर्णन सरल तथा स्पष्ट रूप से किया है। परन्तु चूँकि हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं जिसमें बुद्धि ऐसे दृष्टान्तों के पीछे छिपे हुए तत्त्वज्ञान को जानने की माँग करती है, इसलिए बाबा ने हमारे सन्मुख ईश्वर तथा पुरुष की प्रकृति की गम्भीर व्याख्या की है।

ईश्वर, जो सार रूप में **एक** और अखण्ड होता है– उसके सर्वशक्तिमान, विधाता, व्यक्ति, तथा ईश्वर–पुरुष, चाररूप प्रतीत होते हैं। सर्वशक्तिमान

स्वरूप में ईश्वर **एक** है, दो का आधा एक होने के अर्थ में नहीं, किन्तु वह **एक** जो सदैव **एक** रहता है, बिना किसी दूसरे के। वह सदैव अपार था, अब अपार है और सदैव अपार रहेगा। वह **सत्यता** का **तटरहित महासागर** है। वह काल और देश, कारण तथा कार्य, से परे है। वह सहजज्ञान, बुद्धि तथा दिव्य स्फूर्ति से परे है। परन्तु इस अवस्था में ईश्वर अचेत है। **सर्वशक्तिमान** को यह **ज्ञान** नहीं है कि वह **सत्यता** का **तटरहित महासागर** है। उसकी मूल अवस्था गहरी नींद की अवस्था से मिलती है।

विधाता के रूप में ईश्वर वही **एक, अखण्डनीय** ईश्वर है, परन्तु वह केवल एक अर्थ में **जागृत** होता है– अर्थात्, उसको **सृष्टा** होने का ज्ञान होता है। फलतः यद्यपि वह **सत्यता** का **तटविहीन महासागर** है, तथापि **विधाता** के रूप में उसको इस बात का ज्ञान नहीं होता, इसलिए उसका सरोकार केवल मायावी जगत से रहता है जिसका वह सृजन करता है, पोषण करता है तथा संहार करता है। चूँकि उसको केवल **विधाता** होने की चेतना होती है, **और तटविहीन महासागर** होने की चेतना नहीं होती, इसलिए वह कारण और कार्य, काल और देश से सीमित होता है। उसकी उत्पादक इच्छा कारण है; उसकी **सृष्टि** कार्य है। विधाता के रूप में उसका कार्य समय–विस्तार से सीमित होता है जो एक **दैवी कालचक्र** (Divine Cycle) कहलाता है; उसके क्रिया–कलाप का फैलाव उसकी **सृष्टि** की देश–सीमाओं से सीमित होता है।

व्यक्ति के रूप में ईश्वर पुनः वही **परमात्मा** है, और विधाता की भाँति वह जागृत और अचेत दोनों होता है। उसको अपने **वास्तविक सत्व** का ज्ञान नहीं होता, और वह यह नहीं जानता कि वह **सत्यता** का **तटरहित महासागर** है, परन्तु उसको अपने सीमित अस्तित्व का ज्ञान होता है कि वह जीवधारियों के **सार्वभौम महासागर** में व्यक्तित्व की एक बूँद है। इसलिए मनुष्य वास्तव में **अपार परमात्मा** होते हुए भी, **विधाता** के समान अपार नहीं है वरन् **साक्षात्कार** में सीमित है। इस रूप में वह कारण और कार्य, काल और देश के नियमों के अधीन होता है और उनसे सीमित होता है। एक पृथक सत्त्व होने की उसकी चेतना का कारण उसके जीवन रूपी

कार्य में प्रकट होता है। मनुष्य रूप में उसके शरीरधारी जीवन की अवधि दैवी कालचक्र की अवधि के बराबर होती है, अथवा जब तक उसको अपने यथार्थ स्वरूप (Self) की पूर्ण चेतना नहीं हो जाती–अर्थात् जब तक उसको यह अनुभव नहीं हो जाता कि वह स्वयं **सर्वशक्तिमान परमात्मा** है। साकार पुरुष को जो शरीर व आत्मा का योग है, **सर्वशक्तिमान परमात्मा** होने की चेतना प्राप्त करने से पहिले अपना पृथक व्यक्तित्व अथवा जीवन त्यागना आवश्यक है। परन्तु जीवन के इस त्यागने का अर्थ साधारण मरना नहीं है। इसका अर्थ है सान्सारिक वासनाओं तथा आसक्तियों को त्यागना। ईश्वर–साक्षात्कार की एक आवश्यक पूर्व तैयारी के रूप में मनुष्य को समस्त भली और बुरी सान्सारिक वासनाओं से स्वतन्त्र हो जाना चाहिए। यह त्याग मनुष्य के व्यक्तित्व अथवा पृथक जीवन त्यागने के तुल्य है। फिर भी यह भौतिक चेतना के ह्रास मात्र से प्राप्त नहीं होता। शरीर में रहते हुए, वासनाओं को **चेतनतया** लाँघना आवश्यक है। जो कुछ मनुष्य को उसके जीवन के ईश्वरीय उद्‌गम से अलग करता है वह सब **जीवित** अवस्था में ही त्याग देना चाहिये अन्यथा, वह पूर्ण चेतना से **रहित** मनुष्य रहता है जैसा कि वह सदैव रहा है, और उसको अनेक मनुष्यों में से एक मनुष्य होने की चेतना होती है। शरीर, मन तथा सन्सार की वासनाओं का त्याग करना और साथ ही साथ अचेतन सत्ता–**सर्वशक्तिमान परमात्मा–** की चेतना स्थिर रखना महान लक्ष्य है। यह औसत दर्जे के मनुष्य के विचार में आने के लिए अत्यन्त कठिन है और सद्‌गुरु की आध यात्मिक सहायता के बिना इसको प्राप्त करना बिल्कुल असम्भव है।

साधारण गहरी नींद में हर मनुष्य के व्यक्तित्व का ह्रास हो जाता है, किन्तु चेतनरूप से नहीं। जब नींद समाप्त हो जाती है तो उसको चेतन जीवन में वापस आना पड़ता है। इसी कारण से साधारण भौतिक मृत्यु कोई मृत्यु नहीं है। वह केवल अधिक लम्बी गहरी नींद है। जब उसका कालचक्र व्यतीत हो जाता है, तो मनुष्य को फिर से जन्म लेना पड़ता है। साधारण मौत मनुष्य को सान्सारिक वासनाओं की लड़ी से मुक्त नहीं करती। इस मुक्ति को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को **अचेतन सत्ता** की पूर्ण चेतना होना आवश्यक है; पवित्र, अपार, लिंगभेद रहित **आत्मा** (Self) की

चेतना होना तथा शरीर, मन और जगत की चेतना का लोप होना। **शरीर में रहते हुए** मौत की अवस्था को प्राप्त करने से ही हम इसको प्राप्त कर सकते हैं।

ईश्वर तब जाग्रत होता है जब वह, **चेतन** मानव के रूप में **सृष्टा** तथा सृष्टि की भूलभुलैयाँ को पार करने में सफल होता है, और अपने को **सर्वशक्तिमान परमात्मावत्** जान जाता है। तब उसको **सत्यता का एक अपार महासागर** होने की चेतना हो जाती है, जो वह स्वभावतः सदैव रहा है और सदैव रहेगा। अब उसके लिए सृष्टा तथा सृष्टि की कल्पनाओं का अस्तित्व नहीं रहता। सीमित चेतना की उसकी अवस्था समाप्त हो जाती है। वह अपने को **सर्वशक्तिमान परमात्मावत्** जानता है– **एक अपार महासागरवत्** जिसका अस्तित्व लगातार, बिना किसी परिवर्तन अथवा खण्डन के, सदैव रहा है और सदैव ऐसा ही रहेगा। ऐसा **एक**–अर्थात् **ईश्वर–पुरुष** जानता है कि यद्यपि वह चेतना में पत्थरों, खनिज पदार्थों, वनस्पतियों, पेड़ों, चिड़ियों, पशुओं तथा मानव प्राणियों में मौजूद था, तथापि वह इन सब विकासमयी रूपों के शुरू से अन्त तक सतत् तथा अखण्डित रूप से वही रहा था जो वह अब है–**एक** तथा एकमात्र **सत्यता।**

तब **ईश्वर–पुरुष** उसी **सर्वशक्तिमान परमात्मा** तथा ज्ञान व चेतना के **योग** के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह **ज्ञान, ज्ञाता** तथा **ज्ञात** है। वह **प्रेम, प्रेमी** तथा **प्रियतम** है। ईश्वर–पुरुष जानता है कि वह हर मनुष्य में विद्यमान है और हर मनुष्य उसके अन्दर है। वह इस सबका **अनुभव करता है,** जबकि **अजागृत** मनुष्य यह अनुभव नहीं करता। दोनों **सत्यता** के उसी महासागर में हैं, फिर भी दोनों में कितना भारी अन्तर है ! **ईश्वर–पुरुष** जानता है कि वह सब कुछ है, अस्तित्व की सम्पूर्णता है; वह सदैव 'सत्यता' का वही एक 'महासागर' था और सदैव वही रहेगा। अजागृत मनुष्य, यद्यपि वह वास्तव में वही सर्व–समावेशक ''परमात्मा'' है, यह नहीं जानता कि वह कहाँ से आया था और न यह जानता है कि वह कहाँ जा रहा है।

एकमात्र 'परमात्मा' ही 'सर्वशक्तिमान', 'विधाता', 'मनुष्य' तथा 'ईश्वर–पुरुष' की विभिन्न भूमिकायें अदा करता है। 'सर्वशक्तिमान' की

अवस्था में 'परमात्मा' एक, अखण्डनीय तथा अपार है, जो अचेतन रूप से अनन्त रूप से अनन्त शक्तियों, नित्य अस्तित्व, अथाह आनन्द तथा पूर्ण विश्वव्यापी ज्ञान का स्वामी और उनको धारण करने वाला है यद्यपि उसको उनका 'ज्ञान' नहीं रहता। 'विधाता' के रूप में उसमें वही अचेतन गुण होते हैं, परन्तु उसको 'विधाता' होने का ज्ञान हो जाता है और वह अपने को 'सृष्टि' को रचता हुआ, उसका पोषण करता हुआ तथा उसका संहार करता हुआ अनुभव करता है।' मनुष्य रूप में वह अब भी इतनी क्षमताओं का स्वामी होता है, परन्तु वह अपने को सान्सारिक वासनाओं तक ही सीमित कर देता है और इस प्रकार अपने को सीमित अनुभव करता है–अपने स्थूल शरीर में अपने को घिरा हुआ अनुभव करता है। केवल ईश्वर–पुरुष के रूप में वह अपनी अनन्त तथा सीमारहित समस्त क्षमताओं का अनुभव तथा साक्षात्कार पूर्ण **चेतना** सहित करता है।

इसके पहिले कि मनुष्य अपने सीमित व्यक्तित्व को खोकर ईश्वर–पुरुष बन सके यह बहुत आवश्यक है कि वह अखण्डनीय, अपार परमात्मा के लिए जो विचार तथा तर्क से परे है, 'प्रेम'–'ईश्वरीय प्रेम' का अनुभव करे। चूँकि 'परमात्मा' मनुष्य द्वारा समझी गई सब बातों से परे है, जिनमें बुद्धि भी सम्मिलित है, इसलिए बुद्धि उसको नहीं पा सकती। माया के मैल तथा वासनाओं की अड़चनों से स्वतन्त्र केवल 'ईश्वरीय प्रेम' ही उसका साक्षात्कार कर सकता है।

इस 'ईश्वरीय प्रेम' को मानवता में सामूहिक रूप से जागृत करना सदैव 'अवतार' का कर्त्तव्य होता है। अपने ईश्वरत्त्व के कारण उसको मनुष्य की आवश्यकता का ज्ञान होने से, और उस आवश्यकता को पूरा करने की शक्ति रखने से, वह इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु आवश्यक कष्ट देने में न अपने को छोड़ता है और न दूसरों को ही। हर प्राप्ति के लिए कुछ मूल्य चुकाना पड़ता है, और 'परम प्राप्ति' इस सिद्धान्त से बाहर नहीं है।

चेतना की जागृति के लिए अचेतन मन में विद्यमान 'अच्छी' और 'बुरी' 'सब' शक्तियों से मुक्त होना आवश्यक है। प्राचीन स्थापित परम्पराओं तथा स्वीकृत धारणाओं का अवश्य नाश होना चाहिए, जिन्होंने मनुष्य की आत्मा को युगों से बन्धन में कर रक्खा है। नवीन सामूहिक कल्पनाओं तथा मूल्य–निर्धारणों की उत्पत्ति होना चाहिए। जीवन यापन करना, विकास करना, परिपक्व होना, बच्चों का खेल नहीं है, और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के प्रयत्न में मनुष्य अपने से अथवा दूसरों से संग्राम करता हुआ अनुभव कर सकता है। सद्गुरु इस भीतरी तथा बाहरी संघर्ष को जानबूझ कर पनपाता है, किन्तु वह ऐसा परम दया की भावना से करता है, क्योंकि वह जानता है कि हमारे अन्तस्तल में गहरी जड़ पकड़े हुए ठसाठस भरी हुई प्रवृत्तियों व इच्छाओं को पूर्णतया निर्मल किए बगैर आध्यात्मिक पुनर्जन्म संभव नहीं है। वह जानता है कि औसत मनुष्य का मनोवैज्ञानिक दंश उसे अपने संगठन की नकारात्मक तथा धीरे धीरे नाश करने वाली प्रवृत्तियों का सामना करने से पीछे खींच लेती हैं, और यह कि केवल तीक्ष्ण भीतरी संकटों के प्रहार के द्वारा ही अत्यन्त उत्सुक साधक तक को उसकी आत्मा को अत्यन्त आवश्यक प्रश्नों का सामना करने के लिए, और इस प्रकार उनको समाप्त करने का अवसर पैदा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

मेहेरबाबा **सद्गुरु** होने के साथ साथ पारंगत मनोविज्ञान शास्त्री भी हैं, जिनकी परम प्रवीणता हमारे अस्तित्व के अत्यन्त छिपे हुए कोनों में अच्छी प्रकार छिपाए हुए ढाँचों को खोज निकालती है और उनको हमारी चेतना रूपी सूर्य के प्रकाश में ले आती है। बाबा जानते हैं कि केवल ऐसे ही उपायों से मनुष्य को उसकी गहरी से गहरी आध्यात्मिक आवश्यकताओं का ज्ञान इतने तीक्ष्ण तथा इतने अभिभूत करने वाले ढँग से कराया जा सकता है कि वह अन्त में अपने झूठे अस्तित्व के विचलित करने वाले खिलौनों तथा क्षुद्र आभूषणों को अमर जीवन की महानता तथा स्थायी सारताओं (Values) के लिए त्याग देने के हेतु तैयार हो जायेगा।

इस उपदेश की दृष्टि से, हाल ही में हुए विश्वव्यापी महायुद्ध जैसी आपत्ति एक नया अर्थ धारण करती है—एक आध्यात्मिक प्रयोजन से परिपूर्ण अर्थ ग्रहण करती है। सन् 1931 ई. में प्रथम बार अमेरिका में पदार्पण करने के समय, विश्व के अपनी सफाई करने वाले रक्त–स्नान में निमग्न होने के आठ वर्ष पूर्व और हिटलर के हाथ में शक्ति आने के दो वर्ष पूर्व, बाबा ने उन सब घटनाओं की भविष्यवाणी कर दी थी जो उसके बाद घटित हुई हैं। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की थी कि एक प्रकार की अन्तरिम–सन्धि अथवा दिखावटी विजय के कारण शत्रुता का अन्त हो जायेगा, परन्तु वह एक उससे भी भारी तूफ़ान के आने के पूर्व की शान्ति सिद्ध होगी। बहिर्हाल, जब मनुष्य के अपने साधन समाप्त हो जायेंगे, और जब वह मान लेगा कि शक्ति के सन्तुलन को एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र के हाथ में करने से समस्याएँ हल न होंगी; जब घोर सन्ताप के द्वारा दुनियाँ के **समस्त** राष्ट्रों को इस यथार्थता का ज्ञान होगा कि केवल **ईश्वरीय कृपा** के द्वारा ही मनुष्य सब मनुष्यों को अपने बन्धुवत् स्वीकार करने में समर्थ होगा, तब बाबा की भविष्यवाणी के अनुसार मानवजाति की चेतना तीव्र होगी— अर्थात् एक उच्चतर धरातल तक उन्नत की जायेगी। बाबा का कथन है कि इस समय इक्कीसवें वर्ष में चलने वाले उनके अपनी इच्छा से रखे गये लम्बे मौन का खुलना इस महत्त्वपूर्ण विश्वव्यापी घटना के घटित होने का संकेत होगा, जो मनुष्य की चेतना को तर्क–बुद्धि के धरातल से ऊँचा उठाकर अन्तर्ज्ञान के धरातल पर पहुँचा देगा, स्वयं की चेतना से उठाकर आत्म–ज्ञान के धरातल पर पहुँचा देगा। चेतना के विकास में, इस महान क्रम के महत्त्व की तुलना उस परिवर्तन के महत्त्व से की जा सकती है जो प्राणी–जगत की चेतना के मानव–जगत की चेतना के रूप में आने में और सहजबुद्धि के तर्क–बुद्धि में रूपान्तरित होने में हुआ था।

पचीस वर्ष से अधिक समय से बाबा के शिष्य उनकी भविष्यवाणियों की पूर्ति देखते रहे हैं; इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि वे विश्वास

करते हैं कि उनकी मर्ज़ी की यह सर्वोच्च भविष्यवाणी भी पूरी होगी, जब, बाबा के शब्दों में, ''मनुष्य की मुक्ति के लिए परिपक्व समय होगा।''

कठोर प्रेस–रिपोर्टरों ने भी, जिनकी आध्यात्मिक शिक्षकों के प्रति अत्यन्त प्रतिकूल प्रवृत्ति लोकप्रसिद्ध है, बहुधा बाबा की पूर्णता के प्रभाव का अवरोध करने में अपने को असमर्थ पाया है। मुझको 1937 ई. में भारतवर्ष में बड़े दिन को घटित हुई एक घटना की याद आती है, जब 'ईवनिंग न्यूज़ आफ़ इण्डिया' नामक समाचार पत्र का सम्वाददाता टी.ए. रमण बाबा से मुलाकात करने के लिये नासिक में स्थित उनके पश्चिमी आश्रम में आया था। उसके प्रश्नों के उत्तर में बाबा ने उपरोक्त विश्वव्यापी घटना की अपनी भविष्यवाणी को पुनः दोहराया जिसने तब से सन्सार को निमग्न कर लिया है। इस पर सम्वाददाता ने व्यंग से भरी हुई धीमी आवाज़ में कहा : ''तो श्रीमान्, ऐसा आपका विचार है ?''

बाबा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया : ''मेरे बेटे, मेरा कोई विचार (Opinion) नहीं है। मुझको ज्ञान है।''

और पश्चिमी देशों के पाठक को, जिसका सम्पर्क ऐसी अन्तर्यामी अहंकार–विहीन सत्ता से नहीं हुआ, यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकती है कि बाबा के उत्तर का उस सम्वाददाता पर बिजली का ऐसा प्रभाव हुआ। वह निंदा से भरा हुआ पत्रकार बहुत शान्त चित्तवृत्ति को लिये हुये बाबा से विदा हुआ। किसी बात ने, जिससे उसका सामना पहले कभी नहीं हुआ था, उसके अहंकार के कठोर पर्दे को अवश्य बेध दिया होगा, क्योंकि उसके अखबार के 7 जनवरी 1937 ई. के अंक के पूरे एक पृष्ठ में प्रकाशित हुई उसकी गाथा में बाबा से मुलाकात करने के समय की उसकी वाणी की चपलता का पूर्ण अभाव था। उसके लेख का एक अंश निम्नलिखित है:–

''मेहेरबाबा की रहस्यवाद तथा तुच्छता की बनावटी सजावट से रहित, शिक्षा में भारी तत्त्व भरा है जिसको दुनियाँ के लिए बताने की अत्यंत आवश्यकता है। वह शान्ति, जो स्वयं उन्हें प्राप्त हुई प्रतीत होती है, निर्विवाद है, और कोई उनके व्यक्तित्व की रमणीयता एवं सच्चाई को

अस्वीकार नहीं कर सकता है। ...मेहेरबाबा का कथन है कि, 'खुले आम उपदेश करने का समय आवेगा, परन्तु केवल उस समय के पश्चात् जबकि विश्व एक ऐसे संहार के द्वारा विनम्र एवं शुद्ध हो जायेगा, जिससे बड़ा कोई संहार दुनियाँ ने अब तक नहीं देखा।'''

मेहेरबाबा की इस भविष्यवाणी को विश्व भर में मोटे मोटे शीर्षकों में प्रकाशित किया गया था और वह भयंकर रूप से पूरी हुई है, परन्तु यह स्मरण रखना महत्त्वपूर्ण है कि मेहेरबाबा ने इस युद्ध की भविष्यवाणी वर्षों पहले, गत विराम–संधि के पश्चात् तत्काल ही कर दी थी–जबकि उस समय ऐसा दूसरा युद्ध असम्भव प्रतीत होता था।

•

सन् 1922 ई. में उपासनी महाराज से विदा होकर साकोरी छोड़ने के बाद मेहेरबाबा बम्बई (अब मुंबई) आकर एक मित्र के यहाँ एक पखवारे तक रहे। वहाँ से वह पूना की सरहद को चले गए जहाँ उनकी इच्छानुसार एक 10 फीट लम्बी और 6 फीट चौड़ी झोपड़ी उनके लिए बना दी गई। जब उनसे पूछा गया कि वह अपने ऊपर जबरन ऐसा क्लेश क्यों लाद रहे थे जबकि वह आध्यात्मिक रूप से पूर्ण थे और भौतिक संयम की आवश्यकता से परे थे, तो उन्होंने स्पष्ट किया कि भौतिक बन्धन उनके लिए केवल दिखावटी था, यथार्थ नहीं था। ''इससे मुझको कोई असुविधा नहीं होती, क्योंकि दीवारों से मैं बन्धन में नहीं होता। कुछ विशेष प्रकार के कार्यों के लिए, जो मुझको अलौकिक प्रदेशों में करने पड़ते हैं, मैं किसी छोटे स्थान में बन्द रहना पसन्द करता हूँ। इसी कारण ईसामसीह ने पूर्णता प्राप्त करने के उपरान्त एक पहाड़ के ऊपर तीस दिन तक निरन्तर निवास किया था जहाँ उन्होंने अपने घनिष्ठ शिष्यों को भी अपने पास नहीं आने दिया था।''

प्रायः ऐसे अवसर होते हैं, विशेषतः जब बाबा अपने आन्तरिक कार्य में गम्भीर रूप से निमग्न होते हैं, जब बाबा हरेक को मना कर देते हैं कि वह उनको न छुए और न छः फीट से अधिक उनके पास जाये। जो लोग बाबा के अत्यन्त समीप रह चुके हैं केवल वही जानते हैं कि ऐसे आदेश किसी अन्य कारण से न होकर शिष्यों की सुरक्षा के लिये ही होते हैं, क्योंकि ऐसे अवसरों पर बाबा के शरीर में अत्यधिक आध्यात्मिक शक्ति होती है।

उस घिरी हुई कुटिया में बाबा लगभग पाँच महीने तक रहे, जहाँ उनके शिष्य उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध करते थे। सुबह बहुत जल्दी—आमतौर पर 4 बजे—उनके पास नाश्ता पहुँचाया जाता था। नौ बजे सुबह वह अपने हिन्दू भक्तों को बुलाते थे जो उनके पास एक

घन्टे तक प्राचीन धार्मिक भजन गाते थे और हिन्दू संगीत के बाजे बजाते थे। साढ़े दस बजे वह अपनी माता के घर जाकर भोजन करते थे; फिर, थोड़ी देर विश्राम करने के बाद वह अपनी छोटी झोपड़ी में आ जाते थे। तीसरे पहर वह अखबारों के शीर्षक पढ़ते थे—(और बाबा के अखबार पढ़ने की सीमा केवल इतनी ही है)—यह देखने के लिए कि बाह्य—जगत की घटनाएँ उनके आन्तरिक संचालन के कितने अनुरूप हो रहीं थीं। तत्पश्चात् वह शाम तक झोपड़ी के अन्दर अकेले रहते थे। सन्ध्या समय बाबा के शिष्य तथा मित्र उनको संगीत व गाने सुनाते थे, और बाबा भारतीय प्रथा के अनुसार उनको मिठाई बाँटते थे तथा आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करते थे। नौ बजे रात को उनके पास रात्रि का भोजन पहुँचाया जाता था, और उसके पश्चात् केवल एक शिष्य के सिवाय, जिसकी रात भर बाबा के यहाँ पहरा देने की ड्यूटी रहती थी, किसी को भी बाबा के पास जाने अथवा उनकी झोपड़ी तक के पास जाने की भी आज्ञा नहीं रहती थी।

सद्गुरु साधारण अर्थ में नहीं सोता—वह कभी भी अचेत नहीं होता। वह अपनी दिखावटी निद्रा में स्वतः चेतन लोक से उठकर अलौकिक चेतना के लोक में चला जाता है। इस प्रकार से उसको जो विश्राम मिलता है वह केवल सापेक्षिक होता है, क्योंकि उस दिव्य लोक में भी वह निरन्तर क्रियाशील रहता है। इस अवधि में, सद्गुरु को अपने किसी विश्वसनीय साथी के अपने निकट जागते रहने की आवश्यकता होती है, जिससे कि उसके शरीर की रक्षा प्रेत आत्माओं के सूक्ष्म प्रहारों से होती रहे जो उसके निकट पहुँचने का प्रयत्न करती हैं, परन्तु जिनका विघ्नकारी बलात्—प्रवेश जागते हुये मनुष्य के समीप होने के कारण नहीं हो पाता।

बाबा के सद्गुरुत्व के प्रारम्भिक दिनों में बाबा का अपने निकट उन लोगों को एकत्रित करने का ढँग, जिनके भाग्य में उनका शिष्य बनना था, स्वाभाविक तथा प्रभावकारी था। उन प्रारम्भिक शिष्यों में एक शिष्य डाक्टर

अब्दुल गनी थे जिन्होंने हमको बताया है कि किस प्रकार से बाबा उनके साथ पारसी होटल में चाय पिया करते थे, और पूर्ण गम्भीरता के साथ राजनीतिक प्रश्नों पर उनकी राय पूछा करते थे, तथा उनके उत्तरों को तल्लीनता के साथ सुनते थे। बाबा के साथ में बाद को हुए अनुभव द्वारा डाक्टर ग़नी को मालूम हुआ कि राजनीति में बाबा की बनावटी रुचि स्वयं डाक्टर ग़नी के प्रति उनकी गहरी रुचि के कारण थी। वास्तव में बाबा का यह तरीका उन लोगों की गहराई तक पहुँचने के लिये था जिनकी वह सहायता करना चाहते थे, और इसका प्रयोग वे सहानुभूतिपूर्ण मित्रभाव तथा प्रेमपूर्ण विचार विनिमय के साथ करते थे, और वह समय समय पर उसको किसी गहरे आध्यात्मिक सत्य से प्रकाशित करते थे जब वह जान लेते थे कि श्रोता उसको हृदयंगम करने के लिए तैयार है।

वह ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त होने का कोई दावा नहीं करते थे, और **ईश्वरीय प्रेम** की स्वभावतः आकर्षण शक्ति के द्वारा लोगों को खींचने के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार से उनको बन्धन में नहीं करते थे। परन्तु धीरे–धीरे बाबा के मित्र अपनी बढ़ती हुई अन्तर्दृष्टि से बाबा की यथार्थ आध्यात्मिक ऊँचाई समझ जाने के कारण उनके शिष्य बन गये। ईश्वर–प्रेम की इसी शक्ति के कारण, बाबा के ये प्रथम शिष्य अपनी कठिन परीक्षा के तथा बाबा द्वारा मज़बूत बनाये जाने के लम्बे समय में दृढ़तापूर्वक बाबा से चिपटे रहे। जब डाक्टर ग़नी धीरे धीरे बाबा के प्रभाव–क्षेत्र के भीतर, और अधिक निकट खिंच गये थे और बाबा के आदेशों का निर्विवाद (Implicit) पालन करने के लिए प्रेरित हो चुके थे, उस समय जो कुछ घटित हुआ उसके विषय में डाक्टर ग़नी का अनुभव बाबा की परीक्षण कला के गुण का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

डाक्टर ग़नी की आकृति आश्चर्यजनक रूप से सुकरात की प्रतिमा से मिलती है जो हमको प्राचीन यूनान से मिली है। वह बाबा के शिष्य होने से पहले होम्योपैथिक चिकित्सा के एक सफल डाक्टर रहे थे और बम्बई (अब मुंबई) में अपने औषधालय के मुख्य संस्थापक थे। एक दिन बाबा ने उनको सलाह दी कि वह अपने औषधालय की सफाई के लिए नौकर लगाने की बजाय खुद ही छः माह तक पूरे औषधालय में झाड़ू लगावें और

उसकी धूल साफ़ करें। बाबा ने उनको विश्वास दिलाया कि इस अभ्यास से उनको महान् आध्यात्मिक लाभ होगा। इसलिए उस नेक डाक्टर ने बाबा की आज्ञा का शब्दशः पालन किया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपने औषधालय को ही बिल्कुल साफ़ करके उसका अस्तित्व मिटा दिया। लगातार जटिल समस्याएँ आने के कारण उस छ महीने की अवधि के अन्त तक उनका औषधालय उनके हाथ से निकल गया। पहले तो डाक्टर ग़नी बहुत व्याकुल हुए, परन्तु अन्ततः इस मुक्ति के अमूल्य लाभ उनको स्पष्ट समझ में आ गए; इससे वह बाबा की सेवा में पूर्णतया परायण होने के लिए, और इस प्रकार वह आध्यात्मिक विकास प्राप्त करने के लिए, जो वह अन्य किसी प्रकार से प्राप्त नहीं कर सकते थे, स्वतन्त्र हो गए।

समझ में न आने वाली जिस विधि से बाबा अपने अलौकिक (Super-Personal) लक्ष्यों को बहुधा प्राप्त करते हैं उसका मनोरंजक उदाहरण रमजू की दूकान का इतिहास है।

यह सुन्दर तथा आकर्षक मुसलमान नवयुवक अपने प्रारम्भिक शिक्षा–काल में उस अवस्था पर पहुँच गया था जिसमें वह अपना जीवन बाबा को अर्पित करना चाहता था। उसके इस अन्तिम क़दम में उसके सूखे माल की दूकान बाधक मालूम पड़ती थी। उसके तथा उसके परिवार के बाबा के सदर मुकाम में जाकर बसने के पहले, उस दूकान का बिकना आवश्यक था। इसके लिए रमजू ने बाबा की सहायता की याचना की।

बाबा ने उसको आज्ञा दी : ''बस तू एक काम कर। जब तक दूकान बिक न जाय, तब तक जिससे भी तू मिले उससे और कुछ कहने के पहले तू यह कहा करना; 'मैंने अभी तक अपनी दूकान नहीं बेची है'।''

रमजू को यह आज्ञा बहुत सीधी मालूम पड़ी और उसने श्रद्धापूर्वक उसका पालन करने का वादा किया।

बहिर्हाल, परिस्थितियाँ उसकी आशा के अनुसार घटित न हुईं। ''मैंने अपनी दूकान अभी तक नहीं बेची'', इस सीधे सादे सूत्र का बारम्बार कहना केवल रमजू के लिये ही नहीं वरन् उसके परिवार तथा मित्रों के लिये भी भारी बोझ बन गया। रोज़ सुबह, अपनी धर्मपत्नी तथा अपने ससुर को देखते ही उसे उसी सूत्र के उच्चारण द्वारा कि, ''मैंने अपनी दूकान को

अभी तक नहीं बेचा है'' उनसे अभिवादन करना पड़ता था या उनके अभिवादन के उत्तर में वही कहना पड़ता था, जो उन सबको मालूम था ! जब उसको ऐसा कहते हुए हफ़्तों हो गये और फिर भी उसने अपने इस विचित्र अभिवादन का उच्चारण करना ज़ारी रक्खा, तो उनको उसका दिमाग ठीक होने में सन्देह होने लगा। उसके मित्रों को उसके ऊपर तरस आने लगा; उनको भी यह विश्वास हो गया कि वह पागल हो रहा था। यदि उसको कोई मित्र सड़क पर आता हुआ दिखाई पड़ता और यदि उसकी दृष्टि पहले से उसके ऊपर न पड़ती तो वह उससे बचने के लिये रास्ता काटकर सड़क की दूसरी ओर चल देता था। उसने एक नया सूत्र ईजाद किया जिससे वह आशा करता था कि उसके अभिवादन का एकसुरापन बदल जायेगा, और वह अधिक स्वाभाविक प्रतीत होगा। अब वह कहने लगा : ''कैसा सुन्दर दिन है मैंने अब भी अपनी दूकान नहीं बेची है।''

जैसे जैसे समय बीतता गया, लोगों से मिलने में रमजू की घृणा बढ़ती गई। अनेक लोगों का प्रसन्नचित्त तथा मिलनसार मित्र रमजू एकान्तवासी हो रहा था ! इस सबसे बढ़कर, एक दिन सुबह उसको खबर मिली कि उसके एक चाचा की मृत्यु हो गई थी, जिसका यह अर्थ था कि उसका उनके अन्तिम संस्कार में सम्मिलित होना अनिवार्य था। रमजू को वह दिन डरावना प्रतीत हुआ। उसके चाचा की मृत्यु से दुखी सम्बन्धियों की फ़ौज का, जिनमें से बहुतों को उसने महीनों से देखा नहीं था, सामना अपने अभिवादन ''मैंने अब भी अपनी दूकान नहीं बेची है'' के साथ करने का सम्भावित दृश्य उसको असहनीय हो रहा था ! उसने निश्चय किया कि वह उस अन्तिम संस्कार में सम्मिलित न होगा; वह बीमारी का बहाना कर लेगा, और दुखी परिवार के प्रति अपनी सहानुभूति का सन्देश अपनी धर्मपत्नी के द्वारा भेज देगा।

इसलिए जब वह दिन आया तो वह शैया पर पड़ा रहा जबतक कि उसको पूर्ण विश्वास न हो गया कि वह मृतक क्रिया समाप्त हो गई होगी। तब वह उठा, उसने कपड़े पहने, और अपने बहाने में सफल होने के भाव से प्रसन्न होते हुए अपनी दूकान की ओर चल दिया। कुछ दूर इतमीनान

के साथ चलने के पश्चात् वह यह देखकर डर से काँप उठा कि वह उसी रास्ते से जा रहा था जिससे उसके चाचा की अन्त्येष्टि–क्रिया का जुलूस आ रहा था; वह सीधा उसकी तरफ़ आ रहा था ! उससे बचकर निकल जाना उसके लिए सम्भव न था। मुसलमानी प्रथा के अनुसार उसको ठठरी में कन्धा लगाना पड़ा और फिर अपने पूर्णतया असंगत कथन, ''मैंने अब भी दूकान नहीं बेची है !'', के पश्चात अपने हर दुखी रिश्तेदार से संवेदना प्रकट करनी पड़ी। जब रमजू ने यह कथा बाबा को बताई, तब वह हँसी के मारे लोट गए, और फिर उन्होंने अपनी वह आज्ञा वापिस ले ली। इस मनोरंजक कथा का परिणाम यह हुआ कि दूकान कभी न बिकी, और तिजारती माल को अन्त में नीलाम करना पड़ा।

जब भारतवर्ष में रमजू से मेरी भेंट हुई तो मैंने उससे पूछा कि इस अनुभव का उसके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा था। उसने मुझको बताया कि उसके ऊपर उस अनुभव के कई प्रभाव पड़े थे। उसका एक प्रभाव यह हुआ था कि अपने कार्यों के विषय में दूसरे लोगों की राय की चिन्ता उसके मन से समाप्त हो गई थी। उसके पूर्व उसके लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात थी कि उसके विषय में लोगों के क्या विचार थे; परन्तु अब यदि वह अपने को सही रास्ते पर जानता था, तो वह अपने प्रति दूसरों की प्रतिक्रियाओं की कोई परवाह न करता था। उसके अनेक मित्र रहे थे, और वह अनेक समाजों तथा बन्धुभाव उत्पन्न करने वाली संस्थाओं का सदस्य रहा था। वह लोकप्रिय व्यक्ति रह चुका था और अपनी लोकप्रियता से वह प्रेम करता था। परन्तु अब उसके लिए इनमें से कुछ भी कोई महत्त्व नहीं रखता था। दूकान उसकी आध्यात्मिक गर्दन के चारों ओर पड़ी हुई भौतिकवादी चक्की थी, और उसके ह्रास के फलस्वरूप उसको बाबा की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर देने की एकमात्र महान् अभिलाषा प्राप्त हो गई थी। अब वह एक नवीन केन्द्र से–अर्थात् एक सच्चे केन्द्र से–कार्य कर रहा था जिसमें उसको अपने अहंकार को अपने विषय में अपने मित्रों के अच्छे विचार से पनपाने की आवश्यकता नहीं थी। यह मुख्य फल था जो उसको मिला था। इस अनुभव के पूर्व बाबा ने उससे एक दिन कहा था :

"मेरे पास अनेक शक्तियाँ हैं, और मैं कई प्रकार से तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। उदाहरण के लिये, मैं तुम्हारे उद्योग धन्धे में तुम्हें सम्पन्न कर सकता हूँ, तुम्हारे सम्बन्धों में सामंजस्य पैदा कर सकता हूँ, तुमको स्वास्थ्य तथा शक्ति प्रदान कर सकता हूँ, और इसी प्रकार की जिस वस्तु के लिये भी तुम याचना करोगे वह मैं तुमको प्रदान करूँगा। परन्तु तुम्हारे याचना करने से पहले, मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि तुम्हारे लिये सबसे अच्छी बात यह है कि तुम कुछ न माँगो, सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दो, और मैं जो कुछ भी आज्ञा दूँ उसका पालन करने की तुम प्रतिज्ञा करो।"

रमजू ने बाबा की आज्ञाओं का पालन करने का निश्चय कर लिया। उसके फलस्वरूप हुए क्लेश जो अपने आक्रमण–काल में प्रायः निष्ठुर प्रतीत होते थे, अब कई वर्ष के पश्चात् उसको हार्दिक आनन्द प्रदान करते हैं, और वह अपने लोकपालों (Guardian Angels) को धन्यवाद देता है कि उन्होंने उसको ऐसा बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय करने की प्रेरणा प्रदान की थी।

मई 1922 ई. में बाबा पूना से बम्बई (अब मुंबई) गये और वहाँ उन्होंने अपने पहले आश्रम का उद्घाटन किया। उनके साथ 45 अनुयायी गये जिनमें 12 मुसलमान थे, 11 पारसी थे, और शेष हिन्दू थे। इस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पहले ये 45 जन एक एक करके हज़रत बाबाजान के दर्शनों के लिए गए जो पूना में नीम के पेड़ के नीचे रहती थीं, और वहाँ जाकर उन्होंने उस महान आत्मा को अपनी श्रद्धा अर्पित की।

बम्बई (अब मुंबई) पहुँचकर उन्होंने दादर मुहल्ले में मुख्य सड़क के किनारे पर बने हुए एक बड़े बँगले को किराये पर लिया जो **मंज़िल–ए–मीम** (गुरु गृह) कहलाता था। उसमें पन्द्रह कमरे थे जिनमें मेज, कुर्सी इत्यादि लकड़ी का कोई सामान न था। बाबा की आज्ञा से बिछौनों से रजाइयाँ और गद्दे तक हटा दिए गये थे, और ओढ़ने के लिए केवल कम्बल और फ़र्श

की कठोरता से बचाव के लिए केवल एक एक पतले बिछौने रक्खे गये थे। मलेरिया फैलाने वाले खतरनाक मच्छरों को दूर रखने के लिए मसहरियाँ विश्राम करने के कमरों की दीवारों और फर्शों में फीतों व काँटों से लगा दी गई थीं।

प्रारम्भ में बाबा ने उनकी भक्ति तथा उनके उत्साह को जीवित रखने का प्रयत्न किया, और साथ साथ उनको यह समझाते हुए कि आध्यात्मिक मार्ग के साधक को तीन मानसिक स्थितियों उत्साह, उदासीनता, निराशा से अवश्य गुजरना पड़ता है, उनको उस प्रतिक्रिया के लिए तैयार किया जो वह जानते थे कि बाद में होगी। जब निराशा अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती है, तब एक संकटपूर्ण स्थिति पैदा होती है। घटनाओं के प्रभावों को नियंत्रित रखने के लिये, जिनको बाबा जानते थे कि अवश्य होंगे, बाबा ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि वे उनको कभी न छोड़ें, चाहे वे कितने ही उत्तेजित क्यों न हों। हाफ़िज़ ने नीचे लिखे अर्थ का कथन इसी विचार से किया था :–

"प्रेम का पन्थ प्रारम्भ में आसान और सुखदायक जान पड़ता था, परन्तु अब मैं अधिक अच्छी प्रकार जानता हूँ कि–वह अकल्पित कठिनाइयों, परीक्षाओं और कष्टों के बोझ से लदा रहता है।"

आश्रम के नियम कठोर थे और उनमें ऐसी अनेक आज्ञाएँ सम्मिलित थीं जिन्होंने कई आश्रमवासियों की आदतों को बिल्कुल बदल दिया। बाबा के मण्डल में आने से पहले उनमें से अधिकांश लोग माँसाहारी रहे थे, और कभी कभी वे शराब भी पीते थे। परन्तु अब उन सबको सिद्धान्तरूप में सब प्रकार के माँस, मछली, अण्डे और सब प्रकार के नशों से अलग रहना आवश्यक था। मैथुन करना भी उनको वर्जित था। वे नौ बजे रात्रि को सो जाते थे और ठीक चार बजे जाग उठते थे। उस समय वे लोग बाबा द्वारा दिये गये अनुशासन के अनुसार ठण्डे पानी से स्नान करते थे, और उनकी आवाजों तथा उनके खखारने से नहाने के कमरे गूँज उठते थे। उनमें से एक शिष्य दमा का पुराना रोगी था, किन्तु वह भी स्नान करने की इस आज्ञा से बरी न था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा–और स्वास्थ्य

विज्ञान के ऊँचे विद्यार्थियों के लिये यह कोई नया समाचार न होगा—कि उसका दमा अच्छा हो गया ! रोज़ सुबह उनको पैतालिस मिनट तक ध्यान करना आवश्यक था जिसमें उन्हें अपनी इच्छानुसार चुने हुये आसन पर बैठकर अपने धर्म द्वारा स्वीकृत ईश्वर—नाम का जप करना होता था।

प्रतिदिन पौष्टिक नाश्ता करने के बाद 7 बजे सुबह वे लोग नगर में अपने विविध कार्यों के लिये चले जाते थे। कोई भी बाबा की विशेष आज्ञा के बिना, आश्रम के भीतर या बाहर, कुछ भी पढ़ या लिख नहीं सकता था। अपने कार्य पर जाते अथवा कार्य से लौटते हुये मार्ग में चिपके हुये इश्तहारों अथवा सड़क के चिन्हों को संयोगवश पढ़ना भी इस आज्ञा का उल्लंघन माना जाता था।

उन्हें अपने कार्य से सम्बन्धित लोगों के सिवाय और किसी से भी, जो **मंज़िल—ए—मीम** परिवार का न था, बात करने की अथवा उसको पहिचानने तक की आज्ञा न थी। निःसन्देह इस आज्ञा का यह प्रभाव पड़ा कि वे शिष्य, बाबा के कार्य के माध्यम बनाये जाने के हेतु प्रचण्ड रूप से तपाये जाने के उस प्रारम्भिक समय में, बाबा के प्रभाव के रक्षात्मक क्षेत्र के भीतर सुरक्षित रहे। यह आज्ञा अपनी विशेष जटिलताओं से रहित न थी, जो बाद में मनोरंजन किन्तु उस समय बहुधा चरमसीमा तक व्यग्र करने वाली मालूम पड़ती थी।

एक दिन सन्ध्या समय एक शिष्य की मुठभेड़ रेलगाड़ी के डिब्बे में अपने एक पुराने लँगोटिया सहपाठी से हो गई। स्वभावतः उसके मित्र ने उससे बड़े प्रेम से अभिवादन किया, परन्तु उसके उत्तर में उस शिष्य ने केवल एक रूखी और परिचित चितवन ही उसकी ओर की। थोड़ी देर तक उसका मित्र खामोश रहा, परन्तु वह उस शिष्य का सूक्ष्म निरीक्षण करता रहा और दिखावे में आश्चर्य करता रहा कि क्या उसने उसको ग़लत पहचाना था। नहीं ! निःसन्देह यह वही मित्र था जिससे वह स्कूल में भलीभाँति परिचित था। उसने उससे निवेदन किया—

"पुराने छोकरे, क्या बात है ? तुम मुझसे क्यों नहीं बोलते ? क्या तुम अपने पुराने मित्र फीरोज़ को नहीं पहिचानते ?"

उस आपत्ति में फँसे शिष्य के भाग्य से रेलगाड़ी उसी समय उसके स्टेशन पर पहुँच रही थी। वह अपने मित्र के दिमाग़ में अपने बिल्कुल पागल होने का प्रभाव छोड़ते हुए डिब्बे के बाहर निकल भागा !

बाबा चाहते थे कि उनकी सब आज्ञाओं का पालन तत्काल और बिना विवाद के किया जाय, चाहे उस समय शिष्य कुछ भी कर रहा हो। यदि वह बाबा द्वारा बुलाये जाने के समय दाढ़ी बना रहा हो अथवा स्नान कर रहा हो, तो भी उसे तत्काल बाबा की आज्ञा सुनने के लिए पहुँचना पड़ता था, चाहे स्थिति कैसी ही कठिन अथवा हँसी उत्पन्न करने वाली क्यों न प्रतीत होती हो। ऐसी ही एक आज्ञा के पालन ने, जिसको डाक्टर ग़नी ने "एक अत्यन्त अहंकार—नाशक कठिन परीक्षा" कहा है, डाक्टर ग़नी और एक अन्य शिष्य को—जो दोनों इस्लाम धर्मावलम्बी थे—एक ग़ैर मुस्लिम सद्‌गुरु उपासनी महाराज के जीवन—चरित्र का विज्ञापन करने वाले बड़े बड़े पर्चे अपने गलों में लटकाये हुये बम्बई (अब मुंबई) की मुसलमानी बस्ती से होकर जाने के लिये बाध्य किया था। यह कार्य एक मुसलमान के लिए अविचारणीय थी !

बाबा का दूसरा घबड़ा देने वाला प्रयोग था शिष्यों से अचानक पूछ बैठने की उनकी आदत कि वे लोग क्या सोच रहे थे। शिष्य लोग उसके उत्तर में कोई बुरा विचार बताने अथवा कोई जाली विचार गढ़ने से बचने के लिये अपने मन विचारशून्य रखने का प्रयत्न करते थे। फिर भी, बाबा यह जानते हुए कि उनके मनों में क्या था उनको निर्भय तथा ईमानदार बनने के लिये उत्साहित करते थे, चाहे उनके विचार जिस प्रकार के हों। नाश्ता करते समय बाबा को अपने अपने स्वप्न बताना भी मनोरंजक तथा आत्म—प्रकाश प्रदान करने वाला आमोद होता था।

समय समय पर आश्रम वासियों को एक या दो दिन का उपवास करने की आज्ञा दी जाती थी। परन्तु उपवास के कारण वे काम करने से बरी नहीं किये जाते थे, बल्कि उल्टे उनका कार्य बढ़ा दिया जाता था। अन्य अवसरों पर बाबा उनको सैकड़ों अन्धे और लँगड़े भिखारियों को ढूँढ़ने तथा उन्हें भोजन कराने और कपड़े पहिनाने के लिये मंज़िल—ए—मीम में लाने की आज्ञा देते थे। चूँकि भिखारी समस्त भारतवर्ष में भरे पड़े हैं,

इसलिये इस आज्ञा को पूरा करना आसान मालूम पड़ता था। परन्तु बाबा चंगे शरीर के भिखारी नहीं चाहते थे—केवल उन्हीं को चाहते थे जो अपंग थे। इस कारण से उन शिष्यों का कार्य अधिक कठिन हो जाता था। वह कार्य बहुधा इस कारण से और भी जटिल हो जाता था कि वे लोग भिखारियों को ढूँढते ढूँढते नगर के दूसरे छोर तक पहुँच जाते थे, परन्तु उनके लिये आठ पाई प्रतिदिन बँधा होने के कारण उनके पास घर लौटने के लिये यात्रा—व्यय न रहता था। भिखारियों को सुन्दर प्रीति—भोज तथा नवीन वस्त्र प्राप्त करने के हेतु अपने साथ एक अपरिचित स्थान को चलने के लिए मनाना और साथ साथ सवारी के किराया के लिए उनसे पैसा उधार लेना उन अनुभवों में एक और अनुभव था जिससे उनकी युक्ति तथा हिम्मत की कसौटी होती थी ! बहिर्हाल, इच्छित संख्या में भिखारी सदैव मिल जाते थे और बम्बई (अब मुंबई) आश्रम में ले जाये जाते थे, और वहाँ उनको स्नान कराया जाता था, भोजन कराया जाता था और नये कपड़े पहिनाये जाते थे। इस सेवा में बाबा प्रमुख भाग लेते थे, और उनको विदा करते समय वह कुछ भिखारियों को फूल माला पहिनाते थे जिससे शिष्यों को आश्चर्य होता था और भिखारी चकित रह जाते थे।

परन्तु, बाबा की इस चक्कर में डालने वाली क्रिया में गहरा अर्थ छिपा है। जब हम लोग भारतवर्ष में थे, तो बाबा ने हमको बतलाया कि जब कभी वह भारी संख्या में भिखारियों के साथ कार्य करते हैं उस समय वह विश्व के आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। व्यक्तिगत अथवा सामूहिक चेतना में आवश्यक परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए जिस रीति से बाबा बाहरी तथा दृष्टिगोचर सांकेतिक क्रियाओं का उपयोग करते हैं उनके अनेक उदाहरणों में से यह उपरोक्त क्रिया केवल एक उदाहरण है। सचमुच बाबा की प्रत्येक क्रिया एक पवित्र धार्मिक संस्कार है।

इस बम्बई (अब मुंबई)—काल के दौरान में जीवन की सब मूल समस्यायें चेतना के आगे आई, और बाबा ने उनका उपयोग आध्यात्मिक

शिक्षा के अवसरों के रूप में किया। चूँकि कामवासना मनुष्य की समस्याओं में सबसे कम समझी गई समस्या है, इसलिये वह स्वभावतः बाबा के विचार का विषय बन गई। यद्यपि विषय—प्रवृत्ति वाले मनुष्यों का मुख्य आनन्द मैथुन है, तथापि बाबा के अनुसार उसका सुख क्षणिक है और वह स्थायी सन्तोष प्रदान नहीं करता।

''सान्सारिक सुखों की चलायमान तुष्टि की तुलना आध्यात्मिक आनन्द के स्थायी सन्तोष से करो, और तुमको तुरन्त स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें से कौन अधिक मूल्यवान है।''

बाबा बतलाते हैं कि स्थायी आनन्द न तो काम—वासना की तृप्ति से और न उसको दबाने से ही मिलता है, यद्यपि संयमित जीवन विषय वासनाओं में लिप्त जीवन की अपेक्षा आदर्श के अधिक निकट होता है। सच्ची, स्थायी स्वतन्त्रता केवल मन को **समस्त** अभिलाषाओं से स्वतन्त्र करने के द्वारा प्राप्त होती है। उसको प्राप्त करने के लिये जीवन—शक्ति को निपुणता से समझने तथा संचालित करने की आवश्यकता है। इस प्रकार से प्राप्त हुआ योग (Integration) कामवासना के दमन तथा उसकी लिप्सा दोनों में इस अर्थ में भिन्न होता है कि वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति से प्रेरित होता है, और वह काम—वासना की लालसा के स्थायी आन्तरिक त्याग की ओर अग्रसर करता है—यह एक सहज मुक्ति है जो अपनी स्थिरता के लिये चेतन मन की चंचल क्रूरता पर निर्भर नहीं होती।

एक औसत दर्जे के मनुष्य के लिये बाबा एक स्त्री के साथ, परस्पर प्रेम व सम्मान पर अवलम्बित, विवाह करने का समर्थन करते हैं। ऐसे विवाह से दो प्रकृतियों की पारस्परिक क्रिया तथा पारस्परिक सामंजस्य के लिये जो अवसर प्राप्त होता है वह मनुष्य को सबसे अच्छे ढँग से अनुशासन व आत्म—संयम सिखा सकता है, जो उच्चतर विकास के लिये अनिवार्य है।

इस अर्थ में, जैसा कि बाबा की शिक्षा में भी है कि प्रेम के वासनामय पहलू पर पूर्ण मानसिक नियन्त्रण किसी भी हितकर विवाह–सम्बन्ध का आवश्यक भाग है। डाक्टर फ्रिट्ज़ कंकेल के मनोविज्ञान और बाबा के उपदेश में विचित्र समानता है। डाक्टर कंकेल कहते हैं कि किसी मनुष्य की मनोवैज्ञानिक परिपक्वता उसकी 'प्रतीक्षा' करने अथवा तनाव को सहन करने की योग्यता द्वारा नापी जा सकती है। उस 'प्रतीक्षा' काल के दौरान में वह प्रेम सम्बन्ध के सूक्ष्मतर आध्यात्मिक रूपों की उन्नति करने और उसके द्वारा मनुष्य और स्त्री दोनों के जीवनों को अत्यन्त धनी बनाने का समर्थन करते हैं।

यह बाबा के इस कथन के अनुरूप है कि केवल जब स्त्री–पुरुष का साथ आपसी ज़िम्मेदारी और आध्यात्मिक आदर्शवाद के भाव से युक्त होता है, तभी प्रेम के कामवासनापूर्ण रूपों को निर्मल किया जा सकता है। विवाह सम्बन्ध में पति–पत्नी को अपने घनिष्ठ दैनिक समागम के कारण अपने व्यक्तित्वों की पूरी जटिल समस्या को हल करने के लिये मजबूर होना पड़ता है। उस सापेक्षिक रूप से सरल समस्या के बावजूद, जो अवैवाहिक सम्बन्ध में निहित होती है किसी भी प्रकार के **अस्थायी** सम्बन्ध में लोग एक भूमिका को अदा करने में अपनी पूरी शक्ति अनिवार्य रूप से लगाते हैं, वह भूमिका साधारणतया दूसरे पक्ष द्वारा उनके ऊपर लादी जाती है। केवल जिस समय दोनों पक्ष स्थायी सम्बन्ध में गम्भीर रूप से बँध जाते हैं, तभी वे अपने चरित्रों के समस्त पहलुओं को स्पष्ट होने देते हैं। केवल तभी उनको 'अपना बाल बाँका होने देने' का साहस प्राप्त हो सकता है। इस स्थायी सम्बन्ध में बँधे बगैर पुरुष और स्त्री का **परस्पर एक होना** असम्भव है और अनिवार्य सामंजस्यों के लिये ज़िम्मेदारी ग्रहण करना असम्भव है, जो 'परस्पर एक होने' के लिये यथेष्ट होती है। उन लोगों के लिये, जो अपना सामना करने और अपने आपको समझने के लिये इस प्रकार समर्थ होते हैं, विवाह एक मूल्यवान साधन बन जाता है जिसके द्वारा पति–पत्नी को अपनी गुप्त प्रवृत्तियों तथा कमज़ोरियों का ज्ञान हो सकता है। वे एक दूसरे के लिये व्यक्तित्व की सुषुप्त विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं जिनका उन्हें प्रारम्भ में बिल्कुल ज्ञान न रहा होगा, और जैसे जैसे वे इन गुप्त सुषुप्त विशेषताओं को अपने चेतन जीवन में सम्मिलित करते हैं, वैसे

वैसे वे असन्तुलित होने की बजाय अधिक सन्तुलित होते जाते हैं।

तब, एक सच्चे विवाह–सम्बन्ध में गुँथे हुये दम्पत्ति सुखों और दुखों में परस्पर स्वार्थरहित भाग लेने के द्वारा प्रेम के उत्तरोत्तर उच्चतर धरातलों पर पहुँच सकते हैं, जब तक कि अन्त में प्रारम्भिक काल के अधिकार जमाने वाले वेग (Possessive Passion) का स्थान स्वार्थरहित तथा व्यापक प्रेम की अधिक गहरी भावना ग्रहण नहीं कर लेती। ऐसे निर्मल हुये विवाह सम्बन्ध के पति–पत्नी अन्ततः आध्यात्मिक मार्ग पर इतने आगे बढ़ जाते हैं कि उनकी आत्माओं को शाश्वत प्रेम के मन्दिर में प्रविष्ट करने के लिये उन्हें सद्गुरु के केवल अन्तिम स्पर्श की आवश्यकता होती है।

बाबा के शिष्यों में विवाहित और अविवाहित दोनों प्रकार के स्त्री व पुरुष हैं, यद्यपि भारतीय पुरुषों को शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों में उनके अविवाहित रहने के लिये कठोर अनुशासन दिया गया था। फिर भी, बम्बई (अब मुंबई) आश्रम की अवधि के अन्त में बाबा ने अपने जनों से अपने विवाह करने के विषय में उनकी इच्छा पूछी, और उनको विश्वास दिलाया कि उनके किसी भी प्रकार के निर्णय से उनके आध्यात्मिक विकास में मन्दता न आवेगी। उनमें से केवल एक शिष्य ने विवाह करने का निश्चय किया, परन्तु वह, उसकी पत्नी और उसके छः बच्चे बाबा के घनिष्ठतम जनों में से हैं।

बाबा के समान व्यक्ति के लिए, जो (बाबा) पुरुष तथा स्त्री जातियों की भौतिक पृथकता के लिए आध्यात्मिक कारणों को जानते हैं, कामवासना में मनुष्य की लिप्सा बहुत बढ़ा चढ़ा कर तथा विकृत रूप में बताई जाती है। वह कहते हैं कि विषय–वासना की परम्परागत प्रवृत्ति, जो जनचेतना में गहरी जमी हुई तथा पोषित है, अधिकांश बुराइयों और कुमार्गों के लिए ज़िम्मेदार है जो आधुनिक जीवन के अत्यन्त दुखद उपफल हैं। गम्भीर आध्यात्मिक साधक के लिए बाबा विवाह की अपेक्षा कठोर ब्रह्मचर्य का समर्थन करते हैं, बशर्ते कि आत्म–दमन की किसी अनुचित भावना के बगैर शिष्य

में आसानी से संयम आये। वास्तव में इसका निश्चय शिष्य के पिछले जीवन–अनुभव द्वारा होता है। अपने छिपे हुये उच्चतर आध्यात्मिक अर्थों से अलग, ब्रह्मचर्य संयम की आदत, शरीर से अनासक्ति और मनुष्यों से स्वाधीनता पाने के हेतु मूल्यवान होता है, जिनको वह जन्म देता है।

स्वेच्छिक ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य में भी कोई क्षीणता उत्पन्न नहीं करता। इसके विपरीत, यदि ब्रह्मचर्य की रचनात्मक भूमिका की समझ रखते हुये ब्रह्मचर्य को प्राप्त किया जाता है तथा उसका अभ्यास किया जाता है, तो वह शिष्य की आध्यात्मिक उन्नति को बढ़ाने के साथ साथ उसके स्वास्थ्य में भी महान उन्नति करता है। तो भी, ब्रह्मचर्य का पूरा लाभ तब तक सिद्ध नहीं हो पाता जब तक **सच्ची** निर्लिप्तता (Detachment) प्राप्त नहीं होती और यह केवल उसी समय सम्भव होता है जब आत्मा ऐसे ईश्वरीय तथा उत्कृष्ट प्रेम के द्वारा जागृत हो जाती है जिससे तृष्णा का सहज तथा स्थायी त्याग उसका स्वाभाविक उपफल बन जाता है।

पवित्र प्रेम, जो बाबा के सन्देश का मुख्य अंग और सार है, सदैव ईश्वर अथवा सद्‌गुरु की कृपा स्वरूप प्राप्त होता है। उसमें केवल एक अभिलाषा होती है– दैवी प्रियतम में मिल जाने की। समस्त अल्पतर अभिलाषाओं से चेतना की ऐसी उपरामता शुद्ध पवित्रता प्राप्त कराती है। उसकी प्रचण्डता की ज्वाला में सब नीच विचार और मनोभाव भस्म हो जाते हैं, स्फूर्तियाँ मनुष्य की सत्ता के केन्द्र, अर्थात् ईश्वर–केन्द्र, में केन्द्रित हो जाती हैं, जो सद्‌गुरु के शिष्य के लिए सद्‌गुरु की आत्मा का पर्यायवाची होता है।

प्रमुख कारणों में से यही एक कारण है जिससे ईश्वर के सजीव साकार रूप–अर्थात् सद्‌गुरु–से चेतनतया सम्पर्क करना आवश्यक होता है। केवल पूर्ण हार्दिक प्रेम ही **ईश्वरीय मर्ज़ी** के प्रति मनुष्य की व्यक्तिगत इच्छा का सहज रूप से पुनः समर्पण करा सकता है। इस प्रकार सद्‌गुरु ईश्वर के अपार जीवन में प्रवेश कराने के लिए जीता जागता प्रवेशद्वार बन जाता है। इसी प्रकार से आध्यात्मिक जनजागरणों के हेतु पृथ्वी पर ईश्वर

की **साकार** उपस्थिति आवश्यक होती है। मानवरूप में ईश्वर का शक्तिमान तथा प्रकट स्वरूप एक दिव्य चुम्बक की भाँति कार्य करता है जो जनचेतना को लौकिक धरातल से खींचकर आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा देता है। ईश्वर की भावात्मक सिद्धि बहुत कम लोगों को होती है, और उन थोड़े लोगों को भी, **अन्तिम** लक्ष्य को प्राप्त करने से पहले, एक ऐसे व्यक्ति की सेवाओं की आवश्यकता होती है जिसने महान परिवर्तन प्राप्त कर लिया है और जो उनकी चेतना को उस सीमान्तरेखा के पार पहुँचा सकता है जो परिमितता को अपारता से अलग करती है। **कोई भी मनुष्य इस अन्तिम आत्म–समर्पण को अकेले सिद्ध नहीं कर सकता।**

मुक्ति के क्षण तक मनुष्य के मन का उपयोग मुक्ति के माध्यम के रूप में होना चाहिये। यदि ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त करना है, तो मन को चेतनतया शक्तियों (Energies) को केन्द्रीभूत करना चाहिए और उनके ऊपर अधिकार करना तथा उनका संचालन करना चाहिये। इस प्रक्रिया को मुमुक्षु अधिकांशतः अपने निजी प्रयत्नों के द्वारा तभी पूर्ण कर सकता है, यदि ईश्वर में मिलने की उसकी अभिलाषा तथा इच्छा काफ़ी बलवती है और उसकी एकाग्रता (Single-mindedness) अटल है। परन्तु अन्ततः वह क्षण आता है जब मन का कार्य पूरा हो जाता है और, हमारे ईश्वर में मिलकर उससे एकता प्राप्त करने के लिये, हमें मन को द्वैत की भावना समेत लाँघना आवश्यक होता है। बस यही कठिनाई का स्थल है। चेतन मन ऐसा 'होने देने' के लिये राजी और उत्सुक हो सकता है, परन्तु सामूहिक अधिमानस (Subconscious Collective mind), जिसमें भूतकाल के व्यक्तिगत तथा जातिगत संस्कारों व प्रवृत्तियों का निवास रहता है, हमको पीछे की ओर माया तथा अलग अस्तित्व की दुनियाँ में खींचता है। यह सच है कि पीछे की ओर खींचे जाने के पूर्व मनुष्य दिनों, हफ़्तों और महीनों तक अपार शक्तियों, अपार आनन्द और अपार ज्ञान का अनुभव कर सकता है, परन्तु जब तक मन के संस्कार और उसकी प्रवृत्तियाँ **स्थायी रूप से** नष्ट नहीं हो जाते तब तक वे देर सबेर ईश्वरीय मार्ग के यात्री को पीछे की ओर खींचकर सीमित अस्तित्व में डाल देते हैं।

आत्मा **ईश्वरपन** के अनन्त अधिकारों का उपभोग करने के लिये स्वतन्त्र हो सके, इसके पूर्व मन के प्रभुत्त्व से उसका अन्तिम छुटकारा होना

आवश्यक है। यह मुक्ति मनुष्य में एक अन्धा कर देने वाली चमक के समान आती है, और उस अपार क्षण में प्रत्येक विचार, प्रत्येक भावना, और प्रत्येक धारणा का लोप हो जाता है। चेतना बनी रहती है–किन्तु **शून्य** की चेतना। न तो खुद (Self) की चेतना रहती है और न ईश्वर की चेतना; केवल रिक्त, निपट शून्यता रहती है ! यह एक भयावह अनुभव होता है। चाहे आत्मा कितनी ही साहसी क्यों न हो, चाहे इच्छाशक्ति की इस अथाह गहराई से गुजरने के लिये कितनी ही दृढ़ इच्छा संकल्प क्यों न रखती हो, परन्तु अन्तःप्रवृत्ति से प्रेरित मन इससे पीछे हटता है, और इसके पूर्व कि मनुष्य इसको पार करने का साहस बटोर सके, वह क्षण गुजर जाता है और आत्मा फिर से अपने को सुखदायी, चिर–अभ्यस्त, तथा सीमित घर में वापस पाती है।

फिर भी, यदि इस स्थल पर किसी को पूर्ण चेतना के सद्गुरु का शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त होता है, तो वह इस अन्तिम अनुभव से होकर शब्दशः 'खिंच' सकता हैं, बशर्ते कि सद्गुरु के प्रति उसका प्रेम और उनमें उसका विश्वास पर्याप्त रूप से आत्म को भस्म करने वाले हों। ऐसे प्रेम से सम्पन्न होने पर साधक **प्रियतम** में समाकर उससे एक हो जाने के हेतु किसी भी कसौटी पर कसे जाने के लिये और हर आत्मसंताप को भोगने के लिये राज़ी होता है। भयभीत करने वाली शून्यता के इस क्षण से परे परमानन्दयुक्त चेतन ईश्वर का अनन्त साम्राज्य होता है।

इस प्रकार, साधक के लिये विवाह अथवा ब्रह्मचर्य दोनों में मुक्ति का मार्ग खुला होता है, बशर्ते कि वह अपने मनोनीत जीवन–मार्ग को आध्यात्मिक मार्ग का एक साहसिक कार्य माने। जीवन मार्ग का यह चुनाव स्वभावतः उसके पूर्व जन्मों की पृष्ठभूमि द्वारा निश्चित होता है। इन दो **सूरतों** में से प्रत्येक में, जैसे जैसे **ईश्वरीय सत्य** को प्राप्त करने के लिये खोज करने वाले की उत्कंठा बढ़ती जाती है वैसे वैसे वह तृष्णा तथा इच्छा से क्रमशः स्वतंत्र होता जाता है, जब तक कि वह जीवन का अन्तिम लक्ष्य–अर्थात् **मुक्ति**–नहीं प्राप्त कर लेता।

अपने पहले आश्रम के उस प्रारम्भिक काल में अपने शिष्यों की रुचि को सजग रखने की आवश्यकता को जानते हुए, बाबा इस बात की चिन्ता रखते थे कि उन लोगों का जीवन नीरस अथवा मन्द न होने पावे। इसलिए वह कभी कभी उन लोगों को थियेटर तथा सिनेमा दिखाने के लिए ले जाते थे, और आश्रम में रहते हुए वह कई भीतर तथा बाहर खेले जाने वाले खेलों को प्रोत्साहन देते थे। यद्यपि उनकी दिनचर्या में धार्मिक निष्ठाओं तथा आध्यात्मिक गीतों का गायन भी शामिल था, तथापि अपने बीसवीं सदी के शिष्यों को ऐसी ट्रेनिंग देने का बाबा का ढँग, जिससे वे लोग उनसे सम्पर्क त्यागे बिना दुनियाँ में कार्य कर सकें, किसी परम्परागत पद्धति के अनुसार न था। उनकी शिक्षण–कला (Technique) उस बात की पुष्टि करती है जो उन्होंने बहुधा हमको बताई है : कि वह हमको सन्सार में अपना स्थान ग्रहण करने की, और फिर भी सन्सार का न होने की, ट्रेनिंग दे रहे हैं।

उस घनिष्ठ सम्बन्ध में जो बाबा और उनके शिष्यों के बीच में स्थापित था, बाबा उनको अमूल्य उपदेश देने का कोई भी अवसर कभी नहीं चूकते थे। एक दिन सन्ध्या समय, जिस समय वे लोग विशेष रूप से लगाई गई बिजली के प्रकाश में अहाते के अन्दर अन्टागोली का एक नया खेल खेल रहे थे, बाबा ने आत्मा की कसौटी करने वाला एक और नाटक खेला। एक विवाहित शिष्य रमजू अपने इकलौते बेटे की तन्दुरुस्ती के विषय में चिन्तित था, जो कुछ समय से बीमार था। वह अपनी धर्मपत्नी के विषय में भी परेशान था जो गर्भवती थी। उस दिन सन्ध्या समय वह प्रत्यक्ष रूप से चिन्तित अवस्था में आश्रम में पहुँचा क्योंकि उसको उनका कोई समाचार न मिला था। वह बाहर निकल कर अहाते में आया जहाँ सब शिष्य नया खेल खेलने में मग्न थे। बाबा सदैव की भाँति प्रसन्न मुद्रा में थे, जब तक कि रमजू वहाँ नहीं पहुँचा था। आश्रम–परिवार के प्रत्येक सदस्य के मिलने पर बाबा जिस प्रसन्नता से उनसे सदैव अभिवादन करते थे उसकी बजाय आज उन्होंने रमजू के ऊपर एक गम्भीर चितवन डाली। फिर उन्होंने एक दूसरे शिष्य की ओर मुड़ कर उससे पूछा : "क्या हम इसको अभी ही बता दें ?"

उस शिष्य ने वैसे ही गम्भीर स्वर में उत्तर देते हुए सुझाव दिया कि भोजन के पश्चात् रमजू को वह समाचार देना अधिक विचारपूर्ण होगा। कुछ मिनट के बाद बाबा ने कहा : "मेरे विचार में यह ज़्यादा अच्छा होगा कि हम अभी उसको तार के विषय में बता दें।"

तब उन्होंने रमजू को साफ़ साफ़ बता दिया कि उसका बेटा मर गया था। इस आकस्मिक धक्के की कोई भी प्रतिक्रिया रमजू के भीतर न हो पाई थी, कि बाबा ने उसको सबके साथ खेल खेलने की आज्ञा दी। एक क्षण के लिए वह अत्यधिक चकित हो जाने के कारण वहाँ से हिल न सका, परन्तु शीघ्र ही अपने को सँभालते हुए उसने बाबा की आज्ञा का पालन किया। इस अनुभव को बताते हुए रमजू कहता है कि जिस समय वह एक यन्त्र की भाँति खेल में सम्मिलित हुआ तो बिजली की बत्तियाँ उसको तैरती हुई दिखाई देती थीं और खिलाड़ी एक भयानक स्वप्न में छायाओं की तरह दिखाई देते थे। जैसे ही रमजू ने बिना हिचकिचाहट के बाबा की आज्ञा का पालन कर दिया, बाबा ने उसको वापस बुलाया और उसके हाथ में तार दे दिया। तार में यह सन्देश लिखा था कि रमजू के एक और पुत्र पैदा हुआ था और उसके परिवार में सब प्रकार से कुशलता थी ! इस प्रकार से सद्गुरु अपने सब शिष्यों को व्यक्तिगत वेदना अथवा शोक को पार करने की शिक्षा देता है, जिससे वे लोग अन्ततः ईश्वर के उन्मुक्त जीवन का अनुभव कर सकें।

थोड़े ही लोग, विशेषतः पश्चिमी देशों में, ईश्वर–पुरुष के इस रूप को समझने में समर्थ होते हैं। पश्चिमी देशों का औसत धार्मिक व्यक्ति भौतिक सुख तथा आराम की चरमसीमा को प्राप्त कर चुकने के पश्चात्, ईश्वर में एक ऐसे दयालु पिता का स्वयंकल्पित रूप देखना चाहता है जो (पिता) अपनी सन्तान की समस्त इच्छाओं को पूरा करता है। यह विशेष रूप से उनके विषय में सत्य है जिनकी धार्मिक पृष्ठभूमि ने उनके अन्तर में यह विश्वास जमा दिया है कि ईश्वर कभी पीड़ा नहीं देता। उनकी दृष्टि में दयालुता, कोमलता तथा अनुग्रह की पर्यायवाची है। बस यहीं उनकी आध्यात्मिक परिपक्वता का अभाव प्रकट होता है। आत्मा को भोग के बन्धन से, अथवा कष्ट के प्रति घृणा से, स्वतन्त्र करने की महानतर दयालुता को वे पूर्ण रूप से नहीं समझते।

फ़ौलादी अनुशासन बर्तते हुए भी, बाबा वाणी तथा विचार की स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देते थे। मण्डली की अपनी निजी शासिका–परिषद् थी जो **गुट्टा** (मधुशाला) कहलाती थी जो हमारे पश्चिमी देशों के क़हवा–गृह (Cafe) के अनुरूप है। वह गुट्टा समय समय पर भोजन के उपरान्त एकत्रित होता था, और उस समय हर व्यक्ति विचाराधीन विषयों पर स्वतन्त्रता पूर्वक अपना दृष्टिकोण प्रकट करता था। गुट्टा को शोर गुल से बचाने के लिए, जैसे कि वे स्थान होते हैं जिनके नामों पर उसका नामकरण हुआ था, उन्होंने दृढ़ नियम बना लिया था कि एक समय पर केवल एक आदमी बोल सकता था, और वह भी केवल सभापति की आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् ही। आश्रम के सदस्यों की पूरी कमाई एक सामान्य कोष में रक्खी जाती थी। उसके लाभों में सबको समान भाग मिलता था। कोई भी व्यक्ति किसी निजी सम्पत्ति का मालिक न था। यद्यपि बाबा हरेक को अपने विशेष गुणों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करते थे, तथापि सब लोग बाबा के प्रति अपने प्रेम के द्वारा भाईचारे में गुँथे थे, जिनके विषय में उनमें से कई लोग उपासनी महाराज की यह सलाह सुन चुके थे : "मेहेरवान का अनुकरण करो; जैसा वह कहे वैसा करो; वह समय आयेगा जब सारी दुनियाँ उसके पीछे चलेगी।"

एक शिष्य विशेष रूप से कठोर व्यवहार का भागी बनाया गया था। बाबा उसको उसके कर्मबन्धन से मुक्त करने में अपनी विचित्र तथा सांकेतिक रीति से सहायता करने के लिए, उसका बोरिया बिस्तर बहुधा खिड़की से बाहर फेंक दिया करते थे और बारम्बार उससे कहते थे कि "तुम यहाँ से चले जाओ, तुम्हारी यहाँ ज़रूरत नहीं है।" उस शिष्य ने सौभाग्यवश इस व्यवहार के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को अपनी बुद्धि अथवा भावावेशों की अपेक्षा अपने अन्तर्ज्ञान से नियन्त्रित किया। वह बाबा से मज़बूती से चिपटा रहा, और अब वह बाबा के सबसे घनिष्ठ शिष्यों में से है।

जैसे जैसे वह आश्रम–काल व्यतीत होता था, वैसे वैसे बाबा अपने शिष्यों के चारों ओर अपना आध्यात्मिक 'जाल' जकड़ते जाते थे। वह उन लोगों के मन की लहरों तथा उनकी पसंद की ओर कम से कम ध्यान देते थे; और वह उनको एक दूसरे के प्रति 'झुकने' के लिए–अर्थात्

अपना मूल्यवान दृष्टिकोण अथवा स्वभाव छोड़ने के लिए—कहते थे। बहर्हाल, कठोर नियमों और कठिन परीक्षाओं तथा कसौटियों के बावजूद, शिष्य लोग **मंज़िल—ए—मीम** के अपने जीवन को बड़े ही चाव तथा उत्सुकता से याद करते हैं।

इस अवधि में बाबा लम्बे उपवास करते थे जिनमें वह पानी, दूध अथवा नीबू का रस ही पीते थे, और उनकी स्फूर्ति तथा संचालक शक्ति पर कोई हानिकारी प्रभाव नहीं पड़ता था। यदा कदा वह आकस्मिक तीव्र कष्ट प्रदर्शित करते थे, जिसमें उनका शरीर पीड़ा के मारे फटा जाता था। फिर वैसे ही आकस्मिक रूप से उनकी वह व्यथा ग़ायब हो जाती थी। उन्होंने अपनी शिष्य मण्डली से बताया कि उन्हें मण्डली के कल्याण के लिए ही उन सामयिक सन्तापों को भोगना पड़ता था; और अन्ततः बाबा को उनमें से प्रत्येक के लिए कष्ट भोगना तथा मरना पड़ेगा क्योंकि उन्होंने उनकी व्यक्तिगत मुक्ति की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है।

हम में से अधिकांश लोगों के लिए, विशेषतः पश्चिमी जगत में, अपने जीवन का संचालन दूसरे व्यक्ति पर छोड़ने का विचार बिल्कुल अरुचिकर होता है। जब तक हम कैथोलिक (उदार ईसाई—सम्प्रदाय।) परम्परा में पोषित नहीं होते, अथवा पश्चिमी वैरागी सन्तों की जीवनियाँ नहीं पढ़ते, तब तक हम उन महान लाभों को नहीं जानते जो 'आज्ञापालन' के अनुशासन से प्राप्त होते हैं। हमारे अहंकार भरे मन हठ करते हैं कि ऐसा मार्ग बालकों जैसा है—वह प्रौढ़ मनुष्यों के योग्य नहीं है। हमको शिक्षा दी गई है, और हम दृढ़तापूर्वक विश्वास करते हैं, कि हम **स्वर्ग** का मार्ग प्राप्त कर सकते हैं; और यह सच है। किसी और की सहायता के बिना हम अपनी निजी चेष्टाओं के द्वारा अपने लिए **स्वर्ग** अथवा **नर्क** की रचना कर सकते हैं; परन्तु स्वर्ग और नर्क **दोनों** बन्धन हैं, और इसलिए वे व्यक्तिगत आत्मा की ज्ञान—प्राप्ति में बाधक होते हैं। स्वर्ग अच्छे कर्म करने के प्रयास का उपफल है और नर्क बिना किसी रोक के किए गए दुष्कर्मों का न्यायसंगत

परिणाम है। आध्यात्मिक मुक्ति, जिसको प्राप्त करने में सद्गुरु शिष्य की सहायता करता है, भलाई तथा बुराई—स्वर्ग तथा नर्क—के द्वैत से परे है। पूर्ण सन्तुलन प्राप्त होने से पूर्व, आत्मा के बहीखाते से जमा तथा खर्च की क़लमों का बिल्कुल समाप्त होना आवश्यक है, क़लमों के पूरे योग के अर्थ में नहीं किन्तु आत्मा के अच्छे और बुरे संस्कारों की तुलनात्मक कोटि के अर्थ में। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितने ही ऊँचे भाग्य वाला क्यों न हो, यह सन्तुलन सद्गुरु की सहायता के बिना प्राप्त नहीं कर सकता, यद्यपि एक प्रचण्ड इच्छा वाली आत्मा जीवन के लक्ष्य की ओर बहुत दूर तक भले ही पहुँच जाये।

बाबा के दूसरे सद्गुरु उपासनी महाराज के अनुभव के उदाहरण द्वारा यह बात अनिवार्य रूप से स्पष्ट होती है कि सद्गुरु की सहायता कितनी अनिवार्य होती है, शिष्य तथा उसके प्रारब्धिक सद्गुरु के बीच में घनिष्ठता कितनी आवश्यक होती है, और अपने चुने हुए शिष्य के पुनर्जीवन में सद्गुरु की ज़िम्मेदारी के अन्तर्गत किस प्रकार शिष्य का सर्वस्व निहित रहता है। जब उपासनी महाराज अपने गुरु साईंबाबा के शिष्य हो गए, तब उनको अपने चार वर्ष के शिक्षण—काल की तैयारी के लिए साईंबाबा से निम्नलिखित आदेश प्राप्त हुआ :—

"तुम्हें किसी भी बात के लिए चिन्ता नहीं करनी है। मुझे तुम्हारी योग्यता का पूर्ण ज्ञान है। कई वर्षों से मैं तुम्हारे मार्ग को पीछे से देखता रहा हूँ। इन वर्षों में तुमने जो भी भले अथवा बुरे कर्म किये हैं वे वास्तव में मेरे द्वारा प्रेरित किए गए हैं। तुमको मेरा ज्ञान न था, परन्तु मुझे तुम्हारा पूरा ज्ञान था। वर्षों से मैं अपने हृदय में तुम्हारा विचार करता रहा हूँ। अब तुम अपने घर पर हो; तुम्हारे जाने के लिए कोई दूसरा स्थान नहीं है। यदि तुम कुछ भी करने में असमर्थ हो, तो तुम कुछ न करो।"

तब उस परम सेवा का संकेत करने वाली भाषा में, जो (सेवा) उपासनी महाराज को ईश्वर से मिलाने के रूप में करने का प्रारब्ध उनको प्राप्त हुआ था, साईंबाबा ने कहा : "मैं खुद तुम्हारे लिए टिकट खरीदूँगा, और अपने ही हाथों से तुमको रेलगाड़ी में बैठाऊँगा; और रेलगाड़ी को कहीं भी न रुकने देकर मैं तुमको सीधा अन्तिम लक्ष्य तक ले चलूँगा।"

दूसरे शब्दों में, वह अपने शिष्य को किन्हीं भी लौकिक भूमिकाओं में भटकने अथवा खोने न देंगे, किन्तु उसको सीधे चेतना के शिखर पर ले जायेंगे। जब उपासनी महाराज को अपने **सद्गुरु** के प्रेमपूर्ण पथ–प्रदर्शन के द्वारा अन्त में ईश्वर–साक्षात्कार प्राप्त हो गया, तब साईंबाबा ने समझायाः–

"मैंने महाराज को सबकुछ दे दिया है। वह जो कुछ है, मेरा है। मुझमें और उसमें कोई आध्यात्मिक अन्तर नहीं है। आज उसमें जो आध्यात्मिक पूर्णता है उसके लिए केवल मेरी ही ज़िम्मेदारी है।"

बम्बई (अब मुंबई) में रहने की अवधि में बाबा ने अपने शिष्यों के साथ निकटवर्ती तीर्थ–स्थानों की थोड़े थोड़े समय के लिये कई यात्राएँ कीं। इनमें से एक तीर्थयात्रा मुसलमान सद्गुरु हाजी मलंगशाह की समाधि की थी। उस मज़ार तक पहुँचना, जो एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित था, एक कठिन परीक्षा थी। वहाँ से लौटने पर शिष्य लोग थक गए थे और धूप से परेशान थे, परन्तु बाबा ने उन्हें आज्ञा दी कि वे लोग उस गर्मी में चौदह मील और धूल से भरा मार्ग तय करके रेलवे स्टेशन पहुँचने से पहले पानी न पियें।

ऐसी दिखावे में निरंकुश आज्ञाएँ केवल तभी समझ में आ सकती हैं जब मनुष्य को यह अनुभव हो जाता है कि बाबा की प्रत्येक बाहरी क्रिया भीतरी महत्व से भरी होती है; और एक सद्गुरु की समाधि की इस तीर्थयात्रा का उन तीर्थयात्रियों के आध्यात्मिक विकास से निसंदेह गम्भीर सम्बन्ध था। सद्गुरु के बुद्धिमत्तापूर्ण मत में, किसी मनुष्य का अपनी भौतिक प्यास को यात्रा पूरी होने से पहले शान्त करना उसकी **मुक्ति** के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने में तद्रूप आध्यात्मिक बाधा तथा विलम्ब के रूप में प्रकट होगा।

बाबा की अन्य अनेक आज्ञाओं की भाँति इस कठोर आज्ञा से कदाचित् दो प्रयोजन पूरे होते थे। विशुद्ध विवेकपूर्ण आधार पर, ऐसे अनुशासन का मूल्य स्पष्ट है। प्रतीक्षा करना सीखना, और अपने आपके

लिये क्षणिक तृप्ति का त्याग करना, निःसन्देह निर्बलता को मिटाने में सहायक होता है–चरित्रबल प्रदान करता है। कदाचित् मनुष्य के **प्रभु** ने इस बार ऐसे शिष्य वर्ग को शिक्षित करने का संकल्प कर लिया है जो दुनियाँ के मायाजाल में जल्दी न सोयेंगे।

मार्च सन् 1923 ई. के अन्तिम दिन बाबा ने अपने जनों को बताया कि बम्बई (अब मुंबई) का आश्रम भंग कर दिया जायेगा, यद्यपि मकान के किरायानामा में दो माह की किरायेदारी अब भी शेष थी। जब बाबा को अपने कार्य के हित में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है, तो ऐसे पट्टों का मसला उनके लिए कोई महत्व नहीं रखता, चाहे यह परिवर्तन उन लोगों के लिए कितना ही कष्टदायी क्यों न हो जिनको उस मसले का समाधान करना पड़ता है; और न तो बाबा के लिए समय से बँधी हुई दिनचर्या के बन्धन ही होते हैं। बाबा के लिए परिवर्तन सदैव नित्य का कार्यक्रम होता है। कोई भी मनुष्य, जो बाबा के साथ कितने ही समय तक रहा हो, यह आशा नहीं करता कि बाबा की योजनाएँ बुद्धि द्वारा बनाए गए समय–विभागों के अनुसार कार्यान्वित होंगी। तथापि, जब बाहरी परिस्थितियाँ बाबा के भीतरी कार्य से मेल खा जाती हैं, तब हर बात बिल्कुल ठीक समय पर घटित होती है; क्योंकि यद्यपि उनके अस्तित्व का अधिकांश भाग उस प्रदेश में कार्य करता है जो समय की सीमाओं से परे है, तथापि इस भौतिक क्षेत्र में बाबा समय की अत्यन्त सूक्ष्म पाबन्दी करते हैं। यदि वह आज्ञा देते हैं कि किसी यात्रा के लिए आधी रात के समय 12 बजकर 5 मिनट पर प्रस्थान किया जाये, तो वह ठीक उसी क्षण पर प्रस्थान करने के लिए निश्चय ही तैयार मिलेंगे। ऐसा वह समय की निरंकुश सूक्ष्म पाबन्दी के भाव से नहीं करते, वरन् इस कारण से करते हैं कि बाबा का समय–निर्धारण उनके शिष्यों के हेतु अथवा उनके विश्वव्यापी कार्य के सम्बन्ध में, ऊपर से दिखाई देने वाले महत्व की अपेक्षा सदैव गम्भीरतर महत्व रखता है। इस कारण से वह शिष्यों के धीमेपन को सहन नहीं करते।

बाबा के दूसरे आश्रम का केन्द्र–स्थान अहमदनगर को बनना था। वह अपने साथ केवल थोड़े से शिष्य ले गए; और दूसरे शिष्यों को उन्होंने थोड़े समय के लिये अपने–अपने घर भेज दिया। अहमदनगर में अन्ततः स्थापित होने से पहले बाबा ने अपने अनुयायियों की इस छोटी टोली के साथ अनेक छोटी छोटी यात्रायें कीं। अहमदनगर से लगभग पाँच मील पर स्थित आरनगाँव में ठहरने का निश्चय बाबा ने किया, जहाँ प्रसिद्ध है कि बुआजी बुआ नाम के एक हिन्दू सन्त ने जीवित समाधि ले ली थी, और उन्होंने (बाबा ने) अपने जनों को डाकखाने की इमारत के एक ऊजड़ खण्डहर के चारों ओर पड़े हुए मलबा को साफ़ करने की आज्ञा दी। उन्होंने तुरन्त ही कार्य प्रारम्भ कर दिया। परन्तु वहाँ केवल चार दिन रहने के पश्चात् बाबा ने अहमदनगर लौट जाने का निश्चय किया।

जिन लोगों ने बाबा के साथ इस निरन्तर परिवर्तनमय जीवन का अनुभव कर लिया है वे क्रमशः महसूस करते हैं कि उनकी भीतरी चेतना में कोई चीज़ मुक्त हो रही है–वे अपने आपको स्थानों, वस्तुओं और मनुष्यों तक से विरक्त होता हुआ पाते हैं। पूर्ण विरक्ति के उदाहरणों के रूप में, जो आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अत्यन्त आवश्यक है, बाबा सन्सार के महानतम शिक्षकों–जुरथस्त्र, बुद्ध, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा–की ओर संकेत करते हैं, जिनकी मुख्य शिक्षा त्याग करने की थी। परन्तु बाबा अपने शिष्यों को यह बात हृदयंगम कराने का प्रयास करते हैं कि त्याग **मन** में होना चाहिए–मनुष्य के अन्तस्तल में होना चाहिए। इसका कारण यह है कि चेतनमन तथा उपमानस में समस्त वासनाओं की जड़ पाई जाती है। इसलिए यदि मनुष्य को स्वतन्त्र बनना है, तो उसके मन को **फक़ीर,** अर्थात् त्यागी, बनना आवश्यक है। जब अन्त में यह स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है, तब मनुष्य सब परिस्थितियों में विरक्त रहता है, चाहे वह कोई भी बाहरी जीवन व्यतीत करे। तब वह अपने लिए कार्य नहीं करता किन्तु **एक** परमात्मा के लिए कार्य करता है–दूसरों की उन्नति के लिये, जो आत्म–प्रकाश प्राप्त किए हुए पुरुषों का सच्चा ध्येय है।

बाबा स्पष्टतया अपने लोगों की छँटनी कर रहे थे–उनके हृदय की दृढ़ता से परीक्षा कर रहे थे। अहमदनगर में प्रवास करने के प्रारम्भिक काल में बाबा ने उन लोगों को तीन बातों में से एक को चुनने का अधिकार दियाः–वे बाबा के साथ रह सकते थे, परन्तु उस सूरत में उन्हें बाबा की आज्ञाओं का अक्षरक्षः पालन करना आवश्यक था और वे सुकुमार बन कर बाबा के साथ नहीं रह सकते थे। अथवा वे आश्रम से दूर रह कर, बाबा द्वारा दिये गये नियमों का पालन करते हुये, बाबा से बाहरी रूप में अलग रह सकते थे। तीसरे, वे लोग बाबा को सदैव के लिये छोड़ सकते थे। परन्तु उनमें से कोई भी जन बाबा से पूर्णतया अलग नहीं होना चाहता था; तेरह जनों ने बाबा के साथ रहने का निश्चय किया, अन्य लोगों ने कुछ समय के लिए अपने घरों को लौटने और वहाँ बाबा की आज्ञाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। वे तेरह जन थेः–बेहरामजी ईरानी, गुस्तादजी हंसोतिया, जाल ईरानी (बाबा के भाई), आदि के. ईरानी, आगा बैदुल, 'चाचा' रुस्तम, बाबा उबाले, रमजू, पेंडू, पादरी, स्लैमसन, एक हिन्दू जिसका नाम बाबा ने 'नर्वस' (Nervous) रक्खा था, और एक मुसलमान जिसका नाम बाबा ने 'बारसोप' (Barsoap) रक्खा था।

बाबा इस बात पर जोर देने में कभी नहीं चूकते थे कि आध्यात्मिक साधक की तीर्थयात्रा निर्बल मनुष्यों का कार्य नहीं है–और इस सत्य के प्रदर्शन के लिये बाबा के शिष्यों को कभी भी बहुत समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी। अपनी मण्डली की छँटनी होने के दूसरे दिन प्रातःकाल ही कलेवा के समय से बहुत पहले बाबा उनको एक यात्रा पर ले चले। कुछ समय तक आरनगाँव की ओर चलने के पश्चात् बाबा ने यकायक अपना मार्ग बदल दिया और उन लोगों से कहा कि वह उन्हें किसी अन्य अज्ञात स्थान को ले जायेंगे। उन लोगों को इस पर आश्चर्य हुआ, परन्तु उन्होंने बाबा से कोई प्रश्न नहीं किया और वे बराबर चलते रहे जब तक कि दो घन्टे बाद बाबा एक सराय में पहुँच कर रुक नहीं गये जो केवल पागल लोगों तथा अपराधियों को रखने के लिए सुरक्षित थी। यहाँ बाबा ने अपनी मण्डली समेत कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया। वापिसी यात्रा

में वे लोग कुछ समय के लिये आरनगाँव में ठहरे। ग्यारह दिन के उपरान्त वे लोग अहमदनगर वापिस पहुँच गये, और वहाँ से एक लम्बी यात्रा की तैयारी करके वे आगरा गये जहाँ उन्होंने ताजमहल देखा। आगरा से वे मथुरा पहुँचे जहाँ उन्होंने पवित्र यमुना नदी में स्नान किया। फिर वे दिल्ली होते हुये कराँची पहुँचे, और कराँची में एक सप्ताह ठहरने के पश्चात् उन लोगों ने बिलोचिस्तान के प्रधान नगर क्वेटा की यात्रा की।

मूल योजना के अनुसार फ़ारस जाने के बजाय बाबा ने रेलगाड़ी से कलकत्ता जाने और वहाँ से भारतीय महाद्वीप आर–पार पैदल चलकर बम्बई (अब मुंबई) जाने का निश्चय किया। इस तीर्थयात्रा में मण्डली का प्रत्येक सदस्य संन्यासी के वस्त्र धारण किये था और सूक्ष्म आहार करता था, और बाबा ने इस यात्रा के शुरू से आखिर तक द्रव पदार्थों का आहार किया। इस लम्बी यात्रा में बाबा आगे–आगे चलते थे और अन्य सब सदस्यों की भाँति वह अपना बिस्तर तथा यात्रा की आवश्यक वस्तुयें अपने ही कन्धों पर लिये रहे थे। अयन वृत्त (Tropical) में स्थित भारतवर्ष की भीषण गर्मी में की गई इस कठोर यात्रा के प्रारम्भ से अन्त तक मण्डली के सब सदस्य बाबा की आज्ञानुसार धीमे स्वर से ईश्वर के उस नाम का जप निरन्तर करते रहते थे जो उनके धर्मों में मान्य था। जब मण्डली के लोग थक जाते थे तब बाबा चलना बन्द कर देते थे। थोड़ा विश्राम करने के बाद ही वे लोग फिर से पैदल चल देते थे, और इस प्रकार साधारणतया वे लोग औसतन पचीस से तीस मील प्रतिदिन पैदल चलते थे। जब वे नवसारी पहुँचे तब उनके बिखरे हुये बालों और बढ़ी हुई दाढ़ियों के कारण उन लोगों की शक्लें इतनी फूहड़ हो गईं थीं कि वहाँ की पुलिस ने उन्हें डाकुओं का वही गिरोह समझा, जिसका पता वह छोटे बच्चों को चुरा ले जाने के अपराध में लगा रही थी ! इस पर बाबा मन ही मन हँसे। जब तक उन्होंने पुलिस के अधिकारियों को अपने विषय में सन्तुष्ट किया कि वे डाकू नहीं थे, तब तक उनमें बहुत कम अहंकार बचा था !

अहमदनगर लौटने के कुछ समय पश्चात् फ़ारस की यात्रा करने के बारे में विचार विनिमय किया गया और उसकी योजना बनाई गई। एक शिष्य जो फ़ारस के राजदूत से फ़ारस देश में जाने का अनुमतिपत्र लेने के लिये बम्बई (अब मुंबई) भेजा गया था, एक विचित्र कहानी के साथ

वापिस आया। राजदूत ने उससे कहा था कि जब तक उस यात्रा की टोली के सब लोग उसके दफ़्तर में खुद न जायेंगे तब तक वह उनको फ़ारस जाने के लिये अनुमतिपत्र नहीं दे सकता था। उसने यह भी कहा कि बाबा को उसके दफ़्तर जाने की आवश्यकता न थी क्योंकि वह कुछ ही दिन पहले वहाँ गये थे और उससे कह आये थे कि यात्रा के लिये उनकी तैयारी हो चुकने पर वह अपना अनुमतिपत्र राजदूत के हस्ताक्षरों के लिये भेज देंगे। वह शिष्य जानता था कि आश्रम लौट आने के बाद बाबा किसी भी दिन अपने स्थूल शरीर से बम्बई (अब मुंबई) अथवा उसके आसपास नहीं गए थे। सद्‌गुरुओं की रीतियाँ तर्कपूर्ण बुद्धि के लिए विचित्र तथा अबोध्य होती हैं।

सन् 1924 ई. के प्रारम्भ में बाबा ने अपने आठ शिष्यों के साथ फ़ारस की प्रथम यात्रा के लिए प्रस्थान किया। फ़ारस बाबा के पूर्वजों का देश है, और अवतार जुरथस्त्र की जन्मभूमि है, जिनके उपदेशों तथा जिनकी शिक्षा पर महान पारसी धर्म की नींव पड़ी थी। यद्यपि उस यात्रा का प्रयोजन मुख्यरूप से बाबा के आन्तरिक कार्य से सम्बन्धित था, तथापि उसने शिष्यों की सुषुप्त प्रवृत्तियों को उत्तेजित करने के पर्याप्त अवसर भी प्रदान किए थे। अयन वृत्तीय (Tropical) ज्वर के भारी क्लेश में मण्डली के कई लोग ग्रसित हो गये थे।

बाबा के संग रहने से रोग अथवा पीड़ा से आवश्यक रूप से छुटकारा नहीं मिल जाता। इसके विपरीत, ठीक जैसे जैसे वह, हमको ईश्वर के प्रति गम्भीरतर प्रेम तथा महानतर श्रद्धा रखने के लिए स्फूर्ति प्रदान करते हुये, हमारी प्रकृतियों के सकारात्मक (positive) पहलू को सजग करते हैं, वैसे वैसे वह बराबर मात्रा में मिथ्या पहलू की नकारात्मक अभिव्यक्ति को उत्तेजित करते हैं। हमारे निज के चेतन आदर्श से मेल न खाने पर हमने तेज़ी से तथा निश्चित रूप से नकारात्मक पहलू को दबा दिया है परन्तु बाबा उन्हें हमारे ध्यान में लाते हैं जिससे हम उनका सामना कर सकें और

रचनात्मक ढँग से उनका प्रयोग कर सकें। चेतना के ऊपर बाबा के प्रभाव का भीषण आघात होने पर, मनुष्य के मन में पड़े हुए बीज—चाहे वे तथाकथित अच्छाई अथवा तथाकथित बुराई के बीज क्यों न हों—अनिवार्य रूप से प्रकट होने लगते हैं। चूँकि बाबा जानते हैं कि द्वन्द्वों के संघर्ष पर अन्ततः विजय प्राप्त करना आवश्यक होता है, इसलिए वह संघर्ष करने वाले तत्त्वों को जानबूझ कर बाहर निकाल लाते हैं, जिससे शिष्य उस संघर्ष को पार करने का मार्ग ढूँढ़ निकालने के लिए मज़बूत हो जाये। ये 'भली' और 'बुरी' प्रवृत्तियाँ, जो **संस्कार** कहलाती हैं, भूतकाल के विचारों, मनोवेगों तथा कर्मों के बंधनकारी परिणाम हैं। हमारी आत्मा को बन्धन में जकड़े रहने वाले इन कर्मपाशों को नष्ट करने का भार बाबा अपने ऊपर उस समय ले लेते हैं, यदि हम उनके पथप्रदर्शन में चलने के लिए आत्मसमर्पण कर दें और वह हमको अपना शिष्य स्वीकार कर लें। ऐसा आत्मसमर्पण कर देने के क्षण से, शिष्य की चेतना अनुभव की उस तमाम प्रखरता के आधीन हो जाती है जिसकी आवश्यकता, बाबा के मत में, उसकी निर्मलता तथा मुक्ति के लिए होती है।

बाबा कुछ भी अस्वीकार नहीं करते। वह सबकुछ स्वीकार करते हैं—**यथार्थता** के रूप में नहीं, परन्तु एक माध्यम के रूप में जिसके द्वारा **यथार्थता** प्रकट हो सकती है। यदि वह कभी भी 'पाप' शब्द का प्रयोग करेंगे, तो वह उसकी परिभाषा करेंगे—जीवन के समस्त प्रकाशनों को आसक्तिरहित भाव से देखने की अपेक्षा, अनुभव के प्रति अहंभाव से प्रतिक्रिया करना और जीवात्मा को उससे पोषित करना। इस अर्थ में, गहन मनोविज्ञान के आध्यात्मिक रूप से अत्यन्त विकसित आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत बाबा की शिक्षा से मेल खाता है।

अपनी आध्यात्मिक कार्यविधि (Technique) का शल्य प्रयोग करने में बाबा पूर्णतया अनासक्त तथा व्यक्तित्त्वरहित (Impersonal) रहते हैं। एक समय अपनी गहरी आन्तरिक उत्तेजना में मैंने बाबा से उस भयानक द्वेष को स्वीकार किया जो मैं अपने साथियों के प्रति महसूस करती थी—वह द्वेष इतना प्रचण्ड था कि मेरे विचार में साथियों को मार डालना महान प्रसन्नता की बात थी ! मैं इस अन्धकारमय पाशविक मनोवेग से अत्यन्त अशान्त थी, इसलिये बाबा को स्पष्ट सन्तोष के साथ मुस्कराते हुये देख कर मुझको

महान आश्चर्य हुआ, और मैं उनके निम्नलिखित शब्दों से और भी चकित हुई :—

"अच्छा ! और क्या तुमको अब भी विषय—वासना महसूस हुई है ?"

मैंने उच्च स्वर से पूछा, "बाबा ! क्या मुझे उसे भी महसूस करना है?"

बाबा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "ईश्वर तक पहुँचने के लिये मनुष्य को हर वस्तु का अनुभव करना होता है।"

उसी समय से मैं समझने लगी कि आध्यात्मिक अखण्डता प्राप्त करने के लिये सामूहिक अचेतन मन की छिपी हुई प्रवृत्तियों तथा शक्तियों को चेतना में लाना आवश्यक होता है—इसलिये नहीं कि उनका प्रयोग अपने सन्तोष के लिये अथवा अपनी पदवी बढ़ाने के लिये किया जाये, वरन् इसलिये कि उनका सामना किया जाये और उनको मनुष्य की विकास सम्बन्धी बपौती के एक अंग के रूप में स्वीकार किया जाये—और फिर उन्हें एक उच्चतर विस्तार तक ऊँचा उठाने की आवश्यकता होती है, जहाँ कि समूह कल्पना (Collection Image) की **शक्ति** रचनात्मक प्रयोग के लिये बनी रहती है जबकि उसका विष अलग होकर गिर जाता है।

फ़ारस की लम्बी यात्रा में बाबा को ऐसे अनेक अवसर प्राप्त हुये जिनमें उन्होंने अपने शिष्यों को सुख तथा दुख से निर्लिप्त रहने की, न भूलने योग्य शिक्षायें दीं। और वापिसी यात्रा में भी उनकी सहन शक्ति तथा बाबा के अटल आत्म—बलिदान की बारम्बार परीक्षायें होती रहीं। सदैव की भाँति बाबा की टोली तीसरे दर्जे में यात्रा करती थी। उनके खाने और सोने के स्थान से लगे हुये भाग में ठेलों भर मुर्गा—मुर्गियाँ, गायें, बकरियाँ, गधे और घोड़े, कुकड़ूँकूँ बोलते थे, रम्भाते थे, में—में करते थे, रेंकते थे तथा हिनहिनाते थे और स्वतन्त्रतापूर्वक टट्टी पेशाब करते थे। भोजन के समय से पहले पेटू अरब निवासी, जो इन जानवरों की देखभाल करते थे, छोटे पशुओं को मार कर उनका प्रायः कच्चा माँस खा जाते थे। सावधान शाकाहारियों की एक टोली के लिये, जिनके निकट जीवन का भौतिक पहलू प्रधान महत्त्व नहीं रखता था, यह बारम्बार घटित होने वाला माँसाहार का आमोद—प्रमोद सचमुच कष्टकारी रहा होगा!

उनके भारतवर्ष लौट आने पर योजनाओं में सदैव की भाँति परिवर्तन किया गया। बाबा की इस विशेषता को बाहरी दृष्टि से देखने पर, कोई बाबा को एक अत्यन्त अस्थिर निश्चय का व्यक्ति समझ सकता है, अथवा सनक और परिस्थिति के द्वारा लुढ़कने वाला समझ सकता है, और पाल ब्रन्टन नाम के एक सज्जन ने, जिन्होंने निकट भूतकाल में भारतवर्ष तथा उसकी शिक्षाओं के विषय में बहुत कुछ लिखा है, बाबा के विषय में ऐसा ही उपरोक्त मत स्थिर किया है। ऐसे आलोचकों के पक्ष में मुझको कुछ कहना है। बाबा बुद्धिप्रधान अथवा तर्कपूर्ण मन वाले लोगों के लिये एक पूर्ण पहेली हैं। वह ऐसी कसौटी द्वारा नहीं परखे जा सकते, क्योंकि वह बुद्धि की भूमिका पर कार्य नहीं करते, यद्यपि संगठन करने, सूक्ष्म बातों का ध्यान रखने, बड़े पैमाने पर संचालन तथा कार्य करने की क्षमता में—जिन सब गुणों का सम्बन्ध हम सन्तुलित तर्कबुद्धि से ठहराते हैं—बाबा का कोई जोड़ नहीं है। यदि बाबा वही हैं जिस रूप में हममें से अनेक लोग उनको जानते हैं, तो हमें मानना होगा कि वह विशुद्ध अन्तर्ज्ञान की भूमिका पर कार्य करते हैं, अर्थात् ऐसे प्रदेश में जहाँ समस्त वस्तुयें व घटनायें ऐसी तरल होती हैं जैसे स्वयं समय होता है; जहाँ वास्तव में समय, जिस रूप में हम उसको जानते हैं, कोई अस्तित्त्व नहीं रखता—जहाँ किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का हमको चक्करदार दिखाई पड़ने वाला मार्ग अन्ततः सीधा से सीधा मार्ग होता है। जिस मनुष्य को आन्तरिक पथप्रदर्शन अथवा अन्तर्ज्ञान से प्रेरित जीवन व्यतीत करने के लिये प्रयत्न करने का अनुभव हो चुका है, उसको ज्ञात होगा कि आत्मा (Spirit) प्रायः कैसी चक्करदार गति से कार्य करती हुई प्रतीत होती है—और ऐसी रीतियों से जो तर्कपूर्ण बुद्धि के लिये मन की कोरी कल्पना प्रतीत होती हैं—फिर भी कैसे चमत्कारिक ढँग से वह सदा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है। मेरे विचार में, जिस दिशा में जाने का लक्ष्य मनुष्य बनाता है ठीक उसके विपरीत दिशा में अग्रसर किये जाने की यह 'प्रतीति' (Seeming) ही अधिकतया आध्यात्मिक जीवन को एक अत्यन्त तन्मयकारी और बहुधा अत्यन्त विनोदपूर्ण साहसिक कार्य बनाती है।

एक स्थान से अचानक दूसरे स्थान को आना—जाना और योजनाओं में अप्रत्याशित तथा विस्मयकारी परिवर्तन सम्बन्धित लोगों के लिये गम्भीर आन्तरिक अर्थ रखने के साथ साथ बाबा के सर्वव्यापक आन्तरिक कार्य के लिये भी गम्भीर महत्त्व रखते हैं। सभी सद्‌गुरुओं के समान, बाबा सामूहिक अथवा व्यक्तिगत चेतना में किये गये किसी परिवर्तन अथवा रूपान्तर को भौतिक भूमिका पर प्रतीक रूप में किसी समानान्तर क्रिया अथवा धार्मिक संस्कार (Ritual) के द्वारा प्रकट करते हैं।

मुझे याद आता है कि जब हम 1937 ई. में फ्रेन्च रिवीरा द्वीपसमूह के केन्स नगर (Cannes) में बाबा के साथ थे, तो बाबा ने हम में से प्रत्येक के रहने के लिये अलग—अलग कमरे बाँट दिये और उन्होंने हमको बताया कि हमको अपने—अपने कमरों में उस वर्ष के भ्रमणकाल में प्रवास करना था। मेरे पति ने और मैंने अपनी चीज़ों को खोल डाला और वहाँ अपने लम्बे प्रवास के लिये अपने कमरे को अपने घर सरीखा बनाने के लिये तैयारी कर ली। जब हम आराम के साथ उनमें बस गये—चौबीस घन्टे के बाद—बाबा ने हमको उसी रियासत की दूसरी इमारत के दूसरे कमरे में जाकर रहने की आज्ञा दी। बाबा ने देख लिया कि हम लोग इस आज्ञा से क्षुब्ध हो गये थे, इसलिये उन्होंने हमको आश्वासन दिया कि उस नये कमरे में हमारा स्थायी प्रवास रहेगा। इसलिये हमने फिर से उस कमरे में एक लम्बे समय तक रहने की तैयारी की, परन्तु हम लोग पुनः वहाँ से भी हटा दिये गये ! इस प्रकार चार दिन के भीतर हमको तीन बार सामान हटाना और आबाद होना पड़ा ! अन्तिम बार मैं अपनी झुंझलाहट को छिपाने में पूर्णतया असमर्थ थी। मैंने **सबकुछ** खोल डाला था ! हम लोगों ने अपनी आवश्यकताओं तथा अपनी रुचि के अनुसार मेज़, कुर्सी इत्यादि सामान को पुनः व्यवस्थित ढँग से लगा दिया था, और आख़िरकार हम—अपने विचार में—आबाद हो गये थे ! बाबा ने मुझको आश्वासन दिया कि वह 'पागल' नहीं थे। उन्होंने कहा "मानव—समुदाय में केवल मैं ही स्वस्थ मन वाला हूँ ! तुम लोगों को इस प्रकार बारम्बार हटाने का एक कारण है ! इनका कुछ अर्थ है।"

मैं आशा करती थी कि उनका अवश्य कुछ अर्थ था, यद्यपि उस समय मुझको उनका कोई न्यायसंगत कारण दिखाई नहीं पड़ता था। वर्षों पश्चात् मैं इन परिवर्तनों में निहित बाबा के अर्थ तथा भीतरी गूढ़ तात्पर्य को, जो उस समय मुझको निरर्थक कठिन परीक्षा जैसे प्रतीत होते थे, कुछ सीमा तक समझने में समर्थ हुई। उस समय भी, इस 'संकटकाल' का एक बिल्कुल स्पष्ट परिणाम यह था कि उसने मुझको यह दिखाया कि मेरा व्यक्तिगत आराम और व्यवस्था तथा सुसंगत व कलापूर्ण वातावरण की मेरी अभिरुचि, प्रमुख महत्व की चीजें नहीं थीं; ऐसी चीजों से आसक्ति वास्तव में आध्यात्मिक जीवन के विकास में एक बाधा थी; और आराम से बसने की अपेक्षा चलता–फिरता रहना अधिक अच्छा था।

बम्बई (अब मुंबई) का आश्रम भंग कर देने के एक वर्ष बाद, बाबा ने एक बार फिर अपने शिष्यों को एकत्रित किया, और अहमदनगर शहर के पास आरनगाँव में अपने नये आश्रम मेहेराबाद की स्थापना की। इस आश्रम में शिष्यों द्वारा पालन किए जाने के लिए पुनः कठोर अनुशासन दिया गया। प्रातः पाँच बजे उठने के समय से दस बजे रात को सोने के समय तक सत्रह घन्टे वे बाग़वानी के काम में, नई इमारतें बनाने में, अथवा पुरानी इमारतों की मरम्मत करने में, तत्पर रहते थे, और इन सत्रह घन्टों में उन्हें केवल पूजा सम्बन्धी कार्यों तथा भोजन के लिए निश्चित समयों की छुट्टी मिलती थी। प्रातः छः बजे से सात बजे तक का समय प्रत्येक जन अपने–अपने धर्म के अनुसार ध्यान अथवा ईश्वर–प्रार्थना करने में लगाता था, और उनमें अनेक धर्मों के लोग थे। धर्म तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि से बाबा की मण्डली स्पष्ट रूप से सार्वभौम है, जो बाबा की निजी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अनुरूप है।

एक वर्ष के भीतर मेहेराबाद में एक छोटा सा क़स्बा आबाद हो गया था–एक पाठशाला, एक डिस्पेंसरी तथा एक अस्पताल, कोढ़ियों व निराश्रयों के लिये एक आश्रम। यहाँ प्रतिदिन सैकड़ों भक्त तथा तीर्थयात्री बाबा के

दर्शनों के लिये नियमित रूप से आते थे और 'अछूत' जाति के बहुतेरे लड़के भजन गाने व ईश–प्रार्थनायें करने के लिये और, यह मानना पड़ेगा कि, मिठाई लेने के लिये आया करते थे जो बाबा सदैव उनको बाँटा करते थे। उन दो वर्षों में जिनमें कि आश्रम का अस्पताल चालू रहा था, सात हज़ार बाहरी रोगियों का और पाँच सौ अस्पताल में भर्ती हुये रोगियों का मुफ़्त इलाज किया गया था।

जिस प्रकार से अस्पताल में रोगियों तथा ग़रीबों का इलाज मुफ्त किया जाता था, उसी प्रकार से 'हज़रत बाबाजान–स्कूल' में उसके विद्यार्थियों को मुफ्त निवास व भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा दी जाती थी। प्रारम्भ में 'अछूत' विद्यार्थी अलग रक्खे गये थे, परन्तु कुछ महीनों के बाद युगों पुराने संस्कार सूक्ष्मता से तोड़ दिये गये और बाबा ने सब जातियों को परस्पर मिलकर रहने की आज्ञा दी। उन्होंने तीस 'अछूत' बालकों को नहलाने का कार्य अपने ऊपर लिया; यह एक सांकेतिक कृत्य था जो बाबा स्कूल के जीवन में अपनी दिनचर्या के रूप में प्रतिदिन किया करते थे। यह एक श्रमपूर्ण कार्य होता था, जिसमें बाबा को लगभग चार घन्टे लगते थे; वे लड़के अकथनीय रूप से गन्दे थे। एक ऐसे ही अवसर पर कुछ ब्राह्मण लोग बाबा का आशीर्वाद लेने के लिये आये। जैसे ही उन्होंने झुककर बाबा को नमस्कार किया, बाबा ने इशारा करके उन्हें दिखाया कि वह 'अछूतों' को स्नान करा रहे थे, और बाबा का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये उन आगन्तुक ब्राह्मणों को हरिजन बालकों को स्नान कराने में बाबा के साथ हाथ बँटाना पड़ेगा। किसी 'अछूत' की **छाया** तक से छू जाना ब्राह्मण द्वारा ईश्वर का शाप माना जाता है। फिर भी, अब बाबा के आशीर्वाद के लिये उनकी क्षुधा पुरातन जाति–निषेध के खिंचाव की अपेक्षा अधिक बलवती सिद्ध हुई। इन ब्राह्मण तीर्थयात्रियों को अपने पवित्र हाथों से 'अछूत' विद्यार्थियों को स्नान कराते हुये देखना भारतवर्ष में एक अभूतपूर्व दृश्य था। केवल सद्गुरु ही उनसे यह कार्य करा सकता था–और उस कार्य को पसन्द करा सकता था।

भारतवर्ष के दलित वर्गों की दशा सचमुच शोचनीय है। बाबा कहते हैं कि विश्व की राष्ट्र–मण्डली में भारतवर्ष की नीची हैसियत होने का यह एक मूलभूत **आध्यात्मिक** कारण है। इस कलंक को हटाने की आवश्यकता पर ज़ोर देने के लिये, बाबा ब्राह्मणों के पक्षपात को नष्ट करने के लिये, जो इस दशा के लिये ज़िम्मेदार हैं, और 'अछूतों' के उदासीनतापूर्ण अज्ञान को हटाने के लिये, जो सैकड़ों वर्षों से स्वाभाविक बन गया है, अनवरत कार्य करते हैं।

यद्यपि आश्रम की सीमा से लगे हुये ग्रामों के सब श्रेणियों के लोग बाबा की आध्यात्मिक तथा भौतिक सहायता पाते थे, तथापि वह 'अछूतों' के प्रति ही अपना अधिकांश कृपापूर्ण कार्य करते थे। उनमें सबसे अधिक ज़रूरतमन्द लोगों को वह भोजन तथा वस्त्र प्रदान करते थे। यदि वे खेतों पर चढ़े हुये पुराने क़र्ज़ को न चुकाने के कारण वसूल करने वालों द्वारा सताये जाते थे, तो बाबा उनकी रक्षा करते थे। जिनमें औसत दर्जे से अधिक योग्यता के लक्षण दिखाई देते थे उनको बम्बई (अब मुंबई) में आगे शिक्षा अथवा ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिये बाबा आवश्यक आर्थिक सहायता देते थे, और वहाँ अपने भक्तों के साथ उनके रहने का प्रबन्ध करते थे। यदि उनमें आपस में किसी प्रकार के झगड़े अथवा उनमें और ऊँची श्रेणियों के लोगों के साथ होते थे, तो बाबा उनको निपटाने के लिए एक न्यायशील तथा बुद्धिमान पंच का कार्य करते थे। 'महार' अर्थात् 'अछूत' कहे जाने वाले लोग, इतने घोर आर्थिक संकट में हैं कि वे अर्द्ध–भुखमरी की जीर्ण अवस्था में हैं। उनमें से जो लोग बाबा को अपना मित्र और आध्यात्मिक गुरु दोनों मानते थे, उनको बाबा निरन्तर सदुपदेश देते थे कि वे मरे हुए और घायल पशुओं का माँस खाने की अपनी आदत छोड़ दें। ऐसे माँस भक्षण से हानि के विषय में उनको बारम्बार बता चुकने के पश्चात्, बाबा ने एक समय उनको एक बकरी की लाश को अपने घरों में छिपाते हुए पकड़ लिया। उन्होंने उन लोगों को अपनी नसीहत से प्रभावित करके उनसे वह लाश फेंकवा दी, और उनसे इस गन्दे कार्य को दोबारा कभी न

करने की कसम ली। फिर बाबा उनको मेहेराबाद ले गये और वहाँ उन्होंने उन लोगों को दयालुतापूर्वक स्वास्थ्यकारी शाकाहार कराया।

तथापि उन लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा को अधिक समय तक नहीं निभाया। कुछ समय के उपरान्त बाबा ने अपनी पाठशाला के कुछ 'महार' बालकों से सुना कि वे घर में माँस, मछली तथा अण्डे खाते थे। चेतना के साथ भोजन का सम्बन्ध जानते हुए, और 'महार' लोगों के जीवन–स्तर को हर उपाय से ऊँचा उठाने के इच्छुक होते हुये, बाबा ने बालकों और उनके माता–पिता को आदेश दिया था कि वे कभी भी ऐसा भोजन ग्रहण न करें जो शरीर में स्थूल पाशविक स्पन्दन पैदा करता है। इस आदेश के लिए उनकी यह युक्ति थी कि इन 'अछूतों' को, जिनके शरीरों की प्रखर शुद्धि होना आवश्यक थी, आत्म–त्याग के चरित्र सम्बन्धी अनुशासन की भी आवश्यकता थी।

इसलिये बाबा ने पुनः बालकों को डाँट और ज़ोर देकर उन्हें आदेश दिया कि वे पाठशाला में मिलने वाला कोई भी स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन न खायें। इस कार्रवाई का इच्छित परिणाम हुआ। बालकों के माता–पिता तथा संरक्षकगण दौड़ते हुये बाबा के सम्मुख पहुँचे और बाबा से क्षमा याचना की।

कुछ समय बाद जब बाबा को समाचार दिया गया कि आरनगाँव के कुछ 'महार' लोगों ने एक मरा हुआ बैल पाया था और उसका माँस खाया था, तो वह अपराधियों का मुक़दमा करने के लिये आरनगाँव गये। इस कृत्य में उन 'महार' लोगों में से कोई भी सम्मिलित न था जो हाल ही में बाबा से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि वे मरे हुये पशु का माँस न खायेंगे, किन्तु बाबा की कठोर पितातुल्य चेतावनी से अपराधी लोग बेचैन हो उठे। इसलिये उन्होंने भी बाबा से प्रतिज्ञा की कि वे भविष्य में मरे हुये पशुओं को खाने की अपेक्षा पृथ्वी में गाड़ देंगे। वास्तव में बाबा ने अनुभव किया कि उन लोगों का यह निर्णय बाबा के इस प्रस्ताव से प्रभावित हुआ था कि वे प्रत्येक पशु की लाश को गाड़ेंगे और उसका चमड़ा बाबा को सौंप देंगे, और इसकी क्षति पूर्ति बाबा उन्हें रुपया देकर करेंगे।

उच्च जातियों के लोगों को कुछ अतिरिक्त आवश्यक शिक्षायें देने के लिये बाबा, आरनगाँव के ग्रामीणों के साथ दावत खाने के हेतु निमन्त्रित किये जाने पर, अनिवार्य रूप से 'अछूतों' के साथ बाहर बैठकर भोजन करते थे, यद्यपि उनके लिये सदैव भीतर ब्राह्मणों के साथ बैठकर भोजन करने का प्रबन्ध किया जाता था। ऐसे और कितने ही अन्य अगणित उदाहरणों के द्वारा बाबा ने पास–पड़ोस के ग्रामीणों के ऊपर इतना गहरा प्रभाव डाला कि कुछ वर्षों में इससे उनकी चेतना और उनके जीवन में पूर्णतया परिवर्तन हो गया।

इस मेहेराबाद काल में–बम्बई (अब मुंबई) आश्रम के विपरीत, जहाँ कि मिलने वालों का आना नितान्त वर्जित था–झुण्ड के झुण्ड भक्त तथा मिलने वाले आकर बाबा को श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। उन तीर्थयात्रियों में पर्याप्त संख्या में सच्चे आध्यात्मिक जिज्ञासु भी होते थे, परन्तु बाबा द्वारा कसौटी पर रक्खे जाने से उनमें से अधिकांश अपने उत्साह में ढुलमुल निकलते थे। ऐसा ही एक जिज्ञासु एक योगी था जिसने आग्रहपूर्वक प्रकट किया कि वह बाबा का ईश्वरीय पथप्रदर्शन प्राप्त करने की अभिलाषा से उनके पास आया था। बाबा के आदेशों का पालन करते हुये, वह वहाँ दस दिन तक रहा, फिर अचानक उसने वहाँ और अधिक ठहरने के लिये अपनी अनिच्छा प्रकट की। इसका कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि उसको उसकी रुचि का भोजन न मिलता था। इस पर बाबा ने अपने शिष्यों से संक्षिप्त रूप में कहा :

"ईश्वर प्राप्ति के लिये आया था, रोटी के लिये चला गया !"

विशेष अवसरों पर, जैसे हज़रत बाबाजान अथवा उपासनी महाराज के जन्म दिन का उत्सव, शिष्यों तथा दर्शनार्थियों का मनोविनोद चल–चित्र अभिनयों द्वारा किया जाता था, जिनके विषय प्रायः प्रसिद्ध भारतीय सन्तों के जीवन होते थे। जनचेतना को जागृत करने के शक्तिशाली साधन स्वरूप चल–चित्र में बाबा की रुचि सदैव अत्यन्त उत्कट रही है और आज

तक चली जाती है। यथार्थ में, पश्चिमी देशों की यात्राओं में उनका अधिकांश क्रियाकलाप लेखकों, फ़िल्मों के निर्देशकों तथा निर्माताओं से सम्पर्क करने की ओर केन्द्रित होता था। बाबा के मतानुसार, आगामी नवीन काल में, चल–चित्र आत्मा को स्फूर्ति प्रदान करने वाले नाटकों का प्रदर्शन करने के द्वारा लोगों में उच्चतर भाव जागृत करने के अत्यन्त प्रभावशाली साधन होंगे। आगामी काल के इन नवयुगीय फ़िल्मों के लिये कुछ सामग्री बाबा ने पहले ही उन लोगों से तैयार करा ली है जिनको उन्होंने अपने कार्य के इस अंग में प्रमुख भाग लेने के लिये मनोनीत किया है।

पूर्वी और पश्चिमी दोनों देशों के शिष्यों ने बाबा के साथ कई चल–चित्र देखे हैं। एक समय न्यूयार्क में हम लोगों ने एक दिन सन्ध्याकाल में चल–चित्र के लगातार दो प्रदर्शन देखे थे ! तथापि, चल–चित्र प्रदर्शनों में बाबा की दिलचस्पी 'छुटकारा पाने' के मार्ग के रूप में नहीं है। वह सिनेमा के दर्शकों का प्रयोग अपने आन्तरिक कार्य के लिये करते हैं–जिस प्रकार वह लोगों के किसी भी भारी जमाव का प्रयोग अपने आध्यात्मिक कार्य के लिये करते हैं। जिस समय दर्शकों का चंचल प्रकटमन किसी चित्र–प्रदर्शन पर भावात्मक एकाग्रता के द्वारा निश्चल हो जाता है, उस समय बाबा थोड़े ही प्रयास से सामूहिक अचेतना के गम्भीरतर स्तरों पर सीधे–सीध अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं। फलतः किसी नीरस फिल्म में वह, इस भावात्मक रुचि की जागृति की प्रतीक्षा में, अधिक समय तक रहते हैं–बहुधा बिल्कुल अन्त तक बने रहते हैं। अक्सर बाबा अपने शिष्यों के आनन्द के हेतु कोई बढ़िया फ़िल्म प्रदर्शन जुटाते हैं और उस चित्र में उनकी तल्लीनता का प्रयोग 'अचेतन मन' में स्थित शक्तियों (Forces) को उकसाने के अपने प्रयोजन के लिये करते हैं।

सन् 1925 ई. के प्रारम्भिक काल में बाबा ने घोषित किया कि वह शीघ्र ही कुछ समय के लिये मौन प्रारम्भ करेंगे। उन्होंने शिष्यों तथा मण्डली के अन्य सदस्यों को एकत्रित करके उनमें से प्रत्येक पुरुष तथा

स्त्री के लिये उस मौन काल के लिये उनके कर्त्तव्य निश्चित कर दिये, और उनको बताया कि वह मौन सम्भवतः कम से कम एक वर्ष का होगा। फिर 9 जौलाई को उन्होंने पाठशाला के बालकों के माता–पिता और संरक्षकों को बुलवाया और उनसे इस सहयोग की प्रार्थना की कि वे अपने बच्चों को पाठशाला में बने रहने की अनुमति प्रदान करें। बाबा ने समझाया कि उनका मौन–धारण आध्यात्मिक कारणों से हो रहा था–अपने में आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करने के लिये नहीं, क्योंकि वे शक्तियाँ तो उनमें पहले से ही विद्यमान थीं। वह अपने मौन का प्रारम्भ अपने विश्वव्यापी कार्य को आगे बढ़ाने के लिये कर रहे थे, जिसका आवश्यक रूप निकट भविष्य में युद्ध तथा विपत्तियाँ होंगीं, जिनके उपरान्त मानव जाति के लिये शान्ति तथा आनन्द के युग का सूत्रपात होगा।

दूसरे दिन सुबह 5 बजे बाबा अपनी झोपड़ी से निकले और हर व्यक्ति का कुशल–क्षेम पूछते हुये हरेक से संकेतों के द्वारा अभिवादन किया; और दिन में वह सदैव की भाँति पाठशाला तथा मण्डली के कार्यों का निरीक्षण करने में तत्पर रहे। इस प्रकार उनके मौन का प्रारम्भ हुआ जो आज तक अखण्डित रूप से ज़ारी है। उसी समय से बाबा ने रुपया–पैसा छूना भी बन्द कर दिया, और उनका यह व्रत भी आज तक बराबर चल रहा है।

जब बाबा पहली बार कैलिफ़ोर्निया जाते समय हालीवुड में थे, उस समय उनके पूर्ण मौन के स्वतः लागू किये गये इस कठोर अनुशासन के सम्बन्ध में एक विनोदपूर्ण घटना घटित हुई। एक चतुर नवयुवक प्रेस–प्रतिनिधि उनसे 'लास ऐन्जील्स टाइम्स' नामक समाचार पत्र की ओर से मुलाकात कर रहा था। उसने अचानक बाबा से यह प्रश्न कर दिया : "आप अपने नाम का उच्चारण किस प्रकार करते हैं ?"

बाबा के नेत्र चमक उठे, और उन्होंने निकट खड़े हुये अपने एक शिष्य को उसके प्रश्न का उत्तर देने के लिए संकेत किया। इस पर उस प्रेस रिपोर्टर का चेहरा लाल हो गया और कुछ मिनट के पश्चात् उसने बाबा से क्षमा माँगते हुये स्वीकार किया कि वह उनसे मुलाक़ात करने के लिये इस संकल्प के साथ आया था कि उन्हें अचानक चक्कर में डाल कर वह अपनी पकड़ में ले आवे और फिर दुनियाँ के सामने उनकी पोल खोले

कि 'बाबा एक ठग है जिसने अपने प्रचार के विलक्षण प्रयत्न के रूप में मौन धारण कर लिया है।' दूसरे दिन सुबह, 30 मई 1932 ई. को, उस मुलाकात का समाचार अखबार में निकला, किन्तु वाणी की उस चपलता के साथ नहीं जिसकी प्रधानता उस अख़बार के कुछ समाचारों में थी वरन् मर्यादा और संयम के साथ लिखा हुआ निकला।

अपने मौन के प्रथम वर्ष में बाबा प्रतिदिन कई घन्टे अपने उन अनुभवों को लिखने में लगाते थे जो उन्हें उस समय हुये थे जब वह पूर्णतया अति–चेतन (Super-Conscious) अवस्था में थे। प्रायः वह सारी रात लिखते रहते थे जबकि आश्रमवासी सोते थे, और कभी कभी इस परिश्रम के कारण उन्हें अत्यन्त थकावट आ जाती थी अथवा बुखार हो आता था। फिर भी वह उसको अपने प्रारम्भिक जीवन–कार्य के एक आवश्यक अंग के रूप में ज़ारी रखते थे। बाबा की लिखी हुई इस प्रति को अब तक किसी ने नहीं देखा है जिसमें बाबा के कथनानुसार ऐसे आध्यात्मिक रहस्य खोले गये हैं जो आज तक अज्ञात हैं। जब बाबा की समझ में उसको प्रकाशित करने का उचित समय होगा तब वह उसको प्रकाशनार्थ दे देंगे।

अपना मौन प्रारम्भ करने के कुछ माह पश्चात् बाबा ने पुनः अक्सर उपवास करने प्रारम्भ कर दिये, जो दिनों से लेकर महीनों तक भिन्न भिन्न अवधियों के होते थे और जिनमें कभी कभी वह दिन में केवल एक बार सूक्ष्म आहार करके आंशिक उपवास करते थे और कभी कभी खाना तथा पीना बिल्कुल त्याग कर पूर्ण उपवास करते थे। बाबा बताते थे कि वह ये लम्बे उपवास अपने शिष्यों के उन बन्धनकारी संस्कारों को हटाने के लिए करते थे जो उन्होंने पूर्वजन्मों में योगाभ्यास करने के द्वारा पैदा कर लिये थे।

उपवासों के दौरान बाबा निरन्तर कार्य करते रहते थे। इतना ही नहीं, अब वह अपने शारीरिक परिश्रम को और भी बढ़ाते हुये प्रतीत होते थे। 'महार' बालकों को प्रतिदिन स्नान कराने का कठिन कार्य करने के

अतिरिक्त, अब वह सब बालकों को स्कूल में अपने ही हाथों से सप्ताह में तीन या चार बार स्नान कराते थे। जब बालकों की संख्या चालीस से ऊपर हो जाती थी तब वह अपनी शिष्य–मण्डली को हाथ बँटाने की आज्ञा प्रदान करते थे, परन्तु कार्य का मुख्य भार वह अपने ऊपर ही रखते थे। इसी काल में, बाबा ने स्कूल के पाँच बालकों के मैले कपड़े साफ़ करने का भी अपना नियम बना लिया था।

बाबा का बालकों को स्नान कराना और उनके कपड़े धोना, जैसा कि वह बाद में मस्तों के प्रति अपने कार्य में करते थे, ऐंग्लिकन शिक्षा के शब्दों में "एक आन्तरिक तथा आध्यात्मिक लालित्य का बाहरी और दृष्टिगोचर चिन्ह" था–एक ऐसी क्रियाविधि थी जिसके द्वारा बाबा बालकों के लिए चेतना की वह निर्मलता प्राप्त कर रहे थे जो अन्ततः उनको तमाम अहंकारिक परिभितताओं से मुक्त कर देगी। एक अन्य धार्मिक संस्कार करने के रूप में बाबा आश्रमवासियों के लिए रोज़ आटा पीसा करते थे।

बाबा अपने शिष्यों से अधिक से अधिक शारीरिक परिश्रम लेते थे, और खुद अपने को भी किसी प्रकार से न छोड़ते थे। एक समय जब कुआँ से पानी खींचने की मशीन लगाई जा रही थी, बाबा ने अपने शिष्यों को तथा मिस्त्री को आज्ञा दी कि वह कार्य उसी रात को पूरा कर दिया जाये। जब बाबा ने देखा कि वे लोग बहुत धीरे धीरे कार्य कर रहे थे, तो वह खुद उनके साथ काम करने लगे और उस कार्य को निश्चित समय के भीतर पूरा कर दिया। समस्त बाह्य कर्म बाबा के लिये आध्यात्मिक अर्थ रखता है। इसलिये जब वह किसी भौतिक क्रिया को तीव्र करते हैं तब वह आध्यात्मिक भूमिका पर उसी के अनुरूप क्रिया को तेज़ करते हैं।

मेहेराबाद के क्रियाकलाप को अकस्मात् समाप्त कर देने और वहाँ की अधिकांश इमारतों को गिरवा कर मिट्टी में मिला देने में हमको बाबा की सांकेतिक कार्य–प्रणाली का दूसरा उदाहरण मिलता है, जिसके सम्बन्ध में बाबा ने एक समय कहा था–"जब किसी को विशाल भवन बनवाना होता है तो वह उसके लिये एक अस्थायी मचान बनवाता है। उस

भवन का निर्माण पूरा हो जाने पर मचान हटा दिया जाता है। पाठशाला, अस्पताल और अन्य इमारतें मेरे वास्तविक आन्तरिक कार्य के लिये केवल मचान थे। अब चूँकि मेरा वह कार्य पूर्ण हो गया है इसलिये मचान को हटाया जाना है।"

यद्यपि इस आकस्मिक उलट–पलट से अनेक लोगों का उन्मूलन हो गया, तथापि कोई भी बीच भँवर में नहीं छोड़ा गया। बाबा की दूरदर्शिता से, उन सब लोगों का प्रबन्ध कर दिया गया था जो इस परिवर्तन से गृहविहीन अथवा निराश्रय हो सकते थे।

एक माह के भीतर बाबा और उनके शिष्य पुनः मेहेराबाद लौट आये और उन्होंने ग्राम के सीमा प्रान्त में स्थित एक बँगला में दूसरी पाठशाला खोल कर कार्य का नया रूप प्रारम्भ किया। इस कार्यारम्भ के साथ ही बाबा ने अपनी बातों को लिख कर प्रगट करना बन्द कर दिया और उस समय से उन्होंने अपने विचार प्रगट करने के लिये उस छोटी सी वर्णमाला तख्ती का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया जिससे पूर्वी और पश्चिमी देशों के हज़ारों बाबा–प्रेमी सुपरिचित हो गये हैं।

कोई भी मनुष्य स्वभावतः यह कल्पना कर सकता है कि बाबा के मौन, और बोलने के स्थान में बाबा द्वारा वर्णमाला तख्ती के प्रयोग, के कारण बाबा तथा अन्य लोगों के बीच बातचीत में रुकावट पैदा होती होगी। परन्तु, यथार्थ में बिल्कुल उलटी बात सही है। हममें से अधिकांश लोगों को यह मालूम हो चुका है कि किसी प्रिय जन से मौन सम्पर्क होने के क्षणों में ही उससे हमारा अत्यन्त सच्चा तथा गहरा मिलन होता है। यह बात बाबा के साथ और भी अधिक सच उतरती है। यदि कोई उनके साथ एक ही स्वरलहरी में बहने लगता हैं, तो चेतना की गम्भीर कोटियाँ, जिनमें अर्थ प्रकट करने के लिये शब्दों की आवश्यकता नहीं होती, अपनी सर्वोच्च क्षमता तक जागृत हो जाती हैं। किसी ऐसी आत्मा के समीप मौन बैठना,

जिसके मन को ईश्वर से पूर्ण एकता प्राप्त है और जिसका हृदय निरन्तर विश्व के प्रेम–संगीत की लय में स्पन्दन करता है, ऐसा अनुभव है जो मौखिक शब्दों के आदान–प्रदान से अत्यधिक श्रेष्ठ होता है।

द्वितीय मेहेराबाद काल में बाबा के शिष्यों की ड्यूटियाँ विविध तथा कठोर थीं। उनको, कुष्ठ रोग के रोगियों समेत, निराश्रयों तथा रोगियों की सेवा–सुश्रूषा करने के साथ साथ उनके कष्टों में भी भाग लेना पड़ता था। बाबा द्वारा दिये गये नियमों के अनुसार उनको अपने भोजन तथा रहन सहन का स्तर नीचा करके उसी कोटि का रखना पड़ता था जिस कोटि का उन पीड़ित लोगों का होता था जिनकी वे सेवा करते थे। इस प्रकार वे लोग पीड़ित मानव समाज की आवश्यकताओं और दृष्टिकोण को समझने में पूर्णतया समर्थ होते थे। बाबा ने कार्य को व्यवस्थित ढँग से संगठित किया था और उसमें ऐसे कार्य बँटे हुये थे जैसे धाय, पहरेदार, रसोइया, प्रबन्धक, भण्डारी, मुनीम, अध्यापक, सम्वाददाता, लेखक, गायक, पानी भरने वाला, नाई, धोबी। सामान्य कार्यों में समस्त 'मण्डली' भाग लेती थी, जैसे भूमि को गोबर से लीपना, अस्पताल के रोगियों को गरम पानी से स्नान कराना (जिसको गरम करना मेहेराबाद की प्रारम्भिक दशाओं में पूर्णतया कष्टकारी कार्य था), अस्पताल तथा डिस्पेन्सरी के फ़र्शों को धोना, और बहुत सा नीची कोटि का अन्य कार्य।

बाबा अपने शिष्यों को कभी कभी भोजन की भिक्षा माँगने का अनुशासन देते थे जब वे छोटी यात्राओं पर जाते थे। एक समय बालकी गाँव के शान्त ग्रामीण इन अनेक भिखारियों को बढ़िया कोट, पतलून और जूते पहिने हुये–जो भारतवर्ष के भिखारी लोग कभी नहीं पहिनते–भोजन की भिक्षा माँगते देख कर आश्चर्य चकित हो गये। उन शिष्यों को लोगों ने गालियाँ सुनाईं, उनको व्यंग्यपूर्ण बातें कहीं, और उनकी हँसी उड़ाई । परन्तु अपनी धुन में लगे हुए वे अन्त में नाना प्रकार के भोजन के टुकड़े माँग लाये, जिन सबको बाबा ने एक में मिलाकर शिष्यों को बाँट दिया।

शीघ्र ही गाँव के लोगों को उन भिखारियों का रूप तथा उनके साथ बाबा की वहाँ उपस्थिति मालूम हो गई, जिससे वे लोग बहुत व्याकुल हुए जिन्होंने उन भिखारियों को भिक्षा नहीं दी थी। भारतवर्ष के धर्मात्मा पुरुष के लिये सद्गुरु अथवा उसके शिष्यों को भोजन की भिक्षा न देना ईश्वर की सेवा करने से इनकार करने के तुल्य होता है।

मेहेराबाद में बाबा के साथ शिष्यों का जीवन आसान न था; और न उसको आसान बनाने की इच्छा ही थी। बाबा अपनी 'मण्डली' को उस महानतम आध्यात्मिक जागृति में सहभागी बनाने के लिये शिक्षित कर रहे थे जिसका अनुभव मानव जाति ने पहले कभी नहीं किया। एक बार उन्होंने हम लोगों को बताया था कि इस कार्य के लिये वह ऐसे स्त्री और पुरुष चाहते हैं जो पर्वतों की भाँति दृढ़ तथा अटल हों; उनको ऐसी आत्माओं की आवश्यकता है जो आवश्यकता होने पर, बिना संकोच के तथा बिना लड़खड़ाये हुये, आग से होकर निकल जायें। एक बार एक अन्य सद्गुरु ने बाबा के विषय में कहा था कि बाबा अपने शिष्यों को ऐसे कठोर अनुशासन में कस रहे थे जैसा कि मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं मिलता। फिर भी, भविष्य में प्रारम्भ होने वाले बाबा के विश्वव्यापी कार्य की तैयारी वर्षों तक श्रमपूर्वक करने के लम्बे समय में, समस्त कठोर अनुशासनों के बीच, बाबा के शिष्य नहीं डिगे। ऐसे थोड़े ही उदाहरण हैं जिनमें बाबा के घनिष्ठ जन बाबा को छोड़ कर उनसे अलग हो गये है, परन्तु उनके इस प्रकार अलग होने का कारण वह कठोर साहसी जीवन न था जो उनको व्यतीत करना पड़ता था, वरन् उससे बढ़कर वह संघर्ष था जिसका अनुभव उन्हें बाबा की तर्क से परे दुर्बोध रीतियों के बौद्धिक स्पष्टीकरण ढूँढ़ने का प्रयत्त करने में होता था। कदाचित् उन लोगों ने सन्त अगस्तिन (St. Augustine) के इन शब्दों को पढ़ा अथवा समझा न था: "समझ में आया हुआ ईश्वर ईश्वर नहीं है।"

एक समय, बाबा ने पश्चिमी देश की एक महिला शिष्य से, जो बौद्धिक संशय तथा तर्क–वितर्क प्रधान मानसिक अवस्था में थी, कहा था: "मुझको समझने का प्रयत्न न करो। मेरी गहराई अथाह है। बस मुझसे प्रेम करो।"

हम में से जिन लोगों को बाबा से घनिष्ठता प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनके लिये इस आज्ञा का पालन कठिन नहीं है ! मेरे अनुमान में, यद्यपि हम सब भ्रान्तिपूर्ण आश्चर्य की घाटी से होकर गुज़र चुके हैं, तथापि बाबा के प्रति और भी अधिक प्रेम लेकर उसके बाहर निकले हैं, क्योंकि हमको उनकी ईश्वरीय महत्ता की थोड़ी सी और झलक मिल गई है।

बाबा के प्लीडर नाम के एक भारतीय शिष्य की कथा में हमको एक ऐसे जन की प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है जो कठोर परीक्षाओं के बावजूद सद्गुरु से शुरू से अन्त तक चिपटा रहता है, और उससे हमारे लिये एक और आध्यात्मिक प्रकाश–प्राप्त आत्मा द्वारा बाबा की महत्ता के अनुमान का उद्घाटन होता है।

बाबा का शिष्य होने से पहले प्लीडर ने बाबा को एक दिन आध्यात्मिक मुक्ति पर प्रवचन देते हुये सुना था। उस प्रवचन के अन्त में प्लीडर ने बाबा से पूछा कि क्या वह उसको वह 'मुक्ति' प्रदान कर सकते थे जिसके विषय में उन्होंने अपने प्रवचन में बताया था। इसके उत्तर में बाबा ने उससे पूछा कि क्या वह उनके आदेशों का पूर्ण रूप से पालन करने को तैयार था। प्लीडर ने बाबा की आज्ञाओं का पूर्ण रूप से पालन करने का अपना निश्चय बाबा को बताया। तब बाबा ने उसको आश्वासन दिया कि यदि वह उनकी आज्ञाओं का पालन करेगा तो वह उसको मुक्ति प्रदान करेंगे जिसकी चाह उसको थी। मेहेराबाद आश्रम में थोड़े समय तक उसको ठहराने के पश्चात् बाबा ने उसको बम्बई (अब मुंबई) में एक छोटी कोठरी में बन्द होने की आज्ञा दी। उसको कोठरी में बन्द करने से पहले, बाबा ने उस कोठरी में स्वयं कुछ घन्टों तक रह कर उसको आध्यात्मिक रूप से तैयार किया। तत्पश्चात् उन्होंने प्लीडर को आदेश दिया कि वह दूध के अतिरिक्त और कुछ भी न खाये, न पिये, पूर्णतया मौन रहे, किसी को भी न देखे (सिवाय उस जन के जो उसकी दैनिक आवश्यकताओं को जुटावेगा), कुछ भी न पढ़े, और न कुछ लिखे। उसके ठहरने का स्थान

लगभग हर साल बदल दिया जाता था, किन्तु वह किसी को भी नहीं देखता था सिवाय उन शिष्यों के जो उसकी रोज़ रोज़ की ज़रूरतों का प्रबन्ध करते थे, और सिवाय बाबा के जो साल में एक बार उसके पास आते थे।

पाँच वर्ष तक उसको इस अनुशासन में रखने के पश्चात्, बाबा ने उसको अपने एक 'एजेन्ट' से सम्पर्क करने के लिये ऋषिकेश भेजा। वह 'एजेन्ट' उस क्षेत्र में प्रसिद्ध था और छठवीं भूमिका का सन्त था। उस सन्त से मिलने पर प्लीडर ने उसको अपना आध्यात्मिक परिचय देने के रूप में बाबा का चित्र उसको दिखाया। इस पर वह सन्त तुरन्त प्लीडर को अपनी गुफ़ा के भीतर ले गया जिससे उसके शिष्यों को महान आश्चर्य हुआ क्योंकि उनमें से किसी को भी उसने कभी भी अपनी उस गुफ़ा के भीतर पैर नहीं रखने दिया था। फिर उसने प्लीडर के मौन और उसके दूध के आहार का उपहास करना प्रारम्भ कर दिया।

उसने प्रश्न के रूप में कहा, "यदि तुम बोलते नहीं हो तो तुम मानव जाति की सहायता कैसे कर सकते हो ? और दुनियाँ के इस विषम खण्ड में तुम दूध पाने की कैसे आशा करते हो ?"

प्लीडर ने इसका उत्तर अपनी तख्ती के द्वारा दिया कि वह अपने गुरु की आज्ञा के पालन में मौन धारण किये था और केवल दूध का आहार करता था। तब सन्त ने उससे पूछा कि क्या उसको अपने गुरु से कोई महान आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुआ था, जिसका नकारात्मक उत्तर प्लीडर ने उसको दिया। परन्तु अब उस सन्त का रुख़ बदल गया। उसने मुस्करा कर कहा :

"आह, परन्तु तुम्हारे गुरु ने पूर्णतया नींव तैयार कर दी है। उनके एक स्पर्श से तुम उन्हीं के समान पूर्ण हो जाओगे। ऐसे सद्गुरु की श्रद्धापूर्वक सेवा करना तुम्हारे लिये बहुत अच्छी बात है। तुम उनके क्रियाकलाप के अपार विस्तार का कोई अनुमान नहीं कर सकते। मैं भी, अपने आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा, उनकी गहराई की केवल थोड़ी सी थाह पा सकता हूँ।"

प्लीडर के मेहेराबाद लौट आने के कुछ समय पश्चात् उसको आश्रम के साधारण जीवन में पुनः प्रवेश करने की आज्ञा दे दी गई। जब मैं भारतवर्ष में थी तो मुझको उससे बात करने का अवसर मिला था। उस समय वह बाबा के राहुरी आश्रम में मस्तों का कार्यवाहक था। मैंने उससे पूछा कि क्या उसको ऐसे कठोर अनुशासन के वे वर्ष अत्यन्त कठिन प्रतीत नहीं हुये थे। उसने एक ऐसी गम्भीर शान्तिपूर्वक, जो खुद अपने प्रति तथा दुनियाँ के प्रति शान्त मन से ही प्रवाहित हो सकती थी, उत्तर दिया : "बाबा की कृपा के बिना वह मुझसे कभी पूरा न हो सकता था।"

उस सन्त ने प्लीडर से उसके उपवास, मौन तथा एकान्तवास के घोर तप के काल में उसको हुये आध्यात्मिक अनुभवों के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया था वही प्रश्न अनेक लोग बाबा के अनुयायियों से करते हैं। लोगों के विचार में सद्‌गुरु उच्चतर चेतना की अवस्थाओं अथवा आत्मिक शक्तियों के बंडल इस तरह बाँटता है जैसे दयावान पिता अपने प्रिय बच्चे को मिठाई देता है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। बाबा की भाँति, सद्‌गुरु अपने शिष्यों को विश्वव्यापी कार्य के लिये शिक्षित करता है, न कि उनके व्यक्तिगत आनन्द के लिये। इसलिये उसका प्रथम लक्ष्य उनको अहंकार के बन्धन से मुक्त करने के लिये होता है, जो उन्होंने अपने मौजूदा जन्म तथा पूर्वजन्मों में उपार्जित कर लिया है, जिससे वे लोग उसके कार्य के लिये अनवरुद्ध प्रणालियाँ बन सकें।

सद्‌गुरु शिष्य को आत्मिक तथा उच्चतर मानसिक अवस्थाओं के अन्धकूपों से बचाने के लिये, उसको अन्धा बनाये हुये लौकिक भूमिकाओं से होकर ले जाता है। उसका प्रयोजन यह होता है कि वह शिष्य को चेतना के समस्त लघु रूपों से मुक्त करे जिससे उसको ईश्वर से अपनी एकता की अन्तिम तथा परम चेतना प्राप्त हो जाये। इसकी पूर्ति के लिये यह आवश्यक होता है कि अहंकार की जड़ें नष्ट कर दी जायें और उनको नये अंकुर फोड़ने से रोक दिया जाये, जैसे कि आत्मिक अनुभवों तथा

शक्तियों द्वारा अनिवार्य रूप से पैदा किये जाते हैं। जब शिष्य एक बार अहंकार के फन्दों से स्थायी रूप से मुक्त हो जाता है, तब उसको सम्पूर्ण शक्ति सौंपी जा सकती है। तब तक, ईसाई रहस्यवादियों द्वारा कही गई 'अँधेरी रात' (Dark Night) ही ईश्वर–चेतना के पर्वत–शिखर पर पहुँचाने के लिये सबसे सुरक्षित तथा सबसे जल्दी पहुँचाने वाला मार्ग है।

बाबा की अधिकांश आलोचना इस आधार पर की जाती है कि बाबा की कार्यपद्धति उन स्तरों से मेल नहीं खाती जिनके अनुसार लोगों के विचार में सद्‌गुरु को कार्य करना चाहिये। विशेषतः भारतवर्ष में, जहाँ सन्तों तथा सद्‌गुरुओं के विषय में परम्परायें भरी पड़ी हैं, बहुतेरे लोग बाबा को सन्त की सामान्य श्रेणी में रखना कठिन पाते हैं, जो (सन्त) अपना अधिकांश समय ध्यानावस्थित रह कर अथवा अचेत 'समाधि' में व्यतीत करता है। उनकी दृष्टि में एक ऐसा सद्‌गुरु जो प्रवीणतापूर्वक खेल खेलता है, भवन के निर्माण की देख–रेख करता है, अथवा नृत्य की रचना का निरीक्षण करता है, एक मनमौजी पुरुष है। वे आशा करते हैं कि उसकी प्रभुता का प्रयोग केवल गूढ़ अनुभव के प्रदेशों में ही होना चाहिये। यदि वह समाधि में लीन अवस्था में कई दिनों तक बैठा रहे, तभी वे सम्भवतः उसके ईश्वर–पुरुष होने में विश्वास कर सकते हैं। वे यह नहीं समझते कि समाधि–अवस्था के महान आनन्द को समस्त सान्सारिक कार्यों के मध्य में स्थिर रखना चेतना की परम प्राप्ति है।

कदाचित् इसका कारण यह है कि हमारी मानवीय प्रकृति अब भी इतने अज्ञान के बन्धन में है कि हममें से कुछ लोग ऐसे ईश्वर को अस्वीकार करते हैं जो मनुष्य होने का साहस करता है। तथापि, तर्क के अनुसार, पूर्ण पुरुष को, जिसका कार्य मानव जाति का उद्धार करना है, अपनी मानवता में पूर्ण होना आवश्यक है। उसको मानव प्राणी की समस्त शक्तियों सहित, जो अपारता को प्राप्त हो गईं हों, कार्य करना चाहिये। मनुष्य का मन परिपूर्ण व्यक्तित्त्व की जो भी कल्पना करे, वह उसमें होना चाहिये : उसमें वह आन्तरिक सौन्दर्य होना चाहिये जो लालित्य, मनोहरता तथा दया के रूप में प्रकट होता है; वह आन्तरिक सन्तुलन होना चाहिये जो निर्लिप्तता तथा रसिकता का भाव प्रदान करता है; वह आन्तरिक

प्रसन्नता होनी चाहिये जो कार्य में तथा खेल में प्रकट होती है। उसको मनुष्यवत् तथा साथ ही साथ ईश्वरवत् होना चाहिये; और उसको सदैव ईश्वरीय परमानन्द तथा शान्ति प्रकट करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो 'मूर्तिमान शब्द' (Word made flesh) कथन शाब्दिक–विरोध है। ईश्वर को शरीरधारी अवतार होने के लिये, समस्त प्रभुओं तथा प्रभुताओं का प्रभु होना चाहिये। बाबा ऐसे ही प्रभु (Master) हैं।

अपने शिष्यों के लिये उसका प्रयोजन ऐसी शिक्षा देने के लिये होता है कि उनका भी समस्त जीवन अखण्डित समाधि बन जावे, जिसका वर्णन कबीरदास ने नीचे लिखे अनुसार किया है :–

भाई, कोई सतगुरु सन्त कहावै।
नैनन अलख जगावै।।
प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै।
द्वार न रूँधै पवन न रोके, नहिं भवखण्ड तजावै।
यह मन जाये जहाँ लग जबहीं, परमातम दरसावै।
करम करै निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नहिं तन में, भोग में जोग जगावै,
धरती–पानी आकाश–पवन में अधर मड़ैया छावै।
सुन्न सिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावै।
भीतर रहा सो बाहर देखै, दूजा दृष्टि न आवै।

एक समय बाबा के एक पश्चिमी भक्त ने बाबा से पूछा–"आप लोगों के सामने इतना ऊँचा उत्कृष्ट लक्ष्य क्यों रखते हैं ?" और उसने बाबा को सुझाव दिया कि उस मार्ग पर कुछ कम कोटि के उद्देश्यों की प्राप्ति औसत दर्जे के मनुष्य के लिए अधिक सम्भव हो सकती है। इसके उत्तर में बाबा ने कहा, "केवल **एक लक्ष्य** है–अर्थात् ईश्वर से एकता प्राप्त करना। इसी लक्ष्य की खोज समस्त जीवन चेतनतया अथवा अचेतनतया कर रहा है। अन्य सबकुछ केवल माया है।"

जो लोग इस लक्ष्य को चेतनतया खोजने की अवस्था तक पहुँच चुके हैं, उनको सहायता देने के लिये बाबा जीवन की सीधी–सादी तथा साधारण घटनाओं का प्रयोग करते हैं। वह प्राकृतिक नियमों के **द्वारा** कार्य करते हैं; वह उनका उल्लंघन नहीं करते। वह साधक के सम्पूर्ण जीवन को एक आध्यात्मिक साधना बनाने के लिये उसकी सहायता करते हैं–अर्थात् ऐसा जीवन प्रस्तुत करने के लिये जैसा सन्त पाल (St. Paul) ने वर्णन किया है : "मेरे लिये ईसामसीह का अर्थ है उसको अपने जीवन द्वारा प्रस्तुत करना," अथवा जैसा कि चीन के महात्मा ने एक प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न "ताव (Tao) क्या है ?" के उत्तर में कहा था, "सामान्य जीवन स्वयं ही ताव है।"

जिस प्रकार बाबा के जनों की वेष–भूषा में किसी प्रकार का तपसीपन नहीं होता, उसी प्रकार उनके आश्रमों में भी ऐसा वातावरण नहीं होता। उन दोनों में स्वाभाविकता तथा प्रेमपूर्ण दयालुता की विशेषता रहती है। यद्यपि बाबा के भारतीय शिष्य कठोर से कठोर अनुशासनों में रक्खे जा चुके हैं, तथापि इसका प्रभाव उनके ऊपर यह नहीं हुआ कि वे दुनियाँ से अलग हो गये हों अथवा उनके अन्तर में इस भ्रम का पोषण हुआ हो कि वे अन्य लोगों से अलग हैं। जिस 'सन्यास' की शिक्षा बाबा ने उन्हें दी है वह एक आन्तरिक वस्तु है, और वह सन्यास आधिपत्यों तथा लोगों से उनकी निर्लिप्तता के रूप में प्रकट होता है; इस दुनियाँ की विलासिता तथा दरिद्रता दोनों से उनकी अनासक्ति के रूप में प्रकट होता है। जब वे लोग पश्चिमी देशों में होते हैं, तो वे हमारी सभ्यता से अनुचित रूप से प्रभावित हुए बग़ैर, जिस सभ्यता की हम डींग मारते हैं, हमारे आधुनिक ठाठ–बाट से सरलतापूर्वक सामंजस्य कर लेते हैं; और जब वे लौटकर भारतवर्ष पहुँच जाते हैं, जहाँ आधुनिक सुविधायें केवल महाराजाओं तथा ऊँची श्रेणी के अंग्रेज़ों के लिए होती हैं, तो वे पुनः वहाँ के जीवन से प्रसन्नतापूर्वक सामन्जस्य कर लेते हैं। वे मन की उस अवस्था को प्राप्त हुये प्रतीत होते हैं जिसके विषय में बाबा कहते हैं : "जब और जहाँ आवश्यक हो, आधुनिक सभ्यता का प्रयोग करो। परन्तु तुम उसके वश में न हो जाओ। तुम न तो उससे दूर भागो, और न उससे चिपटो।"

निःस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं के जीते–जागते नमूनों के रूप में, उनकी जोड़ के कार्यकर्त्ता मिलना कठिन हैं; अहंकारपूर्ण वाणी तथा कर्म से इतने आश्चर्यजनक रूप से स्वतन्त्र, इतने अधिक दृढ़ तथा पुष्ट मनुष्य एक जगह एकत्रित मिलना कठिन है। निस्सन्देह जब वे पहले पहल बाबा के संसर्ग में आये थे, तब वे हममें से अधिकांश लोगों की तरह ही अपरिपक्व तथा खण्डित थे। सचमुच प्रारम्भिक काल में उनकी व्यक्तिगत इच्छाएँ तथा निर्बलतायें उनके शब्दों से स्पष्ट होती थीं, क्योंकि बाबा की शिक्षण–कला दमनकारी नहीं है। परन्तु, उन लोगों के साथ कुछ समय तक रह चुकने के पश्चात् मैं उनकी ऊँची कोटि की परिपक्वता को प्रमाणित कर सकती हूँ जो अब उनमें विद्यमान है।

बाबा के विरुद्ध दूसरी आलोचना यह की जाती है कि वह चमत्कार नहीं दिखाते जिसकी आशा एक औसत मनुष्य सद्‌गुरु से करता है। चूँकि बाबा चमत्कारी जाल के द्वारा लोगों की बुद्धि को भ्रम में नहीं डालते, इसलिये छोटी बुद्धि के लोग उनकी शक्ति तथा बुद्धिमत्ता को पहिचानने में असमर्थ रहते हैं। चमत्कार प्रदर्शन को, तथा चमत्कार चाहने वालों के प्रति बाबा के ढँग को, बाबा के बालपन के एक सहपाठी की कथा स्पष्ट करती है जो एक दिन बाबा से मिलने गया था। उस नवयुवक ने बाबा की सद्‌गुरु की पदवी के विषय में सुना था जिस पर अब बाबा आसीन थे, परन्तु वह यह सोच कर चकित हो जाता था कि वह बालक, जिसके साथ उसने कुछ वर्ष पहले हँसी–दिल्लगी की थी तथा क्रिकेट का खेल खेला था, अब इतनी ऊँची पदवी पर कैसे हो सकता था। उसने बाबा से बताया कि वह विश्वास करना चाहता था कि बाबा को ईश्वर–साक्षात्कार हो गया था, परन्तु बाबा की और उसकी पुरानी मैत्री उसके मार्ग में रोड़ा अटकाती प्रतीत होती थी। उसने कहा कि यदि बाबा कोई असाधारण बात कर दिखावें तो उसको निश्चय ही उनके ईश्वर–प्राप्त होने में विश्वास हो जायेगा। इसलिए बाबा ने उसको आज्ञा दी कि वह मेज़ के निकट जाकर कुछ बातें लिखे। जैसे ही उसने लिखना प्रारम्भ किया वैसे ही दवात मेज़ से ऊपर उठने लगी,

फिर क़लम उसके हाथ में घूमने लगी। वह नवयुवक भयभीत होकर बाबा की ओर दौड़ा और ऐसा चिल्लाते हुए उनके चरणों पर दण्डवत् गिर पड़ा, "हे प्रभु, मुझको क्षमा कीजिए, अब मुझको विश्वास हो गया !"

बाबा ने एक करुणापूर्ण दृष्टि उसके ऊपर डाली और भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध जादूगर का नाम लेते हुए उससे कहा, "यदि तुम इस चमत्कारिक प्रदर्शन से प्रभावित हो, तो यह अधिक उत्तम होगा कि तुम जाकर उस जादूगर की सेवा करो।"

एक अन्य अवसर पर, जब एक नये शिष्य ने बाबा को सलाह दी कि वह कुछ क्षणों में ही एक विशाल भवन खड़ा करके अपनी चमत्कारी शक्तियों का प्रदर्शन करें, तो बाबा ने उत्तर दिया कि कोई भी ईश्वर–प्राप्त पुरुष ऐसा चमत्कार करने का विचार न करेगा। "वह बच्चों सरीखा कार्य होगा, और उसका प्रभाव तुम्हारी आशा के बिल्कुल विपरीत होगा। तुम सोचते हो कि वह चमत्कार करने से मेरे पास लाखों मनुष्य आवेंगे और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करेंगे। निस्सन्देह उससे असंख्य लोग मेरी ओर आकर्षित होंगे ! परन्तु प्रायः वे सब सान्सारिक प्रवृत्ति के होंगे और मुझसे अपनी सान्सारिक वासनाओं की तृप्ति की याचना करेंगे। जिन लोगों को धन की आवश्यकता होगी वे कहेंगे, 'आपने कुछ क्षणों में ही इस भवन को खड़ा कर दिया, आप अपनी चमत्कारी शक्ति से मेरे लिये कुछ हज़ार डालर क्यों पैदा नहीं कर सकते ?' और ऐसे चमत्कार को सुनकर वे लोग भी, जिनमें संन्यासी जीवन की क्षमतायें विद्यमान हैं, मुझसे याचना करेंगे कि मैं उन्हें सभी कष्टों से छुटकारा दे दूँ और उनको तुरन्त आध्यात्मिक मुक्ति प्रदान कर दूँ...। यह दुनियाँ एक भ्रम है। इसलिए, नियमानुसार ईश्वर–प्राप्त पुरुष महान सार्वजनिक चमत्कार नहीं करते, जो और भी भ्रम उत्पन्न करने के लिए सद्‌गुरु की शक्ति के प्रदर्शन होते हैं। इस नियम का अपवाद केवल अवतारिक काल में होता है, जब उदासीन जनसमाज को प्रोत्साहित करने के लिए और उनके 'आश्चर्य' को तीव्र करने के लिए अवतार को ऐसे चमत्कार करना पड़ते हैं जैसे मुर्दे ज़िन्दा करना और अन्धों को आँखें प्रदान करना।"

तथापि, शोक तथा रोग से ग्रसित लोगों की सहायता करने का चमत्कार बाबा ने बहुधा दिखाया है, क्योंकि बाबा का प्रेम ज़रूरतमन्द लोगों

की ओर निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। पूर्वी तथा पश्चिमी देशों में उनके भक्तों ने इसका अनुभव किया है।

एक समय जब बाबा फ़ारस देश में थे, तब बम्बई (अब मुंबई) के एक पारसी दम्पत्ति का बच्चा अचानक बीमार हो गया। वे दोनों पति–पत्नी बाबा के गहरे भक्त थे। बच्चे की हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई। उसके माँ–बाप ने बच्चे की प्राण–रक्षा के लिए बाबा से दिन रात आन्तरिक प्रार्थना की। तब एक रात को, जबकि बच्चे की हालत इतनी गिर गई कि उन्होंने उसके अच्छे होने की आशा क़रीब क़रीब छोड़ दी थी, बाबा प्रत्यक्ष रूप से अपने भौतिक शरीर में प्रकट हुए और बच्चे के शरीर पर अपना हाथ फेर कर उसी क्षण अन्तर्धान हो गए। उसी क्षण से बच्चे की हालत में सुधार होने लगा और थोड़े समय में वह बिल्कुल चंगा हो गया।

कुछ महीनों के उपरान्त, जब बाबा लौटकर भारतवर्ष आये, एक शिष्य ने उनसे पूछा कि ऐसी घटना कैसे घटित हो सकती थी। चूँकि बाबा अपने द्वारा प्रयोग में लाई गई किसी गूढ़ कला को समझाकर उसमें अपना हाथ होना कदाचित ही प्रकट करते थे, इसलिए उस शिष्य को केवल यह मालूम हो सका कि सद्गुरु के लिये एक स्थान पर होना और उसी समय हज़ारों मील दूर किसी दूसरे स्थान में प्रकट हो जाना बिल्कुल साधारण बात है। बाबा ने उस शिष्य को बताया कि एक बार ईसामसीह एक ही क्षण में बारह अलग अलग स्थानों में प्रकट हुये थे। उनके वे स्थूल प्रतीत होने वाले अनेक शरीर वास्तव में सूक्ष्म शरीर थे।

कामटे डी सेन्ट जरमेन (Comte De St. Germain) की कथा भी दूर–दूर तक प्रसिद्ध है कि वह फ्रान्स में हुई क्रान्ति के अवसर पर एक ऐसे रूप में, जो स्थूल प्रतीत होता था, पेरिस नगर के छः फाटकों पर एक ही समय पर प्रकट हुए थे।

फिर भी, एकमात्र चमत्कार जिससे ईश्वर–प्राप्त पुरुष सम्बन्ध रखता है यह है कि वह दैवी प्रेम के द्वारा व्यक्तिगत आत्मा को उसके बन्धनकारी संस्कारों से मुक्त करता है। विचार, भावना अथवा कर्म के ये संस्कार केवल वे संस्कार नहीं हैं जिनको उपार्जित कर चुकने की 'चेतना' हमको है। अहंकारी अनुभव के इन चेतन संस्कारों में से अनेक संस्कार तो धार्मिक

परिवर्तन जैसे उलट–पलट के द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं; परन्तु गुप्त तथा 'अचेतन' परिमितताओं को दूर करने के लिये मनुष्य को बाबा जैसे चेतना के प्रभु की सहायता की आवश्यकता होती है। आधुनिक काल के सर्वोत्तम मानसिक चिकित्सक इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कर सकते हैं, परन्तु जब तक वे स्वयं अहंभाव से मुक्त नहीं होते और ईश्वरीय निधि की अबाध प्रणालियों के रूप में कार्य नहीं कर सकते, तब तक वे मनुष्य के लिए कोई पूर्ण तथा स्थायी छुटकारा प्रदान नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त मनुष्य को उसके पुण्य संस्कारों से भी मुक्त किया जाना चाहिये। इसके लिये पुनः एक आध्यात्मिक आचार्य की आवश्यकता होती है जो मनुष्य को उसके परिश्रमपूर्वक उपार्जित पुण्यों से होकर तथा उनके परे निकाल ले जाये।

इसी स्थल पर अनेक लोग फ़िसल जाते हैं। जिसे हम पाप अथवा दुष्कर्म कहते हैं उसके कारण और कार्य को नष्ट कराने के लिए हम प्रायः सहमत होते हैं; परन्तु अपने पुण्य कर्मों का नाश होने देना बिल्कुल भिन्न बात है ! तथापि, चूँकि समस्त अहंकारी संस्कारों को अन्ततः सन्तुलित होना आवश्यक है जिससे वे आप ही आप एक दूसरे को नष्ट कर दें, सद्गुरु उस आत्मा को, जो उसके पथ–प्रदर्शन के लिये उसके प्रति आत्मसमर्पण कर देती है, यह अनुभव करा देता है कि **समस्त सान्सारिक अनुभव मायावी हैं।** अनुभवकर्त्ता के रूप में हमें पृथक् 'मैं' अथवा अहंकार का अपना बोध खो देना चाहिये, क्योंकि जब तक यह तुच्छ 'मैं' बना रहता है, तब तक अभिमान के सूक्ष्म रूप अनिवार्य रूप से घुस आते हैं जो बहुधा पुण्यकर्म अथवा आध्यात्मिक सिद्धि का रूप धारण करते हैं। इसी अवस्था से सावधान रहने की चेतावनी ईसामसीह ने दी थी, जब उन्होंने पहले से बढ़कर सात दुष्ट दानवों की कथा कही थी जो पहले दानव से भी अधिक दुष्ट थे और जो नये सजे हुये घर में घुसने का प्रयत्न करेंगे; अर्थात्, जब **चेतन** पाप नष्ट हो चुकेंगे।

इन लाखों बन्धनकारी संस्कारों से छुटकारा पाने की एकमात्र निश्चित विधि है आत्मा में ईश्वरीय प्रेम की क्रिया। इस प्रेम को सद्गुरु जागृत अथवा प्रचण्ड करता है। यह वह प्रेम है जो अपने को भूला रहता है और केवल **प्रियतम** का चिन्तन करता है। निश्चय ही, इस प्रेम के द्वारा पैदा की गई **ईश्वर से एकता** प्राप्त करने की लालसा भी मन में संस्कार पैदा करती है। यह भी बन्धनकारी होती है; परन्तु यह आत्मा को परमात्मा से बाँधती है, जो उसको अन्ततः मुक्त कर देता है।

बाबा ने समझाया है कि मनुष्य के मन में इन संस्कारों का जन्म उस क्षण हुआ था जिस समय व्यक्तिगत 'बूँद'—आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए—**सत्यता** के अपार महासागर के 'विधाता बिन्दु' से निकल पड़ी थी। उस 'बूँद' को उद्घाटित करने वाले विकास के साथ साथ **संस्कार** आवश्यक रूप में बढ़ते गए, यहाँ तक कि मनुष्य योनि में उन्होंने आत्मा को शब्दशः जकड़ लिया है। स्थूल शरीर के भीतर अथवा उसके बाहर, व्यक्तिगत आत्मा इन मानसिक तथा भावात्मक संस्कारों से ढँकी रहती है, और जब तक ये संस्कार देहधारी सद्गुरु की कृपा द्वारा नष्ट नहीं कर दिये जाते तब तक आत्मा को अपने ईश्वरीय तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर—साक्षात्कार समस्त अच्छे और बुरे संस्कारों अथवा प्रवृत्तियों का सन्तुलन अथवा पारस्परिक उन्मूलन होता है; वह एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें मन एक शान्त झील के जल की भाँति निश्चल होता है। केवल जिस समय मन को अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिये कोई बात होती है, तभी अन्तर्ज्ञान से हुई जानकारी विचार प्रक्रिया को पुनः गतिमान करती है। भारतवर्ष के एक समकालीन सन्त अरविन्दो घोष ने मन की इस अवस्था का सुन्दर वर्णन किया है : "जब हम विचारों के परे चले जायेंगे, तब हमें ज्ञान प्राप्त होगा; विवेक हमारा सहायक था; विवेक बाधा है...। विवेक को व्यवस्थित अन्तर्ज्ञान में बदल दो; तुम सम्पूर्णतः **ज्योतिर्मय** हो जाओ। यही तुम्हारा लक्ष्य है।"

ऐसी अवस्था प्राप्त करना स्वाभाविकतया बहुत कठिन है। यदि मन विचार क्रिया को बन्द करने का प्रयत्न करता है, तो उसका झुकाव गम्भीर निद्रा जैसी अवस्था की ओर हो जाता है—अर्थात्, अचेतन। बड़े से बड़े योगी भी मन की इस स्थिर अवस्था को स्थायी रूप से प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। अधिक से अधिक, वे कुछ अवधियों की 'समाधि' अवस्था प्राप्त करने में सफल होते हैं जिनके दौरान में मन की क्रिया दूर रहती है, परन्तु जिस समय वे साधारण चेतन अवस्था में वापिस आते हैं उस समय उनकी मानसिक प्रक्रियायें पुनः प्रारम्भ हो जाती हैं और बन्धनकारी संस्कारों का अहंभावी भण्डार बढ़ जाता है।

बाबा कहते हैं कि 'समाधि' में स्थित होना और समाधि से उतरना नशा करने की आदत के वशीभूत होने के समान है। इससे आत्मा में इसके लिये अधिक और अधिक अभिलाषा बढ़ती है, और यह चेतना के पूर्ण योग में कोई स्थायी प्रभाव नहीं डालती। यह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य अब भी मन की क्रिया के बन्धन में है, यद्यपि वह एक ऊँची कोटि पर है। चेतना को 'खोना' लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है **अचेतन** की चेतना प्राप्त करना।

जिस अर्थ में बाबा अहंकार शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका भाव केवल स्वार्थी होना तथा आत्म—विचार में हठी होना ही नहीं है। किसी भी रूप में हमें अपने पृथक् अस्तित्त्व का ज्ञान होना अहंकार है। ऐसी ज़रा सी बात जैसे यह स्मरण कि हमें गत रात्रि को ठीक तरह से नींद नहीं आई अहंकार है; इसी प्रकार 'आत्म' सम्बन्ध (Self Concern) की कोई अनुभूति भी अहंकार है। यद्यपि अहंकार अनेक फन वाला सर्प है, तथापि इसकी चार मुख्य शाखायें हैं:— 'लालसा' जो वासना अथवा इच्छा की तृप्ति से उत्पन्न होती है, 'भय', 'क्रोध', और 'लोभ'।

पश्चिमी देशों के पुरुष अथवा स्त्री के अहंकार को क्षीण करने के लिए जो विविध उपयुक्त कलायें प्रयोग में लाई जा सकती हैं, उनमें मानसिक चिकित्सा सम्बन्धी रीतियों की अधिक आध्यात्मिक रीतियाँ सर्वोत्तम हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा जो खुद से अपना सामना (Self-facing) और तदनन्तर आत्मज्ञान उत्पन्न किया जाता है वह आत्मा के गम्भीरतर अनुभव के लिए बहुत मार्ग साफ़ कर देता है। चेतना का कोई

भी सच्चा शोधन, चाहे वह विश्लेषण के द्वारा हो अथवा धार्मिक परिवर्तन के द्वारा हो, मनुष्य को अहंकार के अधिक कोलाहलकारी रूपों से मुक्त करने में सहायता करता है। फिर भी, चेतनतया माने गये पापों की स्वीकृति केवल अधिक स्पष्ट दोषों के प्रति सावधानी रखती है। हमारे अहंकार की असली जड़ें **अचेतन मन** में गहरी गड़ी होती हैं, और वे हमारे उस अंग से चतुरतापूर्वक गुँथी होती हैं जिसकी हम सबसे अधिक क़द्र करते हैं। यदि रचनात्मक विचार हमारे लिये उच्चतम मूल्य रखता है, तो अहंकार की जड़ें हमारी बुद्धि में गड़ी हुई मिलेंगीं। यदि भावना (Feeling) हमारी प्रबल विशेषता है, तब हम इन गला घोंटने वाली जड़ों को भावुक प्रवृत्ति में पाने की आशा कर सकते हैं। अहंकार की इन जड़ों को सुलझाकर यथार्थ **आत्मा** (Self) से अलगाना एक भारी आपरेशन (चीरने फाड़ने की क्रिया) करने के समान है, जिसके लिए सबसे अधिक प्रवीणता रखने तथा चेतना की गहरी से गहरी गुहाओं में अन्तर्दृष्टि रखने की आवश्यकता होती है। यह ऐसा आपरेशन है जो आध्यात्मिक **आचार्य** (Master) द्वारा किया जाता है जो यह जानता है कि मिथ्या व्यक्तित्त्व को किस प्रकार अलग किया जाये और साथ ही साथ यथार्थ **आत्मा** को किस प्रकार मुक्त किया जाये।

कदाचित् किसी युग में केवल इने–गिने लोग होते हैं जिनकी अन्तरात्मा की प्रचण्डता अहंकार के उस अन्तिम विनाश को खोजने के लिए बाध्य करती है जिससे उनको अपने ईश्वरपन का ज्ञान हो जावे। परन्तु इन कतिपय लोगों के लिये, बाबा का कथन है कि जिस समय मनुष्य ऐसा क़दम रखने के लिए तैयार होता है, तो वह मनुष्य चाहे जहाँ होवे और चाहे जिन परिस्थितियों में होवे, उसको देहधारी सद्गुरु से सम्पर्क करने के साधन जुट जाते हैं। इस विषय में बाबा का मत इतना निश्चित है कि वह कहते हैं कि जिस आत्मा ने मुक्ति की कमाई कर ली है उसको **मुक्ति** प्रदान करने के लिए स्वयं परमात्मा कुछ समय के लिए शरीर धारण करके अवतरित होगा। जब कभी ईश्वर–प्राप्ति के लिए आत्मा की उत्कण्ठा अपनी चरमसीमा तक पहुँच जाती है, तभी उसकी आवश्यकता को तृप्त करने के लिए ईश्वर मार्ग ढूँढ़ निकालता है।

इसका एक निराला उदाहरण असीसी के सन्त फ्रान्सिस की गाथा है, जो पश्चिमी देशों में आध्यात्मिक जीवन के अनेक भक्तों को ज्ञात है। बाबा के कथन के अनुसार सेराफ (Seraph) का आभास तथा सन्त फ्रान्सिस को पुष्पकेशर का प्रदान किया जाना (Conferring of the Stigmata) सन्त फ्रान्सिस को आध्यात्मिक मार्ग के अन्तिम पहलू, अर्थात् ईश्वर–साक्षात्कार, में प्रविष्ट किये जाने की क्रिया थी; और, चूँकि उस समय दुनियाँ के उस भाग में कोई शरीरधारी सद्गुरु नहीं था, इसलिये स्वयं ईसामसीह ने सेराफ का रूप धारण किया और अपने अत्यन्त प्रिय दास को उस महान खड्ड के पास खींच लिया जो परिमित को अपरिमित से और मनुष्य को ईश्वर से अलग करता है।

•

फ़र्वरी 1926 ई. में बाबा को अपने बड़े भाई जमशेद की आकस्मिक मृत्यु हो जाने का समाचार मिला। बाबा ने तुरन्त ही मण्डली को एकत्रित किया और उनको वह तार सुनवाया। कुछ ही दिन पहले जमशेद उन सबके बीच में साधारण और प्रसन्न अवस्था में मिलते जुलते रहे थे। वह सभी शिष्यों को प्रिय थे इसलिये उनकी आकस्मिक मौत से वे लोग दुखी हुये। परन्तु बाबा ने उस समाचार से क्षुब्ध न होते हुये उसके विषय में अत्यन्त स्वाभाविक रीति से बात की। उन्होंने शिष्यों से पूछा कि क्या वे उस मृत्यु से दुखी थे, जिसका उत्तर उन सबने 'हाँ' में दिया। इस पर बाबा ने उन लोगों की इस प्रवृत्ति के मिथ्यापन को दरसाने के लिये उस अवसर का प्रयोग किया।

एक शिष्य ने हठपूर्वक बाबा से पूछा, "परन्तु क्या वह आपके भाई न थे ? और क्या उनकी मृत्यु नहीं हो गई है ?"

"निस्सन्देह वह मेरा भाई था, परन्तु केवल उसके शरीर की मृत्यु हुई है। वह मेरे अन्तर में विश्राम कर रहा है।"

दूसरे शिष्य ने पूछा, "यह हमको कैसे मालूम हो सकता है ?"

बाबा ने एक मीठी झिड़की देते हुये उत्तर दिया, "उसका विश्वास करने से जो जीवन और मरण के भेदों को जानता है।"

शिष्यों के अन्य प्रश्नों का उत्तर देते हुए बाबा ने बताया कि मृत्यु सबकी होती है। "आत्मा के अग्रसर होने में मृत्यु एक आवश्यक क़दम है, जो केवल एक नवीन शरीर के रूप में बदल जाती है। इस प्रकार मृत्यु केवल तुम्हारे कोट बदलने के समान है। मृत्यु की तुलना सुप्तावस्था से की जा सकती है, किन्तु मृत्यु और सोती अवस्था में यह अन्तर है कि मृत्यु के उपरान्त मनुष्य एक नवीन शरीर में पुनः जागता है। अपने किसी प्रियजन के सो जाने पर लोग इसलिये दुखी नहीं होते क्योंकि वे जानते हैं कि वह फिर से जागेगा। मृत्यु के विषय में भी लोगों की ऐसी ही प्रवृत्ति होनी

चाहिये। मौत केवल एक अधिक लम्बी निद्रा है, जिसके पश्चात् तथाकथित मृत पुरुष देर सबेर एक नये शरीर में जागता है।

"फिर भी, किसी आत्मा के अपना भौतिक शरीर छोड़ देने पर हम उसके मित्रों तथा सम्बन्धियों को क्या कहते हुये सुनते हैं, 'मेरा प्रिय पिता मर गया !' 'मेरी प्राण प्यारी कहाँ है ?' 'मेरा पति मुझसे छीन लिया गया!' मरे हुये पुरुष के घर में शोक तथा वेदना का भारी प्रदर्शन होने के बावजूद, क्या उस प्रदर्शन में सर्वोपरि विचार स्वर्गीय आत्मा की कुशलता की अपेक्षा 'मेरा' और 'हमारा' का ही नहीं होता?

"मैं अपने लाखों 'भाइयों' को प्रतिदिन मरते हुये देखता हूँ, और उससे मैं दुखी नहीं होता। तब मेरे शारीरिक सम्बन्ध का सहोदर इस नियम का अपवाद क्यों हो ? मौत जीवन की अनिवार्य यथार्थता है, और उस पर आँसू बहाना या तो पागलपन है अथवा स्वार्थपरायणता है। दुर्भाग्यवश जमशेद वास्तविक रूप में नहीं मरा है ! यदि वह सच्चे अर्थ में मरा होता—अर्थात् **पृथक** अस्तित्त्व की समस्त चेतना के प्रति मृत होता—तब तुम्हें आनन्द मनाना चाहिये था, क्योंकि उसका यह अर्थ होगा कि वह **सचमुच जीवित** है, क्योंकि तब उसे ईश्वर से अपनी एकता की चेतना होगी। यद्यपि मैं तुम लोगों के साथ खेलता हुआ, खाता हुआ, और वह सबकुछ करता हुआ जो एक तथाकथित जीवित पुरुष करता है, तुम लोगों के बीच में घूमता फिरता हूँ, तथापि मैं वास्तव में मृत हूँ ! मैं सच्चे अर्थ में जीवित हूँ, क्योंकि मैं सच्चे अर्थ में मृत हूँ। तुम सब लोग उस सच्चे अर्थ में मर जाओ, जिससे तुम शाश्वत रूप से जीवित रह सको !"

बाबा चाहते थे कि उनके शिष्य सन्त पाल (St. Paul) की भाँति 'नित्य मरें', जिससे वे बाबा के साथ कह सकें : "मेरे लिये ईसामसीह का अर्थ है उनको अपने 'जीवन में प्रस्तुत करना' ! तथापि, मैं जीवित नहीं हूँ, वरन् ईसामसीह मुझमें जीवित हैं।"

कुछ भारतीय पुरुष शिष्यों की मृत्यु की यादगार में किये गये एक संस्कार का वृत्तान्त मुझको अभी भारतवर्ष से प्राप्त हुआ है, जिसके द्वारा मेरे ध्यान में यह बात आई है कि बाबा अखिल जीवन—और मरण—को ऊँचा उठाकर आध्यात्मिक सौन्दर्य के क्षेत्र में ले जाते हैं। मेहेराबाद पहाड़ी

के दामन में एक छोटी कब्र खोदी गई थी और उसमें मासा का शव रक्खा गया जो बाबा के प्रिय बूढ़े चाचा थे जो उसी समय मर गये थे। चाँजी की मृत्यु कश्मीर में हुई थी और उसका अंतिम संस्कार वहीं हुआ था इसलिये उसका बिस्तर इस कब्र में रक्खा गया। तदनन्तर बाबा के शिष्य आदि के. ईरानी ने बाबा का एक सन्देश पढ़ा। उसी समय बाबा, जो विशेष रूप से दीप्तिमान तथा सुन्दर दिखाई पड़ते थे, जैसे–जैसे चाँजी, मासा तथा अन्य मरे हुये शिष्यों के नाम उच्च स्वर से पढ़े जाते थे, कब्र में गुलाब के फूल फेंकते जाते थे। मुझे समाचार देने वाली लिखती है कि उसने केवल यही एक ऐसा मृत्यु संस्कार देखा था जिसमें मृत्यु बिल्कुल शोक–रहित बना दी गई थी। शोक का स्थान उस आनन्द ने ग्रहण कर लिया जो उन सबको उन लोगों की स्मृति से प्राप्त हुआ जो बाबा की सेवा में जिये और मरे थे।

उस प्रारम्भिक काल में अनेक शिष्यों के लिये जमशेद की मृत्यु एक इष्ट जन की मृत्यु का उनका सर्वप्रथम अनुभव था और तदनुसार उससे उनके मन में कितने ही प्रश्न पैदा हुये जिनको बाबा ने उनके लिये स्पष्ट किया :–

"गम्भीर निद्रा में चेतना रहती है परन्तु अहंकार नहीं रहता, और मृत्यु की अवस्था में चेतना तथा अहंकार दोनों होते हैं। भौतिक शरीर की मृत्यु के पश्चात् आत्मा सीमित अहम्, मन तथा सूक्ष्म शरीर सहित बनी रहती है। केवल ऊपरी लिबास छूट जाता है। एक से लेकर तीन दिन तक सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से एक तन्तु के समान श्रृंखला के रूप में अपना सम्बन्ध जोड़े रहता है, परन्तु इससे अधिक समय तक कदापि नहीं।" बाबा ने और आगे समझाया:–

स्थूल शरीर से अन्तिम पृथकता हो जाने के पश्चात् अस्तित्व की चार मुख्य अवस्थायें होती हैं : 1. ऊर्ध्व गति; 2. तत्काल पुनर्जन्म; 3. स्वर्ग अथवा नर्क 4. अधोगति।

1. ऊर्ध्वगति–केवल आध्यात्मिक रूप से उन्नत प्राणी ही ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं–अर्थात्, चन्द्रलोक से परे तथा ऊपर जाते हैं। वहाँ वे उस समय तक रहते हैं जब तक कि वे पृथ्वी पर पुनः जन्म नहीं ले सकते, क्योंकि **पूर्णता की सिद्धि केवल स्थूल मानव शरीर में ही हो सकती है।**

फिर भी, इस बीच की अवधि में ये उन्नत आत्मायें अपने विशेष प्रकार के **संस्कार** ख़र्च करने के लिये पृथ्वी के प्राणियों के शरीरों का उपयोग कर सकती हैं और करती ही हैं।

2. तत्काल पुनर्जन्म–जिन आत्माओं के अच्छे और बुरे **संस्कार** प्रायः सन्तुलित होते हैं, परन्तु बिल्कुल बराबर नहीं होते–क्योंकि यदि वे बिल्कुल बराबर हों, तो ऐसी आत्माओं को तुरन्त ईश्वर–साक्षात्कार प्राप्त हो जाये–वे तत्काल ही पृथ्वी पर मनुष्य देह में पुनर्जन्म ले लेती हैं।

3. (अ) स्वर्ग–जिस मनुष्य ने अच्छे **संस्कारों** का अधिकांशतः संचय कर लिया है और थोड़े ही कुसंस्कार संचित किए हैं, वह अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा उस अवस्था का अनुभव करता है जिसे स्वर्ग कहते हैं। इस अवस्था में आनन्द की अनुभूति करने की क्षमता दसगुनी हो जाती है, और थोड़े से कुसंस्कारों के फलस्वरूप उत्पन्न कष्ट का बोध उसी अनुपात में कम हो जाता है। दूसरे शब्दों में, इस अवस्था में व्यावहारिकतया क्लेश का बिल्कुल अनुभव नहीं होता, वरन् केवल आनन्द ही आनन्द रहता है जब तक कि समस्त अच्छे **संस्कार** खर्च नहीं हो जाते। फिर भी, इन **संस्कारों के प्रभाव** बने रहते हैं और वे आत्मा को पृथ्वी पर दूसरी देह धारण करने के लिए अन्ततः प्रेरित करते हैं।

3. (ब) नर्क–जिस मनुष्य ने अपने सान्सारिक जीवन में अनेक कुसंस्कार संचित कर लिये हैं, वह मृत्यु के उपरान्त उस अवस्था का अनुभव करता है जिसे नर्क कहते हैं, जिसमें क्लेश का अनुभव करने की मात्रा दसगुनी हो जाती है और आनन्द की अनुभूति की क्षमता उसी अनुपात में कम हो जाती है। नर्क की अवस्था में केवल क्लेश ही क्लेश होता है, जब तक कि वे सब **संस्कार** खर्च नहीं हो जाते जिनके कारण यह अवस्था प्राप्त होती है। इन संस्कारों के प्रभाव बने रहते हैं जो आत्मा को मानव शरीर में पुनः जन्म लेने के लिये बाध्य करते हैं।

4. अधोगति–जिन लोगों ने विषय–सुख के लिये हत्या करने, अथवा लोलुपता, जैसे कर्मों के फलस्वरूप घोर कुसंस्कार संचित कर लिये हैं, वे मृत्यु के उपरान्त अधोगति को प्राप्त होकर पशु आत्माओं के प्रदेश में जाते

हैं, और वहाँ वे सान्सारिक जीवन के लिए कोई उचित स्थूल शरीर पाने की प्रतीक्षा करते हैं।

जो मनुष्य आत्महत्या द्वारा अपनी मौत करता है उसकी दशा को विशेष रूप से समझाने की आवश्यकता है। ऐसा प्राणी न ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है और न अधोगति को, न तो वह तत्काल पुनर्जन्म लेता है, और न वह स्वर्ग अथवा नर्क में ही जाता है। ऐसी आत्मायें पृथ्वीतल के निकटतर अनिश्चित अवस्था में लटकी रहती हैं, क्योंकि उनके लिये उपरोक्त चार अवस्थाओं में दशा अत्यन्त दयनीय होती है, क्योंकि उनको भी अपने **संस्कारों** के खिंचाव की अनुभूति होती है, परन्तु पृथ्वी के प्राणियों के समान, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये उनको स्थूल शरीर प्राप्त नहीं होता। इन्हीं आत्माओं को हम सर्वसाधारण की भाषा में भूत अथवा प्रेत आत्मायें कहते हैं। इन्हीं आत्माओं का सम्पर्क कभी कभी किन्हीं माध्यमों से हो जाता है, और वे हित व अनहित दोनों के कारण सिद्ध होती हैं। कभी कभी कोई ऐसी आत्मा किसी मनुष्य के शरीर पर अधिकार करने का प्रयत्न करती है जिसके साथ **संस्कारों** की समानता के कारण वह आत्मीयता अनुभव करती है।

उदाहरण के लिये, यदि कोई मनुष्य, जो स्वर्ग की अवस्था का अधिकारी है, आत्म–हत्या करता है, तो वह भूलोक के निकट अनिश्चित अवस्था में बना रहता है, और यदि वह किसी मानव प्राणी के सम्पर्क में आता है तो उसको वह कोई हानि नहीं पहुँचाता। परन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जो अपने कुसंस्कारों के कारण नर्क का अधिकारी था, अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है, तो वह अपने सम्पर्क में आने वाले मनुष्यों के हेतु हानि तथा पीड़ा का कारण बन सकता है। फिर भी, सापेक्षतया अच्छी आत्माएँ सामान्यतः योगियों के द्वारा राहत पाने का प्रयत्न करती हैं, अथवा वे रात्रि के अन्धकार में किसी सद्‌गुरु की सेवा करने का प्रयत्न करती हैं। तथापि कर्म–विधान के अनुसार, ऐसी लटकी हुई आत्माओं को सद्‌गुरु की सहायता से मनुष्य–देह में पुनः जन्म लेने का अवसर पाने में कई कालचक्र लग जाते हैं। दुष्ट आत्माएँ सद्‌गुरु से यथा संभव दूर भागती हैं। भली और बुरी दोनों लटकी हुई आत्मायें कभी कभी किसी मानव–प्राणी के द्वारा

अपने **संस्कारों** को पूरा कर सकती हैं, यदि वे अपने ही जैसे संस्कारों का तथा उपयुक्त भूतकालीन कर्म–सम्बन्धों वाला मनुष्य पा जावें। बहिर्हाल, किसी लटकी हुई आत्मा के ऐसे 'आधिपत्य' के अज्ञान का नया शिकार बने हुये मनुष्यों को शारीरिक अथवा भौतिक हानि हो सकती है, यद्यपि आध्यात्मिक रूप से उनका इतना कल्याण होता है कि वे तीन अथवा चार जन्मों से मुक्त हो जाते हैं।

मई 1927 ई. में, मेहेराबाद में हाल ही में खोली गई पाठशाला, जिसमें विभिन्न जातियों के दस भारतीय लड़के थे, चालू थी, और जौलाई माह में फारस से चौदह बालकों के आ जाने के कारण उसमें एक विशेष फ़ारसी विभाग जोड़ दिया गया। बालकों को सामान्य लौकिक शिक्षा प्रमाणित अध्यापकों द्वारा दी जाती थी, जो अवैतनिक सेवा करते थे, और बाबा उनके मनों में महान आध्यात्मिक सत्यताओं का धीरे–धीरे प्रवेश करते थे। यह शिक्षा जो किसी बाहरी व्यक्ति के लिये बच्चों की गहराई से बहुत परे प्रतीत हो सकती थी, अन्तर्ज्ञान द्वारा बच्चों की समझ में स्पष्टतया आ जाती थी, क्योंकि नवम्बर के अन्त तक वह दैवी चिनगारी, जो बाबा उनके हृदयों में लगाते रहे थे, दैवी प्रेम की ज्वाला में भभक उठी जो तमाम पाठशाला में फैल गई।

जनवरी 1928 ई. में एक पन्द्रह वर्षीय मुसलमान बालक, जो अब छोटा बाबा कहलाता है, अति–चेतन अवस्था में हो गया और उसको चार दिन तक अपने शरीर का ज्ञान न रहा। अपने इस अनुभव के सम्बन्ध में वह लिखता हैः–

"एक दिन रात्रि को, एक अध्यात्म–वैज्ञानिक प्रवचन देने के पश्चात् बाबा ने मुझसे कहा, 'बच्चे, विश्वास रख और भरसक प्रयत्न कर; मैं तुझे सोना बना दूँगा।' मेरे गुरु के इन शब्दों का मेरे मन पर भारी प्रभाव पड़ा; मनुष्य जितनी आशा कर सकता था उससे बिल्कुल परे प्रभाव पड़ा। वे शब्द आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण थे और उन्होंने मुझको बहुत विकल कर

दिया। एक महान आध्यात्मिक लालसा ने मेरे ऊपर अधिकार जमा लिया और जागृत अवस्था में हर क्षण मैं अपने से कहता था, 'मेरा यह ख़ाक का शरीर कब सोना बन जायेगा ?' मेरे भीतर एक महान क्रान्ति उत्पन्न हो गई थी। स्कूल के लड़के तथा बाबा के शिष्य दोनों मेरी परिवर्तित दशा पर आश्चर्य करते थे। मैं ख़ुद अपनी इस अवस्था पर आश्चर्य करता था। मुझको गहरी नींद नहीं आती थी, और सब प्रकार के भोजन के लिये मेरी पूरी रुचि समाप्त हो गई थी। फिर, दिसम्बर माह में एक दिन भोजन करते समय मुझको अपने शरीर में, एड़ी से लेकर चोटी तक, एक महान संवेदन महसूस हुआ। मेरे आँसुओं की धारायें बहने लगीं और मैं ज़ोर से चिल्ला पड़ा। मेरे चारों ओर प्रत्येक वस्तु चक्कर खाती हुई और फिर लुप्त होती हुई प्रतीत होती थी। मेरा खून अत्यन्त गरम हो गया और गरमी भीतर से मेरे शरीर को फोड़कर निकलने लगी। फिर मैं मूर्छित हो गया। जब मुझको होश आया तो मैंने अपने प्रियतम गुरुदेव को अपने समीप बैठे हुए देखा। मैं बरबस चिल्ला पड़ा। उन्होंने मुझको शान्त किया और मुझको एक गिलास दूध दिया। मैं उनके अतिरिक्त किसी वस्तु अथवा किसी व्यक्ति का विचार नहीं कर पाता था। मैं निरन्तर उनका ध्यान करता था। पाठशाला के समय में भी, जब मैं दिखावे में पढ़ता होता था, मेरा हृदय मेरे प्रियतम के पास रहता था। उनके वियोग से मुझको प्रचण्ड पीड़ा होती थी। मुझको उन्हीं के पास रहने में ही सन्तोष मिलता था। यह अनुभूति दैवी प्रेम थी, अर्थात् सद्गुरु की देन–वह प्रेम था जिसके विषय में सूफी कवि तथा रहस्यवादी शम्स–ए–तबरेज़ ने कहा है : 'जब शम्सुल हक़ के तबरेज़ ने प्रेम के पंख फैलाये, तो फ़रिश्ता गैबरील उसके पीछे–पीछे दौड़ने लगा।'

"जनवरी 1928 ई. में एक दिन, जिस समय पवित्रात्मा बाबा लड़कों तथा शिष्यों को आध्यात्मिक शिक्षा दे रहे थे, मुझको महसूस होने लगा कि मैं चेतना–शून्य हो रहा था, और अचानक 'आह बाबा' कह उठने के पश्चात् मैं सचमुच चेतनाशून्य हो गया। मुझको बाबा के दिव्य स्वरूप के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु का ज्ञान न रहा। पाँचवें दिन मेरी भौतिक चेतना लौटी, परन्तु उसके वापिस आने पर बाबा का दिव्य स्वरूप–जो स्मरण रखना चाहिये कि उनका **भौतिक** शरीर नहीं है–लुप्त नहीं हुआ।

उस समय से मैं उस स्वरूप को हर वस्तु में तथा हर मनुष्य में देखता हूँ, और अब अकथनीय आनन्द का उपभोग करता हूँ। अपनी मौजूदा उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त करने के पहले मैंने बहुधा पढ़ा और सुना था कि यह स्थूल जगत केवल **माया** ही है। अब मैं स्वयं देखता हूँ कि यह सचमुच सत्य है। केवल ईश्वर ही **सत्य** है। अन्य सबकुछ मिथ्या है।"

अन्य बालकों ने न्यूनतर अंशों में चेतना के ऐसे ही विस्तार का अनुभव किया। एक विशेष रूप से आकर्षक कहानी अली नाम के एक अन्य चौदह वर्षीय फ़ारस–निवासी बालक की है। प्रारम्भ से ही अली बाबा की ओर गम्भीर रूप से आकर्षित था, और बाबा के कृपापूर्ण प्रभाव के द्वारा वह उनका अत्यन्त उत्साही भक्त बन गया। परन्तु अली के चाचा तथा पिता आध्यात्मिक समझ रखने वाले व्यक्ति नहीं थे। वे सरलता से उन अफ़वाहों के वशीभूत हो गये जो उस समय स्कूल के सम्बन्ध में फैल गई थीं। लोग कानाफूसी करते थे कि उस पाठशाला के बालकों को पारसी धर्म मानने के लिये बाध्य किया जाता था; और वे स्कूल में अपनी इच्छा के विरुद्ध रोके जा रहे थे; और उनको कम भोजन दिया जाता था, और इसी प्रकार के अन्य निराधार अभियोग लगाये जाते थे।

मनुष्य का अपनी परिमितताओं के अनुरूप दूसरों को आँकने और केवल ऊपरी परिस्थिति अथवा कर्म देखने के प्रति अत्यन्त झुकाव होता है। दिखावटी रूपों के नीचे अन्तर्निहित उद्देश्य को देखने के लिए एक सीमा तक आध्यात्मिक परिपक्वता की आवश्कता होती है जो इने–गिने लोगों में ही विद्यमान प्रतीत होती है। मनुष्य एक ईसामसीह की इस कारण से विडम्बना करने में, कि वह वेश्याओं तथा शराबियों से अपना संसर्ग रखता है, अपने ही मन की दूषित अवस्था को प्रगट करता है। वह मनुष्य यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई पुरुष ऐसे लोगों से दोस्ती रखते हुये भी उनके दोषों से अछूता रह सकता है। जब हम किसी हद तक ईसामसीह की ऊँचाई के निकटतर पहुँचते हैं, तभी हम उस अपार दया तथा पवित्र प्रेम को समझ सकते हैं जिनसे एक ऐसी महान आत्मा, मनुष्य की विचार

क्षुद्रता को ध्यान में न रखते हुये, अपनी दृष्टि में सर्वोत्तम रीति से मानव जाति के प्रति अपने उद्देश्य को पूरा करने में उत्प्रेरित होती है।

परन्तु यह बिल्कुल स्पष्ट था कि अली के पिता को वह दर्जा प्राप्त नहीं हुआ था, क्योंकि जब उसने अपने पुत्र के ऊपर बाबा के गहरे प्रभाव को देखा, तो उसको तत्काल ही किसी अशुभ बात का सन्देह हुआ, और उसको भय हुआ कि उसका बेटा इस अजनबी तथा न जानने योग्य गुरु के हाथों में खो जायेगा, जिनके विषय में उसके कुछ मित्रों ने उसको विश्वास दिलाया था कि वह एक दुष्ट जादूगर थे ! इसलिये उसने अली को स्कूल से अलग कर लिया और उसको साथ लेकर बम्बई (अब मुंबई) चला गया, जहाँ मेहेराबाद से रेलगाड़ी द्वारा पहुँचने में तीन घन्टे लगते हैं। परन्तु ईश्वरीय प्रेम का जादू पिता के भय से अधिक शक्तिशाली था। अली अपने घर से निकल भागा जहाँ वह कड़े पहरे में रक्खा गया था, और अपने प्रियतम गुरुदेव के पास वापिस पहुँच गया। परन्तु बाबा से अपने पुनर्मिलन के आनन्द का उपभोग वह कुछ घन्टे ही कर पाया। उसका पिता पुनः आ गया और अली एक बार फिर अपने घर में बन्दी बना दिया गया। परन्तु वह फिर वहाँ से निकल भागा, और मेहेराबाद पहुँचने में उसने घोर कठिनाइयों तथा परीक्षा का सामना किया। इस प्रकार वह चार बार निकल कर भागा और चार बार वह अपने घर लौटने के लिये बाध्य किया गया, जब तक कि उसके पिता को अन्त में यह विश्वास न हो गया कि बाबा का प्रभाव केवल शक्तिशाली ही न था वरन् कल्याणकारी भी था।

यह बालक अली उन शिष्यों में से था जो बाबा के पहली बार अमरीका जाने पर उनके साथ आये थे। उस समय वह लगभग अट्ठारह वर्ष की आयु का था, और वह अत्यन्त उत्साही था, सहज विनोद तथा क्रीड़ा से पूर्ण था, तथापि सुन्दर प्रतिष्ठा और सन्तुलन से युक्त था, और अपने गुरुदेव का पूर्ण भक्त था। हाल ही में बाबा ने अली को अपने ऊपर उसकी हर बाहरी निर्भरता अथवा अपने सम्पर्क से दूर हटा दिया है; इस प्रकार बाबा ने दिखाया है कि वह, आध्यात्मिक शिक्षा देने की प्रक्रिया में, किस प्रकार चाहते हैं कि उनके शिष्य उनसे अपने आन्तरिक सम्पर्क पर ही भरोसा रक्खें।

अहमद मुहम्मद नाम का एक अन्य दस वर्षीय बालक था जिसका प्रेम बाबा के प्रति अत्यन्त नाटकीय ढँग से अभिव्यक्त हुआ था। वह भी उसी समय पाठशाला से हटा लिया गया था जिस समय अली हटाया गया था। यद्यपि उसके माता–पिता तथा सम्बन्धियों ने उसको बाबा से अलग होने के लिये हर उपाय से राज़ी करने का प्रयत्न किया, फिर भी वह छोटा बालक अपने प्रियतम बाबा के लिए इतना लालायित रहा कि चार माह घर में रहने के पश्चात् उसने मेहेराबाद वापिस जाने का अकस्मात् निश्चय कर लिया। बिछाने ओढ़ने के कपड़े, भोजन अथवा रुपया–पैसा कुछ भी साथ न लिए हुए वह मेहेराबाद के लिए पैदल चल पड़ा। उसने अपनी क़मीज के तीन चाँदी के बटन तीन आना में बेच दिये। उसमें से कुछ पैसे उसने थोड़ी दूर तक रेलगाड़ी से यात्रा करने में ख़र्च कर दिये, जिससे वह शीघ्र ही अपने परिवार तथा मित्रों के क्षेत्र से बाहर हो जाये। फिर वह भारतवर्ष की जलती हुई धूप में देहाती क्षेत्र से पैदल चल पड़ा। वह लगभग चौदह मील चल पाया था कि रात हो गई और उस समय वह खुले प्रदेश में था। थका हुआ वह एक बड़े पेड़ पर चढ़ गया जिसको वह भूमि की अपेक्षा सुरक्षित समझता था, और उस पेड़ की कुछ चौड़ी शाखाओं के ऊपर लेट कर उसने विश्राम करने का प्रयत्न किया। परन्तु जाड़े के मौसम में भारतवर्ष की रातें ठंडी होने के कारण, और उसके पास ओढ़ने के लिए कपड़ा न होने के कारण, उसको बहुत ही उचटी हुई नींद आई। प्रातःकाल होने पर वह फिर से चल दिया।

चूँकि उसके पास केवल दो आना बचे थे, इसलिये वह जानता था कि उसको थोड़ा ही कलेवा करना चाहिये, अतः उसने थोड़े से ठंडे बिस्कुट खा कर और एक चुल्लू पानी पी कर अपनी भूख को शान्त किया। एक गाँव में एक भठियारे को इस बेचारे छोटे बालक पर दया आई, और उसने उसको वहाँ से गुज़रती हुई मोटर लारी से भेज देने का प्रस्ताव किया।

परन्तु अहमद को भय था कि उसको लारी पर कोई परिचित व्यक्ति न मिल जाये जो उसके भागने की सूचना उसके परिवार को दे दे; इसलिये उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और पैदल यात्रा ज़ारी रक्खी। दोपहर के समय उसने कुछ पैसों की मिठाई लेकर खाई और एक पेड़ की छाया के नीचे थोड़ी देर विश्राम किया।

जिस समय वह सड़क पर जा रहा था, एक अंग्रेज़ उसको अपनी मोटर पर बैठा कर पूना तक ले गया, जिससे उसकी यात्रा बहुत कुछ कम हो गई। शाम को उसने मुट्ठी भर फल खाये जिनको मोल लेने में उसने अपने बचे हुये पैसे ख़र्च कर दिये। उस रात को उसने पहले तो सड़क के किनारे पड़ी हुई एक बेंच पर सोने का प्रयत्न किया परन्तु ठंड़ी हवाओं के कारण उसका शरीर काँपता रहा जिसको ढँकने के लिये उसके पास कपड़े नहीं थे। तदुपरान्त वह एक इमारत के कोने में सिकुड़ कर लेट रहा और थोड़ी सी झपकी ले सका।

दूसरे दिन सुबह अपने गुरु की गुरु बाबाजान के पड़ोस में पहुँचने पर, अहमद उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये वहाँ रुक गया। जिस समय वह बालक बाबाजान के पास पहुँचा, उस समय बाबाजान दुशाला से अपना सिर ढके हुये सोती हुई प्रतीत होती थीं; इसलिये वह धीरे–धीरे पैर रखते हुये उनकी ओर चला और जब वह उनसे कुछ फीट की दूरी पर पहुँच गया तब उसने उनको साष्टांग प्रणाम किया। उसी क्षण बाबाजान ने अपना श्वेत केशों वाला सुन्दर सिर दुशाले से बाहर निकाला, और सीधे अहमद को देखते हुये उन्होंने अपने द्रवित प्रेम से भरी हुई चितवन उसके ऊपर डाली, जिससे वह छोटा बालक आनन्द के कारण पुलकित हो गया।

बाबाजान की प्रेममयी उपस्थिति से नवस्फूर्ति महसूस करके, वह अपनी यात्रा पर आगे बढ़ा। दोपहर के समय एक बुड्ढे आदमी ने उसको थोड़ी सी रोटी और चटनी दी जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया, क्योंकि अड़तालीस घन्टों में उसको यही पहला वास्तविक भोजन मिला था। उस बुड्ढे आदमी की सलाह पर अहमद उस रात को गाँव की मस्जिद में ठहर गया, परन्तु सर्दी के कारण उसे नाममात्र को नींद आई।

दूसरे दिन उसने सड़क के किनारे लगे हुये इमली के वृक्षों के पत्ते तथा फल खाकर निर्वाह किया। सोलह मील चलने के पश्चात् उसे परिश्रम व भूख दोनों के कारण थकावट महसूस हुई, इसलिये उसने थोड़ी देर विश्राम किया। तब अपनी इच्छा शक्ति को लगाकर वह छः मील और चला और एक रेलवे स्टेशन पर पहुँच गया। यहाँ उसने फिर से विश्राम करने का प्रयत्न किया, परन्तु इस समय उसके भीतर भूख की ज्वाला इतनी अधिक प्रज्वलित थी कि उसको भोजन की भिक्षा माँगने के लिये बाध्य होना पड़ा। वह एक मुसलमान सज्जन के पास पहुँचा, जो उसको रेलवे स्टेशन के भोजनालय में ले गया और उसके लिए चावल तथा शोरबा मँगाया। परन्तु उस बालक ने यह सोचकर कि शोरबा में माँस मिला होगा—जिसके खाने से बाबा की आज्ञा का उल्लंघन होगा—कहा कि उसको चाय–रोटी अधिक पसन्द थी। तदुपरान्त, उसकी भूख कुछ शान्त हुई और उसके शरीर में सुस्ती आई, इसलिये वह स्टेशन की एक बेंच पर गहरी नींद में सो गया। उसी बीच में पुलिस के एक धृष्ट सिपाही ने आकर उसको जगाया और स्टेशन से बाहर भगा दिया। शेष रात्रि उसने सीढ़ियों के नीचे लेट कर व्यतीत की। यहाँ उसको स्वप्न में बाबा की उपस्थिति प्राप्त हुई जिससे उसको आनन्द हुआ।

दूसरे दिन वह सुबह से लेकर सूर्यास्त तक बिना भोजन किये हुये तथा नाममात्र विश्राम किये हुये चलता रहा। दूसरे रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक बुढ़िया ने उसको खुद ही अपने पास बुलाकर अपने साथ भोजन कराया। उस रात को उसने पुनः रेलवे स्टेशन में ठहरने का साहस किया और इस बार वह वहाँ निर्विघ्न रहा।

छठवें दिन उसने सुबह अपनी यात्रा प्रारम्भ की। उस दिन वह सड़क के किनारे के खेतों में लगी हुई ज्वार की भुट्टियाँ खाते हुये चलता रहा, क्योंकि अब वह जानता था कि वह अपने लक्ष्य मेहेराबाद से थोड़ी दूर पर था। एक बार फिर उसने भिक्षा माँगी—भोजन की नहीं, वरन् अपने गुरु को भेंट करने के लिये फूलों की भिक्षा माँगी। यह बाबा के पड़ोस का क्षेत्र था जहाँ ग्रामीण लोग बाबा पर महान श्रद्धा रखते हैं। उस बालक की प्रार्थना पर एक माली ने उसको उत्सुकता पूर्वक मुट्ठी भर गुलाब के फूल भेंट

किये। सड़क के किनारे बैठ कर उस बालक ने अपने हृदय के **सम्राट** के लिये कुछ फूलों की एक माला गूँथी। थोड़े समय के पश्चात् रूखी आकृति का तथा गड्ढों में धँसी आँखों वाला एक छोटा बालक अपने गुरु के गले में अपना प्रेम–हार पहिना रहा था।

इस प्रकार बाबा के प्रति एक अन्य बालक के प्रेम की दूसरी वीरगाथा पूर्ण हुई। पश्चिमी देशों के हम लोग, जो चेतना की उच्चतर अवस्थाओं के विषय में अत्यन्त कम जानकारी रखते हैं, सोच सकते हैं कि यदि हम बाबा की ओर इन बालकों के चुम्बक जैसे आकर्षण को स्पष्ट करने के लिये मनोविज्ञान के शब्द 'Fixation' (स्थिरीकरण) का प्रयोग करें, तो हमने इस चमत्कार को हल कर दिया। यदि हम यह मान भी लें, तो हमने समझा ही क्या है ? हम उस प्रचण्ड प्रेरक हेतु (Motivation) के विषय में सचमुच क्या जानते हैं जिसने एक बालक को ऐसी भीषण कठिनाइयाँ तथा क्लेश सहने के लिये प्रेरित किया ? वास्तव में कोई भी मानवीय इच्छा मात्र, चाहे वह कितनी ही उत्कट क्यों न हो, एक छोटे बालक के शरीर को चौदह से बीस मील तक प्रतिदिन पैदल चलने की कठिन परीक्षा सहने के लिए बाध्य करते हुए, उसको छः दिन तक निद्रा व भोजन त्यागने के लिये प्रेरित न करेगी। किन्हीं सम्भव पूर्ण–धारणाओं के बावजूद ऐसी घटनायें हमको यह स्वीकार करने के लिये बाध्य करती हैं कि बाबा निश्चय ही कोई साधारण पुरुष नहीं हैं, जो साधारण बौद्धिक पैमाने से नापे जा सकते हों।

जिस समय मैं भारतवर्ष में थी, तब मैं 'स्कूल' के इन अनेक बालकों से मिली थी, जो अब बढ़कर प्रौढ़ हो गए हैं और अपने सद्गुरु की सेवा में पूर्णतः परायण हैं। कुछ लोग बिल्कुल ईमानदारी से यह सोच सकते हैं कि ऐसा आध्यात्मिक उत्थान जैसा बाबा ने इन छोटे बालकों में किया था बाद में उन बालकों में भीषण परिणाम उत्पन्न कर सकता था। ऐसे लोगों के लिये मैं उतनी ही ईमानदारी से यह कह सकती हूँ कि मुझको इतने स्वाभाविक अथवा मानसिक तथा भावात्मक रूप से इतने सन्तुलित मनुष्य कभी नहीं मिले जितने कि ये लोग हैं।

बाबा के एक यूरोपीय शिष्य सी. लीक के अनुभव, जो उन दिनों मेहेर–आश्रम में रहा था, बाबा के कार्य के इस पहलू पर प्रकाश डालते हैं:

"बाबा का प्रेम अपरिमित है। बाबा और उनके शिष्यों के बीच विद्यमान आत्मीयता के बन्धन को यदि कोई समझना चाहता है तो उसको चाहिये कि वह बाबा को आश्रम के बालकों के बीच देखे। जिस समय बाबा उन बालकों के कमरे में पहुँचते हैं उस समय उन बच्चों को बाबा को चारों ओर से घेरते हुए देखना अत्यन्त हृदयस्पर्शी दृश्य होता है ! वे बाबा से प्रेमालिंगन करने के लिये अपनी चारपाइयाँ छोड़ कर दौड़ते हैं, और अपने छोटे छोटे हाथों से उनकी कमर पकड़ कर चिपट जाते हैं, और बाबा उनके साथ खेलते हुये तथा उन्हें नम्रतापूर्वक चिढ़ाते हुए उनके हृदयों को बच्चों जैसे आनन्द से भर देते हैं।"

मार्च 1928 ई. में बाबा ने अपने शिष्य रुस्तम ईरानी को, कुछ अंग्रेज़ बालक अपनी पाठशाला के लिये लाने के प्रत्यक्ष प्रयोजन से, इंग्लैण्ड भेजा, और इस प्रकार अपना पहला सम्बन्ध–सूत्र पश्चिम की ओर फैलाया। परन्तु एक भारतीय पुरुष द्वारा संचालित भारतवर्ष के एक स्कूल में अंग्रेज़ बच्चों के पढ़ने के विचार के पक्ष में रुस्तम को इंग्लैण्ड में कोई प्रत्युत्तर न मिला। उससे भी कम रुचि वहाँ के अधिकारियों की पाठशाला के आध्यात्मिक पहलू के प्रति थी जिसका वर्णन रुस्तम ने उनसे किया था। उसने भरसक प्रयत्न किया, परन्तु उसके ध्येय के इस पहलू को असफल होना था। बाबा ने एक समुद्री तार द्वारा उसको आज्ञा भेजी कि वह लौट आवे। रुस्तम की वह छः सप्ताह की अन्धकार पूर्ण यात्रा थी, और वह इस कारण से और भी अधिक कष्टप्रद हो गई थी क्योंकि बाबा ने उसको आज्ञा दी थी कि वह पश्चिम में रहते हुये केवल रोटी, मक्खन और चाय ग्रहण करे। इंग्लैण्ड की ठंडी तथा नम बसन्त ऋतु में यह भोजन, विशेषतः उस मनुष्य के लिए जो अयनवृत्तीय (Tropical) जलवायु का अभ्यस्त था, नाममात्र को गरमी प्रदान कर सकता था।

परन्तु रुस्तम की निराशा की सबसे अधिक अन्धकारमय घड़ी में उसको एक विचित्र महत्व के अनुभव द्वारा प्रकाश मिला। एक दिन उसको

एक विचित्र पत्र मिला जिसमें पोर्ट्समाऊथ डाक घर की मुहर लगी थी, और जिसके द्वारा श्री X* ने रुस्तम के उस पत्र की प्राप्ति स्वीकार की थी जिसमें रुस्तम ने X से मिलने के लिये प्रार्थना की थी। रुस्तम का X को कोई सन्देश भेजना तो दूर रहा, रुस्तम ने उसका नाम भी कभी न सुना था। इसलिए उसने यह नतीज़ा निकाला कि वह पत्र उसको ग़ल्ती से दे दिया गया था और उसने लन्दन के सभी ईरानियों से सम्पर्क किया, परन्तु उनमें से किसी ने भी उस पत्र को अपना न बताया। यह विचित्र बात है कि रुस्तम को पत्र में दिये हुये पते के आदमी के पास पोर्ट्समाऊथ जाने की प्रेरणा हुई। X की धर्मपत्नी उसको द्वार पर मिली और उसने बताया कि उसका पति रुस्तम की प्रतीक्षा में बैठा था।

परस्पर परिचयात्मक शिष्टाचार समाप्त हो जाने पर उस व्यक्ति ने कमरे का प्रकाश धीमा कर दिया और इस प्रकार से बात करना प्रारम्भ कर दिया मानो वह बेतार के तार–यन्त्र द्वारा सन्देश प्राप्त कर रहा हो, यद्यपि इस प्रकार की कोई वस्तु वहाँ दिखाई नहीं पड़ती थी। धीमी तथा प्रभावकारी वाणी में उसने अपने आश्चर्य चकित आगन्तुक को सूचित किया:–

"मैं बाबा को देखता हूँ। इस समय भारतवर्ष में रात के दो बजे का समय है।" इसके बाद उसने आश्रम के निकट बनी हुई बाबा की कुटी का बिल्कुल सही वर्णन किया। फिर उसने कहा, "बाबा की भूमिका के अन्य सद्गुरुओं तक सरलता से पहुँच नहीं हो सकती है। वे ऐसे समय पर कोई विघ्न पसन्द नहीं करते। परन्तु बाबा अत्यन्त प्रेमी स्वभाव के हैं। मैंने उनको अभी बता दिया है कि अधिकारी गण बच्चों को भारतवर्ष ले जाने की आज्ञा न देंगे। परन्तु बाबा उत्तर देते हैं कि दुनियाँ में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है जो उनके कार्य में रोड़ा अटका सके। वह सचमुच इन लड़कों को बुलाना नहीं चाहते। वह पूर्वी और पश्चिमी देशों के मध्य प्रथम आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ना चाहते थे। अब तक पूर्वी भूभाग पूर्वी सद्गुरुओं

*श्री X ने निवेदन किया है कि उनका परिचय गुप्त रखा जाये।

के संरक्षण में रहा है, और पश्चिमी जगत पश्चिमी सद्गुरुओं के संरक्षण में। अब वह इन खण्डों को मिलाकर एक करना चाहते हैं; और यही असली कारण है जिसके लिए उन्होंने तुमको यहाँ भेजा है। तुम एक प्रकार का बेतार का सम्बन्ध लिये फिर रहे हो, जिसका भान तुमको नहीं है, और इसका प्रभाव उन सब लोगों पर पड़ता है जिनसे तुम मिलते हो।"

प्रारम्भ होने के लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात्, मेहेर आश्रम के पाठशाला पहलू को भंग करने के लिये पहला क़दम जनवरी 1929 ई. में उठाया गया, और उसी वर्ष अप्रैल के महीने में बाबा अपनी मण्डली के कुछ जनों को लेकर पंचगनी गये, जो बम्बई (अब मुंबई) से लगभग दो सौ मील पर स्थित एक पहाड़ी स्थान है। पंचगनी में प्रवास करने के दौरान में बाबा ने वहाँ एकान्तवास करने का निश्चय किया और कुछ शिष्यों तथा वैतनिक मज़दूरों को पंचगनी के समीप चीता घाटी में एक पर्वत शिखर पर पन्द्रह फीट गहरी गुफ़ा खोदने का आदेश दिया।

यह घाटी, जैसा कि इसके नाम से संकेत होता है, चीतों और तेंदुओं से भरी पड़ी है। तेंदुवा तो बहुधा आम सड़कों व खेतों को पार करते हुये, और पंचगनी तक में, देखे जा सकते हैं। एक दिन सन्ध्या समय कुछ लोगों ने एक तेंदुवा को उसी मार्ग से जाते हुये देखा जिस पर कुछ लोगों ने कुछ मिनट पहले बाबा के एक शिष्य को जाते हुये देखा था। परन्तु कोई दुर्घटना नहीं घटी; शिष्य को इसके विषय में बाद को नगर के लोगों से ज्ञात हुआ। रात के समय इन हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा करने के लिये मण्डली के सब लोग बाबा की आज्ञानुसार केवल बाँस की एक एक छड़ी अपने पास रखते थे और एक हरीकेन लालटेन अपनी अपनी कुटियों के बाहर रखते थे। पहरे वाले शिष्य की कुटी का द्वार कुछ इन्च खुला रक्खा जाता था, ताकि वह मण्डली के स्थान के निकट आते हुये आदमी अथवा पशु को देख सके। ऐसी परिस्थिति सामने आने पर पहरा देने वाले जन

को आदेश था कि वह बाँस की छड़ी से लालटेन को खटखटाकर अन्य जनों को सावधान कर दे। मण्डली के लोग बतलाते हैं कि रात को शिकार की खोज में घूमने वाले भयंकर हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा करने के लिये उनको ये साधन पर्याप्त नहीं प्रतीत होते थे !

इस प्रकार चिन्तापूर्ण अवस्था में मण्डली ने एक पखवारा व्यतीत किया, जबकि एक दिन रात को आठ बजे बाबा ने अचानक अपने शिष्यों को बुलाया और उनसे तत्काल वहाँ से प्रस्थान कर देने के लिये कहा, क्योंकि बाबा का विशिष्ट कार्य पूरा हो चुका था।

उपवास व एकान्तवास, जो बाबा चीता घाटी में करते रहे थे, मेहेराबाद में तीन माह तक ज़ारी रक्खे गये। इस समय–समय पर किये जाने वाले उपवास के सम्बन्ध में बाबा ने कहा है कि जब कोई सद्गुरु उपवास करता है तो वह उपवास सन्सार के सब लोगों के उपवास करने के समान होता है, क्योंकि वह उन सबमें विद्यमान हैं; और वह उपवास समग्र मानव जाति के लिये आध्यात्मिक कल्याण प्रदान करता है।

इस गुफ़ा में, जिसको बाबा ने अपनी उपस्थिति से पवित्र कर दिया था, बाबा ने अपने दो भारतीय शिष्यों को भेजा। उनमें एक बेहरामजी था जो इक्कीस दिन केवल जल के आधार पर कठोर उपवास करने के लिये भेजा गया था, दूसरा प्लीडर नाम का शिष्य था जो कुछ समय से उपवास कर रहा था और मौन धारण किये था। फिर, कुछ वर्षों के बाद, जबकि पश्चिमी देशों की शिष्य मण्डली बाबा के साथ नासिक में थी, बाबा ने हमारे प्रिय मित्र हालीवुड निवासी गैरेट फ़ोर्ट को उस गुफ़ा में दो रात ठहरने के लिये भेजा। यह उपाख्यान अपने विनोदपूर्ण पहलू से विहीन नहीं था। बाबा के तत्कालीन सेक्रेटरी चाँजी को नियुक्त किया गया था कि वह गैरी को गुफा में ले जाये और वहाँ उसको रात भर के लिये ताले के भीतर बन्द कर दे। गैरेट को गुफा के चारों ओर और कभी–कभी दूर से पैरों की धीरे–धीरे चलने की आहट सुनाई देती थी, और यह आहट पैरों की उन आवाज़ों से भिन्न थी जो उसके विश्वास में धारी वाले अथवा चित्तेदार

हिंसक पशुओं के चलने से उत्पन्न होती हैं। फिर भी वह गुफा के अन्दर बन्द होने से अपने को भली प्रकार सुरक्षित महसूस करता था, और वह यह जानता था कि चाँजी उसको सुबह गुफा के बाहर निकालेगा। इसलिये वह आराम के साथ रात व्यतीत करने के लिये लेट गया। तब उसने अपनी बढ़िया सुरक्षित गुफा में खुरचने व पटपटाने के विचित्र शब्द सुने।

उसने अपनी लालटेन जलाकर चारों तरफ़ देखा। वह गुफा हर प्रकार के छोटे–छोटे जीव जन्तुओं से भरी पड़ी थी ! चूहे आनन्दपूर्वक चारों ओर कूदते फिरते थे, छिपकलियाँ आँख मिचौनी का खेल खेल रही थीं; गुबरौला चटकते व भनभनाते थे, सब जातियों, रंगों तथा आकारों की दीमकों ने ठीक उसके पैरों के पास अपने अपने छोटे सन्सार बसा रक्खे थे; मच्छर उसको उसके न्यूजरसी के बचपनकाल का स्मरण दिलाते थे और छोटी–छोटी मछलियाँ उसके नीरस व्यक्तित्व के इतने पास आ जाती थीं जितने पास वे पहले कभी नहीं आ सकती थीं। उसने रात्रि का अधिकांश भाग अपने मन में पाऊडरों व छिड़कने वाली दवाइयों की सूची तैयार करने में बिताया और यह विचार किया कि वह उनको दूसरे दिन घाटी से नीचे उतरकर गाँव में खरीदेगा।

अपने संकल्प में दृढ़ रहते हुए, वह दूसरे दिन रात को प्रत्येक वस्तु से सुसज्जित होकर गया जो कि इन घातक जन्तुओं से रक्षा करने के लिये नगर में उपलब्ध हो सकती थीं–जैसे, पाऊडर की पिचकारियाँ, छिड़कने वाली औषधियाँ, तेजाबी औषधि तथा सुगन्धित धूप। वह फिर से रात भर के लिए गुफा में ताले के भीतर बन्द कर दिया गया। उसने अपनी लालटेन जलाई और दवाओं के बण्डलों को खोला। तब उसने चारो ओर देखा। वहाँ छोटी से छोटी चींटी तक का कोई निशान न था ! वह अपनी भद्दी बनी हुई चारपाई पर बैठ गया और उस भयंकर आक्रमण की प्रतीक्षा करते हुए, जिसके शीघ्र ही प्रारम्भ होने की वह आशा करता था, वह ताकने लगा। परन्तु एक भी चलती फिरती वस्तु न दिखाई दी। थोड़ी देर तक ध्यान करने के उपरान्त, उसने पुनः गुफा का निरीक्षण किया, और उसको कीड़े–मकोड़ों से ऐसा मुक्त पाकर जैसा कि बेवरली पहाड़ियों में उसका घर था, वह सो गया। प्रातः चाँजी ने द्वार खटखटाकर उसको जगाया।

वे दोनों साथ–साथ नासिक चले गये। जब बाबा को इस अनुभव के विषय में बताया गया तो वह दिल खोलकर हँसे।

इसके विपरीत एक पश्चिमी महिला ऐलिज़ाबेथ पैटर्सन का अनुभव था, जिसने कुछ वर्षों के उपरान्त पंचगनी में बाबा और उनकी मण्डली के साथ ठहरे हुये उसी गुफा में एक रात व्यतीत की थी। उसने उस गुफा में एक रात व्यतीत करने के लिये बाबा से उत्सुकतापूर्वक आज्ञा माँगी थी। बाबा ने उसको इस बात की आज्ञा दे दी परन्तु उससे यह कहा कि उसके गुफा में ठहरने का समय खुद बाबा निश्चित करेंगे। कुछ सप्ताह व्यतीत हो गए परन्तु बाबा ने इस विषय की कोई चर्चा नहीं की, इसलिये ऐलिज़ाबेथ ने उनको उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई। बाबा ने मुस्कुराते हुये उससे पूछा : "क्या तुम अभी जाना चाहती हो, अथवा उपयुक्त समय तक प्रतीक्षा करना चाहती हो ?" थोड़े दिनों बाद बाबा ने उससे कहा कि उसके गुफा में जाने का समय आ गया था, और उन्होंने उसको आदेश दिया कि वह ठीक बारह घन्टे गुफा में रहे। बाबा अपनी महिला मण्डली सहित उसके साथ गुफा तक गये और ठीक छः बजे सन्ध्या समय बाबा ने उसको गुफा में बन्द करके ताला लगा दिया और लोहे की जाली के छेदों से उसको ताले की कुञ्जी दे दी। उसका कहना है कि उस गुफा में रात भर के लिये अकेले रह जाने के पूर्व की अन्तिम बात, जो उसको याद थी वह यह थी कि बाबा ने लोहे के सींकचों से अपना हाथ भीतर बढ़ा कर एक क्षण के लिये उसके सिर पर रक्खा था, मानो उसे आशीर्वाद दे रहे हों। जिस समय मण्डली समेत बाबा सड़क के मोड़ से आगे जाकर दृष्टि से ओझल हो गये, उसके चारों ओर गम्भीर शान्ति छा गई। मन में तेज़ी से उठकर गुज़रते हुये विचारों पर उसने उन आदेशों के द्वारा नियन्त्रण किया जो बाबा ने उसको दिये थे। उसको रात भर ध्यान करने की आज्ञा दी गई थी। सात बजने में ठीक 10 मिनट पूर्व उसने लालटेन जलाई, जैसी कि बाबा ने आज्ञा दी थी।

जैसे ही वह ध्यान करने को तैयार हुई वैसे ही उसको भारी धमाकेदार शब्द सुनाई दिये मानो वे मार्ग से आते हुये किसी के क़दमों के शब्द हों, और वह चिन्तापूर्वक किसी के दृष्टिगोचर होने की प्रतीक्षा करने

लगी। परन्तु वह शब्द, यद्यपि निकट प्रतीत होता था, धीरे–धीरे घट गया और उसने यह नतीजा निकाला कि कदाचित् यह शब्द पहाड़ पर चरती हुई किसी गाय अथवा भैंस के चलने का था। गुफ़ा के छेद से उसको चार तारागण एक पतंग के रूप में दृष्टिगोचर होते थे, जो दक्षिणी नक्षत्रसमूह (Southern Cross) से मिलते जुलते थे, और अन्य तारागणों से अधिक प्रकाशमान थे।

अचानक एक बिजली की ऐसी लहर उसके शरीर में सिर से पैर तक दौड़ गई। वह झकोरा देती हुई लहरों के रूप में ज़ारी रही और इतनी बलवती हो गई कि वह दो तीन बार उसको ऊपर उठाती हुई प्रतीत हुई, मानो वह एक 'झन्झावात' हो। फिर उसको महसूस हुआ कि वह अन्तरिक्ष में झूल रही थी और उसके नीचे एक कम्बल असमतल रूप से हिल रहा था। उसने सोचा कि यदि वह केवल इस कम्बल के ऊपर बनी रहे–मानो वह कम्बल उसके लिये एक जादू की दरी के समान था–तो वह सुरक्षित बनी रहेगी, परन्तु वह इतनी प्रचण्डता से हिली कि वह बाबा का नाम पुकारने के लिए बाध्य हो गई। बाबा का नाम पुकारते ही उसका हिलना शान्त हो गया। बाद में, जिस समय अन्तरिक्ष में उसका उठाव समाप्त होने पर वह पृथ्वी के धरातल पर आ गई, तो उसको मालूम हुआ कि उसकी भुजायें तथा बाजू उसके सीने पर एक दूसरे के ऊपर बेड़े बल रक्खे हुये थे। वे इतने अकड़ गये थे कि वह कुछ समय के पश्चात् ही उन्हें हिला–डुला सकी।

दिखाव में पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर उसने कुछ बोलियों के शब्द सुने जो उसको उसके मित्रों के जैसे स्वर प्रतीत हुये। वे गुफा के अन्दर दिखाई दिये और उन्होंने उससे पुकार कर कहा कि 5 बजा है और हम तुमको लिवाने के लिये भेजे गए हैं। परन्तु उसको बाबा की आज्ञा की याद आई कि वह ठीक छः बजे से पहले गुफा न छोड़े। इस असमंजस में पड़ी हुई कि वह क्या करे, उसने वही करने का निश्चय किया जो स्वयं बाबा ने उससे कहा था। उसी क्षण बाबा द्वार पर देदीप्तिमान दिखाई दिए; तेज़ प्रकाश गुफा में भर गया। उन्होंने मुस्कुराते हुए उसके मन में उठे प्रश्न का उत्तर दिया; जैसा मैंने कहा था वैसा कर। छः बजे तक गुफा न छोड़ना।

जब उसने दुबारा अपनी घड़ी को देखा तो उस समय लगभग छः बजे का समय था। गुफा को छोड़ने की तैयारी करने के लिये जैसे ही वह उठी, उसने देखा कि दिन का मन्द–मन्द प्रकाश लोहे के सींकचों से भीतर आ रहा था। वह अपने को ताजा तथा पुष्ट महसूस करती थी। अपने बँगला में लौट आने पर, उसने बाबा से पूछा कि क्या ये अनुभव उसको स्वप्न में हुये थे। इसके उत्तर में बाबा ने उसको समझाया कि वह न तो सुप्त अवस्था में रही थी और न जागृत अवस्था में रही थी, वरन् चेतना की मध्यस्थ अवस्था में रही थी। "तुमने उन चीजों का अनुभव यथार्थ में भौतिक रूप में किया था। तुम उनके पूर्ण अर्थ को बाद में समझोगी।"

चीता घाटी से मेहेराबाद लौट आने के उपरान्त कुछ महीनों में बाबा ने, समय समय पर उपवास करते हुए और कभी कभी एकान्तवास करते हुए, एक दर्जन अथवा इससे अधिक स्थानों की यात्रा की।

इस समय पर बाबा तथा उनके शिष्यों ने श्रीनगर (कश्मीर) की यात्रा की, जिस पर एक बालक का स्वप्न प्रकाश डालता है। इस सुन्दर नगरी में बाबा के पदार्पण करने के दिन एक नौका–गृह के मालिक के चार वर्षीय बालक ने अपने पिता से एक प्रभावकारी स्वप्न का वर्णन किया जो उसने गत रात को देखा था। एक मनुष्य, जिसको उस बालक ने ईश्वर समझा था उसके पास आया था और उससे कहा था कि वह उसके पिता के नौका–गृह को किराये पर लेने के लिये आ रहा था। उस छोटे बालक ने अपने पिता से प्रार्थना की, "जाइये, उस ईश्वर को ढूँढ़िये और उसे अपने घर ले आइये।" परन्तु पिता बच्चे की विनती पर कोई ध्यान न देकर अपने काम पर चला गया।

तदुपरान्त दिन में बाबा अपनी मण्डली सहित श्रीनगर पहुँचे और कई नौका–गृहों को देखने के पश्चात् उन्होंने उस बालक के पिता के घर को चुना। उसी क्षण वह छोटा बालक आ गया और उसने निश्चित आनन्द के साथ अपने विस्मित पिता से चिल्लाकर कहा– "पिताजी, इन्हीं परमेश्वर को मैंने स्वप्न में देखा था।"

बाबा अपनी मण्डली को श्रीनगर से हर्वान ले गये जो हिमालय पर्वत के धरातल की पहाड़ियों पर स्थित है। यहाँ एक झोपड़ी में, जो विशेष रूप

से उनके लिये तैयार की गई थी, बाबा ने चार दिन का एकान्तवास किया। यह खास पहाड़ी विशेष दिलचस्पी की वस्तु है, क्योंकि बाबा ने हमको बताया है कि ईसामसीह के शिष्यों थाडियस व बारथालोम्यू ने ईसामसीह के शव को फ़िलिस्तीन से लाकर यहीं गाड़ा था। ईसामसीह ने, शूली पर चढ़ाये जाने से पहले, इन शिष्यों को अपना स्थूल शरीर छोड़ देने के पश्चात् उसके अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में निश्चित आदेश दे दिये थे। इस कहानी का समर्थन एक प्रचलित परम्परा से होता है कि ईसामसीह के शूली पर चढ़ाये जाने के पश्चात् ही ये दोनों शिष्य भारतवर्ष आये थे।

बाबा ने हमें यह भी बताया है कि जिस शरीर में ईसामसीह पुनः जीवित होने के पश्चात् देखे गये थे वह उनका आध्यात्मिक शरीर था, न कि स्थूल शरीर, जैसा अनेक लोग विश्वास करते हैं। बाबा का कथन है कि आध्यात्मिक शरीर प्रेतवत्, क्षणभंगुर शरीर नहीं होता, वरन् वह समस्त भौतिक लक्षणों से युक्त होता है और जितना भी घनत्व उसको सद्गुरु देना चाहे उतना घनत्व उसमें होता है।

इसी वर्ष के सितम्बर माह में बाबा ने अपने बारह शिष्यों के साथ फ़ारस की तीसरी यात्रा के लिये प्रस्थान किया। सदैव की भाँति बाबा ने तीसरे दर्जे में यात्रा की, और रात को वह जहाज़ की छत में सोते थे। जहाजी सेवकों में से, जो गोआ के निवासी थे (पुर्तगाली नस्ल के रोमन कैथोलिक थे), एक सेवक बाबा की परिचर्या में रहता था जिस समय वह दूसरे दर्जे के स्नानागार को जाते आते थे। इस स्नानागार का प्रबन्ध एक भक्त ने बाबा के लिए कर दिया था। एक दिन उस सेवक ने बाबा के साथ जाने वाले शिष्य से पूछा : "यह सन्त जैसा पुरुष कौन है ? क्या वह तुम्हारा देहधारी ईसामसीह है ?"

जहाज़ पर बाबा का परिचय किसी को प्रगट नहीं किया गया था, और वह अपनी शिष्य मण्डली के अतिरिक्त और किसी से न मिलते थे, सिवाय इन्जिन घर के एक कर्मचारी के जो नित्य बाबा के पास जाता था और कुछ क्षणों तक उनके सामने पूजाभाव में मौन खड़ा रहता था।

जहाज़ी यात्रा के अन्तिम दिन बाबा ने उसे अपना रूमाल दिया, जिससे उसके नेत्रों में आनन्द के आँसू भर आये।

फ़ारस की यह यात्रा अन्य यात्राओं से इस अर्थ में भिन्न थी कि अमीर और ग़रीब सबने समानतया बाबा तथा उनकी मण्डली का अत्यन्त हार्दिक स्वागत किया। यद्यपि उनके फ़ारस जाने की सूचना का विज्ञापन पहले से न किया गया था, फिर भी उनके वहाँ पहुँचने का समाचार दावानल की भाँति फैल गया जिसके फलस्वरूप उनके रुकने के सब स्थानों में पुजारियों के झुन्ड के झुन्ड उनका अभिनन्दन करते थे। इन पुजारियों में कुछ उच्चतम पदवियों के सरकारी अफ़सर तथा फ़ौजी अफ़सर थे। इन लोगों ने अपने इस विश्वास की घोषणा की कि उनके देश में बाबा का आगमन उसके उद्धार का लक्षण था, जो केवल सद्गुरुओं के द्वारा प्राप्त हो सकता था। अपने जोश में वे ऐसा प्रबन्ध करना चाहते थे कि उनका बादशाह रेज़ा शाह बाबा से मिले और खुली घोषणा करे कि बाबा उनके देश के आध्यात्मिक हितकर्त्ता हैं। परन्तु बाबा यह नहीं चाहते थे। येज़्द में नगर के एक प्रमुख व्यापारी ने बाबा का व्यक्तिगत स्वागत किया, किन्तु नगर के लोगों को शीघ्र ही बाबा की उपस्थिति का पता लग गया और वे हज़ारों की संख्या में वहाँ एकत्रित हो गये। जैसे ही बाबा का दर्शन करने, और यदि सम्भव हो तो उनका स्पर्श करने, के लिये उत्सुक भीड़ ठेलती हुई बाबा की ओर बढ़ी, तो अनेक लोगों को गहरी चोटें लगते लगते बचीं।

जिस समय बहाई सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण नेता हवाई जहाज़ द्वारा शीराज़ पहुँचा एक अर्थपूर्ण घटना घटी। यहाँ आने का उसका प्रयोजन यह था कि वह बाबा से प्रश्न करे; परन्तु जब उसने बाबा को देखा और उनकी ईश्वरीय ज्योति को अनुभव किया, तो वह यह चिल्लाते हुये उनके चरणों पर दण्डवत् गिर पड़ा, "आप ईश्वर हैं।" जैसे ही वह भीड़ को चीरता हुआ बाहर को निकला, उसने घोषित किया, "मैंने ईश्वर को देख

लिया है !" बाबा की आध्यात्मिक स्थिति को स्वीकार करने के द्वारा वह स्वयं अपनी ऊँची आध्यात्मिक अवस्था को प्रकट कर रहा था, क्योंकि ईश्वर को केवल वही पहिचान सकता है जिसमें ईश्वर जागृत हो चुका हो। वह बहाई पंथ की नींव स्थापित करने वाले महान पुरुषों के उपदेश–जहाँ कहीं ईश्वर मिले वहीं उसको स्वीकार करो–को चरितार्थ कर रहा था।

जिस समझ के साथ बाबा का अभिनन्दन इस आगमन के समय किया गया था उसका दूसरा प्रमाण बाम नगर में दिया गया, जहाँ बाबा और उनके शिष्य थोड़े दिनों के लिये विश्राम कर रहे थे। सैनिक वेश में एक व्यक्ति ने, जिसके सीने पर पदवी सूचक कई धारियाँ लगी हुई थीं, बाबा से मिलने की आज्ञा माँगी। सर्वप्रथम बाबा के एक शिष्य ने उसको बताया कि बाबा किसी को भी व्यक्तिगत मुलाक़ात नहीं दे रहे थे। परन्तु उस अफ़सर ने आग्रहपूर्वक कहा कि उस **'पवित्रात्मा'** को सूचित कर दिया जाये कि एक भिखारी उनसे भिक्षा माँगने के लिये बाहर खड़ा हुआ है। जब बाबा को यह बताया गया, तो बाबा ने उससे मिलना स्वीकार कर लिया। वह अफ़सर सम्मानभाव से अपने दोनों हाथ सीने पर आड़े रक्खे हुये भीतर गया। पहले उसने बाबा को सैनिक ढंग से अभिवादन किया, फिर वह अपनी तलवार हटाकर अपने घुटनों पर बैठ गया, और बाबा के उपहार स्वरूप आगे बढ़ाये गये हाथ का उसने श्रद्धापूर्वक चुम्बन किया। जब बाबा ने उसका परिचय पूछा तो उसने उत्तर दिया, "मैं आपका दीन सेवक हूँ !" बाबा के फिर से वही पूछने पर उसने उत्तर दिया, "मैं आपकी उपस्थिति में नाचीज़ हूँ।" तब बाबा ने उसको समझाया कि वह उसका सैनिक पद जानना चाहते थे। उसने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मैं सेनापति हूँ।" बाबा ने उससे कहा, "देश की सेवा में मरना वास्तव में महान बात है, परन्तु ईश्वर की सेवा में मरना उससे भी बड़ी बात है।" उसने इस बात को स्वीकार करते हुये कहा, "पवित्रात्मा ! वास्तव में ऐसा ही है, मैं समझता हूँ", और उसने बाबा से विनती की कि वह ईश्वर की खोज में उसको अपनी कृपा प्रदान करें। बाबा ने उसको अपनी सहायता का आश्वासन दिया। तब उस सेनापति ने प्रकट किया कि यद्यपि वह फ़ारसी फौज में था, तथापि उसको विश्वास था कि उसके देश का उद्धार उसकी सैनिक शक्ति में

निहित नहीं था वरन् उसके आध्यात्मिक पुनर्जन्म में निहित था। उसने अपने अभागे देश तथा उसकी अज्ञानी जनता की ओर से इस दिशा में बाबा की सहायता की प्रार्थना की। बाबा ने उसको आश्वासन देते हुये उत्तर दिया, "इसी कारण से तो मैं यहाँ आया हूँ।"

एक और घटना इस यात्रा का अर्थ हमारे लिये प्रकाशित करती है। बाम नगर में बाबा जिस घर में ठहरे थे उसके सामने वाली सड़क में एक सन्त अथवा बुज़ुर्ग की गद्दी थी। स्थानीय लोग उसको महान श्रद्धाभाव से देखते थे, और उसके बहुत से अनुयायी थे। पहले दिन सन्ध्या समय जब बाबा अपने शिष्यों सहित घूमने के लिये निकले, तो उस सन्त ने अपने स्थान से उठकर बाबा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की मानो वह बाबा से परिचित था। तदुपरान्त उसने अपने पास आने वाले सब लोगों से बताया कि उनके बीच में "समस्त सन्तों का सम्राट विद्यमान था।"

फ़ारस की यह यात्रा उन कठिनाइयों तथा कसौटियों से रहित न थी जो साधारणतया बाबा के काम में आतीं हैं। अपने अनुयायियों को आवश्यक शिक्षा देने के हेतु बाबा जिस प्रकार से भावात्मक शक्तियों का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार से वे माया की अभावात्मक शक्तियों का भी प्रयोग करते हैं, जिनको अस्वीकार करना अनेक श्रेष्ठ पुरुष उत्तम समझते हैं। सुख से रहना ही वास्तव में वह उद्देश्य नहीं है जिसका पोषण बाबा अपने निकट शिष्यों में करते हैं। वास्तव में, जैसे ही कोई मनुष्य बाबा के साथ सम्पर्क के वर्षों का सिंहावलोकन करता है और बाबा के अन्य भक्तों व शिष्यों के अनुभव को सुनता व पढ़ता है, तो उसको मानना पड़ता है कि बाबा की शिक्षा का उद्देश्य होता है हममें कठिनाइयों अथवा पीड़ा को प्रसन्नतापूर्वक सहने की क्षमता का विकास करना; जीवन के अन्धकारमय पहलू को, प्रकाश को 'पूरा करने वाला' स्वीकार करना, न कि उसको विरोध करने वाला मानना; उसको मनुष्य के चेतन जीवन में पूर्ण करना और उसको ऊँचा उठाकर उच्चतर क्षमता तक पहुँचाना; तनाव को सहन

करने में, तथा निराशाओं और अतृप्त वासनाओं पर विजय प्राप्त करने में एक प्रकार के ईश्वरीय धैर्य की वृद्धि करना। वह जीवन को **समग्र** रूप में देखते तथा अनुभव करते हैं, और अपने शिष्यों को भी ऐसा ही करने की शिक्षा देते हैं। परन्तु यह न सोचना चाहिये कि बाबा की यह शिक्षा विकट सहनशीलता के हेतु केवल वैराग्यपूर्ण शिक्षा है। घोर से घोर कठिनाइयाँ, उद्धार करने वाले प्रकाश तथा क्षतिपूर्ति करने वाले प्रेम के वाणों द्वारा वेध दी जाती हैं। जैसे जैसे पथिक आगे बढ़ता है, वैसे ही वैसे द्वन्द्वों का झुकाव एक समग्रता (Whole) में विलीन होने की ओर अधिकाधिक होता जाता है, जिससे आनन्द केवल पीड़ा के दूसरे पहलू के रूप में दिखाई देता है, और केवल उसी समय अपनी पूर्णता में अनुभव किया जाता है जैसे जैसे मनुष्य की कष्ट सहन करने की क्षमता बढ़ती जाती है। नहीं, बाबा जैसे सद्‌गुरु के पीछे चलना कोई सुखमय अनुभव नहीं है ! उनके पीछे चलने के लिये सुख की इच्छा आवश्यक रूप से त्याग देनी चाहिये। यह यात्रा दृढ़ पुरुषों के लिये एक काँटों से भरी यात्रा होती है जो सच्चे तथा साहसपूर्ण हृदयों सहित, यात्रा की कठिनाइयों को सहने के लिये पूर्णतया तैयार होते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि जिस लक्ष्य की ओर वे अपने सद्‌गुरु द्वारा कुशलतापूर्वक अग्रसर किये जा रहे हैं वह पूर्ण चेतना का सुन्दर देश है जिसमें मनुष्य को अपने ईश्वरीय स्वरूप (God-Self) का स्थायी ज्ञान हो जाता है।

ऐसे ही हृदय बाबा की मण्डली के उन लोगों के थे जो बाबा के साथ फ़ारस के रेगिस्तान से होकर वापिस आये थे। फ़ारस से बाहर आने का प्रधान मार्ग समुद्र से होकर है, परन्तु किसी कारण से जो बाद में स्पष्ट हुआ, बाबा ने स्थल मार्ग तथा दुज़दाब के सीमान्त स्टेशन को चुना, जिनमें भारी संकट और ख़तरे भरे थे।

एक निजी मोटर लारी मण्डली के लिये किराये पर कर ली गई और एक निपुण मिस्त्री उसको चलाने के लिये लगाया गया। बाबा ने विशेष

रूप से आज्ञा दी कि आध्यात्मिक कारणों से बाबा और मण्डली के सामान के अतिरिक्त अन्य एक भी गठरी अथवा सामान मोटर लारी पर न लादा जाये। इस आज्ञा को ड्राईवर ने स्वीकार कर लिया। परन्तु बाम से प्रस्थान करने के पूर्व ही बाबा ने एक शिष्य को यह देखने के लिये भेजा कि उनकी इस आज्ञा का पालन किया गया था या नहीं। उसने लौट कर बाबा को बताया कि ड्राईवर ने दो बोरा बादाम के छिलका नीचे दबाकर रख लिये थे। ड्राईवर ने बहाना किया कि छिलके बहुत हलके थे। परन्तु बाबा अप्रसन्न हो गये। ड्राईवर ने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी थी। फिर भी, बाबा ने उससे कुछ नहीं कहा और अपनी लम्बी यात्रा पर तुरन्त प्रस्थान करने का आग्रह किया। बाबा के शिष्य अपने पिछले लम्बे अनुभव से यह जानते थे कि जब कभी बाबा की आज्ञा का उल्लंघन किया जाता है तब आपत्ति आती है, इसलिये वे प्रत्येक स्थिति के लिये तैयार थे। और, वास्तव में कठिनाइयों के प्रारम्भ होने में विलम्ब न हुई।

मोटर लारी नई थी और उसके टायर भी नये थे, परन्तु एक घन्टा के भीतर उनमें दो छेद हो गये जिससे ड्राईवर को महान विस्मय हुआ। फिर अचानक रेडिएटर में कुछ ख़राबी आ गई। उसके ढक्कन से भाप निकलने लगी, यद्यपि उसी समय पानी डाला गया था। जाँच करने पर रेडिएटर के भाप फेंकने का कोई प्रत्यक्ष कारण प्रतीत न हुआ, जिससे चालक और भी घबड़ा गया। उसने फिर से पानी डाला और वे चल दिये, परन्तु कुछ क्षणों में पुनः ढक्कन से भाप निकलने लगी। पूर्णतया व्याकुल होकर उसने मोटर लारी रोकी और उसकी जाँच की। इस बार उसको रेडिएटर की पेंदी में एक दरार मिली जिससे होकर पानी बूँद–बूँद टपक रहा था। कछुआ की चाल से धीरे धीरे चलते हुये वे अगले नखलिस्तान तक कुशलतापूर्वक पहुँच गये। यहाँ ड्राईवर ने मोटर सुधारने के लिये रात भर परिश्रम किया, परन्तु रेगिस्तान में एकान्त में बसे हुये एक ऐसे ग्राम में उस कार्य के लिये सामग्री प्राप्त करना असम्भव था। दो दिन और उसने अपना प्रयत्न ज़ारी रक्खा और अन्त में उसने युक्तिपूर्वक पाऊडर और अण्डा की सफेदी की लेई बनाकर दरार के ऊपर फैला दी। जब वह काम कर रहा था, तो बारम्बार वह ये शब्द बड़बड़ाता हुआ सुनाई देता था, "या अल्लाह ! मुझको ऐसा तजुर्बा पहले कभी नहीं हुआ था !" परन्तु अब

उसको विश्वास था कि उसे समस्या का हल मिल गया था। उसने इन्जिन चालू किया और कुछ क्षणों तक सबकुछ ठीक रहा। फिर दरार से होकर पानी बहने लगा। इस निराशा के क्षण में उसको एक अनुभूति हुई और वह एक शिष्य के कमरे में यह चिल्लाते हुये दौड़ गया, "भाई ! अब मेरी समझ में आ गया कि यह सबकुछ क्यों घटित हुआ है। मैंने आपके सद्‌गुरु से किये गये अपने वादे को तोड़ा है, और यह दुर्घटना मेरी अज्ञानता तथा नादानी का फल है ! मुझे उनके सन्मुख जाने में लज्जा आती है। क्या आप कृपा करके उनसे मेरी ओर से विनती कर देंगे ?"

शिष्य उसकी बात समझ गया और उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की। वह ड्राईवर को बाबा के पास ले गया और उन्होंने उसे यह चेतावनी देते हुये क्षमा कर दिया, "किसी सद्‌गुरु की आज्ञा की अवहेलना कभी न करो। और किसी से किये गये अपने वादे को कभी न तोड़ो।"

तदुपरान्त बाबा ने उसको बाम लौटने, धीरे धीरे लारी चलाने, और अविलम्ब दूसरी लारी लाने की आज्ञा दी। पानी टपकते हुये रेडिएटर के होते हुये, चालक को वह यात्रा असम्भव प्रतीत होती थी, परन्तु बाबा ने उससे कहा कि वह चिन्ता न करे और उसको आश्वासन दिया कि वह उसको बाम तक सकुशल पहुँचा देने की फ़िक्र रक्खेंगे। ड्राईवर को वह यात्रा एक आशारहित कार्य के समान प्रतीत होती थी, परन्तु वह बाबा के प्रोत्साहन को स्वीकार करके चार घन्टे की यात्रा पर वापिस चल दिया, जो उसने किसी और दुर्घटना के बग़ैर पूरी की। अपने वचन का पालन करते हुये उसने दूसरी मोटर लारी प्राप्त की, परन्तु उसे दूसरे चालक के साथ भेजा। थोड़े समय के लिये उसमें स्पष्टतया पर्याप्त अनुशासन आ गया था।

रेगिस्तानी गाँव की उत्तप्त ऊष्णता में समय व्यतीत करने के इस अनुभव के द्वारा, मण्डली को ज्ञात हुआ कि बाबा किसी मनुष्य को आवश्यक शिक्षा देने के लिये किस सीमा तक आगे जा सकते हैं अथवा अपने शिष्यों को आधीन कर सकते हैं।

नई लारी और चालक समेत उन्होंने जलते हुये रेगिस्तान के पार पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ की। दो शिष्य इतने बीमार थे कि उन्हें सीटों पर लम्बे

लेटना पड़ा, जबकि अन्य जन मछलियों के झुन्ड की भाँति भीतर ठुँस गये जिससे वे घन्टों तक हाथ पैर हिलाने में असमर्थ थे। सामान के सब परिमाणों और आकार के लगभग सौ अदद हर कोने में भरे थे। पानी से भरे हुए मिट्टी के कूजा उस सामान में थे, जिन्हें सीधा रखना आवश्यक था। इन्हीं कूजों पर शेष यात्रा के लिये उनकी जल की रसद निर्भर थी। जब लारी के पहिया बालू में धँस कर फँस जाते थे, तो उनको लारी की छत से भारी तख्ते खोल कर पहियों के नीचे लगाना पड़ते थे। इस श्रमपूर्ण कार्य के पश्चात् पसीने से तर, थके हुये तथा प्यासे वे लोग पुनः लारी में दब कर बैठ जाते थे। उनके गले प्यास के कारण सूख जाते थे, फिर भी वे लोग पानी की बहुत कमी के कारण केवल अपने ओठों को ही तर कर सकते थे। उनको कोई अनुमान न था कि उनकी परीक्षा कब समाप्त होगी। परन्तु बाबा में विश्वास रखते हुये, और यह जानते हुये कि वह उन लोगों के साथ इस कष्टप्रद तथा जोखिमभरी यात्रा में भाग ले रहे थे, उन्हें दृढ़ विश्वास था कि बाबा उन्हें कुशलतापूर्वक यात्रा के पार ले जावेंगे।

चालक ने उन्हें चेतावनी दी कि अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचने में उन्हें कम से कम छः दिन लगेंगे। वह बहुत थका तथा धैर्यहीन हो गया था, और अपने पूरे शरीर में पीड़ा होने की शिकायत करता था। उसने आगे न बढ़ने का संकल्प किया। परन्तु, बाबा उसे अपने प्रेमपूर्ण प्रोत्साहन द्वारा आगे बढ़ाते रहे, और जब ऐसा प्रतीत होता था कि वह बालू में रास्ता भूल गया है, तब बाबा उसको बताते थे कि किस दिशा को चलना है।

चालक को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके द्वारा की गई भविष्यवाणी के विपरीत वे लोग छः दिन के बजाय तीन ही दिन में अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे गये। वर्षों से वह इस रेगिस्तान के आरपार आता जाता रहा था, और अच्छी से अच्छी दशाओं में भी, हलके से हलके बोझ के साथ, उसको इस यात्रा को पूरा करने में पाँच दिन से कम का समय कभी न लगा था। प्रतिकूल दशाओं में—जैसी दशाओं में उसके विचार में यह यात्रा की गई थी—उसको बहुधा दस से बारह दिन लग जाते थे।

छः माह के उपरान्त, जब इस शिष्य मण्डली का एक शिष्य बम्बई (अब मुंबई) में अंग्रेज़ी राजदूत के कार्यालय में बाबा की मण्डली के एक अन्य शिष्य के लिये यात्रा का अनुमतिपत्र लेने के हेतु गया, तब वहाँ के कर्मचारी से उसको ज्ञात हुआ कि दुज़दाब का सीमान्त स्टेशन ही ऐसा था जहाँ से बाबा यात्रा के अनुमतिपत्र में हस्ताक्षर किये बग़ैर सम्भवतः निकल सकते थे। (यह स्मरण रहे कि कुछ वर्ष पूर्व बाबा ने लिखना बन्द कर दिया था।) प्रमुख समुद्री बन्दरगाहों से वह दफ़्तर की पूरी यथेष्ट कार्रवाई किये बग़ैर कभी नहीं निकल सकते थे। अब शिष्यों की समझ में आया कि बाबा ने समुद्री मार्ग की अपेक्षा दुज़दाब तथा रेगिस्तान के कठिन मार्ग को क्यों चुना था।

फ़ारस से लौटने पर बाबा ने नासिक को अपना केन्द्र स्थान बनाया, और वहाँ से उन्होंने लगातार यात्रायें ज़ारी रक्खीं, जिनमें एक यात्रा हिमालय पर्वत की और दूसरी फ़ारस की थी। फ़ारस में वह वहाँ के एक पवित्र तीर्थस्थान को गये जहाँ फ़ारस के प्रत्येक भाग से लोग इमाम के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिये जाते हैं। इमाम हज़रत मुहम्मद के बारह शिष्यों में से थे। एक दिन जब बाबा वहाँ थे तो तीन स्त्रियाँ बाबा और उनके तीन शिष्यों के पीछे लग गईं। जब वे अपने निवास स्थान पर पहुँच गये तो बाबा ने उन स्त्रियों को भीतर बुलाया। तब बाबा ने अपने सिर पर का आवरण हटा दिया जो वह अपना रूप छिपाने के लिये धारण किये थे। बाबा उन्हें पहिचान गये कि वे वेश्यायें थीं। उनको बाबा ने अपने पास बैठाया और उनसे प्रेमपूर्वक आध्यात्मिक बातें कीं तथा उनको उपदेश दिया कि वे अपनी वेश्या—वृत्ति छोड़ दें। उन्होंने उनके ऊपर अपने दैवी प्रेम की ज्योति की वर्षा करते हुये उनके चेहरों पर कोमलता से अपना हाथ फेरा। वे वेश्यायें बाबा की उपस्थिति की गहन पवित्रता से अत्यन्त प्रभावित होकर फूट—फूट कर रो पड़ीं, और उन्होंने बाबा से प्रतिज्ञा की कि वे बाबा के उद्धारक हाथ द्वारा धन्य किये गये अपने शरीरों को पुनः कभी भी दूषित न करेंगीं।

बाबा स्त्री–पुरुष–भेद (Sex) से परे हैं, जिस प्रकार ईसामसीह थे, और वह समस्त द्वन्द्वों से परे हैं, यद्यपि वह इसमें अन्तर्निहित सिद्धान्त का प्रयोग अपनी लौकिक लीला के लिये करते हैं। उनके उपदेश के अनुसार, अखिल सृष्टि आकर्षणशक्ति के विधान की उपज है–अर्थात् आकर्षण और प्रतिकर्षण के विधान की। यदि इस विधान को प्रयोग में लाने की बाबा की निपुणता लौकिक क्षेत्रों में उतनी ही महान है जितनी शिष्यों को शिक्षित करने के क्षेत्र में है–और मेरे मत में वह निस्सन्देह ऐसी ही है–तो वास्तव में उसे अत्यन्त विशाल होना चाहिये।

एक बार लन्दन के एक सम्वाददाता ने बाबा से पूछा कि 'क्या आप विवाहित हैं ?' इस प्रश्न पर बाबा मुस्कराये और उत्तर दिया, "मेरे लिये स्त्री–पुरुष–भेद का अस्तित्व नहीं है।" कदाचित् कुछ इसी कारण से बाबा विषय–वासनासक्त स्त्रियों के चक्करों से स्वतन्त्र रहते हैं जो अधिकांश आध्यात्मिक शिक्षकों के पीछे लगी रहती हैं। यद्यपि मैंने इस प्रकार की बहुतेरी स्त्रियों को बाबा के पास आते देखा है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है मानो बाबा के सन्मुख उनकी नीची वासनाओं का तत्काल ही रूपान्तर हो जाता है।

एक समय बाबा ने हमको भारतवर्ष में समझाया था : "मेरा मन महासागर के समान है–विश्व की समस्त भलाइयाँ और बुराइयाँ इसमें समा जाती हैं। यदि तुम अपने में अच्छे विचार लाते हो तो वे मुझमें समा जाते हैं; यदि तुममें बुरे विचार आते हैं तो मैं उन्हें भी अपने में खींच लेता हूँ। यदि किसी छोटे तालाब के पानी में कूड़ा–कर्कट पहुँच जाता है तो वह उसके जल को गन्दा कर देता है, परन्तु यदि वही कूड़ा–कर्कट महासागर में बह जाता है तो वह उसमें समा जाता है और फिर वह कूड़ा–कर्कट नहीं रहता। तुम्हारे सीमित मन कुछ बुरे विचारों से रुँध जाते हैं, परन्तु विश्वव्यापी बुरे विचार भी मेरे महासागर तुल्य मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं कर सकते।"

जिस प्रकार बाबा सन्सार में बुराई से अप्रभावित रहते हैं, जो कामातुर विचारों अथवा कर्मों के रूप में प्रकट होती है, उसी प्रकार वह उससे उस समय भी परेशान नहीं होते हैं जब वह उनकी निन्दा का रूप धारण करती है। वह जानते हैं कि समस्त आध्यात्मिक कार्य विरोध से शक्तिशाली होता है। खेल का मज़ा तो विरोध का सामना करने में निहित होता है–उसका सामना करने और उसको लाँघने में निहित होता है।"

बाबा के विरुद्ध की गई मौखिक अथवा लिखित मान–हानि के प्रति बाबा का रुख निपट उदासीनता का होता है। "मैं उन सब लोगों को, जिन्हें ईश्वर–साक्षात्कार नहीं हुआ है, पागल समझता हूँ, और वे मेरे कार्य अथवा मेरे विषय में जो कुछ भी भला या बुरा कहते हैं अथवा करते हैं उस पर मैं कोई ध्यान नहीं देता।" यह बाबा ने एक समय कहा था जब हम एक पुस्तक पर वाद–विवाद कर रहे थे जो उसी समय प्रकाशित हुई थी और जिसके लेखक ने बाबा के विरुद्ध अपने भाव प्रगट किये थे।

"जो लोग मेरी निन्दा करते हैं उनको बुरा–भला न कहना चाहिये। वे भी अचेतनतया मेरा कार्य कर रहे हैं, क्योंकि वे बहुधा मेरा विचार करते हैं।" बाबा के पृथक् दृष्टिकोण से, यह विरोध उनके कार्य की आध्यात्मिक धारा को तीव्र करता है।

बाबा से घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाले सभी जन इस यथार्थता की पुष्टि करते हैं कि बाबा एक पहेली हैं जो तर्कप्रधान बुद्धि वाले लोगों को भ्रमित कर देती है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जो लोग अपने ही सीमित ज्ञान के आधार पर दूसरों के सम्बन्ध में अपना मत स्थिर करते हैं, वे बाबा में अपनी ही सीमिततायें देख पाते हैं। हम सबने जो बाबा से घनिष्ठ सम्पर्क रखते हैं, बाबा की अनेक पद्धतियों को समझने में अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली है। परन्तु जिस बात को मनुष्य नहीं समझता, उसके लिये उसका बुरा–भला कहना पूर्णतया बचकानी बात प्रतीत होती है। दुर्भावनाओं से जनित आलोचनायें, जो कभी कभी बाबा के विरुद्ध की गई हैं, आस्ट्रेलिया के बूमरैंग शस्त्र की भाँति लौट कर आलोचकों के ऊपर ही आई हैं। प्रख्यात चित्रकार फ्रैंक ला फ़ारगे (Frank La Farge) के

शब्दों में, "कला की कृति का कोई मनुष्य निर्णय नहीं करता। वह कृति ही निर्णय करने वाले मनुष्य को आँकती है।"

मनुष्य में अन्धकारमय तथा प्रकाशपूर्ण दोनों प्रकार की अचेतन शक्तियों को उत्तेजित करना बाबा का कार्य है, और यदि किसी समय पर मनुष्य में नकारात्मक शक्तियों की प्रबलता प्रतीत होती है तो वह उन्हें अनिवार्य रूप से बाबा में प्रतिबिम्बित देखेगा। कुछ लोग—विशेषतः बाबा के ही देशवासी—बाबा से इस कारण से नाराज़ होते हैं कि बाबा उन लोगों के द्वारा कल्पित सद्‌गुरु के आदर्श में ठीक नहीं बैठते।

सी. लीक (C. Leik) की प्रतिक्रिया ऐसे आलोचकों के विपरीत थी। उसके ऊपर बाबा का बिल्कुल भिन्न प्रभाव पड़ा था, और वह निस्सन्देह इस कारण से था कि वह बाबा के पास ईश्वर के खोजी, एक विनम्र भक्त के रूप में आया था, न कि बाबा के विषय में पक्षपात पूर्ण तथा पहिले से स्थिर की हुई धारणाओं का बोझ अपने ऊपर लिये हुये। उसने स्वामी विवेकानन्द के प्रसिद्ध 'संन्यासी के गीत' की गूँज अपने हृदय में लिये हुए और उसके द्वारा घोषित शिष्यपन के ऊँचे आदर्शों से उत्साहित होते हुये यूरोप से प्रस्थान किया था। परन्तु हिमालय पर्वत के एक आधुनिक आश्रम में एक वर्ष रहने के उपरान्त उसको मालूम हुआ कि किसी आचार्य (Master) के आदर्शों तथा उसके अनुयायियों के आचरण में बहुधा कितना महान अन्तर होता है। वहाँ सभी कट्‌टर बाहरी रूढ़ियों का पालन दृढ़तापूर्वक किया जाता था, परन्तु सच्चे संन्यास के **भाव** का लोप था।

वह स्वर्गीय स्वामी रामकृष्ण का आध्यात्मिक शिष्य रहा था, जो गत शताब्दी के एक अन्य सद्‌गुरु थे। उसको अपने अन्तर में उनका निर्देश प्राप्त हुआ कि वह हिमालय के आश्रम को छोड़कर सद्‌गुरु मेहेरबाबा के पास जावे। जब उसके साथियों ने उसके इस निश्चय को सुना तो उन्होंने उसको रोकने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने उसको विश्वास दिलाया कि मेहेरबाबा उसको जादू से अपने वशीभूत कर लेंगे और फिर अपने

'प्रचार' को आगे बढ़ाने के लिये उसका प्रदर्शन अपने यूरोपीय शिष्य की भाँति करेंगे। प्रारम्भ में तो वह उत्साह से परिपूर्ण हो जायेगा, परन्तु शीघ्र ही उसका वह उत्साह क्षीण हो जायेगा। फलतः जब वह अक्टूबर 1928 ई. में मेहेराबाद पहुँचा, तो वह कुछ कुछ भ्रम में था।

बाद में उसने लिखा था, "परन्तु मैंने मेहेरबाबा और उनके आश्रम को बिल्कुल भिन्न पाया ! बाबा उच्चतम आध्यात्मिकता तथा प्रेम की मूर्ति हैं; और मेहेर आश्रम का वातावरण मेरे प्रियतम सद्‌गुरु की गम्भीर शान्ति तथा तेज़ को प्रतिबिम्बित करता है। भक्त लोग उनको प्यार के साथ 'बाबा' कहते हैं। उनमें भय—पैदा करने वाली गम्भीरता जैसी कोई बात नहीं है जिसका सम्बन्ध दिव्य महन्तशाही से ठहराया जाता है। जिस प्रेम के लिये मैं अपने जीवन भर लालायित रहा हूँ, उसका अनुभव मुझको यहाँ नित्यप्रति अधिकाधिक होता है। एक दिन बाबा ने मुझसे कहा कि वह मेरे हृदय में अपनी दैवी उपस्थिति की अनुभूति जागृत करके मेरी सहायता करेंगे, और बाद में ऐसा ही हुआ। मुझको चेतना हुई कि मेरी **आत्मा** (Self) समस्त प्राणियों की **आत्मा** है, और मैं यह भी जानता हूँ कि वह **'एक',** जिसको हम बाबा कहते हैं, मेरे साथ सदैव रहा है और अनन्त काल तक सदैव मेरे साथ रहेगा।" फिर उसने आगे लिखा, "यह सच कहा गया है कि सन्त को एक सन्त और ईसामसीह को एक ईसामसीह ही पहिचान सकता है। जिन भाग्यशाली जनों को सद्‌गुरु यह कृपा प्रदान करता है वही उसकी सच्ची महानता को जान सकते हैं और यह अनुभव कर सकते हैं कि वह यथार्थ में **कौन** है।"

पश्चिमी देशों के औसत लोगों के हेतु—और उन लोगों तक के लिये जो कुछ अंशों में आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर चुके हैं—वे तर्क विहीन पद्धतियाँ, जिनका प्रयोग सद्‌गुरु करता है, सद्‌गुरु को स्वीकार करने में बहुधा उनके मार्ग का रोड़ा बन जाती हैं। ईसामसीह के जीवन के लेख में, जिस रूप में वह हमें प्राप्त हुआ है, उस पूर्ण जीवन के दैनिक घनिष्ठ

विवरण हमको प्राप्त नहीं होते। हमको केवल उनके क्रियाकलाप के मुख्य तथ्य और उनके उपदेशों की सारभूत बातें प्राप्त हैं, जो अधिकांश रूप से सर्वसाधारण के लिये था। स्वयं शिष्यों को किस प्रकार शिक्षा दी गई थी, इस विषय में हमें केवल खण्डित जानकारी दी गई है। इस कारण से हम ईसामसीह के विषय में यह सोचने के लिये उद्यत होते हैं कि वह पूर्णता के विवेकपूर्ण स्तर से अधिक मेल खाते थे। परन्तु मेरा विश्वास है कि ऐसा सोचने में हम भूल करते हैं। बाबा की भाँति तथा अन्य सद्गुरुओं की भाँति जिनके विषय में मैंने सुना अथवा पढ़ा है, ईसामसीह ने भी अपने अनुयायियों के तर्क पूर्ण मनों को अवश्य भ्रमित किया होगा, जिस प्रकार से आज उनके आध्यात्मिक उपदेशों के गम्भीरतर पहलू औसत दर्जे के ईसाई को भ्रमित करते हैं; उदाहरण स्वरूप, जिस समय वह उनसे कहते हैं कि तुम कल के लिये कोई विचार न करो कि तुम क्या पहिनोगे अथवा क्या खाओगे। क्या उनके शब्दों की व्याख्या करने वाले अधिकांश जन उस अर्थ से दूर नहीं हो जाते? शरीर की चेतना रखने वाले एक औसत मनुष्य के लिए, जिसके हाथ और पैर भौतिक जगत से जकड़े हैं, यह एक असम्भव आज्ञा है। हम कहते हैं, "सुन्दर कविता, परन्तु पूर्णतया असाध्य", और उसे कल्पना के प्रदेश में बहिष्कृत कर देते हैं।

बाबा ने एक बार अपनी पश्चिमी मण्डली से निम्नलिखित कथा इस तथ्य को समझाने के लिये कही थी कि सद्गुरु उस भूमिका पर कार्य करता है जो त्रय–पारिमाणिक (Three dimensional) चेतना से अत्यन्त परे होती है, यहाँ तक कि वह मनुष्य द्वारा बनाये गये आचार–शास्त्र तथा नैतिक स्तरों से परे होती है–यद्यपि वह सर्वश्रेष्ठ अर्थ में पवित्र होता है, क्योंकि वह कभी भी स्वार्थ से प्रेरित नहीं होताः–

"यदि तुम श्रीकृष्ण के जीवन का अध्ययन करो तो तुमको ज्ञात होगा कि वह बहुधा ऐसी बातें कहते व करते थे और ऐसी बातें करने की आज्ञा देते थे जो सामान्य बुद्धि के पूर्णतया विपरीत प्रतीत होती थीं। वह एक व्यक्ति से एक बात कहा करते थे और दूसरे मनुष्य से उसके विपरीत बातें कहा करते थे; कभी कभी वह एक ही समय पर विभिन्न लोगों को परस्पर–विरोधी आज्ञायें दिया करते थे। कृष्ण छलने के लिये चापलूसी

किया करते थे, झूठ बोलते थे और सब प्रकार की विचित्र बातें किया करते थे, परन्तु केवल मानव समाज के उत्थान के लिये। वह पूर्ण थे और चेतना में उनको ईश्वर से एकता प्राप्त थी, इसलिये वह अपने को हर वस्तु तथा हर मनुष्य में पाते थे। मनुष्य की अनेक बहुमुखी आवश्यकताओं को जानते हुए, वह विभिन्न लोगों के लिये विभिन्न रीतियों का प्रयोग करते थे।

"इसी प्रकार मैं अपने शिष्यों को माया से बाहर निकालने के लिये माया का प्रयोग करता हूँ। इस बात को पूर्वी देशों के लोग जैसे उचित रूप से समझते हैं वैसे पश्चिमी देशों के लोग नहीं समझते। जिस समय मनुष्य में निजी स्वार्थ और स्वार्थपूर्ण उद्देश्य न होंगे, किन्तु केवल दूसरों को मुक्त करने का ही मन्तव्य होगा, उस समय उसका कोई भी कर्म उसको अहंकारी बन्धनों में न बाँधेगा, और न दूसरों को ही बाँधेगा जिनकी वह सहायता करेगा। मुझको अपने अपरिमित कार्य के लिये अपरिमित साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। इसलिए जब कभी मैं तुम्हें कोई बात करने के लिये कहता हूँ, चाहे वह कितनी ही असाधारण हो, तो तुमको विश्वास रखना चाहिये कि वह तुम्हारे परम कल्याण के लिये है।"

बाद में, शिष्यों के पक्ष में आज्ञाकारिता के महत्व को समझाते हुए, और साथ ही साथ विवेक से परे रीति को समझाते हुये, जिससे सद्गुरु बहुधा कार्य करता है, बाबा ने इसका एक चकित करने वाला उदाहरण दिया :

"एक समय फ़ारस के महान रहस्यवादी हाफ़िज़ के गुरु ने अपने एक शिष्य को आज्ञा दी कि वह घर जा कर अपने बच्चे को मार डाले। उस समय हाफ़िज वहाँ मौजूद था। उसने इस आज्ञा को सुना और उस पर आश्चर्य करने लगा। परन्तु जिस शिष्य को आज्ञा दी गई थी उसने विचार किया कि सद्गुरु की आज्ञा के पीछे अवश्य कोई अच्छा कारण होगा, इसलिये वह तुरन्त घर गया और अपने बच्चे को मार कर उसका मृत शरीर अपने गुरुदेव के पास ले आया। इस सब घटना के समय हाफ़िज़ तथा अन्य शिष्य इस विचित्र आज्ञा के सम्बन्ध में विचार तथा आश्चर्य करते रहे, परन्तु किसी ने कुछ न कहा। तब गुरु ने हाफ़िज़ को आज्ञा दी कि वह बच्चे के शरीर को गहराई से गाड़ देवे। हाफ़िज़ ने उस आज्ञा का

पालन किया, और बच्चे के शरीर को गहराई से गाड़ देने के उपरान्त उसने फ़ारस के रिवाज के अनुसार एक मोमबत्ती जला कर क़ब्र के ऊपर रख दी। जैसे ही उसने मोमबत्ती की लौ पर दृष्टि डाली, उसको ये शब्द सुनाई दिये, 'मैं कल्याणभागी हुआ हूँ', और फिर उसने आश्चर्यचकित होकर एक बच्चे के शरीर को मोमबत्ती की लौ से निकलते हुये देखा। जब हाफ़िज़ ने अचम्भे में आकर टकटकी लगा कर देखा, तो उसको करोड़ों शिशु–रूप मोमबत्ती की लौ से निकलते हुये दिखाई दिये। वह बहुत भ्रमित हुआ। जब वह लौट कर अपने गुरु के पास आया, तो जिधर वह देखता था उधर उसको बच्चों के ही रूप दिखाई देते थे। जब हाफ़िज़ प्रतीक्षा करती हुई शिष्य मण्डली के पास लौट कर गया, तो गुरु ने बच्चे के पिता को आज्ञा दी कि वह जाकर बच्चे को ले आवे और उन्होंने उसको बताया कि बच्चा घर में मिलेगा। वह शिष्य गुरु की आज्ञा के पालन में तुरन्त वहाँ से पुनः चला गया, और वह न तो हिचकिचाया और न इस बात पर आश्चर्य तक किया कि बच्चा घर में कैसे हो सकता था जब कि वह जानता था कि उसने उसको मार डाला था और हाफ़िज़ ने उसको गाड़ दिया था। जब वह अपने घर पहुँचा, तो उसने वहाँ बच्चे को इधर उधर चलते फिरते देखा और उसको सकुशल तथा प्रसन्न पाया, और वह उसको गुरु के पास ले गया, जैसी कि उसको आज्ञा थी।"

यद्यपि यह उन पद्धतियों का पराकोटि का उदाहरण है जिसका प्रयोग सद्गुरु अपने शिष्यों को इस दृश्य–जगत की मायावी प्रकृति दिखाने के लिये कर सकता है, तथापि यह अटूट श्रद्धा को चित्रित करता है जो शिष्य को अपने गुरु के प्रति रखनी चाहिए, और यह भी प्रदर्शित करता है कि शिष्य के कितने अनासक्त तथा आज्ञाकारी होने की आशा की जाती है।

इसी प्रकार के निर्विवाद आज्ञापालन की कथा ईसाई धर्म के पुराने सुसमाचार में वर्णन की गई है जिसमें ईश्वर ने अब्राहम को आज्ञा दी थी कि वह अपने लाड़ले पुत्र इज़ाक को ईश्वर पर बलिदान कर देवे।

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार बाबा कम तीक्ष्ण परन्तु अधिक प्रभावकारी रीतियों द्वारा इन प्रारम्भिक शिष्यों से इसी कोटि की निर्विवाद आज्ञाकारिता ग्रहण करते थे; और हम यह भी देख चुके हैं कि वह किस

प्रकार शिष्यों को अहंकारिक प्रवृत्तियों से ऊँचे उठ कर स्वार्थरहित तथा प्रेमपूर्ण उपयोगी जीवनों में प्रवेश करने की शिक्षा देने के लिये दैनिक जीवन की परिस्थितियों का प्रयोग करते थे। उन्होंने प्रारम्भिक काल में शिष्यों को बता दिया था कि उन लोगों का जीवन गर्मियों की छुट्टी के समान न होगा, और न वह ऐसा हुआ है। तथापि, उनको जिन परीक्षाओं से गुज़रना पड़ा था उनके लिये उन्हें महान प्रत्युपकार प्राप्त हुये हैं; और आज कितने ही वर्षों के उपरान्त हम अधिकांश प्रारम्भिक शिष्यों को देखते हैं कि वे पूर्णतया अपने हृदयों, मनों और आत्माओं से अब भी बाबा से प्रेम करते हैं और उनकी सेवा करते हैं, और बाबा की मर्ज़ी तथा बाबा के कार्य के प्रति पूर्णतया समर्पित हैं।

प्रारम्भिक काल के एक भारतीय शिष्य डाक्टर ग़नी ने हमको बताया है कि बाबा एक अडिग काम लेने वाले तथा कठोर अनुशासनकर्त्ता सिद्ध होते थे, और उनकी पद्धतियाँ मनुष्य को ज्ञात किसी भी पूर्वकालीन परिपाटी के अनुसार न थीं। तथापि, बाबा के अलौकिक कौशल तथा सहनशीलता, उनकी दया तथा उनके अटूट प्रेम के प्रति डाक्टर ग़नी पूर्ण हार्दिक सम्मान प्रकट करते हैं। वह यह भी लिखते हैं कि यद्यपि इसको विस्तारपूर्वक वर्णन करना असम्भव है, तो भी समस्त शिष्य इस बात की सत्यता स्वीकार करते हैं कि उन सब में भीतरी रूपान्तर हो गया है–अर्थात् वह भारी सुधार हो गया है जिसका उन्हें अब आन्तरिक रूप से ज्ञान है।

•

सन् 1922 ई. में, बम्बई (अब मुंबई) आश्रम के प्रारम्भिक काल में, बाबा ने विश्व की अनेक घटनाओं की भविष्यवाणी की थी जिनमें हम निमग्न हो चुके हैं, और साथ साथ उन्होंने उन घटनाओं के सम्बन्ध में स्वयं अपने विशिष्ट प्रारब्ध को भी बताया था।

उन्होंने भविष्यवाणी की थी, "पुनः युद्ध छिड़ जायेगा, और वह ऐसी प्रचण्ड अग्नि होगी जैसी दुनियाँ ने पहले कभी नहीं देखी। दुनियाँ के लगभग सभी राष्ट्र उसमें सैनिक दृष्टि से अथवा आर्थिक रूप से सम्मिलित हो जायेगे।" बाद में उन्होंने कहा था, "मेरी सार्वजनिक अभिव्यक्ति इस युद्ध के अन्तिम भाग के समय में होगी, जो निकट आ रहा है। मेरा बाहरी कार्य प्रारम्भ होने से पहले मेरे दोनों सद्गुरु अपने शरीर छोड़ देंगे। मैं दूर दूर की यात्रायें करूँगा और अपने कार्य के लिये मेरा पश्चिमी जगत को जाना आवश्यक हो जायेगा।"

यह भविष्यवाणी–अर्थात् पश्चिमी जगत की उनकी प्रथम यात्रा–अब पूरी होने वाली थी। 1 सितम्बर 1931 ई. को बाबा तीन शिष्यों के साथ समुद्री जहाज़ द्वारा इंग्लैण्ड के लिये चल दिये। नौ वर्ष पहले बाबा ने दूसरी भविष्यवाणी की थी कि पश्चिमी जगत की प्रथम यात्रा में वह और गाँधी जी जहाज़ पर मिलेंगे। उसी अनुसार, जब बाबा के दल को जहाज़ पर सवार हुये थोड़ा ही समय हुआ था, तो उनको ज्ञात हुआ कि गाँधी जी भी उस जहाज़ पर यात्रा कर रहे थे। तदुपरान्त गाँधी जी के एक शिष्य ने आकर सन्देश दिया कि उसके गुरु (गाँधी जी) बाबा से मिलने के लिये बहुत इच्छुक थे। इसलिये ऐसा प्रबन्ध किया गया कि गाँधी जी बाबा की कोठरी में जायें। वहाँ उन्होंने आध्यात्मिक विषयों पर बातचीत की। समुद्री यात्रा के दौरान वे तीन या चार बार मिले।

जब बाबा लन्दन में थे तो बहुतेरे लोग उनसे मिलने के लिये आये, और कई सम्वाददाताओं ने अपने समाचार पत्रों के लिये सनसनीदार

समाचार लिखे। परन्तु बाबा की महत्वपूर्ण मुलाक़ातें उन पुरुषों तथा स्त्रियों से हुईं जिन्हें उनके प्रथम पश्चिमी शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त था। मारग्रेट क्रैस्क ने, जो (Diaghileff Ballet) बैलेट के साथ नृत्य करती रही थी और तदुपरान्त जिसने लन्दन में अपनी निजी नृत्यशाला खोली थी, बाबा के विषय में अपने प्रथम प्रभाव लिखे हैं, जो (बाबा) उसके लिखने के अनुसार उसके जीवन के केन्द्र बनने वाले थे :

"वह एक पतला लबादा, एक छोटा रोयेंदार कोट तथा एक गुलाबी पगड़ी धारण किये हुए सामने वाले द्वार की सीढ़ियों के नीचे खड़े थे; और वह बहुत ख़ामोशी के साथ मकान को देख रहे थे। वह दरवाज़े से होकर अन्दर घुसे और मेरे पास से गुज़रते हुए मेरी ओर देख कर मुस्कराए। ....थोड़ी देर के बाद मैं उनसे मिलने के लिए भीतर गई। मैं बहुत घबड़ा रही थी और मैं यह न जानती थी कि मैं उनसे किस प्रकार बात करूँगी, परन्तु जैसे ही मैं कमरे में घुसी वैसे ही मैं पूर्णतया प्रेम के वशीभूत हो गई जो उनके पूर्ण व्यक्तित्व से निकलता हुआ प्रतीत होता था। उन्होंने अपनी वर्णमाला तख्ती पर अँगुलियाँ रखते हुए प्रगट किया, 'तुम्हारा प्रेम ही मुझको यहाँ लाया है', जिसका मेरी समझ में यह अर्थ था कि वह पश्चिमी जगत में मेरे ही समान लोगों की उत्कण्ठा के प्रत्युत्तर में आये थे जो उनके विषय में सुन चुके थे, और उनसे मिलने के लिये बहुत इच्छुक थे। मैंने उनके तथा उनके शिष्यों के साथ डेवनशायर में जो चार दिन व्यतीत किये थे उनके विषय में लिखना मेरे लिये कठिन है। पूरा समय पवित्र प्रेम, समयविहीनता (Timelessness) तथा महान सौन्दर्य के स्वप्नवत् प्रभाव से परिपूर्ण रहता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो हमारा माया का पर्दा हटा दिया गया था और हमें अपने हृदयों से यह जानने तथा महसूस करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था कि बाबा कौन हैं। उस समय से मुझको बिल्कुल ऐसी ही अन्य किसी वस्तु का अनुभव नहीं हुआ। हम लोग परीक्षाओं तथा कसौटियों से होकर गुज़रे हैं जिन्होंने बाबा में हमारी श्रद्धा को और उनके प्रति हमारे प्रेम को गहरा कर दिया है, परन्तु उस समय से कोई भी वस्तु उन चार दिनों के उत्कृष्ट सौन्दर्य की समता नहीं कर सकी।"

क्वेन्टिन टाड नामक अंग्रेज़ बाबा का प्रथम भक्त बना था। वह एक मेधावी विदूषक अभिनेता था जिसका सहज विनोद बाबा के लिये सदैव आनन्द का विषय होता है। वह कहता है कि बाबा से मिलने के पहिले वह अपने को अत्यन्त अयोग्य, पूर्णतया अनुद्यत तथा अस्थिर महसूस करता था, मानो उसको एक भारी आपरेशन कराना हो। परन्तु आख़िरकार प्रतीक्षित क्षण आया और उसने अपने को बाबा के निकट उसी कमरे में मौजूद पाया। बाबा खिड़की के पास एक पलँग पर पैर पर पैर चढ़ाये हुये बैठे थे। उस कमरे में कई और लोग थे, और एक महिला भी थी जो बाबा के सामने बैठी हुई धीमे स्वर से रो रही थी।

क्वेन्टिन ने स्वीकार किया, "मैंने उन लोगों को केवल अस्पष्ट रूप से देखा। मैं इस आश्चर्यजनक पुरुष को पहिले पहल देखने में इतना तल्लीन था कि अन्य सबकुछ मेरी दृष्टि से ओझल हो गया। जिन बातों का मुझ पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा वे थीं उनका जंगलीपन जैसा गुण–किसी बिना पालतू प्राणी का जैसा–और उनके सचमुच विलक्षण नेत्र। वह मुस्कराये और मुझको अपने समीप बैठने का संकेत किया। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और समय–समय पर मेरे कन्धों में थपकियाँ दीं। हम लोग कई मिनट तक मौन बैठे रहे और मुझको एक महान अनुभूति का ज्ञान था कि उनसे प्रेम तथा शान्ति का प्रवाह निकल रहा था; और मुझमें परिचय की एक विचित्र भावना भी आ गई, मानो मुझको चिरकाल से ख़ोया हुआ मित्र मिल गया हो।

"फिर बाबा ने मेरा बायाँ हाथ पकड़ा और एक प्रकार की शक्ति की लहर उनसे निकल कर मुझमें दौड़ गई। ऐसा प्रतीत होता था मानो विशुद्ध प्रेम की विद्युत लहर मुक्त कर दी गई थी, जिसने मुझको महान आनन्द से परिपूर्ण कर दिया। मेरी श्वासें गहरी चलने लगीं मानो मैं बेहोशी लाने वाली औषधि ले रहा था। इस अनुभव का सिंहावलोकन करने पर मुझको दृढ़ विश्वास होता है कि बाबा मुझको अपनी शक्ति की अनुभूति कराना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे बाबा ने मुझको अपने आगामी कार्य के लिये दीक्षित कर दिया था। मुझमें यह भावना थी कि मुझको किसी प्रकार से उनकी सेवा करनी चाहिए। मैंने उनसे कई बातें पूछी होतीं, परन्तु

मेरे सभी प्रश्न असंगत तथा अपर्याप्त प्रतीत होते थे। बाद में मुझको महसूस हुआ कि उनमें से अनेक प्रश्नों का उत्तर मौन रूप से ही प्राप्त हो गया था। बाबा के प्रति मेरी प्रतिक्रिया तात्कालिक थी और मैंने उनको, जो कुछ वह हैं पहिचान लिया–अर्थात् एक महान सिद्ध तथा गुरु।"

इसी समय बाबा से मिलने वाली एक महिला डिलिया डी लीयन थी। वह एक अभिनेत्री थी, और उसने बाबा से मिलने पर अपने प्रथम प्रभाव को लिखा है :

"मैं उनकी विलक्षणता तथा उनके सौन्दर्य से चकित हो गई थी। मैं उनका चेहरा पहले ही स्वप्नों में देख चुकी थी; उनके नेत्र विलक्षण सौन्दर्य से परिपूर्ण थे; उनका चेहरा चमकदार शहद के रंग का प्रतीत होता था, जो लम्बे काले केशों के प्रभामण्डल से घिरा था। उनके हाथ अत्यन्त विलक्षण थे; वे सुदृढ़, पतले तथा सुकुमार थे। .....लन्दन में उनके ठहरने के सप्ताह भर मैंने उनसे प्रतिदिन भेंट की। मुझको काल तथा देश का अस्तित्व प्रतीत न होता था। बाबा के अतिरिक्त हर व्यक्ति तथा हर वस्तु का लोप मेरे मन से हो गया। केवल बाबा मुझको यथार्थ प्रतीत होते थे–**पूर्ण मानव** प्रतीत होते थे। उनकी तुलना में मुझको प्रत्येक वस्तु परछाईं की भाँति प्रतीत होती थी। उन्होंने मुझको अनिवार्य रूप से खींच लिया; उनके प्रेम ने मुझे द्रवित कर दिया, और उनके विनोद तथा सौन्दर्य ने मुझको मोहित कर लिया। उनका मौन शब्दों की अपेक्षा अधिक बलवान था। ....जब मैं सड़क पर अपने पास से गुज़रते हुये लोगों को देखती थी, तो मैं सोचती थी, 'बाबा दुनियाँ में मौजूद हैं और वे लोग इस बात को नहीं जानते। कितने आश्चर्य की बात है कि यह सब मेरे साथ हो रहा है।' उस क्षण से मैंने अपना जीवन उनकी रक्षा में दे दिया और मैं जान गई कि मेरी आध्यात्मिक खोज का अंत हो गया था।''

प्रारम्भिक काल के अंग्रेज़ शिष्यों में विल (Will) और मेरी बैकेट भी थे जिन्हें बाद में बाबा के साथ रहने के लिये भारतवर्ष जाना था। बाबा से अपने प्रथम मिलन के विषय में मेरी (Mary) लिखती है कि उसको चेतना का एक भारी उत्थान महसूस हुआ जैसा कि उसको पहले कभी किसी से भी मिलने पर अनुभव नहीं हुआ था। "बाबा ने मुझको तीन मिनट के समय

में कहीं अधिक दे दिया, बहुत अधिक दे दिया जो मैंने तीस वर्ष तक उत्सुकतापूर्वक खोज करने पर भी नहीं पाया था, क्योंकि मैंने कृपा तथा दैवी प्रेम की निश्चित देन का सचमुच अनुभव किया जो उन्होंने प्रदान की थी, जबकि दूसरे लोग उसके विषय में केवल बात कर सकते थे।"

बाबा के इंग्लैण्ड में ठहरने के उस व्यस्त क्रियाकलाप के सप्ताहों में जिन अनेक लोगों ने बाबा की उपस्थिति के आश्चर्य तथा सौन्दर्य को महसूस किया था, उनके ऊपर पड़े हुये प्रभावों के ये कुछ उदाहरण हैं।

नवागन्तुकों द्वारा उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देने के लिये बाबा कभी कभी सहमत हो जाते थे, परन्तु भगवान बुद्ध की भाँति वह यह पसन्द नहीं करते कि उनके शिष्य उनसे प्रश्नों की झड़ी लगावें। इसका कारण समझना आसान है। बाबा का कार्य है कि वह चेतन मन को **निश्चल** करने में शिष्य की सहायता करें, न कि उसको बौद्धिक विचारों द्वारा उकसावें। बुद्ध भगवान की भाँति बाबा भी किसी प्रश्न का सीधा स्वीकार सूचक अथवा नकारात्मक उत्तर बिरले ही देते हैं। वस्तु ज्ञान को, जो बौद्धिक मन के लिये अत्यन्त प्रिय होता है, उच्चतर बुद्धिमत्ता के लिये स्थान छोड़ना आवश्यक है, जो जीवन के एक मौलिक प्रश्न का उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में कदाचित् ही दे सकती है। परन्तु जब बाबा प्रश्नों का उत्तर देने को तैयार हो जाते हैं, तो उनके उत्तर हृदय में प्रवेश करने वाले तथा संक्षिप्त होते हैं। लन्दन के 'सण्डे एक्सप्रेस' नामक समाचार पत्र के सम्वाददाता जेम्स डगलस ने नीचे दिये गये प्रश्न बाबा से पूछे थे, जो उस पत्र में 10 अप्रैल 1932 ई. को प्रकाशित हुये थे। श्री डगलस लिखते हैं कि उन्होंने प्राचीन ज्ञान के पण्डित सर डेनीसन रास (Sir Denison Ross) की सहायता से एक प्रश्नावली तैयार की थी।

"उस प्रश्नावली का मन्तव्य बाबा को फाँसने का था, परन्तु वह मुस्कुराते हुये तथा बिना अटके हुये उसको पार कर गये। तर्कविद्या के वह पूर्ण आचार्य हैं। सरलता में उनकी तर्कविद्या बिल्कुल 'सुकरात' की जैसी

थी। उन्होंने मुझसे कई बार प्रश्न किये जिन्होंने अपनी मर्मज्ञता से मुझको विस्मित कर दिया। परन्तु उन्होंने किसी सीधे प्रश्न को कदापि न टाला।" बाबा से जो प्रश्न मुलाक़ात के समय पूछे गये थे उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

प्रश्न— क्या आप ईश्वर हैं ?

उत्तर— मुझे ईश्वर से एकता प्राप्त है। मैं बुद्ध की भाँति, ईसामसीह की भाँति, कृष्ण की भाँति, ईश्वर में वास करता हूँ। वे ईश्वर को जानते थे जैसे मैं जानता हूँ। सब लोग उसको जान सकते हैं।

प्रश्न— क्या आपने पाप की समस्या हल कर ली है ?

उत्तर— पाप कोई वस्तु नहीं है। केवल सत्कर्म की श्रेणियाँ होती हैं।

प्रश्न— आपका गुप्त भेद क्या है ?

उत्तर— अहंकार का नाश करना।

प्रश्न— क्या आप भगवान बुद्ध तथा अष्टांग मार्ग में विश्वास करते हैं ?

उत्तर— समस्त धर्म ईश्वर से पूर्ण मिलन कराने के लिये क्रमानुसार चढ़ाई है।

प्रश्न— कौन सा धर्म आपके धर्म से निकटतम है ?

उत्तर— सभी धर्म एक ईश्वर की दिव्य वाणियाँ हैं।

प्रश्न— ईश्वर व्यक्ति है अथवा शक्ति है ?

उत्तर— ईश्वर साकार और निराकार दोनों है। वह कला में, साहित्य में, विज्ञान में, हर वस्तु में, है।

लन्दन में ठहरने के काल में बाबा ने जो अनेक लोगों को मुलाक़ातें दी थीं, उनमें से नवागन्तुकों के प्रति उनकी आध्यात्मिक कार्यशैली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

एक महिला ने, जो एक पादरी की पुत्री थी, बाबा में अपने विश्वास के अभाव को बाबा से स्वीकार किया। उसने बाबा से इच्छा प्रकट की कि अन्य लोगों की भाँति वह भी बाबा में विश्वास करने लगे।

बाबा ने उससे कहा, "परन्तु ऐसा क्यों ? चूँकि जो तुम सचमुच चाहती हो वह तुम्हारे भीतर है, इसलिये तुम उसको वहीं पाओगी। मेरा काम उसको पाने में तुम्हारी सहायता करने का है, चाहे तुम मुझमें विश्वास करो या न करो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, चाहे तुम मेरी सहायता न भी चाहो। जब सूर्य आसमान में चमकता है तो तुम उसकी गरमी महसूस करती हो, चाहे तुम उसे चाहो या न चाहो।" (रहा उनके घनिष्ठ शिष्यों के सम्बन्ध में, उनका वास्तव में बाबा में विश्वास होना आवश्यक है, क्योंकि बाबा के कार्य के माध्यम बनने की शिक्षा में सुविधा उत्पन्न करने के लिये गुरु तथा शिष्य के बीच पूर्ण सम्बन्ध अवश्य रहना चाहिए।)

एक अन्य महिला ने बाबा से पूछा कि वह अपनी अन्तरात्मा में ईश्वर के साक्षात्कार का किस प्रकार विकास कर सकती थी।

बाबा ने उसे समझाया, "सच्ची आध्यात्मिकता बुद्धि द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती, वरन् हृदय और अनुभूति के द्वारा प्राप्त की जा सकती है—अर्थात् **भीतरी** अनुभव के द्वारा। मैं घन्टों तक समझा सकता हूँ, परन्तु वह समझाना मेरी एक क्षण की भीतरी सहायता की तुलना में न के बराबर होगा। तुम एक काम करना। प्रतिदिन रात को सोते समय एक क्षण के लिए यह चिन्तन किया करना, 'अपार परमात्मा मेरे भीतर है, और मैं अपार परमात्मा की अंश हूँ।' इससे मेरे साथ तुम्हारा भीतरी सम्पर्क दृढ़ हो जायेगा।"

एक मनोविज्ञानवेत्ता से, जो बाबा से मिलने आया था, बाबा ने कहा, "विलक्षण आत्मा ! तुम्हें शाब्दिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। तुम समझते ही हो कि **अनुभूति** (Feeling) का ही महत्व होता है; न कि शब्दों का। तुम मानव समाज के लिये महान कार्य करोगे।"

एक अन्य व्यक्ति ने बाबा से पूछा कि क्या एक विशेष मनुष्य, जो प्रधान सद्गुरु (Master) होने का दावा करता था, उस दावे का अधिकारी था। बाबा ने उसको उत्तर दिया, "प्रत्यक्ष रूप से हर मनुष्य को अधिकार है कि वह अपने को जो चाहे वह कहे। यह दूसरे लोगों का काम है कि चाहे उसे स्वीकार करें अथवा न करें। सच्ची कसौटी यह नहीं है कि वह क्या शिक्षा देता है, वरन् यह है कि वह आचरण में क्या रखता है।"

किसी ने उनसे पूछा कि ''यदि आप ईसामसीह हैं, तो आपको हर मनुष्य क्यों ऐसा नहीं मानता ?'' इसके उत्तर में बाबा ने कहा—

"यह मनुष्य रूप जो मुझको धारण करना पड़ता है, उनके द्वारा मेरे पहिचाने जाने में बाधक होता है। ईसामसीह अपने अवतारकाल में स्वीकार नहीं किये गये थे, यहाँ तक कि उनके कुछ घनिष्ठ तथा अत्यन्त निकट साथियों ने भी उन्हें स्वीकार न किया था, जैसे यहूदा (Judas)। यद्यपि तुममें से कोई भी मुझको मेरे भौतिक शरीर में बाह्यरूप से नहीं समझते हो, तो भी मैं तुम्हारे **भीतर**—हरेक के भीतर—**वास्तविक** तथा **अपार ईसामसीह** के रूप में विद्यमान हूँ।"

इंग्लैण्ड में अपने प्रवास के अन्त में बाबा ने कुस्तुनतुनियाँ तथा मिलान की सरसरी यात्रा की। फिर उन्होंने समुद्री जहाज़ द्वारा अमेरिका की प्रथम यात्रा पर प्रस्थान किया, जहाँ उन्होंने हम में से कितनों के जीवन को धन्य किया जैसा कि इस गाथा के प्रारम्भ में वर्णन किया गया है।

अमरीका में बाबा के प्रथम और द्वितीय आगमन के मध्य के माह हमारे लिये आनन्दमय तथा तत्परतापूर्ण थे, जिनमें हम बसन्त ऋतु में उनके प्रत्याशित आगमन के लिये तैयारियाँ करने में लीन थे। दिसम्बर 1931 ई. में प्रस्थान करने के पूर्व, उन्होंने हमें कुछ आदेश दिये थे जिनके अनुसार हमें फ़ारस और भारतवर्ष में आश्रम स्थापित करने के कार्य को आगे बढ़ाने के लिये एक निश्चित रक़म इकट्ठा करना आवश्यक हो गया था। इस रक़म को इकट्ठा करने में हमारी कठिनाई पूर्वी देशों में आश्रमों के प्रति लोगों की केवल उदासीनता के कारण ही नहीं थी। इस प्रयोजन के निमित्त जो छोटी समिति बनाई गई थी, उसके सदस्यों को अपने विचारों को परस्पर मिलाना और उनको एक स्वर से कार्यान्वित करना असाधारणतया कठिन प्रतीत होता था।

अब ईश्वरीय सहयोगकर्त्ता बाबा के अलग हो जाने पर, हम लोगों की पुरानी अहंकारी वासनायें पुनः प्रकट होने लगीं। हमें स्वर्गीय राज्य का

पूर्वानुभव प्रदान किया जा चुका था, परन्तु अब हमें उच्चतर चेतना को अपने दैनिक जीवन का अंग बनाने का कार्य प्रारम्भ करना था; और सन्त–जीवन से बहुत दूर होने के कारण हमारी मुठभेड़ अपने आप में तथा अन्य लोगों में कई अवरोधों से हुई। मैलकाम को यह कार्य दिया गया था कि वह अमरीका की जनता को बाबा के वापिसी आगमन तथा उनके निकट सार्वजनिक प्रगटीकरण के लिये तैयार करे; और मुझको उस घर का संरक्षण–भार सौंपा गया था जिसे हमारा मित्र आध्यात्मिकशाला के रूप में दिये हुये था। निस्सन्देह उस 'तनाव' को उत्पन्न करने के लिये, जिसका प्रयोग बाबा अत्यन्त नाटकीय तथा प्रभावकारी ढँग से करते हैं, उन्होंने मैलकाम से और मुझसे एकान्त में कहा था कि हम लोग अमरीका में उनके 'प्रधान प्रतिनिधि' थे, और इसलिये उनके कार्य का भार हम लोगों के ऊपर था। उन्होंने दूसरों से क्या कहा था यह हमें कभी ज्ञात नहीं हुआ था ! परन्तु अब, बाबा की निराली रीतियों का अधिक अनुभव होने के कारण, मैं इस सम्भावना को स्थान दूँगी कि बाबा ने अन्य लोगों से भी वही बात कही होगी–कि वे 'कार्यवाहक' थे। वास्तव में कमेटी में कोई भी कार्य प्रारम्भ करने का प्रयत्न करते समय हमको जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता था उससे हमको ऐसी सम्भावना का संकेत मिलता था ! इसलिये हमने 'कमेटी' का काम उन जनों पर छोड़ दिया जो नगर में थे, और हमने नगर के बाहरी आश्रम पर अपने विशिष्ट कर्त्तव्यों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

प्रस्थान करने के पूर्व, बाबा ने हमारे वहाँ के जीवन के लिये एक दिनचर्या बना दी थी, जिसमें उन्होंने कुछ समय चिन्तन करने के लिये रक्खे थे और कुछ नियम भी दिये थे जिनका पालन उन सबको करना था जिन्हें घर में रहना था। हम लोगों के साथ एक माता अपनी पुत्री सहित रहती थी। बाबा के आदेश के अनुसार, उस माता का कार्य था घरेलू कार्यों में मेरी सहायता करना, जबकि उसकी पुत्री का कार्य था बाबा के वापिसी आगमन के लिये अमरीका की जनता को तैयार करने के कार्य में मैलकाम की मदद करना। यह सब बहुत ही सरल तथा स्पष्ट प्रतीत होता था, जिसमें किसी के लिए भी कोई कठिनाई की बात न थी–मैं ऐसा ही सोचती थी ! परन्तु बाबा को विदा करके घर लौटने पर मैं सीधी अपने पहले ठूँठ

से भिड़ गई ! मेरी सहायक ने प्रायः घर के अगले द्वार पर ही एक आकर्षक नोटबुक पेश करते हुये मुझे अभिवादन किया जिसमें उसने उन सभी ड्यूटियों के प्रति अपनी आपत्तियाँ लिखी थीं जो बाबा ने उसको दी थीं, और जिनको उसने स्वीकार कर लिया था। समस्त घरेलू कार्यों के विरुद्ध उसके 'आपत्ति करते' समय, हकबकाहट के साथ उसकी बातें सुनने के पश्चात् मैंने अन्तस्तल में बाबा का आवाहन किया और उनसे सहायता की प्रार्थना की। इस पर बिजली की दमक के समान मुझमें विचार आया : 'उससे पूछो कि वह जीवन के विषय में सचमुच क्या चाहती है।' मैंने ऐसा ही किया जिसका अत्यन्त आश्चर्यजनक फल हुआ। उसने तुरन्त अपनी गड़बड़ विचारक्रिया को बन्द कर दिया, चित्त की एकाग्रता की अपनी भीतरी शक्तियों को बटोरा, और उत्तर दिया कि वह सचमुच अपनी उच्चतम **आत्मा** (Self) की सेवा करना चाहती थी। इसलिये उस आधार पर हम लोगों में अन्ततः एक सामंजस्य तथा सहयोगपूर्ण समझौता हो गया जिसमें उसने बाबा के आदेशों का पालन किया। इस प्रकार प्रथम अड़चन पार हो गई ! इसके अतिरिक्त अन्य अनेक अड़चनें आईं, जो सदैव इतनी सरलतापूर्वक पार न हुईं, और उनमें से अनेक में मेरी भूमिका बहुत अपूर्ण रही।

वह एक अमूल्य अनुभव था, और उससे मैंने कम से कम एक अमूल्य शिक्षा प्राप्त की। यदि किसी जन को किसी सामूहिक कार्य में मुख्य भूमिका अदा करना है और यदि वे बातें जिनके लिए वह ज़िम्मेदार है इतनी अच्छी तरह पूरी नहीं हो रहीं जितनी उन्हें होना चाहिये, तो उसके लिये यह बुद्धिमानी की बात होगी कि वह दूसरों पर दोष मढ़ने के पूर्व, चाहे वे स्पष्टतः कितने ही दोषी प्रतीत होवें, अपने आपसे पूछे कि वह किस स्थान पर असफल हुआ है।

अन्त में, अमरीका में बाबा के द्वितीय आगमन का महान दिवस निकट आ गया। हमें बताया गया था कि इस बार वह एक लम्बे समय तक ठहरेंगे–कदाचित् एक वर्ष अथवा इससे भी अधिक समय तक। इस पर हम बहुत प्रसन्न हुये ! हमको यह सूचना भी दी गई थी कि हमें सैकड़ों दर्शनार्थियों के लिए ठहरने के स्थान का प्रबन्ध करना पड़ेगा, जिनमें से

अनेक लोग बाहरी स्थानों के होंगे और उनके लिए शयनागारों की आवश्यकता होगी। इसलिए मेरा निरन्तर–क्रियाशील मन उसकी योजना बनाने में तत्पर हो गया ! चूँकि हमारे चारों ओर काफ़ी खाली भूमि पड़ी थी, इसलिए मैंने तम्बुओं का एक पड़ाव खड़ा करने की कल्पना की। तम्बुओं की खरीद तो हमने बाबा के आगमन तक के लिए स्थगित कर दी, परन्तु मैंने फलों के लकड़ी वाले बक्सों से तम्बुओं के लिए कुछ लकड़ी का सामान तैयार कराना तुरन्त प्रारम्भ कर दिया, जैसे श्रृंगार की मेज़ें, अलमारियाँ, बैठने की चीज़ें। रंगी हुई और सुसज्जित वे बहुत चमकीली तथा आकर्षक दिखाई पड़ती थीं, परन्तु जहाँ तक मुझको ज्ञात है उनका कभी भी प्रयोग न हुआ ! जब बाबा पधारे, तो वह न्यूयार्क में एक मित्र के घर में तीन दिन ठहरे, और ठीक दो रात हारमन आश्रम में ठहरे। इसके पश्चात् वह पश्चिमी समुद्र तट की ओर चले गए ! इस प्रकार उनके शिष्यों को गतिशीलता की शिक्षा दी जाती है।

हमारे सौभाग्य से मैलकाम और मैं कैलिफ़ोर्निया की यात्रा करने वाली टोली में सम्मिलित कर लिये गये थे। बाबा ने उस समय कहा था कि वह अमरीका में जहाँ कहीं भी जावें वहाँ हम भी उनके साथ जावें। मैलकाम ने अमरीका की जनता को बाबा के वापिसी आगमन के लिये तैयार करने का कार्य भली प्रकार किया था। न्यूयार्क में उनके पदार्पण करने पर देश भर में सभी महत्वपूर्ण समाचार पत्रों ने छींटेदार शीर्षकों में उनका समाचार प्रकाशित किया। बाबा की आघात–कला (Shock technique) से अब भी परिचित न होने के कारण, हमने तथा अन्य अनेक जनों ने उन पद्धतियों पर गुप्त रूप से सोच किया जिनका प्रयोग करना किसी आधुनिक उपदेशक के लिये आवश्यक होता है यदि वह जनता की मनोभावना तथा आश्चर्य को–हाँ, उसके विरोध तक को–उकसाना चाहता है। उस समय से हम इस उत्तेजन क्रिया के प्रतिघातों को वास्तव में सच्चे लोगों से सदैव सुनते रहे हैं जो हमें विश्वास दिलाते हैं कि पूर्वी जगत के सच्चे शिक्षक ऐसी चीज़ें नहीं करते ! और सामान्यतः उनका कहना ठीक

है। परन्तु बाबा उस नियम के उल्लेखनीय अपवाद हैं, जो तमाम पूर्व–आदर्शों तथा पूर्वधारणाओं को लाँघ जाते हैं। अमरीका में पैर रखने के दिन से–जबकि दर्जनों प्रेस सम्वाददाताओं ने बाबा से मुलाक़ात की और उनके तथा उनके साथियों के फोटो लिये–देश के आरपार पाँच दिन की यात्रा के आद्योपान्त, पग–पग पर, बाबा ने प्रेस प्रतिनिधियों के हेतु दयालुतापूर्वक अपना बलिदान किया। देश के सभी समाचार पत्रों ने **मौन मसीहा** की उद्घोषणा की। समग्रतः उनके समाचार विलक्षण रूप से बाबा के पक्ष में थे–मानो अपनी भावनाओं के बावजूद सम्वाददाताओं ने बाबा की आध्यात्मिक ज्योति को किंचित महसूस किया था। परन्तु **ईश्वर–प्राप्त सद्गुरु** की प्रकृति को बहुत ही कम जानने के कारण, पश्चिमी जगत के हम लोग ऐसे दावों पर हँसने के लिये बहुत उद्यत रहते हैं; और, समाचार पत्रों में छपी कुछ रिपोर्टों ने सचमुच यही किया था।

जो हमको बहुत भद्दा प्रचार प्रतीत होता था–और जो हमारे प्रिय तथा पूज्य बाबा के उत्कृष्ट चरित्र के पूर्णतया अनुपयुक्त था–उससे हममें से अनेक जन पीड़ित होते थे और उत्सुकतापूर्वक सोचते थे कि ईसामसीह के समय में कितनी भिन्न परिस्थिति रही होगी : जैतून के वृक्ष की छाया में बैठा हुआ एक जनसमूह, जागृत हृदयों तथा सजीव आत्माओं सहित, और तब मुख से उच्चारित शब्दों द्वारा सुसमाचार का प्रसार किया गया, जिससे जनसमूह धीरे धीरे बढ़ता गया, यहाँ तक कि एक दिन जूडिया के एक हरे भरे पहाड़ी स्थल पर पाँच हज़ार लोगों को आध्यात्मिक भोजन प्रदान किया गया–निस्सन्देह यह एक भिन्न युग के लिये भिन्न स्वर था। तथापि, यदि हम उस समय होते, तो क्या हमने ईसामसीह के विरुद्ध वही आलोचना न सुनी होती जो हमने अब बाबा के विरुद्ध सुनी थी ? क्या यह यहूदी पादरी के सामान्यतः शान्त चरित्र के बाहर अपना कदम नहीं रख रहे थे? क्या वह उपद्रवी जनसमूह को उकसाकर चारों ओर धार्मिक शिक्षकों की परम्परा गत धारणा का विरोध नहीं कर रहे थे ? मेरी समझ में नहीं आता कि इससे अन्यथा कैसे हो सकता था। ऐसा **ईश्वरीय अवतार** सदैव मनुष्य को उसके प्राचीन विचारों तथा जातिगत श्रेष्ठताओं से मुक्त करने के लिए आता है। वह आवश्यकतया मनुष्य के धार्मिक पक्षपातों का विशेषतः उन्मूलन करता है और उसके दृढ़ जमे हुये दृष्टिकोणों को छिन्न–भिन्न

करता है, चाहे ऐसा करने में वह अपने आपको हास्यास्पद अथवा किंचित् पागल प्रतीत होता हुआ क्यों न बनावे।

चूँकि बाबा अपने शिष्यों के अहंकारों का नाश करने के अवसरों को व्यर्थ नहीं जाने देते, इसलिये यह बिल्कुल उपयुक्त था कि इस लम्बी रेल–यात्रा ने उन्हें इस सेवा के लिये अनेक अवसर प्रदान किये, यद्यपि लोग उनकी इस सेवा का सदैव मर्म नहीं समझते ! एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से भिड़ाना बाबा की प्रिय तथा अत्यन्त प्रभावकारी कार्यविधि है जिससे वह सम्बन्धित जनों को अपनी त्रुटियों तथा अपनी 'छायाओं' का सामना करने के हेतु बाध्य करते हैं। इस यात्रा में उन्होंने मैलकाम को मेरेडिथ स्टार नामक अंग्रेज़ से भिड़ा दिया। उन दोनों को बाबा ने हालीवुड में देने के लिये अपने सन्देश को साहित्यिक रूप में लिखने की आज्ञा दी। फिर बाबा ने मैलकाम के लेख की बहुत प्रशंसा करते हुये उसे स्वीकार कर लिया, जबकि मेरेडिथ स्टार, जिसको अपनी लेखनी की योग्यता और बाबा की टोली में अपने स्थान की प्राथमिकता पर गर्व था, ऐंठता तथा खीझता रहा ! इसका फल यह हुआ कि हमारे हालीवुड पहुँचने के समय तक मैलकाम और मैं दोनों मेरेडिथ स्टार और उसकी पत्नी के लिये अमाननीय व्यक्ति हो गये थे। तथापि, मुझको एक होटल के एक कमरे में मेरेडिथ स्टार की धर्मपत्नी के साथ ठहराया गया ! उसके पति ने हम सबको बताया था कि वह **सन्त** थी। मेरे विचार में वह कुछ अर्थों में सन्त थी !

हम सबने, जिनको बाबा के निकट होने का सौभाग्य प्राप्त रहा है, यह पाया है कि हमारे प्रति उनका व्यवहार दो स्पष्ट पहलुओं में विभाजित होता है। प्रारम्भ में, विभिन्न मात्राओं में, हम लुभाये जाते हैं और कुछ लोग सन्तुष्ट तक किये जाते हैं, जब तक बाबा यह नहीं जान लेते कि उल्टी धारा चालू करने का समय आ गया है। उस समय उन अहंकारी प्रवृत्तियों का जड़ से नाश करने का असली कार्य तत्परतापूर्वक प्रारम्भ होता है जो यथार्थ **आत्मा** (Self) को छिपाये रखती हैं। इस काल में–व्यक्तिगत

आवश्यकता के अनुसार–बाबा बहुधा ऐसी बातें कहते और करते हैं जो हमें भ्रमित करतीं और कदाचित् हमारे ऊपर बलात्कार करतीं हैं। एक दक्ष सर्जन की भाँति, एक बार चीर–फाड़ प्रारम्भ कर देने पर वह दृढ़तापूर्वक उसमें तत्पर रहते हैं जब तक कि समस्त कष्टदायी अहंकारी उपज नष्ट नहीं हो जाती, और इस बात पर ध्यान नहीं देते कि रोगी कितना द्रोह करता है।

यह विशिष्ट पुरुष, मेरेडिथ स्टार, भारतवर्ष में बाबा के साथ लगभग एक वर्ष रहा था। उसे बाबा के उस कष्ट दूर करने वाले उपचार की प्रकृति की अनुभूति करने के लिए, जिसके आधीन बाबा उसे कर रहे थे, बाबा की पद्धतियों का पर्याप्त अनुभव होना चाहिये था। परन्तु दुर्भाग्यवश उसके स्वार्थ ने उसको अन्धा बना दिया था। इसका फल यह हुआ कि आगामी महीनों में वह बाबा के विरुद्ध हो गया जिनकी स्तुति वह पहले उच्चतम स्वर से किया करता था। इसमें सन्देह नहीं कि उसके द्वारा की गई बाबा की कोलाहलमयी स्तुति में उसकी अस्वीकृति का बीज अन्तर्निहित था। जब बाबा लौट कर भारतवर्ष आए तब मेरेडिथ स्टार के एक समुद्री तार ने उनका स्वागत किया जिसके द्वारा उसने बाबा से पाँच सौ पौंड तथा ईश्वर–साक्षात्कार की माँग की थी ! उसने सूचित किया था कि बाबा के ये चीज़ें न देने पर वह बाबा को ठग घोषित करेगा, और उसने तदनन्तर ऐसा ही किया। जब बाबा को यह विचित्र अन्तिम शर्त प्राप्त हुई तो वह दिल खोलकर हँसे।

हालीवुड में बाबा व्यक्तिगत मुलाक़ातों में सैकड़ों लोगों से मिले और एक हज़ार अथवा इससे अधिक लोगों से एक सार्वजनिक स्वागत समारोह में मिले जिसका आयोजन हालीवुड–निकरबोकर होटल में किया गया था। मुझे उनकी दाहिनी बगल में खड़े होने और स्वागत–पंक्ति से केन्द्र में बाबा के पास आने वाले अतिथियों का परिचय कराने का विशेष गौरव प्राप्त हुआ था। मैं 'विशेष गौरव' शब्द का प्रयोग जानबूझ कर करती हूँ,

क्योंकि यद्यपि उस रात्रि को बाबा के सामने से गुज़रने वाले सैकड़ों लोगों में से थोड़े से लोग ही उनकी आध्यात्मिक महत्ता को किंचित्, मात्र धुँधले रूप से ही समझते हुये प्रतीत होते थे, तथापि एक घन्टा अथवा इससे अधिक समय तक बाबा का नाम बारम्बार लेने से मेरे अन्तर में महान हर्ष की भावना उत्पन्न हो गई थी। मुझको ऐसा महसूस होता था मानो मैं दैवी बीज बोने के बाबा के कार्य में किसी न किसी प्रकार से भाग ले रही थी। निःसन्देह उनमें से कुछ बीज ऊसर भूमि पर गिरे, परन्तु अन्य बीज विश्व के आध्यात्मिक पोषण के लिये किसी दिन फूलने तथा फलने के हेतु अवश्य अंकुरित हुये होंगे।

हालीवुड में ठहरने के काल में बाबा का अधिकांश महत्त्वपूर्ण कार्य चल–चित्र के प्रमुख व्यक्तियों के प्रति हुआ था। वह जीवन के उस क्षेत्र में अपना सम्बन्ध–सूत्र बिछा रहे थे, और वह हमको विश्वास दिलाते हैं कि वह क्षेत्र किसी दिन पूर्णतया नए प्रकार के चल–चित्र का निर्माण करेगा। इसके पश्चात् की गई उनकी पश्चिमी जगत की सभी यात्राओं में उनका अधिकांश समय इसी प्रकार के क्रियाकलाप में लगाया गया, जब तक कि अन्ततः उनको वे लोग न मिल गये जिनके बारे में वह जानते थे कि वह उनके हाथों में अपने कार्य के चल–चित्र पहलू को विश्वासपूर्वक सौंप सकते थे।

एक दिन सन्ध्या समय, जब हम हालीवुड में थे, हम लोग बाबा के साथ पिकफ़ेयर गये जहाँ एक विशाल भोज का प्रबन्ध हो रहा था। यहाँ बाबा–जिन्होंने अपने निवास के लिये भारतवर्ष में एक ऊसर पहाड़ी के ऊपर एक छोटी सी झोपड़ी पसन्द की है–पिकफ़ेयर के विलासी ठाठ–बाट वाले अतिथियों के बीच इस प्रकार बैठे मानो वह ऐसे ही वातावरण में पैदा हुये तथा पले थे। दिखावटी शोभा वाले अभिनेताओं रूपी तारागणों के मध्य में वह देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति चमकते थे, और पूर्णतया शान्त तथा भोज के अतिथियों की विचित्र टकटकीपूर्ण चितवनों से पूर्णतया उदासीन थे। फूलों की पृष्ठभूमि में विराजमान यह **'प्रकाशमान दूत'**, जिसकी ठोस पदार्थ को भी बेधकर देख सकने वाली आँखें अत्यन्त चतुराई से धारण किये गये घूँघट में भी प्रवेश कर जाती हैं, मानव जाति के इस अति–

आधुनिक तथा अति–जटिल वर्ग के ऊपर अपनी दीप्ति की वर्षा कर रहा था। सामने एक गद्देदार कुर्सी पर कैरी प्रान्ट नामक सज्जन बैठे थे जो बाबा के सुन्दर नवयुवक भाई, आदी, की सच्ची श्रद्धांजलि को अत्यन्त उकताहट के साथ ग्रहण कर रहे थे; यह सान्सारिक बनावट और बच्चों जैसी सादगी के मध्य, निरुत्साह और आनन्द के मध्य, एक दिलचस्प तुलना थी।

कैलिफ़ोर्निया जाने के पूर्व, बाबा ने हम लोगों को बताया था कि वह वहाँ जौलाई में अपना मौन खोलेंगे, और यह घटना आध्यात्मिक जागृति का संकेत होगी जिसकी भविष्यवाणी वह कई वर्षों से कर रहे थे। हम लोग स्वभावतः इस क्षण की आशा उत्सुकतापूर्वक कर रहे थे, क्योंकि हम लोग–उनके समीप वाले जन होने के रूप में–इस जागृति में अति गम्भीर भाग प्राप्त करेंगे। बाबा ने यह बात हमको प्रथम आगमन के समय बताई थी। तथापि मैलकाम और मैं दोनों ने एकान्त में एक दूसरे से स्वीकार किया था कि चेतना के उस महत्त्वपूर्ण उत्थान में भागी बनने के लिए हम लोग अपने को बिल्कुल अनुपयुक्त महसूस करते थे। हम जानते थे कि मनुष्य रूप में विद्यमान ईसामसीह के साथ उनके सहकारी कार्यकर्त्ताओं के रूप में स्थान ग्रहण करने के हेतु हमारी कितनी कच्ची तैयारी थी। और, वास्तव में हम यह भी जानते थे कि एक 'निमेषमात्र' में कोई भी मनुष्य पूर्णतया बदला जा सकता था। तथापि हमको गम्भीरतया यह ज्ञान था कि उस 'निमेष' के आने के पूर्व हमारे जीवनों के आध्यात्मिक आधार को बहुत प्रगाढ़ होने की आवश्यकता थी।

फिर भी, बाबा ने यह निश्चित घोषणा कर दी थी कि वह जौलाई में मौन खोलेंगे और मानव समाज चेतना में भारी उत्थान का अनुभव करेगा। हमने प्रसन्नतापूर्वक उनका विश्वास कर लिया–कदाचित इस कारण से कि हम और अधिक चेतना के विकास की आवश्यकता से छुट्टी पाना चाहते थे–परन्तु हमको इस बात पर महान आश्चर्य नहीं हुआ जिस समय

उन्होंने हमको बताया कि उनका मौन खोलना थोड़े समय के लिये स्थगित होगा। उन्होंने हमको बताया कि पहले वह शीघ्रतापूर्वक चीन जायेंगे, और फिर वहाँ से लौटकर हालीवुड बाऊल (Bowl) में अपना मौन खोलेंगे, जहाँ मेरी पिकफ़ोर्ड उनका परिचय देगी ! अब मैं इस बात की कल्पना नहीं कर सकती कि हममें से किसी ने उस मनमौजी कहानी का कैसे विश्वास किया था ! सचमुच इससे उद्‌घाटित हुआ कि हम लोग उस समय चेतना में निपट शिशुवत् थे। हम अविलम्ब जूतों के फीतों द्वारा स्वर्ग तक ऊँचे उठाये जाने के अत्यन्त इच्छुक थे ! वर्षों पश्चात् एक दिन भारतवर्ष में बाबा हमको उस चित्र का स्मरण दिलाते हुये हँसे : "उस कहानी पर अपने विश्वास करने की कल्पना करो—कि मैं हालीवुड बाऊल में रेडियो पर अपना मौन खोलूँगा।"

परन्तु उस समय हमने उस पर अवश्य विश्वास किया था, और बाबा के चीन से लौटने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा की थी। अपने दल समेत प्रस्थान करने के पूर्व बाबा ने मैलकाम को और मुझको आदेश दिया था कि हम लोग सैनफ्रान्सिको जावें और उनके वापिसी आगमन की नींव तैयार करें। पुस्तकों की दूकान के समय के सम्पर्कों के द्वारा हमने कई प्रमुख लोगों से सम्पर्क किया, जिन्होंने बाबा के विषय में बोलने और उनके निकट वापिसी आगमन तथा उनके मौन खोलने के विषय में बताने की व्यवस्था हमारे लिए कर दी।

ठीक उसी दिन सन्ध्या समय जबकि हमें पीडमान्ट में होने वाली इस प्रकार की सबसे बड़ी सभा में भाग लेना था, हमको बाबा का सन्देश मिला कि वह लौट कर अमरीका नहीं आ रहे थे वरन् भारतवर्ष और यूरोप जा रहे थे; और न ही वह उस समय अपना मौन खोल रहे थे। मैं स्पष्ट कहती हूँ कि यह हमारे लिये बहुत अन्धकारमय क्षण था। हमसे आशा की जाती थी कि हम कुछ घन्टों के भीतर ही इन नए मित्रों को अमरीका में बाबा के प्रत्याशित आगमन के विषय में बतावेंगे; चेतना के ऊपर उन जागृत करने वाले प्रभावों का वर्णन करेंगे जिनका सूत्रपात बाबा का मौन खुलने से मानव जाति के लिये होगा; और हम बाबा को **ईश्वरत्व** का परम आदर्श घोषित करेंगे, जो गहरे से गहरे विश्वास तथा श्रद्धा के अधिकारी हैं। परन्तु हमारे

हृदयों में अन्धकारपूर्ण संशय दबाये नहीं दब रहे थे। वास्तव में उस समय हमको यह ज्ञात न था कि वह कई वर्षों से अपना मौन खोलने की भविष्यवाणी करते रहे थे, और उतने ही वर्षों से उसे टालते रहे थे। हम अपने को उन विश्वासी बच्चों की भाँति महसूस करते थे जिन्हें निर्दयतापूर्वक धोखा दिया गया था। या तो बाबा को ईश्वर—ज्ञान प्राप्त न था जिसके लिये हमने उन्हें प्रमाणित कर रक्खा था, अथवा वह ठगों में एक और ठग थे जो ऊँचे आध्यात्मिक शिक्षकों का बनावटी रूप धारण करते हैं। या तो वह भ्रमित थे अथवा दूसरों को भ्रान्ति में डाल रहे थे। हमारी विवेक बुद्धि ने इसी प्रकार तर्क वितर्क किया और कुछ घन्टों तक वह हमारे ऊपर अपना शासन जमाये रही।

अब सिंहावलोकन करने पर, आत्मा के उस सन्ताप को पुनः पाना कठिन है जिसको मैंने भोगा था। परन्तु उस समय बाबा के अनुयायियों में नई शिष्या होने के कारण, उनके आन्तरिक कार्य की माँग के अनुसार उनकी योजनाओं में आकस्मिक परिवर्तन होने की मैं अभ्यस्त न हुई थी। पन्द्रह वर्ष से बाबा से मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहने के पश्चात्, आज भी मैं यह समझाने का प्रयत्न न करूँगी कि वह कुछ चीजें क्यों करते और कहते हैं। एक बार केन्स में एक पत्र पर वादविवाद करते हुये, जो उन्हें हाल ही में प्राप्त हुआ था और जिसमें लेखक ने इस बात पर खेद प्रगट किया था कि बाबा के वादे कार्य—सूची के अनुसार पूरे नहीं हो रहे थे, बाबा ने मुझे संकेत किया कि उनके द्वारा किया गया प्रत्येक वादा सत्य सिद्ध होगा, "परन्तु वह मेरे ही समय में और मेरी ही रीति से पूरा होगा।"

मैं उसको स्वीकार करती हूँ, यद्यपि विवेक—बुद्धि के लिये उससे कोई बात स्पष्ट नहीं होती। तो भी, जैसे जैसे वर्ष व्यतीत होते हैं वैसे ही वैसे तार्किक बुद्धि की माँगें कम और कम महत्त्वपूर्ण होती जाती हैं, जबकि हृदय की अन्तः स्फूर्तियाँ अधिक और अधिक महत्व की होती जाती हैं। परन्तु सैनफ्रान्सिको में उन अन्धकार पूर्ण क्षणों में हमारी तर्क बुद्धि के दावे बहुत प्रबल थे। मैं अपने आपको उस दुनियाँ में अरक्षित महसूस करती थी जहाँ कोई पुरुष अपने दिये गये वचन के पालन की ओर इतने हलकेपन से ध्यान देता था। निश्चय ही एक **ईश्वर—पुरुष** के वचन को अवश्य

पवित्र होना चाहिये। मैं इसी प्रकार तर्क करती थी। परन्तु जैसे जैसे घन्टे व्यतीत हुये वैसे वैसे मुझको उच्चतर अनुदर्शन प्राप्त हुआ। मैंने महसूस किया कि यद्यपि मैं बाबा के उद्देश्य को नहीं समझ सकती थी, तथापि मैं अपने हृदय में जानती थी कि उनकी कोई भी क्रिया कभी भी, स्वार्थ की छाया से किंचित् मात्र भी प्रेरित न होती थी; और उनकी चेतना मनुष्य द्वारा निर्मित नीतिशास्त्र अथवा आचरण को इतनी दूर तक लाँघ जाती थी कि उनके वचन अथवा कर्म हमारी सही अथवा ग़लत की रूढ़ कल्पनाओं द्वारा नहीं आँके जा सकते थे। मुझे ज्योतिर्मय चेतना के अपने 'पर्वत–शिखर' सम्बन्धी अनुभव का स्मरण आया; जिस ईश्वर ने उस समय मुझ से बात की थी उसकी सारतायें (Values) मनुष्य की सारताओं से पूर्णतया भिन्न थीं–उनमें से कुछ तो सचमुच तार्किक बुद्धि के लिए अजीब थीं–तथापि मैं उस **अपार मन** की स्वाभाविक अखण्डता में सन्देह नहीं कर सकती थी। बाबा में मैंने इन्द्रियातीत पवित्रता तथा बुद्धिमत्ता का वही गुण पाया था। अन्ततः मैंने अनुभव किया कि यद्यपि मैं उनकी पद्धतियों को नहीं समझ सकती थी, तथापि मैं उनसे उस स्वरूप के लिये प्रेम करती थी जो वह मेरे ज्ञान में साररूप में थे।

अपनी यजमानिन तथा उसके द्वारा बनाई गई योजनाओं के प्रति सम्मान–भाव के कारण हम लोग उस रात्रि को पार्टी में गये, परन्तु दूसरे ही दिन हमने बाबा के कार्यक्रम के परिवर्तन का समाचार सबको प्रगट कर दिया। इस पर लगभग सभी नये बने मित्र रात भर में जोशीले शत्रु बन गये! दूसरे दिन एक और समुद्री तार हमको मिला जिससे बाबा का वह भीतरी सम्पर्क प्रकट होता था जो वह हमसे बनाये रहे थे :

"मैं जानता था कि तुम दोनों मुझे न छोड़ोगे। तुमको मेरा प्रेम। बाबा।"

कार्यक्रम के इस अप्रत्याशित परिवर्तन से हम एक भद्दी स्थिति में पड़ गये। न्यूयार्क के हमारे वापिसी टिकटों का बट्टा मिलने में, जो हमारे दल

की यात्रा का प्रबन्ध करने वाले जन क्वेन्टिन टॉड ने बाद में हमारे पास भेजा था, कई सप्ताह की देरी हो गई। हमारी कोई निजी आमदनी न थी और न कैलिफ़ोर्निया में हमारे कोई घनिष्ठ मित्र थे। मैलकाम के पहले वाले मित्र जिनके साथ बाबा हालीवुड में ठहरे थे, भीषण रूप से हम लोगों के विरुद्ध हो गये थे, क्योंकि हमारा साथ एक ऐसे गुरु से था जिसने अपने वादे को पूरा नहीं किया था ! जो सामान हम उनके पास छोड़ गये थे उसको वापिस भेजते हुये उन्होंने हमारे पास सन्देश भेजा कि वे हमको पुनः कभी नहीं देखना चाहते थे। इससे हमको आश्चर्य होने अथवा हमारा दिल टूटने की अपेक्षा हमको असुविधा अधिक हुई। बाबा के चले जाने के एक या दो दिन पश्चात्, जबकि हम लोग हालीवुड में उस समय भी विद्यमान थे, हमारे यजमान ने आमतौर पर सद्गुरुओं के सम्बन्ध में अपना आध्यात्मिक दृष्टि–विकार ऐसा कहते हुये प्रकट किया कि ईसामसीह अपने उद्देश्य में शोचनीय रूप से असफल हुये थे, क्योंकि प्रथम तो उन्होंने अत्यन्त अविश्वस्त शिष्यों की मण्डली चुनी थी, और दूसरे उन्होंने अपने को शूली पर चढ़ने दिया था ! वह ऐसा कहने में स्पष्टतः इस बात को बिल्कुल भूल गया कि जीवन को अमर बनाने के हेतु सान्सारिक जीवन का बलिदान करने का क्या महत्त्व होता है; स्पष्टतः वह किसी भी अंश में वह मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक मर्म समझने में असफल रहा जो 'शूली पर चढ़ कर मरने तक भी' ईश्वर की आज्ञा का पालन करने में निहित होता है। शूली पर लटकने की यातना भोगे बग़ैर ईसामसीह के पुनर्जीवन की मुक्ति देने वाली प्रवर्त्तक शक्ति कहाँ से आती ? लौकिक **'मार्ग–दर्शक'** के रूप में उनके उत्कृष्ट आदर्श के बग़ैर, हमको मानवीय अधिकार पत्र कैसे मिलता जिसके द्वारा मनुष्य **परम पिता** से मिलन के उसी अति श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है ? सचमुच शूली पर लटकने की सारता को स्वीकार करने का अर्थ है अपने जीवन में उसकी आवश्यकता तथा उसके प्रयोग को स्वीकार करना। तमाम मानवीय महत्त्वाकांक्षाओं को समर्पित करना, अपनी आध्यात्मिक ग़रीबी को स्वीकार करना, समस्त आत्म–इच्छा को त्याग देना, एक ऐसे व्यक्ति के लिये भारी आज्ञा है जिसने अपने को आत्मा के शिक्षक के रूप में खड़ा कर दिया था, जो हमारे पूर्वकालीन मित्र की स्थिति थी जिस समय वह बाबा से मिला था।

बाबा के तार के पश्चात् उनका एक पत्र आया जिसमें उन्होंने आदेश दिया था कि हम लोग सूचना मिलते ही तुरन्त वहाँ जाने को तैयार रहें जहाँ के लिये वह हमें आज्ञा दें। बाबा द्वारा बुलाये जाने की आशा–कदाचित् उनके साथ होने के लिये–निश्चय ही अत्यन्त सुखदायी थी; परन्तु ऐसा कार्य ढूँढ़ना, जिससे हम बिना सूचना दिये ही सामान उठा कर चल देने के लिये स्वतन्त्र रहें, दूसरा मसला था। फिर यह 1932 ई. का वर्ष भी था जिस समय अमरीका आर्थिक पतन की चरम सीमा महसूस कर रहा था। धन्धे सड़कों पर मारे मारे न फिरते थे जिनको अजनबी लोग बिना पूछे तथा बिना प्रमाण पत्रों के उठा लेते। यदि हमें ज्ञात हो गया होता कि हम ढ़ाई वर्ष से पहले बाबा से पुनः न मिलेंगे, और साढ़े चार वर्ष के पूर्व उनके पास जाने का बुलावा न आवेगा, तो हमने अपने लिये जीवन–यापन का एक टिकाऊ प्रोग्राम बनाने के हेतु अपने को अधिक स्वतन्त्र महसूस किया होता। बहिर्हाल, यह आगे–की ना जानकारी ही, अर्थात् रोज़ रोज़ का जीवन ही, बाबा की अत्यन्त प्रभावकारी कार्य–शैली है जिसके द्वारा वह मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा देते हैं।

हमको शीघ्र ही ज्ञात हुआ कि हम उतने असहाय नहीं थे जितना हम पहले अपने को सोचते थे। नये परिचित लोगों में एक या दो हमारे सच्चे मित्र सिद्ध हुये। उनमें से एक महिला, मारग्रेट लेडसन, को उस समय बाबा के प्रति गम्भीर रुचि उत्पन्न हो गई थी जब हम पहले ओकलैण्ड पहुँचे थे। हम लोग उसके बोर्डिंग हाऊस में ठहराये गये थे। यद्यपि हमने उसको अपनी निजी कठिनाइयों के विषय में कुछ न बताया था, तथापि वह हमारी आवश्यकता को भाँप गई और उसने हमसे प्रस्ताव किया कि जिस समय उसके स्थायी किरायेदार–स्कूल के अध्यापकगण–गरमियों की छुट्टियों में घर चले जायें, उस समय हम लोग उसके घर में गरमी की ऋतु भर मुफ़्त बने रहें। उसके इस प्रस्ताव को हम लोगों ने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

इन दिनों हमारा भोजन अनित्य तथा अति–प्राकृतिक था–बहुधा एक दो कच्ची गाजरें एक एक करके खाना ही हमारा भोजन था। अनिवार्यतः जब हमको ये गाजरें भी खाने को न मिलती थीं, तब हमारी मित्र हमको

अपने साथ भोजन करने के लिये बुला लेती थी। गरमी की ऋतु के अन्तकाल में, जबकि हमें हमारे टिकटों का वापिस होने वाला पैसा चुका दिया गया, हम लोग उसको कुछ पैसे लौटाने में समर्थ हुये क्योंकि उस समय तक वह भी आर्थिक संकट में हो गई थी।

सितम्बर माह में, जब अध्यापक गण अपने कमरों में रहने के लिये आये, हमारी एक अन्य नई मित्र ने हमारी रक्षा की। उसने सैन्टा क्रूज़ पर्वतमाला में बनी अपनी सुन्दर पशुपालन–शाला का प्रयोग करने की आज्ञा हम लोगों को दे दी। हमारी भोजन समस्याओं में हमारी सहायता करने के लिये उसने अपने पन्सारी को स्थायी आज्ञा दे दी कि हमें जिस सामग्री की आवश्यकता हो उसकी वह पूर्ति कर दिया करे। एक माह तक हमने अपने पहाड़ी घर की शान्ति तथा सुन्दरता में आनन्द मनाया। मैलकाम गृह–रक्षक की मकान का कूड़ा साफ़ करने में मदद किया करता था, और मैं घर को व्यवस्थित रखती थी। सप्ताह के अन्तिम दिनों में सामान्यतः हमारी हितकारी मित्र तथा अन्य गृह–अतिथि आ जाते थे। परन्तु पुनः हमको नया निवास स्थान ढूँढ़ना था। जाड़े की ऋतु आ रही थी और उसमें घर बन्द कर देना होगा। हमने आसपास की कुछ पशुपालन शालाओं में गृह–रक्षकों के रूप में नौकरी करने की तलाश की, परन्तु पूछताछ करने पर हमको ज्ञात हुआ कि वे भी जाड़े की ऋतु में बन्द कर दी जायेंगीं।

देहात में घूमते हुये हमको अपनी मित्र की पशुपालन शाला के निकट एक **सराय** मिली थी, इसलिये हमने उसके मालिक के सामने भोजन तथा निवास मिलने के बदले में उसकी नौकरी करने का प्रस्ताव रखा। परन्तु, जाड़े के मौसम में उसको भी किसी सहायता की आवश्यकता न थी। फिर भी, उसने हमको अपनी एक लाल लकड़ी की कोठरी का प्रयोग करने की अनुमति दे दी, जिसको हमने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् हम लोग उसमें चले गये, और हमारे पास इस इच्छा के सिवाय और कोई दूसरा साधन न था कि हम इस अनुभव को एक आनन्दपूर्ण साहसी कार्य बनावें।

हमको कई पड़ोसियों ने कह दिया था कि हम पृथ्वी पर गिरे हुये कोई भी फल उनके पेड़ों के नीचे से स्वतन्त्रतापूर्वक उठा सकते थे, क्योंकि पेड़ों से हाथ द्वारा तोड़े हुये फल ही जहाज़ों द्वारा बाज़ार भेजे जाते हैं। इसलिये आगामी चार महीनों तक हमने शब्दशः 'पृथ्वी के फल' खा कर जीवन बिताया। रोज़ सुबह मैलकाम अपने कन्धे पर बोरा लादे हुये जाता था और दोपहर को सेब, नाशपातियाँ तथा सूखे हुए बेर ले कर आता था। बेर तो चौथाई इंच मोटी मिट्टी की परत में लिपटे होते थे जिसको हटाने के लिये उन्हें कई बार धोना पड़ता था। मैं सोचा करती थी, यह अवस्था अत्यन्त संकेतपूर्ण है ! कभी कभी मैलकाम को कड़े छिलके वाले फल तथा मलागा के अत्यन्त मीठे अँगूर मिल जाते थे, जिनका हम कभी कभी रस निकाल लेते थे। यदि वह रस मदिरा बन जाता था, तो हम उसका तिरस्कार न करते थे !

प्रारम्भ में हम अपने सादा जीवन से बहुत सन्तुष्ट थे। सर्दी के प्रारम्भ की धूप से दिन चमकीले रहते थे, और रातें मखमली तथा शान्त रहती थीं। अपने बँगले के बरामदा से हम लाल लकड़ी के विशाल वृक्षों, सुगन्धित यूकलिप्टस के वृक्षों तथा रंगीन मैडरोन वृक्षों के बीच से, जो अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी छाल गिराते थे, ऊपर रत्न–जड़ित अथवा चन्द्रमा से प्रकाशित आकाश को देखते थे, और आश्चर्यपूर्वक विचार करते थे कि कदाचित् 'कल' बाबा के यहाँ से सन्देश आ जाये कि हम तुरन्त जाकर उनके साथ सम्मिलित होवें, जिसके लिये हम लालायित थे ! हमारे लिये वे उत्सव के दिन होते थे जिनमें हमारे डाक के बक्स में भारतवर्ष के डाक के टिकट तथा डाक की मुहर सहित कोई पत्र मिलता था, चाहे हमारे द्वारा प्रत्याशित बुलावा उसमें न भी आया हो। हमको सन्त फ्रान्सिस के आदर्शों को और अधिक अच्छी तरह समझने की शिक्षा मिली, जिनके अनुयायी कैलिफोर्निया के प्रारम्भिक दिनों में, ईसामसीह के प्रति ऐसा ही प्रेम महसूस करते हुये और एक दिव्य परमेश्वर में श्रद्धा का ऐसा ही जीवन व्यतीत करते हुये, कदाचित् उन अनेक पगडण्डियों पर चले थे जो हमने पकड़ीं।

सन्त फ्रान्सिस के उपाख्यान से हमको बहुत पहले प्रेम हो गया था, परन्तु अब हमको इस विषय पर लोस गैटोस सार्वजनिक पुस्तकालय में जो साहित्य मिलता था उसको हम बारम्बार पढ़ते थे। सन्त फ्रान्सिस के प्रारम्भिक अनुयायियों के समान हमने आपस में तय कर लिया था कि हम किसी से भी किसी वस्तु की याचना न करेंगे, वरन् जो कुछ भी 'नेक ईश्वर' भेजेगा उसी को हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करेंगे।

कभी कभी हमारा कोई मित्र अपने पत्र में पाँच डालर की हुण्डी रख कर भेज देता था। तब हम शौच का काग़ज (Toilet paper), साबुन और दियासलाई जैसी विलासिता की वस्तुयें ख़रीदते थे, और कभी कभी झोला भर आलू, हमारा पुराना विश्वासनीय सहारा गाजर, तथा मक्खन की जगह इस्तेमाल होने वाले पदार्थ ख़रीदते थे, क्योंकि हमें ज्ञात हुआ कि केवल मीठे फलों का आहार करते करते कुछ समय पश्चात् हम ऊब गये। इसका कारण यह था कि उसमें बेर अधिकांश रूप में रहते थे ! हम बेर कुचल कर खाते थे, बेर उबाल कर खाते थे, बेर भून कर खाते थे, कच्चे बेर खाते थे–वह भी किसी ऐसे व्यक्ति के लिये अत्यधिक बेर जिसने उन्हें अपने एक–आहार के लिये भी कभी न चुना होता ! जब तक सर्दी का मौसम और उसके साथ वर्षा न आई, तब तक हमने अपने प्राचीन जीवन में बहुत अच्छी तरह निर्वाह किया। निश्चय ही, बलूत के पेड़ का विष हमारे ऊपर भीषण प्रहार करता था और कुछ कुछ हमारी आन्तरिक शान्ति में बाधा डालता था, और उसने स्नान को एक साहसिक कार्य बना दिया था!

जाड़े की ऋतु के साथ कई समस्यायें आ पहुँचीं–नलों का पानी जमा हुआ, एक लम्बे काल से चली आ रही शौच करने की रीति के प्रति उत्साह की कमी होना, हाथ पैरों बदन में बेवाइयाँ (Chilblains), जो हमको आग के समीप बैठने पर पीड़ा से पागल बना देती थीं और यदि हम आग के निकट न बैठते थे तो ठण्ढक से प्रायः हमारी दम निकल जाती थी। जापानी शिल्पकारों द्वारा बनाई गई कोठरी लगभग वैसी ही कलापूर्ण तथा जाड़े में अनुपयुक्त थी जैसे जापान में उनके दफ़्ती के घर प्रसिद्ध हैं। लट्ठों के बीच की बड़ी बड़ी साँसों से सर्दी और वर्षा दोनों भीतर चली आती थीं, और जब मूसलाधार वर्षा होती थी, और हमारे विशाल लकड़ी के ठोस अगले द्वार को बन्द करना पड़ता था, तो हम प्रायः पूर्ण अन्धकार में हो जाते थे। छत के पास की छोटी कब्ज़ेदार खिड़कियों से केवल बहुत हल्का प्रकाश आता था।

फिर, ठीक इसी समय के लगभग मैं बीमार पड़ गई और हफ़्तों तक एक ठण्ढे, नम, और अँधेरे कमरे में पड़ी रही, जबकि बाहर मूसलाधार वर्षा निरन्तर वेग धारण किये रहती थी। मैलकाम को, जो न्यूयार्क नगर के एक घर में पैदा हुआ तथा पला था और जहाँ उसकी सेवा के लिये सदैव नौकर तथा परिवार के लोग रहते थे, अब भोजन पकाना पड़ता था, घर की सफ़ाई करनी पड़ती थी, हमारे कपड़े धोना पड़ते थे (स्नान करने की नाँद की बगल से झुक कर धोने के भद्दे ढँग से), और हाथ से काट कर पेड़ गिराने तथा लकड़ी काटने के श्रमपूर्ण कार्य द्वारा हमारे लिये ईंधन की लकड़ी जुटानी पड़ती थी। वह इस प्रकार के कार्य से अपरिचित था परन्तु यह सब करने के लिये मज़बूर था, इसलिये वह धीरे धीरे कार्य करता था और बहुधा डेढ़ या दो बजे रात तक न सोता था। छः बजे सुबह वह फिर जग जाता था।

इस विशेष समय की कुछ सुखद बातें हमारे पड़ोसियों के कृपापूर्ण कार्य थे। स्पष्टतः वे हमारी आर्थिक स्थिति को भाँप गये थे, क्योंकि कभी कभी कोई हमारा दरवाज़ा खटखटाता था, और कोई मिलने वाला भोजन की टोकरी लिये हुये आ जाता था—बीमार महिला के लिये जौ का स्वादिष्ट शोरबा, सलाद, अंगूर का मुरब्बा और गरम बिस्कुट। हमको पहले कभी भी भोजन इतना स्वादिष्ट न लगा था !

हम जीवन को उसी की शर्तों के अनुसार व्यतीत करने के लिये राज़ी थे, परन्तु कुछ महीनों के पश्चात् मैंने अनुभव किया कि हमारा असन्तुलित भोजन मेरे स्वास्थ्य का नाश कर रहा था। इसलिये मुझको शान्ति प्राप्त हुई जब हमें बाबा का सन्देश मिला कि हम लोग हालीवुड चले जायें। वहाँ बाबा का एक भारतीय शिष्य रुस्तम सिनेमा—जगत के कुछ लोगों से सम्पर्क करने के लिये जल्दी ही आने वाला था, और मैलकाम के लिये आज्ञा आई थी कि वह इस कार्य में रुस्तम की सहायता करे।

हमारे सामने यह समस्या थी कि हम लोग बाबा की आज्ञा का पालन किस प्रकार करें, क्योंकि हमारे पास अब भी शब्दशः एक भी पाई न थी। हमारी कुछ किताबें चौदह सौ डालर के मूल्य की न्यूयार्क में रक्खी थीं। उनको अब हम एक पुस्तक विक्रेता को सौ डालर में बेचने के लिये सहमत हो गये। जिस समय उसकी चेक पहुँची उसी समय हमने दक्षिण के लिये प्रस्थान कर दिया। मेरी निर्बलता की हालत के कारण मैं केवल ओजाई तक जा सकी, जहाँ मैं अपने मित्रों के साथ एक माह तक ठहरी। वहाँ उस सुन्दर घाटी की धूप तथा चंगा करने वाली शान्ति में मेरी शक्ति लौट आई।

हालीवुड जाने के पूर्व मेरे मन में यह विचार आया कि मैं नेकटाइयाँ तैयार करूँ और मैलकाम उन्हें बेचे। इस प्रकार के धन्धे में मुझे दोहरा लाभ दिखाई पड़ता था। पहली बात यह थी कि इसे प्रारम्भ करने के लिये किसी पूँजी की आवश्यकता न थी, और दूसरे, इसको करते हुए हम बाबा के आदेश के अनुसार इधर—उधर जाने के लिये स्वतन्त्र थे। हालीवुड पर्वतमाला में दो सस्ती कोठरियाँ सुन्दर दृश्य सहित पा जाने के पश्चात् हमने कुछ गज़ कपड़ा खरीदा और मैंने दो दर्जन नेकटाइयाँ तैयार करना प्रारम्भ कर दिया। उनको अपने छोटे बक्स में भर कर मैलकाम उनको दफ़्तरों में बेचने के लिये साहसपूर्वक चल दिया। उसके लिये यह दूसरा नया अनुभव था। अपनी प्रसिद्ध पुस्तकों की दूकान में किताबें बेचना, दफ़्तरों में घूम कर नेकटाइयाँ बेचने से बिल्कुल भिन्न बात थी। उसको ज़ोर देकर मना किया जाता था; गालियाँ दी जाती थीं, और गिरफ्तार करने तक की धमकी दी जाती थी ! पहले दिन पाँच बजे शाम तक उसकी एक भी नेकटाई न बिकी, यद्यपि उसने कई दफ़्तरों में जाकर उनका प्रचार किया था और कई दफ़्तरों से वह बाहर निकाल दिया गया था। वह हालीवुड बूलेवार्ड तथा वाइन स्ट्रीट के कोने में खड़ा हो गया, और सहायता के लिये मौन प्रार्थना की। उसको ज्ञात था कि नेकटाइयाँ बनाने में मेरी थोड़ी शक्ति पर कितना अधिक बोझ पड़ा था, और उसको यह सहन नहीं हो सकता था कि वह एक भी टाई बेचे बग़ैर उस दिन शाम को घर लौटता। तब उसने पुनः प्रयत्न किया, और साढ़े छः बजे वह पाँच नेकटाइयों की बिक्री के दाम ढाई डालर लिये हुये घर आया। ऐसा था

प्रारम्भ हमारे इस उद्योग का जिससे हमको कुछ वर्षों के बाद इतनी वार्षिक आमदनी हो जाती थी जो हमारी सब आवश्यकताओं के लिये पूर्णतया पर्याप्त होती थी।

उन प्रारम्भिक सप्ताहों में, जबकि तिरस्कृत होने और दफ़्तरों से निकाले जाने का अनुभव नया था, मैलकाम ने कहा कि "केवल सद्गुरु ही नेकटाइयाँ बेचने के उद्योग को एक आध्यात्मिक साधना बना सकता था!"—क्योंकि उसने स्वीकार किया कि फेरी लगाने वाले विक्रेता का धन्धा करने से बढ़ कर उसको और कोई उपाय ज्ञात न था जिससे उसका अहंकार नष्ट हो सकता था।

मैंने अपने कुछ अनुभव न्यूनाधिक विस्तार के साथ यह दिखाने के लिये वर्णन किये हैं कि, बाबा के समान किसी सद्गुरु से भेंट हो जाने के पश्चात्, जीवन की शक्तियाँ किस प्रकार मनुष्य को हर विचारणीय रीति से मृदु करने तथा उसको दृढ़ बनाने का उपाय करती हैं। यद्यपि हमारी बाहरी परिस्थितियाँ प्रारम्भिक भारतीय शिष्यों की परिस्थितियों से बहुत भिन्न थीं, तथापि दोनों सूरतों में एक ही मूलभूत सिद्धान्त कार्य करते हुये प्रतीत होते हैं। हमारी श्रद्धा को कसौटी पर रक्खा गया और उसकी कड़ी परीक्षा की गई; स्पष्टतः कुचलने वाली कठिनाइयों के सामने हमारी युक्ति को प्रकट होने का अवसर प्रदान किया गया; हमसे लोच और सहनशीलता की माँग की गई; हमें पुनः पुनः निराशा के ऊपर विजय प्राप्त करनी पड़ी, विशेषतः उस समय जबकि न्यूयार्क के हमारे कुछ मित्रों को—जो बाबा से हम लोगों के द्वारा मिले थे—बाबा तथा उनकी अंग्रेज़ भक्त—मण्डली के साथ सम्मिलित होने के लिये कई बार यूरोप बुलाया गया था ! इन निमन्त्रणों पर बाबा से जाकर मिलने के उनके आनन्द पर हम असन्तुष्ट न होते थे, परन्तु साथ साथ यह कहना भी हमारा झूठा बहाना होगा कि हम लोग भी बाबा के समीप जाने के लिये लालायित न थे। अन्ततः, जब वे सब हम लोगों को छोड़ कर जहाज़ द्वारा भारतवर्ष के लिये चल दिये, तब मेरा दिल लगभग टूट गया ! बाबा की उपस्थिति में होने की यह लालसा केवल तभी ठीक तरह से समझी जा सकती है जब मनुष्य उस उत्कृष्ट आनन्द का अनुभव करता हो जो बाबा की उपस्थिति प्रदान करती है।

जब बाबा ने हमको 1932 ई. में हालीवुड में छोड़ा, तो वह तीन दिन होनोलूलू में ठहरे, पाँच दिन चीन में ठहरे, और भारतवर्ष को छूते हुये पुनः यूरोप आ गये, जहाँ वह 28 जौलाई को पहुँच गये। वहाँ उनका एक वर्ष के भीतर यह तीसरा आगमन था। मारसेलीज़ में उनको अंग्रेज़ भक्त—मण्डली के कुछ लोग मिल गये। तत्पश्चात् वे लोग बाबा के साथ सैन्टा मारघेरीटा गये, और वहाँ उन्होंने सूर्य से प्रकाशित इटैलियन आकाशमण्डल के नीचे नीले जल में स्नान करते हुये, धूप में सुस्त पड़े हुये, और अँगूर के सुगन्धित बागों तथा वनों में घूमते हुये, एक आनन्दपूर्ण छुट्टी का दिन मनाया। सदैव की भाँति, बाबा ने अपने पश्चिमी शिष्यों के हृदय में गहरा आन्तरिक कार्य करने के लिये इस चिन्तारहित छुट्टी के दिन से लाभ उठाया।

इटली में बाबा के साथ ये दिन विशेष रूप से आनन्दपूर्ण थे। जिस समय भक्त—मण्डली नाश्ता करने से पहले सुबह पानी में तैरने के लिये जाती थी, उस समय वे लोग सफेद कपड़े पहने हुये बाबा को अपने कमरे के छज्जे से उन लोगों को देखते हुये पाते थे। रात को वे लोग बाबा के समीप बैठकर प्रायः रिकार्ड सुनते थे। बाबा को भारतीय और फ़ारसी गाने प्रिय थे, जिनका आध्यात्मिक अर्थ वह उन लोगों को समझाते थे। उनको स्पेन के नृत्य के रिकार्ड और पाल रोबसन के हबशी आध्यात्मिकता के रिकार्ड भी प्रिय थे। कभी कभी छत पर वे पहेलियाँ हल करते थे अथवा नाटकीय मनोरञ्जन करते थे। बाबा 'थामस' नाम से अंग्रेज़ भक्त मण्डली की मारग्रेट क्रैस्क से नृत्य सीखते थे। इस प्रकार बाबा खेल के साथी, मित्र, पुत्र तथा पिता के रूपों में, असंख्य रीतियों से, उनके जीवनों में प्रवेश करते थे। सचमुच, बाबा उनके साथ बाहरी रूप से खेलते हुये उनके अन्तर में परिश्रम पूर्वक कार्य करते थे। छुट्टी के दिन की शान्ति स्वभाव, ईर्ष्याओं अथवा अन्य कुभावों के आकस्मिक संघर्षों से बीच बीच में भंग हो जाती थी। इस प्रकार बाबा द्वारा कई शिक्षायें चुपचाप तथा सरलतापूर्वक दी गई; अनेक 'छायायें' चेतना के प्रकाश में लाई गई।

इटली में उनके आगमन के दूसरे दिन बाबा ने कहा कि उनको असीसी में महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक कार्य करना था। सन्त फ्रान्सिस से सम्बन्धित एक विशेष गुफ़ा ढूँढ़नी होगी, और उसमें बाबा चौबीस घन्टे का उपवास करेंगे। अंग्रेज़ भक्त–मण्डली के हरबर्ट को इसका प्रबन्ध करने की आज्ञा दी गई। बाबा ने उसको आदेश दिया कि वह ऐसी गुफ़ा ढूँढ़े जिसका प्रयोग सन्त फ्रान्सिस ने किया हो, परन्तु जिस तक भ्रमण करने वाले लोगों की पहुँच न रही हो। इस आदेश के अनुसार हरबर्ट को काफी खोज करने की आवश्यकता हो गई। उसको मालूम हुआ कि सन्त फ्रान्सिस और उनके साथियों ने अपने ध्यान करने के लिये सुबासिओ पर्वत का ढाल सबसे अधिक पसन्द किया था। निःसन्देह प्रसिद्ध कारसेरी गुफा को घेर कर अब उसको मन्दिर के रूप में परिणत कर दिया गया था, परन्तु उसके अतिरिक्त और गुफायें थीं जो पर्यटकों के चालू मार्ग से अलग थीं और जिनमें सन्त फ्रान्सिस ने निश्चय ही सात सौ वर्ष पूर्व ध्यान किया था।

ऐसे स्थान की खोज करते हुये, हरबर्ट को एक टूटा–फूटा स्थान मिला–जो पत्थर की एक दीवार के ऊपर आगे को झुकी हुई चट्टान की गुफ़ा थी, परन्तु उसकी छत की लकड़ी तथा खपरे (Tiles) बहुत समय पहले गिर चुके थे। ऊपर, एक वृक्ष की ऐंठी हुई जड़ें चट्टान से चिपटी हुई थीं, परन्तु वर्षा से बचने के लिये कोई आड़ न थी। उससे नीचे के धरातल पर उगे हुये ऊँचे ऊँचे पेड़ उसको पास से निकलने वाले लोगों से छिपाये रखते थे। वह गन्दी थी, और टूटे हुये खपरों (Tiles), नम कूड़ा–करकट तथा पत्तियों से भरी हुई थी। हरबर्ट को उसे खोदना पड़ा, उसके दरवाज़े को छिपाने के लिये डालियाँ काट कर गिरानी पड़ीं, और अन्त में पहाड़ी के नीचे तक एक नया रास्ता बनाना पड़ा जिससे कोई भी बाबा को उसमें घुसते हुये न देख सके।

बाबा ने उसको आदेश दिया था कि वह उस चुनी हुई गुफा में प्रतिदिन चार घन्टा ध्यान किया करे, आंशिक उपवास किया करे, और बाबा के वहाँ पहुँचने के एक दिन पहले वह आठ घन्टे ध्यान करे। उसको

महसूस हुआ कि वह गुफा आदर्श गुफा न थी, परन्तु इससे अच्छी गुफा उसको नहीं मिल सकती थी।

5 अगस्त को मोटरकार द्वारा असीसी के लिए प्रस्थान करने के पूर्व बाबा ने मण्डली को अपने साथ कमरे में मौन बैठने के लिए बुलाया। उन्हें आधी रात तक प्रस्थान नहीं करना था। वह एक घन्टे तक पड़े रहे। वह सो नहीं रहे थे, क्योंकि उनके हाथ हवा में लगातार संकेत तथा चेष्टायें करते थे, जैसा वे अपने आध्यात्मिक एजेन्टों से आन्तरिक संवाद करते समय किया करते हैं जो (एजेण्ट) साधारण आँख से दृष्टिगोचर नहीं होते। कमरे में गहरी शान्ति छाई हुई थी। बाबा पहले ही बता चुके थे कि उनके असीसी में कार्य करने से पूर्व दो बातों में से एक बात घटित होगी : या तो आँधी आवेगी अथवा वह बीमार पड़ेंगे। उन्होंने टोली के एक जन को अपने और निकट बुलाया, क्योंकि उनके महान पीड़ा में होने के लक्षण बढ़ गये थे। उनकी आकस्मिक बीमारी इतनी कठिन थी कि वह निश्चित समय पर प्रस्थान करने में असमर्थ थे। दो घन्टे बाद, ढाई बजे सुबह, इस दल ने प्रस्थान किया। इस लम्बी मोटरकार यात्रा के दौरान में बाबा की पीड़ा कम हो गई, परन्तु ला स्पेज़िया में क्वेन्टिड टाड बीमार हो गया और पिसा में काका नाम का एक भारतीय शिष्य बीमार पड़ गया। स्पष्टतः वे दोनों बाबा की बीमारी को बँटा रहे थे।

इसी बीच में असीसी में हरबर्ट भी अपने को बीमार तथा खिन्नचित्त महसूस करता था। वह आश्चर्य तथा प्रतीक्षा करता हुआ अपनी होटल की खिड़की पर खड़ा हुआ था। अन्त में बाबा तीन घन्टे देर से पहुँचे। जब स्नान तथा भोजन करके मण्डली के लोग ताज़े हो गये, तो बाबा ने उनका कार्यक्रम तैयार किया। वे लोग समय बचाने के लिये पहाड़ी के ऊपर कुछ दूर तक मोटर द्वारा गये। फिर हरबर्ट उन्हें गुप्त मार्ग द्वारा गुफा तक ले गया जहाँ वे शाम को साढ़े सात बजे पहुँचे। बाबा ने उन लोगों को बता दिया था कि वह उपवास करने के पूरे समय गुफा में रहेंगे और आदेश दिया था कि उस समय कोई भी उनके पास न जावे और न गुफा के भीतर देखे। शिष्य लोग किसी को भी गुफा के निकट न आने दें चाहे उन पर जो बीते। यदि बाबा पीने के लिये कुछ चाहेंगे तो वह संकेत करेंगे, और

वे लोग वह वस्तु ठीक द्वार पर रख देवें। चाँजी और हरबर्ट को ड्यूटी दी गई थी कि वे बाहर बैठ कर रात भर तथा 9 बजे सुबह तक गुफा का पहरा दें। उसके बाद काका और क्वेन्टिन पहरा देंगे। साढ़े चार बजे शाम को चाँजी तथा हरबर्ट पुनः आ जायेंगे, और साढ़े पाँच बजे शाम को बाबा का उपवास तथा एकान्तवास समाप्त होने पर वे सब बाबा के साथ भोजन करेंगे।

इसी के अनुसार काका और क्वेन्टिन आठ बजकर चालीस मिनट पर दूसरों को छोड़ कर होटल को वापिस चले गये। चाँजी और हरबर्ट गुफा से थोड़ी दूर पर बैठे हुये रात भर ठण्ढ में काँपते रहे। चाँजी ने बयान किया कि इसी प्रकार वर्षों पहले पूर्वी शिष्यों ने भारतवर्ष के पंचगनी स्थान में गुफा का पहरा दिया था। उनके मन में अजीब विचार तथा प्रश्न उठते थे, वे लोग कितना कम "बाबा के कार्य की प्रकृति तथा विस्तार को सचमुच समझते थे। बाबा का शरीर गुफा के भीतर कुछ फीट की दूरी पर था परन्तु वह कहाँ थे ?" उनकी पलकें भारी नींद से दबी जाती थीं। क्या वे "इस थोड़े से समय तक भी पहरा न दे सकते थे ?" वे आश्चर्य करते थे कि क्या सन्त फ्रान्सिस इस रात्रि जागरण में भाग ले रहे थे; निःसन्देह सदियों पहले किये गये उनके ध्यान व चिन्तनों ने इस पवित्र स्थान को तैयार कर दिया था। वे लोग बहुत निद्राग्रस्त तथा सर्दी से परेशान थे। आधी रात के लगभग उन्होंने स्टोव के ऊपर एक प्याला चाय बनाई और उसको गुफा के बराबर रख दिया जिससे आवश्यकता होने पर बाबा उसको उठा लें। धीरे धीरे वृक्षों से छन छन कर प्रकाश आने लगा। नौ बजे प्रातः अन्य दो पहरे वालों ने आकर उनका स्थान लिया और चाँजी तथा हरबर्ट सोने के लिये होटल चले गये।

साढ़े चार बजे शाम को वे अपने साथ भोजन लेकर वापिस आये। जैसे ही वे पहुँचे वैसे ही बाबा गुफा के बाहर निकल आये, क्योंकि उनका कार्य समय से पहले पूरा हो गया था। साढ़े पाँच बजे उन सबने ज़मीन पर लकड़ी के एक पटिया के चारों ओर बैठकर बहुत आनन्द के साथ भोजन किया। भोजन समाप्त हो जाने के पश्चात् बाबा ने उनको गुफ़ा के भीतर बुलाया और कुछ भविष्य की योजनायें समझाई। वे गुफा के भीतर छाई हुई गम्भीरता के वातावरण से भय महसूस करते थे।

यद्यपि बाबा अपना कार्य पूरा हो जाने से आनन्दित थे, तथापि उनको बहुत पीड़ा थी। पहाड़ी से उतरते समय शिष्यों को उन्हें सहारा देना पड़ा। दोनों बगल एक एक शिष्य का सहारा लिये हुये, तीनों जन ढालू रास्ते पर एक साथ दौड़ते हुये नीचे उतरते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों पृथ्वी पर झटका तथा दवाब देकर चलने से बाबा की चेतना को उनके स्थूल शरीर में लौटने में सहायता मिलती थी। वह कुछ कुछ चौंधियाये से दिखाई पड़ते थे, जैसे उनके सिर में महान पीड़ा हो। उनको बहुधा रुक कर विश्राम लेना पड़ा। वे सन्त फ्रान्सिस के उपाख्यान से सम्बन्धित अधिकांश स्थानों से होकर गुज़रे। एक सड़क के किनारे बाबा ने एक विशाल शिला की ओर इशारा करके कहा कि एक समय सन्त फ्रान्सिस उसके ऊपर बैठकर रात भर ईसामसीह के प्रेम में रोये थे।

दिन को गुफ़ा का पहरा देने वाले जनों में से एक ने वर्णन किया है कि उन्होंने पहले सैन फ्रान्सिस्को की सुरंग में ईसाई–धर्म सम्मेलन में भाग लेकर अपने दिन का प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् उन्होंने अपने तस्मों वाले झोले कन्धों में डाले और गुफ़ा की ओर पहाड़ी पर चढ़ना प्रारम्भ किया। वन में पक्षियों के द्वारा जीवन का संचार था, जिनका गायन प्रायः कानों को बहरा करता था, मानो वे सन्त फ्रान्सिस की स्तुति कर रहे हों जो उन पक्षियों से बहुत प्रेम करते थे। दोपहर के समय, जब वे गुफ़ा के निकट बैठे थे, उनमें से एक ने गुफ़ा के भीतर से आते हुये नाद सुने, और बाबा की आज्ञा को भूल कर कि कोई गुफ़ा के भीतर न देखे उसने दरवाज़े में लगी हुई पौधों की पत्तियों के बीच से होकर गुफ़ा के भीतर देखा कि बाबा सूर्य की ओर मुख किए हुए अपनी आखें बन्द करके खड़े थे और विचित्र गूँजते से शब्द कर रहे थे।

इस 'आन्तरिक मीटिंग' के विषय में बाबा ने अपने जनों को कई बातें बताई थीं। उनमें से एक बात यह बताई थी कि उस रात को चेतना की छठवीं और सातवीं भूमिकाओं के सभी सन्त तथा सद्‌गुरु (Masters) बाबा की मीटिंग में आये थे और आगामी दो हज़ार वर्षों के लिये विश्व के आध्यात्मिक भाग्य का नक़शा बनाया गया था।

ऐसी बात कैसे सम्भव हो सकती है, यह तभी समझ में आ सकता है जब हम स्वीकार करें कि चेतना की उच्चतर अवस्थायें स्थूल शरीर की सीमाओं के अधीन नहीं होतीं। सन्त अथवा सद्गुरु जानता है कि सृजित विश्व मन की मायावी उपज है, और इसलिये वह मन के द्वारा लुप्त हो सकता है। वह यह भी जानता है कि स्थूल शरीर मनुष्य के शरीरों में से केवल **एक** शरीर है, जो अत्यन्त घनापन रखने वाला और अत्यन्त सीमित करने वाला है, यद्यपि वह **ईश्वर का साक्षात्कार** प्राप्त करने के लिए आवश्यक है; क्योंकि केवल स्थूल शरीर में ही हमको ईश्वर से अपनी एकता का ज्ञान हो सकता है। तथापि यह शरीर तीव्र आवागमन के लिये उपयुक्त नहीं होता, जिसकी आवश्यकता सन्तों और सद्गुरुओं को अपने कार्य के लिये होती है। बहुधा होने वाले अपने 'आन्तरिक सम्मेलनों' के लिये वे कारण शरीर अथवा आध्यात्मिक शरीर का उपयोग करते हैं, और थोड़े समय के लिये स्थूल शरीर को छोड़ देते हैं, जैसा बाबा ने हमारे साथ बोस्टन की यात्रा करने के दौरान में किया था। आर.ए. निकोलसन द्वारा लिखी गई पुस्तक "इस्लाम के रहस्यवादी" में इन बातों का समर्थन मिलता है, जिसमें उसने मुसलमान रहस्यवादियों—अर्थात् सूफ़ियों—में प्रचलित इसी प्रकार की आध्यात्मिक कार्यविधि का संकेत किया है :

"सन्तों की एक अदृश्य महन्तशाही है, जिसके ऊपर विश्व की व्यवस्था निर्भर समझी जाती है। उसका सर्वोच्च प्रधान कुतुब (हुब) कहलाता है। वह अपने काल का सबसे प्रख्यात सूफ़ी होता हैं और वह इस भव्य पार्लियामेन्ट की नियमित रूप से होने वाली मीटिगों की अध्यक्षता करता है, जिसके सदस्यों के उपस्थित होने में देश और काल की मिथ्या असुविधायें बाधक नहीं होतीं, वरन् वे, समुद्रों और पर्वतों को इतनी सरलता से पार करते हुए, जैसे साधारण मनुष्य सड़क को पार करते हैं, एक निमेष में दुनियाँ के सब भागों से एक साथ आ जाते हैं। ....कुतुब आध्यात्मिक जगत का केन्द्र बन जाता है, जिससे व्यक्तिगत मानव प्राणियों द्वारा स्पर्श किया गया प्रत्येक स्थल तथा प्रत्येक सीमा उसके 'स्टेशन' से बराबर दूरी पर होते हैं, चाहे वे निकट हों अथवा दूर हों; चूँकि सब 'स्टेशन' उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं—और उससे सम्बन्धित रहते हुये चक्कर लगाते हैं—इसलिये निकटता अथवा दूरी में कोई अन्तर नहीं होता। इस सर्वोच्च

स्थिति को प्राप्त हुये पुरुष के लिये ज्ञान—ज्ञानमार्ग—और 'निर्वाण' उसके महासागर की सरिताओं के समान होते हैं, जिनके द्वारा वह जिसे चाहे उसे पुनः परिपूर्ण कर देता है। उसे दूसरों को ईश्वर तक पहुँचाने का अधिकार प्राप्त होता है, और ऐसा करने के लिये वह ख़ुद अपने सिवाय और किसी से भी अनुमति नहीं माँगता।"

सूक्ष्म शरीर को अन्तरिक्ष में चेतनतया निकालने के द्वारा इच्छानुसार स्थूल शरीर को छोड़ने का ख़ुद देखा हुआ उदाहरण मेरा वह अनुभव है जो मुझको उसी रात को हुआ था जिसमें बाबा ने असीसी में गुफ़ा के भीतर 'मीटिंग' की थी। इस मंगल दिवस की यात्रा के कुछ माह पश्चात् मुझको चाँजी के एक सन्देश द्वारा गुफ़ा में बाबा की मीटिंग के विषय में ज्ञात हुआ, और अपनी डायरी में तारीख़ का मिलान करने पर मुझे मालूम हुआ कि उसी समय मैंने ख़ुद अन्तरिक्ष में प्राथमिक पर्यटन किया था। पूर्ण चेतनतया, मैं प्रकाश की जैसी तीव्र गति से प्रशान्त महासागर को पार कर गई, और फिर एशिया तथा यूरोप के महाद्वीपों को पार करती हुई अन्ततः इटली के एक होटल में पहुँची—यद्यपि मुझको बाह्य रूप से ज्ञात न था कि उस समय बाबा वहाँ थे। मेरा आन्तरिक आदेश केवल बाबा के पास जाने के लिये था। दीवारों और छतों को फाड़ कर पार करती हुई मैं सीधे उन कमरों में गई जिन्हें मैं किसी प्रकार से जानती थी कि वे बाबा के थे। कमरे में भारतीय सामान की पोटलियाँ इधर उधर पड़ी थीं जिनसे मैं परिचित थी, परन्तु बाबा वहाँ न थे। तब एक अन्य आन्तरिक प्रेरणा के पालन में मैंने उस होटल से प्रस्थान किया और आकाश (Ether) से होकर मैं एक सुन्दर ग्रामीण प्रदेश में पहुँची जहाँ मैं सहज बुद्धि से जानती थी कि बाबा थे। इस क्षण पर मैं अचेत होकर गहरी निद्रा में निमग्न हो गई। परन्तु प्रातः जागने पर मुझको उस अनुभव का स्पष्ट स्मरण था और मैं बाबा की उपस्थिति में रहने का महान आनन्द महसूस करती थी।

अगस्त के अंत में बाबा ने अपने भारतीय शिष्यों के साथ जहाज़ द्वारा मिश्र के लिये प्रस्थान किया जहाँ उन्होंने पाँच दिन ठहर कर पिरामिडों (शुण्डाकार विशाल स्तम्भों) को और मिश्र के प्राथमिक ईसाइयों के कैरो में बने हुये गिरजाघर को देखा। गिरजाघर में बाबा को विशेष दिलचस्पी थी,

क्योंकि उसमें एक गुफ़ा थी। बाबा ने मण्डली को बताया कि इस गुफ़ा में जोसेफ और मेरी शिशु ईसामसीह को लिये हुये हेरोड से भागकर ठहरे थे। उनको गिरजाघर के रक्षक से कठिनाई का सामना करना पड़ा, जिसने पहले उनके लिये गुफ़ा खोलने से इनकार कर दिया, परन्तु चूँकि बाबा के मिश्र जाने का एकमात्र प्रयोजन वह गुफा देखना था, इसलिये बाबा आग्रह करते ही रहे जब तक कि वह अंत में गुफा खोलने को तैयार न हो गया।

सन् 1932 व 1933 ई. के जाड़े की ऋतु में बाबा ने अपने कुछ पूर्वी तथा पश्चिमी शिष्यों को जरमनी, आस्ट्रिया, इटली और हँगेरी की यात्रा करने के लिये भेजा, जबकि अन्य शिष्य चीन और अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड भेजे गये थे। स्पष्टतः वह दुनियाँ भर में नवीन 'तार' बिछा रहे थे–अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति की नई लाइनें डाल रहे थे। उन्होंने खुद 21 नवम्बर 1932 ई. को, यूरोप की चौथी बार यात्रा करने के लिये, जहाज़ द्वारा प्रस्थान किया।

इस समुद्री यात्रा पर प्रस्थान करने के कुछ समय पश्चात् बाबा ने भारतवर्ष के लिये नीचे लिखा हुआ सन्देश भेजाः–

"जब तक भारतवर्ष की आध्यात्मिक शक्ति तथा माहात्म्य स्थिर हैं तब तक इसका कोई महत्त्व नहीं है कि उसको कितना भौतिक कष्ट सहना पड़ता है। फिर भी, उसके मौजूदा कष्ट सहने के फलस्वरूप उसको स्वतन्त्रता तथा महान आनन्द प्राप्त होंगे, क्योंकि दासता और दुर्गति का अनुभव करने के पश्चात् ही स्वतन्त्रता तथा सुख के सच्चे माहात्म्य का वास्तविक मूल्य समझा जा सकता है।"

"तथापि, इस कष्ट को कम करने के लिये मित्र और शत्रु दोनों के प्रति समान रूप से प्रेम होना आवश्यक है। सबके प्रति सद्भाव, धैर्य तथा क्षमा होना चाहिये। और, भारतवर्ष को दूसरों के दोषों से वास्ता रखने की अपेक्षा अपनी ही त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रमुख समुदायों के बीच विद्यमान घृणा–उनकी तुच्छ परन्तु विनाशकारी कलहें–

समाप्त होना चाहिये। तभी भारतवर्ष की स्वतन्त्रता तथा उसका सुख सुनिश्चित हो सकता है।

"सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही अनुभव करेगा कि न तो धर्म–सम्प्रदाय, पंथ, मत, धार्मिक संस्कार, और न ही भौतिक समृद्धि तथा भौतिक सुख मनुष्य को कभी भी वह आनन्द प्रदान करेंगे जिसके लिये वह लालायित है। वह आनन्द तो उसको केवल स्वार्थरहित प्रेम और विश्वव्यापी भाईचारे से प्राप्त हो सकता है।"

2 दिसम्बर 1932 ई. को बाबा दूसरी बार वेनिस पहुँचे, और मिलन तथा पेरिस की तूफ़ानी यात्रा करते हुये 6 दिसम्बर को लन्दन पहुँच गये। लन्दन में उन्होंने सदैव की भाँति बहुत लोगों से मुलाक़ातें कीं। 14 दिसम्बर को उन्होंने अंग्रेज़ भक्त–मण्डली के कुछ जनों के साथ स्विट्ज़रलैण्ड के लिये प्रस्थान किया और 17 दिसम्बर को उन्होंने पुनः जेनेवा से समुद्री जहाज़ द्वारा मिश्र के लिये प्रस्थान किया जहाँ वह 3 जनवरी 1933 ई. तक रहे। इस चौथी पश्चिमी यात्रा में बाबा केवल एक माह ठहरे थे, परन्तु वह कई जगहों में गये और अनेक नये लोगों से सम्पर्क किया।

भारतवर्ष लौटते समय वह लंका में अठारह दिन ठहरे। उस दौरान में उन्होंने एक बुद्ध–मन्दिर की कोठरी में चौबीस घन्टे का एकान्तवास किया। बाबा के जनों को मन्दिर के नवसिखुवा रक्षक से प्रारम्भ में कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा, जो उन लोगों को मन्दिर में न घुसने देता था। फिर भी वे लोग बाबा के पथ प्रदर्शन में मन्दिर से मिले हुये एक आँगन में उतर गये। उसी क्षण एक दरवाज़ा खुला और एक वृद्ध पुरुष उससे बाहर निकला। वह कम से कम सौ वर्ष की आयु का प्रतीत होता था। उसने स्पष्टतः बाबा को तुरन्त पहिचान लिया, और बाबा से विचित्र सांकेतिक भाषा में सम्वाद किया, जिस भाषा का प्रयोग बाबा अपने आध्यात्मिक एजेन्टों के साथ करते हैं। कुछ ही क्षणों में उस अनिच्छुक नवसिखुवा को उस पुरुष ने आज्ञा दी कि वह बाबा को मन्दिर की एक

कोठरी दिखा दे। उसमें बाबा चौबीस घन्टे तक निर्विघ्न रहे। 6 फ़र्वरी 1933 ई. को वह नासिक (भारतवर्ष) पहुँच गये।

मार्च 1933 ई. के अन्तिम सप्ताह में नौ महिलाओं की एक टोली ने—जिनमें से तीन अमरीका की निवासी थीं—तथा एक पुरुष ने जेनेवा से भारतवर्ष के लिये समुद्री जहाज़ द्वारा प्रस्थान किया। बाबा ने उनके मनों में यह बात अंकित की थी कि वे लोग छः माह बाबा के साथ रहेंगे परन्तु अचानक बाबा के कार्यक्रम में परिवर्तन हो गया और तीन सप्ताह के पश्चात् उन लोगों को यूरोप लौटना पड़ा।

फिर भी, इस टोली को बाबा से अधिक समय के लिये अलग नहीं रहना पड़ा, क्योंकि उनके लौटने के दो माह पश्चात् बाबा पुनः समुद्री जहाज़ द्वारा यूरोप के लिये चल दिये जहाँ वह 24 जून 1933 ई. को पहुँच गये। उनके ठहरने के लिये अंग्रेज़ मण्डली ने पोर्टो फ़िनो, इटली, में एक सुन्दर बँगला किराये पर ले लिया था। यहाँ अत्यंत भौतिक सुन्दरतापूर्ण वातावरण के बीच, बाबा ने अपने पश्चिमी शिष्यों की अहंकारी प्रवृत्तियों को उकसाने तथा उनको नष्ट करने के अपने सूक्ष्म किन्तु प्रभावकारी कार्य को पुनः प्रारम्भ किया। एक घटना विशेष रूप से इस बात की द्योतक है कि बाबा अच्छे और बुरे दोनों गुणों को बाहर निकालने के लिये किस प्रकार दैनिक जीवन की घटनाओं का प्रयोग करते हैं।

एक दिन तीसरे पहर मण्डली के पन्द्रह या सोलह जन बाबा के साथ ढालू चट्टानों वाले प्रदेश में घूमने के लिये गये। बाबा उनको एक ख़तरनाक खड्ड से नीचे उतारते हुये समुद्र तक ले गये। उनमें से कुछ लोग पीछे रह गये, यद्यपि बाबा उनको बारम्बार चेतावनी देते थे कि वे एक साथ रहें। कई जन मार्ग से अलग होकर एक किनारे हो गये, क्योंकि उनके जूते, उनके वस्त्र, अथवा उनकी हिम्मत समुद्र तक पहुँचाने वाले अन्तिम उतार पर स्थित एक खड़े ढाल के नीचे फिसलने के लिये अपर्याप्त सिद्ध हुये। जिस समय वे समुद्र द्वारा धोये गये किनारे पर पहुँचे, केवल दो पुरुष और दो बालिकायें बाबा के साथ रह पाये थे।

जिस मार्ग से वे आये थे उससे लौटने की अपेक्षा बाबा ने दूसरे मार्ग से ऊपर चढ़ना तय किया। बाबा हिरन के समान फुर्तीले तथा हलके पग वाले होने के कारण चट्टान की चिकनी चढ़ाई पर चढ़ चले और उनके पीछे उन चारों जनों ने लगे रहने का प्रयत्न किया। विशेषरूप से कठिन स्थलों पर बाबा महिलाओं को अपने कोमल परन्तु दृढ़ हाथों से सहायता प्रदान करने के लिये रुक जाते थे। इस समय तक उन सब की समझ में आया कि वह ख़तरनाक साहसी चढ़ाई सांकेतिक महत्त्व से परिपूर्ण हो सकती थी इसलिये वे लोग अपने पथप्रदर्शक के रूप में बाबा के प्रति नवीन विश्वास रखते हुये आगे बढ़ते गए।

परन्तु अचानक उन लोगों ने अपने को फँसा हुआ पाया ! उनके ऊपर चट्टान की सीधी खड़ी चढ़ाई तथा पतले वृक्ष थे और उनके दाहिनी ओर शिला की खड़ी दीवार थी जो एक बड़ी ऊँचाई से प्रायः लम्बरूप में समुद्र तक जाती थी। उन्होंने मुख्य मार्ग की खोज की, जिसको पुनः पकड़ने की वे आशा करते थे, किन्तु वे यह नहीं समझते थे कि वह मार्ग उनसे डेढ़ सौ फीट से अधिक ऊँचाई पर था। उनमें एक जन हरबर्ट कोने कोने से खिसकता हुआ आगे बढ़ा, पत्थर की ढालू चट्टानों पर चढ़ा, झाड़ियों की जड़ों से लटका, और उस समय उसका हृदय भय के मारे इन्जिन के पिस्टन की भाँति चल रहा था। उसको आधी आशा थी कि कोई चमत्कार घटित होगा अथवा बाबा अचानक कोई सरल मार्ग निकाल लेंगे। तीस मिनट अथवा उससे अधिक समय तक उसने मुख्य मार्ग को पाने का निष्फल प्रयत्न किया। उसने एक अत्यन्त ढालू दरार देखी जो कूड़ा—करकट डालने के प्रयोग में लाई गई प्रतीत होती थी। परन्तु उस पर चढ़ना उसके लिये बहुत असुरक्षित सिद्ध होता था और पन्द्रह फ़ीट की ऊँचाई पर वह पानी से घिसे हुये एक विशाल चिकने गोल पत्थर से रुँधी थी, जो इतना चिकना था कि उस पर पैर जमाना अथवा उसको हाथ से पकड़ना असम्भव था। तथापि बाहर निकलने का स्पष्ट रूप से केवल यही एक सम्भव मार्ग था।

बाबा पुष्ट तथा निश्चित डग रखने वाले होने के कारण, अपने पीछे थोड़ी सी मिट्टी फैलाते हुए आगे चढ़ गये। उन्होंने ताली बजा कर उन

लोगों को अपने पीछे आने के लिये संकेत किया और फिर उनकी दृष्टि से ओझल हो गये। हरबर्ट उनके पीछे गया, परन्तु वह ऊपर की चिकनी गोल चट्टान में कुछ मिनट तक चिन्ताजनक अवस्था में फँसा रहा जबकि दो महिलायें तथा दूसरा पुरुष तनावपूर्ण अवस्था में नीचे प्रतीक्षा कर रहे थे। उसके ऊपर एक अत्यन्त ढलुआँ नाली थी जो कदाचित् चालीस फीट गहरी थी। वह छुट्टा मिट्टी, धातु के जंग लगे हुये टुकड़ों और टूटे हुये काँच से भरी थी; उसमें एक भी पग रखने का अर्थ था नीचे महिलाओं के ऊपर पत्थरों और सम्भवतः कूड़ा करकट के ढेर का गिरना। अपने शरीर को अन्तिम बार मरोड़ते हुये हरबर्ट चिकनी चट्टान के ऊपर निकल गया। झाड़ियों की जड़ों से लटककर सहारा लेते हुये वह छुट्टा मिट्टी पर धीरे–धीरे पाँव रख सकता था परन्तु शेष चालीस फीट के ऊपर वह नहीं जा सकता था। बाबा पूर्णरूप से लुप्त हो गये थे। सौ पौण्ड अथवा उससे कम वज़न वाला नवयुवक दूसरे नम्बर पर वहाँ तक चढ़ आया। हरबर्ट के हाथ का हल्का सा सहारा पाने पर वह सकुशल चिकनी गोल चट्टान के ऊपर निकल गया।

बाबा का अन्तिम संकेत था– "चले आओ।" हरबर्ट ने विवियन को पीछे चले आने के लिए पुकारा, परन्तु वह भी चिकनी गोल चट्टान पर अटक गई, और उसकी शक्ति धीरे धीरे क्षीण होने लगी। अन्य जनों ने बाबा को सहायता करने के लिये ज़ोर से पुकारा, परन्तु उनको कोई प्रत्यक्ष उत्तर न मिला। क्या बाबा उन्हें आपत्ति में छोड़कर चले गये थे ? क्या वह एक सांकेतिक कसौटी थी ? अथवा क्या वह हरबर्ट पर भरोसा किए थे कि वह बालिकाओं को कठिन स्थानों से सकुशल निकाल लायेगा ? हरबर्ट ने सभी वीरतापूर्ण उपायों पर विचार किया जो उसे करना चाहिए थे परन्तु जिन्हें वह न कर सका। वह खुद धीरे धीरे नीचे की ओर खिसक रहा था। उसके कोई भी असावधानीपूर्ण चेष्टा करने का अर्थ था विवियन के चेहरे पर मिट्टी की धुआँधार वर्षा करना, जो बिल्कुल उसके नीचे थी। वह वहाँ दस या पन्द्रह मिनट तक, और सम्भवतः इससे भी अधिक समय तक, अनिश्चित अवस्था में लटकी रही। वह समय उसको युगों की भाँति लम्बा प्रतीत होता था। उसके दाहिने हाथ की दो अँगुलियाँ चट्टान के एक छोटे छेद में दृढ़तापूर्वक फँसी थीं, उसका शरीर गोल चिकनी चट्टान से टिका

हुआ था और उसके बायें पैर का घुटना बगल की चट्टान में धँसा हुआ था। निःसन्देह वह भाग्यशाली थी कि उसने वर्षों तक सौंदर्य नृत्य करके अपने शरीर को साधना तथा सन्तुलित करना सीख लिया था।

इस समय तक उस दल के अधिकांश लोग घर लौट आये थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि दो घण्टे बीत जाने पर भी टोली के अन्य सदस्य नहीं लौटे थे। इसी बीच में बाबा, जो पानी की नाली के पार जा चुके थे, ढलुआँ चट्टान पर और भी ऊँचे चढ़ते जा रहे थे और उन लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए ताली बजा रहे थे। परन्तु वह घर से एक मील अथवा इससे भी अधिक दूरी पर थे इससे वहाँ उनकी ताली का शब्द किसी को सुनाई न देता था। फिर भी टाईनों नाम के एक इटैलियन बालक को, जो उस जायदाद में काम करता था, एक पुरोहित सा प्रतीत होता हुआ पुरुष मिला था जिसने उस बालक को बताया कि कोई आदमी सहायता के लिये संकेत कर रहा था। तब टाईनों दौड़कर बाबा के पास गया, और बाबा ने उसको रस्सी लाने के लिये इशारा किया। वह झपट कर घर के रसोईघर में गया। इस पर तीन भारतीय पुरुष, जो रात के लिये भोजन तैयार करने में जुटे थे, तुरन्त बर्तनों को छोड़कर बाबा के पास दौड़ कर गये।

यदि विवियन वहाँ से खिसक जाती तो वह बीस फीट नीचे ऐनीटा के ऊपर गिरती, और फिर तीन सौ फीट नीचे लुढ़कती हुई समुद्र में गिर जाती। हरबर्ट विवियन का हाथ ही छू पाता था, परन्तु वह उसको ऊपर खींचने के लिये पर्याप्त शक्ति लगाने अथवा अपनी पहुँच को बढ़ाने में असमर्थ था, क्योंकि वह अपने दाहिने हाथ से एक झाड़ी को दृढ़ता से पकड़े था। जिस समय उसने विवियन से बहाना करते हुए कहा कि उसे विश्वास था कि बाबा की सहायता आ रही थी उस समय उसके मन में विचित्र विचार उठते थे। वह बहुत साहसी थी, परन्तु लगभग थक गई थी, और बारम्बार "बाबा, बाबा !" पुकारती थी। अन्त में चोटी से कोलाहल सुनाई दिया।

पेंडू नाम का एक भारतीय शिष्य लम्बी रस्सियों तथा एक रक्षादल सहित दिखाई दिया। बाबा उतर कर नाली के नीचे आये, और वह ख़तरे

की सम्भावना से स्पष्टतः प्रसन्न थे। उनको भी इस छुट्टा मिट्टी में पैर जमाये रखना अत्यन्त कठिन मालूम होता था। हरबर्ट एक लम्बे तने वाली झाड़ी के नीचे झुका और उसने अपने दाहिने हाथ से झाड़ी के जड़ वाले सिरे को दृढ़ता से पकड़ा, जबकि बाबा ने अपने दाहिने हाथ से तने का दूसरा सिरा पकड़ा। फिर हरबर्ट अपने बायें हाथ से विवियन को उस चिकनी गोल चट्टान से ऊपर खींचने के लिये नीचे को झुका।

पेंडू ने, जो माँसल तथा फुर्तीला था, नीचे ऐनीटा के पास रस्सी डाली जो उस समय भी नीचे खड़ी थी। उस रस्सी के द्वारा वे सब सकुशल ऊपर चढ़ आये, और उनकी उत्तेजनापूर्ण साहसी चढ़ाई समाप्त हो गई। तीसरे पहर के इस संकटकाल के परिणाम से बाबा स्कूल के बच्चे के समान प्रसन्न थे !

इस साहसी यात्रा के सकुशल अन्त होने का उत्सव मनाने के लिये बाबा ने मण्डली को पुस्तकालय में एकत्रित किया और जिन लोगों ने इसमें भाग न लिया था उनके हित के लिए बाबा ने उसकी गाथा पुनः बताई, और फिर उन सबको थोड़ी सी इटैलियन मदिरा का स्वाद चखाया। मदिरा चखाने की यह क्रिया स्वतः इस बात की द्योतक थी कि वह अनुभव कितना महत्त्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण था, क्योंकि बाबा मदिरा का प्रयोग केवल संस्कार सम्बन्धी प्रयोजनों के लिये ही करते हैं। वहाँ उपस्थित इटैलियन सेवक, जो उस साहसी यात्रा में निहित ख़तरे को अच्छी तरह जानते थे, टोली के सकुशल वापिस आ जाने पर आनन्द के आँसू बहाने लगे।

बाबा का आनन्द लगातार प्रकट होता रहा। उन्होंने कहा कि इस अनुभव के द्वारा उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, और उसमें मुक्त हुई जीवन शक्तियों, जागृत की गई भावनाओं, तथा प्रदर्शित किये गये साहस का प्रयोग उन्होंने अपने आध्यात्मिक कार्य के लिये किया था।

मनोवैज्ञानिक भाषा में यह साहसी कार्य चेतना में आगे बढ़ाए गए एक महत्त्वपूर्ण क़दम का संकेत करता है जो कदाचित् इस अनुभव में भाग लेने वाले चार जनों ने—कदाचित् इन पुरुषों तथा स्त्रियों द्वारा प्रतिनिधित्व किये गये मानव जाति के चार वर्गों ने—रक्खा था। आध्यात्मिक पथप्रदर्शक की सहायता से वे लोग **अचेतन सत्ता** (Unconscious) के प्रदेश—अर्थात्

समुद्र—तक कुशलतापूर्वक उतर गये; परन्तु सन्तुलित पूर्ण चेतना प्राप्त करने की उनकी वापिसी यात्रा जोखिमों तथा ख़तरे के स्थलों से भरी थी। पथप्रदर्शक निश्चित डग रखने वाला तथा फुर्तीला होने के कारण—जैसी कि उच्चतर जागृत चेतना सदैव होती है—तीव्रता से तथा सरलतापूर्वक पृथ्वी माता की सुरक्षित गोद तक चढ़ गया—अर्थात्, सहज भाव तथा चेतना के स्त्रीगत मूलतत्त्व तक पहुँच गया। अन्य लोग निःसन्देह नष्ट हो गये होते यदि उनके आध्यात्मिक अन्तर्ज्ञान—अर्थात् **पथप्रदर्शक**—ने आकर उनकी रक्षा न की होती। अपनी ही भूमिका के सुरक्षित प्रदेश में उनको ऊपर खींच लेने के पश्चात्, **सद्गुरु—रहबर** उनके साथ सुरापान—अर्थात् मुक्त जीवन के प्रतीक—में भाग लेता है।

पोरटो फ़ीनों में एक माह व्यतीत करने के पश्चात्, बाबा ने समुद्री जहाज़ द्वारा भारतवर्ष के लिये प्रस्थान किया, परन्तु दो माह के भीतर वह पुनः यूरोप के लिए चल पड़े। इस यात्रा में उनका अधिकांश ध्यान स्पेन पर केन्द्रित था, जहाँ वह सन्त थेरेसा तथा सन्त जोन आफ़ दी क्रास के जन्मस्थान ऐविला को देखने गये। वहाँ व्यतीत किये गये चौबीस घन्टों में मण्डली ने बाबा के साथ उन महान आत्माओं के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिये, जिन्होंने उस नगरी को ख्याति प्रदान की थी, उपवास किया। उस उपवास काल में किसी को भी बाबा को छूने की आज्ञा न थी, क्योंकि उस समय उनके शरीर में अत्यन्त तीव्र आध्यात्मिक लहर थी।

स्पेन में बाबा जनता से सम्पर्क करना चाहते थे, जैसा वह सब देशों में करते हैं जहाँ वह जाते हैं। ऐविला से वह मैड्रिड गए, और वहाँ उन्होंने अपनी भक्त—मण्डली के साथ तमाम दिन सड़कों का चक्कर लगाया। यहाँ तक कि उनके दुखते हुये पैरों ने बगावत कर दी। बाबा ने केन्द्रीय चौराहा प्यूएरटा डेल सोल में लोगों की भीड़ के मध्य खड़ा होना विशेषरूप से पसन्द किया। जिस समय वे लोग मुख्य सड़क पर चल रहे थे उस समय कभी कभी लोग मुड़कर बाबा को टकटकी लगाकर देखते थे मानो वे किसी ऐसी बात द्वारा बाबा की ओर खिंचते थे जो उनके चेतन मन के परे

थी, हालाँकि बाबा यूरोपीय वस्त्र पहिने थे और एक स्पेनीय टोपी धारण किये थे जिससे उनके लम्बे केश ढँके थे और वह साधारण मनुष्य की तरह दिखाई देते थे। बाबा ने मण्डली को समझाया कि इसका कारण वह शक्तिशाली आन्तरिक कार्य था जो बाबा उस समय कर रहे थे। जनसमूह ने उसको सहज ज्ञान के द्वारा अवश्य महसूस किया होगा, क्योंकि अन्य अवसरों पर उनकी ओर किसी का भी विशेष ध्यान आकर्षित न होता था। जब हम यह महसूस करते हैं कि बाबा ने यह यात्रा स्पेन का युद्ध छिड़ने के कुछ समय पूर्व की थी, तो यह सम्भव प्रतीत होता है कि वह स्पेन के लोगों के अचेत मन में संस्कारी प्रबलताओं को उत्तेजित कर रहे थे, जिससे वे अन्य राष्ट्रों की संस्कारी प्रबलताओं की भाँति कष्ट–सहने के द्वारा समाप्त हो जायें और फिर मुक्ति के हितकारी परिणामों का अनुभव किया जा सके।

एक दिन तीसरे पहर वे लोग मैड्रिड के सामने स्थित एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़ गये। यहाँ वे जैतून के एक विशाल वृक्ष के नीचे बाबा के चारों ओर बैठ गये, और बाबा ने उन्हें भविष्य के विषय में बताया और यह बताया कि वे लोग बाबा के आगामी विश्वव्यापी कार्य में क्या भूमिका अदा करेंगे। इस सूर्य से प्रकाशित रमणीक पहाड़ी के ऊपर बाबा के चारों ओर बैठे हुये उनको समय का आभास न होता था, और यही दृश्य ईसामसीह के साथ फ़िलिस्तीन में रहा होगा, अथवा कृष्ण के साथ वृन्दावन में रहा होगा, अथवा मानव जाति के शैशवकाल में रहा होगा जबकि मनुष्य ने मनुष्य रूप में ईश्वरत्व के प्रकट होने को आगामी पीढ़ियों के लिये अंकित करना नहीं सीखा था। मिथ्या माहात्म्यों के पीछे दौड़ने में अत्यन्त प्रवृत्त उनके चारों ओर की दुनियाँ उन्हें मिथ्या तथा स्वप्न के समान प्रतीत होती थी। उनके लिये केवल यही क्षण बाबा की उपस्थिति में, जो निरन्तर अनन्तता में वास करते हैं, सार्थक था। जिस समय कोई मनुष्य बाबा की अति श्रेष्ठ उपस्थिति में होता है, तब सचमुच उसको शेष दृश्य–जगत का सदैव अभाव–और 'सम्यक्' अभाव–प्रतीत होता है।

जिस दिन वे बर्सिलोना पहुँचे उस दिन नगर के सरकारी कर्मचारी मैड्रिड से आये हुये एक विशेष प्रतिनिधि का स्वागत कर रहे थे। बाबा उस विशाल जनसमूह के बीच पहुँचकर प्रसन्न हुये जो ज़िले के समस्त प्रमुख

लोगों के भारी जुलूस को देखने के लिये एकत्रित हुआ था। यह घटना, जो नवीन संघ राज्य की मुहर अंकित करती थी, राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी और स्पेन की सरकार में बाद में होने वाली उलट–पलट के लिये आवश्यक मंच स्थापित करती थी। यह घटना उन अनेक 'दैवयोगों' में से एक थी जिनसे उन लोगों को बाबा के साथ अपनी यूरोपीय यात्रा के विषय में प्रकाश मिला था। बहुधा बाबा के किसी स्थान में पहुँचने के समय कोई प्रदर्शन अथवा कोई महत्वपूर्ण उत्सव अपने पूरे उत्कर्ष पर होता था, जिससे बाबा को जनता से सम्पर्क करने का अपना चुम्बकीय कार्य पूर्ण करने का अतिरिक्त अवसर मिल जाता था। जिस समय मनुष्य 'निर्गुण' ईश्वर से अपना आध्यात्मिक सम्पर्क खो बैठता है–जैसा कि वर्तमान समय में है–तब 'सगुण ईश्वर' मनुष्य रूप में प्रकट होने के साथ साथ मानव जाति की आध्यात्मिक चेतना को पुनः चैतन्य करने के लिये मानवीय सम्पर्कों का प्रयोग करता है।

एक ईसाई सन्त की सजीव भक्ति से पवित्र हुआ मांटसेराट नाम का एक अन्य तीर्थस्थान बाबा ने जाकर देखा। यह स्थान पवित्रात्मा ग्रेल तथा सन्त इगनेशियस के उपाख्यान से सम्बन्धित था। वहाँ बाबा ने भविष्यवाणी की कि आगामी काल में–केवल बाबा ही जानते हैं कि इस जन्म में अथवा दूसरे जन्म में–भक्त–मण्डली वापिस आवेगी और उनके साथ वहाँ कुछ समय तक ठहरेगी।

धार्मिक इतिहास के किसी भी निष्पक्ष विद्यार्थी को यह स्पष्ट होना चाहिये कि अवतार का उद्देश्य विश्वव्यापी होने के कारण वह केवल उसी पीढ़ी के हितार्थ कार्य नहीं करता जिसमें वह शरीर धारण करता है, वरन् वह आवश्यक रूप से आगामी अनेक पीढ़ियों के लिए कार्य करता है। मानव जाति की चेतना को जो नवीन प्रवर्तक शक्ति वह प्रदान करता है वह सम्भवतः उस समय तक पूर्णतया प्रकट नहीं हो पाती जब तक कि कालान्तर में उस मूल प्रेरणा की शक्ति तथा बुद्धिमत्ता को मनुष्य पूर्णतया पचा कर उनका समाकलन अपने चेतन जीवन में नहीं करता चाहे हम अति विशिष्ट ईसाई सन्तों के इन पवित्र स्थानों की बाबा द्वारा की गई यात्राओं की पूर्ण सार्थकता को भले ही न समझें, तथापि हम देख सकते

हैं कि इन महान आत्माओं की आध्यात्मिक प्राप्तियों का स्मरण करने और उनको सद्गुरु द्वारा प्रदान की गई नवीन अनुभूतियों से शृंखला बद्ध करने से किस प्रकार अति श्रेष्ठ चेतना की नित्यता हममें स्थिर रहती है। हो सकता है कि ईसामसीह द्वारा बोये गये बीज केवल 'अभी' फलीभूत हो रहे हों; और सन्त थेरेसा, सन्त फ्रान्सिस अथवा इगनेशियस सन्तवृत्ति वाले मानव प्राणियों के विशाल समुदायों के अग्रज रहे हों।

बाबा के साथ कई आनन्दपूर्ण सप्ताह व्यतीत करने के पश्चात् मण्डली के लिये बाबा को विदा करना विशेषतः दुखदायी था। जिस समय वे मारसेलीज़ पहुँचे, उस समय ज्यूरिच से आये हुये दो भक्त उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इस समय बाबा से प्रेम तथा शक्ति का ऐसा अलौकिक प्रवाह हो रहा था कि उन नवागन्तुकों ने उसके महान हर्ष को कई दिन तक महसूस किया। प्रस्थान करने के पूर्व दोपहर के समय भक्त–मण्डली जहाज़ पर बाबा की कोठरी में बाबा के समीप एकत्रित हुई। जैसा कि ऐसे अवसरों पर सदैव होता है, वातावरण मौन तथा हृदयों की वेदना से परिपूर्ण था। बाबा का 'दैवी अस्तित्त्व' पुनः अपने भौतिक शरीर को उन लोगों से अलग कर रहा था, और उनको धीरे धीरे उस अन्तिम उपक्रम के लिये तैयार कर रहा था जो उन लोगों में किसी दिन बाबा की **विश्वव्यापी आत्मा** से एकता के आन्तरिक साक्षात्कार का सूत्रपात करेगा। वियोग भाव से दुखी उनके हृदयों के विपरीत, एक आनन्दी युवक बाहर जहाज़ों के डॉक पर एक बाजे में सुन्दर राग बजा रहा था। इस प्रकार शोक की गम्भीरता में भी आनन्द की ध्वनि सुनाई देती थी।

भारतवर्ष लौटने पर बाबा ने अपना मुख्य स्थान नासिक से हटा कर मेहेराबाद में कर लिया। यहाँ वह प्रायः एकान्तवास में रहे, और दर्शनार्थियों से सप्ताह में केवल एक दिन कुछ घन्टों तक मिलते थे। 9 जून 1934 ई. को उन्होंने यूरोप की सातवीं यात्रा पर समुद्री जहाज़ द्वारा पुनः प्रस्थान कर दिया। तीन दिन पेरिस में और छः दिन लन्दन में ठहरने के पश्चात् वह

ज्यूरिच गये। ज्यूरिच में वह दस दिन ठहरे और उन दस दिनों में से एक दिन उन्होंने एक पर्वत शिखर पर एकान्तवास किया, जबकि उनकी मण्डली एक निकटवर्ती शिखर से उनको देखती रही। अकस्मात् भारी बरसात हुई जिससे वे लोग पूर्णतया भीग गये। परन्तु जब उन्होंने उस पर्वत की ओर देखा जिस पर बाबा बैठे हुये थे तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह सुनहले प्रकाश से घिरे थे, और उनके शरीर पर वर्षा के स्पर्श का कोई चिन्ह न था।

2 अगस्त को वह बम्बई (अब मुंबई) पहुँचे, और उसी वर्ष नवम्बर के माह में उन्होंने यूरोप की आठवीं यात्रा पर प्रस्थान कर दिया। जिस समय वह लन्दन में पहुँचे उसी समय केन्ट के ड्यूक व डचेज़ का विवाह हो रहा था। सड़कें आनन्दी दर्शकों से भरी थीं, जिससे बाबा को जनसमूह में कार्य करने का एक और अवसर उस समय मिला जब वह मोटरकार द्वारा पश्चिमी छोर की ओर जाते हुये बकिंघम महल के पास से तथा हाईड पार्क से होकर निकले। 5 दिसम्बर 1934 ई. को वह समुद्री जहाज़ द्वारा न्यूयार्क के लिये चल दिये, और 1932 ई. की बसन्त ऋतु में उनकी स्मरणीय विदाई के पश्चात् अमरीका में उनका यह प्रथम पदार्पण था।

इस बीच में, जबकि हमारे मित्र बाबा के सामयिक सम्पर्कों द्वारा जागृत किये जा रहे थे, मैलकाम और मैं स्थूल अस्तित्त्व की समस्या से संघर्ष कर रहे थे–वह अपने नेकटाई के व्यवसाय के लिये ग्राहक मण्डली तैयार करने का प्रयत्न कर रहा था; मैं शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही थी। औषधि तथा चीर–फाड़ पर अपनी निर्भरता मैंने बहुत समय पहले से त्याग दी थी, परन्तु मैं अब भी विद्युत–चिकित्सा तथा शारीरिक दक्षता के नवीनतर रूपों और साथ साथ प्रत्येक विचारणीय आहार की परीक्षा कर रही थी। कुछ समय तक मुझको अपने स्वास्थ्य में कुछ सुधार का अनुभव होता था, फिर मेरा स्वास्थ्य पुनः पलटा खा जाता था जिससे मुझको एक नये उपाय, एक नये डाक्टर और आशा की एक नई किरण की खोज करनी पड़ती थी।

इन आहारों में से एक आहार में मेरे लिये प्रातः सात बजे से रात को नौ बजे तक हर दो घन्टे में सागों के ताज़े रस पीना आवश्यक हो गया था। मैं उनको तैयार करने में असमर्थ थी, इसलिये मैलकाम बड़े तड़के उठता था, मेरे लिये दिन भर के लिये आवश्यक मात्रा में सागों के रस निकालता था, अपने लिए नाश्ता तैयार करता था, तश्तरियाँ धोता और स्नान करता था, और फिर टाईयाँ बेचने के लिये बाहर चला जाता था ! वापिस आने पर वह रात में अपना भोजन तैयार करता था, कमरा तथा तश्तरियाँ साफ़ करता था, और आधी रात के लगभग सोता था। हम दोनों में से किसी के लिये भी वह वास्तविक रूप में 'अवकाशकाल' न था !

मैं आध्यात्मिक उपचार की कला से भलीभाँति परिचित थी, क्योंकि अपने गत जीवन में मैं अनेक अवसरों पर इस विधि द्वारा मुक्त हुई ईश्वर–शक्ति का अनुभव कर चुकी थीं। परन्तु अब मैं अन्तर्ज्ञान द्वारा महसूस करती थी कि मेरी शारीरिक पीड़ा तथा गड़बड़ी एक गम्भीरतर आध्यात्मिक सफाई के फलस्वरूप थीं। चीर–फाड़ के हिंसात्मक कर्म का संस्कार पैदा कर लेने के कारण, मुझको उस कर्म के परिणामों को अब 'अपने शरीर में' शुद्ध करना था। कई वर्षों तक मैंने अपने आध्यात्मिक जीवन–आदर्श को "शरीर का पुनर्जीवन" मुहावरे तक ही सीमित रक्खा था। सचमुच, **सत्यता** की एक झलक से, जो मुझको कृपापूर्वक प्रदान की गई थी, मुझको उद्‌घाटित हुआ था कि उस समय भी आन्तरिक शक्तियाँ किस प्रकार कार्य कर रही थीं, और नवीन जीवन शक्ति के हेतु स्थान बनाने के लिये पुरानी जीवन–शक्ति को निकाल रही थीं जिससे किसी दिन पुनर्जीवन के आदर्श की सिद्धि हो सके।

फिर बाबा ने मेरे जीवन में प्रवेश किया, और कई वर्षों तक ऐसा प्रतीत होता था मानो पुरानी जीवन–शक्ति को 'निकालने वाली' क्रिया कभी समाप्त न होगी। तथापि, अन्ततः मेरी समझ में आया–और बाद में बाबा ने इसका समर्थन किया–कि बीमारी तथा पुरानी जीवन शक्ति को निकालने के ये वर्ष भौतिक शरीर में केवल उन रोगहर कार्रवाइयों के साक्षी थे जो आध्यात्मिक शक्तियाँ पूर्ण अस्तित्त्व का सच्चा पुनर्जीवन करने के लिये कर रही थीं, क्योंकि पीड़ा से मुक्ति आवश्यक रूप से आध्यात्मिक स्वास्थ्य की

द्योतक नहीं होती। इसके विपरीत वह आध्यात्मिक गतिहीनता की सूचक हो सकती है।

हम अपने लिये जो कुछ सही अथवा उचित सोच सकते हैं उसको 'विश्वव्यापी मन' में जमाने के लिये 'विधान' का प्रयोग करना पूर्णतया सम्भव है; और निश्चय ही शारीरिक स्वास्थ्य हर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार प्रतीत होगा। मैं अब भी विश्वास करती हूँ कि ऐसा ही है, परन्तु यदि हम अपने विकास में उस स्थल पर पहुँच चुके हैं जहाँ हम केवल शारीरिक कुशल–क्षेम की अपेक्षा कुछ और 'अधिक' चाहते हैं; यदि हम सचमुच अभिलाषा करते हैं कि परमात्मा हमारे जीवनों का नियन्त्रक केन्द्र बने, तब हमको इस बात की अपनी मानसिक कल्पना त्याग देनी चाहिये कि हमारा जीवन–आदर्श 'कैसे' प्राप्त होगा। उच्चतर 'विधान'–अर्थात् 'प्रेम के विधान'–में ऐसा यथेष्ट प्रतीत होता है कि हम ईसामसीह (Christ) के मन में प्रवेश करें और उनके साथ कहें : "पिता, यह प्याला मुझसे आगे बढ़ने दीजिये; तथापि 'मेरी' इच्छा नहीं, वरन् 'तेरी' मर्ज़ी पूरी होवे।"

यह अनुभूति मुझको हालीवुड में हमारे पहुँचने के लगभग एक वर्ष पश्चात् अत्यन्त प्रबलता के साथ हुई। मैं उस स्थिति को पहुँच गई थी जो शारीरिक कष्ट तथा निर्बलता की अथाह सीमा प्रतीत होती थी। मेरी बीमारी का निदान करके बताया गया कि उसमें कई बातों की जटिलता थी, जैसे नासूर वाला फोड़ा, तपेदिक तथा ब्राईट का रोग (Brights' disease)। मेरे लिये जिन मँहगे इलाजों की सिफ़ारिश की गई थी उनके लिये हमारे पास पैसा न था, और न तो मेरा रुझान रोग के निदान अथवा प्रस्तावित इलाजों में अधिक विश्वास करने की ओर था। मैंने सभी इलाजों को त्याग देने का निर्णय किया सिवाय एक इलाज के कि मैं अन्तरात्मा से बाबा से सम्पर्क करूँ और उनकी उपस्थिति अपनी रग रग से तथा प्रत्येक कोषाणु से अपने अन्तर में प्रवेश करती हुई महसूस करूँ। ऐसा करने से मुझको महान आनन्द तथा शान्ति के क्षण प्राप्त हो जाते थे, परन्तु मैं बराबर निर्बल होती गई। केवल बड़ा प्रयत्न करने पर ही मैं अपना हाथ उठा पाती थी। शरीर के ऊपर से मेरा काबू तेज़ी से हटता हुआ प्रतीत होता था। अन्ततः, निरन्तर पीड़ा के मध्य, मैं एक रात को अधिक थकावट

के कारण सो गई। प्रातः लगभग चार बजे मैं पीड़ा के ज्ञान सहित पुनः जगी। मैंने बाबा का विचार किया और अपनी अन्तरात्मा में उनसे इस स्थिति के विषय में बात की। मैंने उनको बताया कि मैं उनकी आज्ञानुसार शरीर में रहने अथवा उसको छोड़ देने में सन्तुष्ट थी। उनकी मर्ज़ी—अर्थात् अपनी अन्तरात्मा में ईश्वर की मर्ज़ी—के प्रति अपने को पूर्णतया छोड़ देने पर मुझको, अनवरत पीड़ा के बावजूद, गम्भीर शान्ति महसूस हुई। धीरे धीरे अरुणोदय आया, और वृक्षों के शिखरों में वायु की प्रथम लहर बहने के साथ ही एक 'पवित्र श्वास' मेरे अन्तस्तल में तरंगित होती हुई प्रतीत हुई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था जैसे मेरे ऊपर से एक भारी बोझ उतार लिया गया हो; नवीन जीवन का एक कपाट मेरे अन्तस्तल में खुल गया हो।

जैसे ही सूर्य की प्रथम किरणें वृक्षों की पत्तियों से छन कर आईं, मेरे अन्तर में महान हर्ष का प्रवाह हो गया, और दो घन्टे तक मैंने इस भीतरी सूर्योदय के प्रकाश का सेवन किया। एक माह अथवा इससे अधिक समय से मैं कमरे में चलने फिरने में भी असमर्थ रही थी, परन्तु अब मैं उठ कर मैलकाम के कमरे में गई। खिड़की की देहरी पर धूप में बैठे बैठे मैंने उसको सब घटना बताई।

उस चंगेपन में मुझको शारीरिक शक्ति तथा पीड़ा से मुक्ति प्राप्त होने के साथ साथ मुझको कई दिनों तक मन की उस शान्ति का अनुभव हुआ जो मुझे कुछ वर्ष पहले आन्तरिक जागृति के एक अवसर पर प्राप्त हुई थी। मुझे इस बात में सन्देह न था कि यह 'दैवी प्रेम' की क्रिया थी। इसकी पुष्टि कुछ महीनों पश्चात् बाबा के एक पत्र से हुई जिसमें उन्होंने मेरी इस व्याधि—मुक्ति के प्रसंग में कहा था :

"अन्य सबकुछ विफल हो सकता है—'प्रेम' कभी असफल नहीं होता।"

फिर भी, मेरी यह व्याधि—मुक्ति अन्तिम न थी। अचेतन मन की गम्भीरतर तहें अब भी उद्दीप्त तथा साफ़ किये जाने के लिये शेष थीं; आत्म—इच्छा तथा आत्म—अभिलाषा के और भी अधिक परित्याग का

अनुभव होना था। मैं अब भी उस अन्तिम आत्म—समर्पण से दूर थी जो 'अनन्तता' के जीवन में पुनर्जीवित होने के पूर्व आवश्यक होता है। अपने आत्मसमर्पण की मात्रा के अनुपात में मैं अपने पिछले कर्मों तथा विचारों के संस्कारों से मुक्त हो चुकी थी। इन युगों पुराने संस्कारों का अवरोध बाबा की कृपा द्वारा नष्ट हो चुका था। परन्तु अब भी घर की और भी सफ़ाई होना थी—और भी बन्धन टूटना थे। सन्त पाल की भाँति मुझे, बगावत किये बग़ैर और परिणाम से लगाव रक्खे बग़ैर, 'नित्य मरना' ज़ारी रखना था।

आधिभौतिक दृष्टिकोण, जो इस बात पर ज़ोर देता है कि शारीरिक स्वास्थ्य, भौतिक कुशलता तथा समृद्धि मनुष्य के न्याय संगत परमाधिकार हैं, सत्य हो सकता है यदि हम भौतिक शरीर और उसकी वासनाओं को जीवन में सर्वोपरि तथ्य समझते हैं। तथापि, यदि हम विचार करते हैं कि शरीर केवल एक महत्त्वपूर्ण 'साधन' है जिसकी देखभाल ठीक तरह से करनी चाहिये, परन्तु उसे मोटा—ताज़ा न करना चाहिये; और यदि हम भीतरी सूक्ष्म सत्ता को वास्तविक 'आत्मा' (Self), अथवा सच्चा 'जीवन', समझते हैं, तब हमारे ध्यान का केन्द्र शरीर की वासनाओं की ओर से हमारी पूर्वलिप्सा से हटकर उस **अन्तरात्मा** की ओर हो जाता है। यह ईश्वर की मर्ज़ी 'हो सकती' है कि अन्तर्जीवन की पूर्णता पूर्ण हुये शरीर में प्रकट होती है, परन्तु यह उस आत्मा के लिये गौण महत्त्व का हो जाता है जो ईश्वर से एकता प्राप्त करने के परम लक्ष्य की खोज करती है। ऐसे 'साक्षात्कार' में शारीरिक चेतना का कोई स्थान नहीं होता।

अन्ततः, सूचना पाते ही तत्काल बाबा के पास जाने के लिये ढाई वर्ष तक तैयार रहने के पश्चात्, बाबा पुनः हमारे पास हालीवुड में आये और तीन विलक्षण सप्ताहों तक हमने उनकी तेज—पूर्ण उपस्थिति में पुनः जीवन—स्फूर्ति प्राप्त की। इस समय मैंने उन अनुभवों के विषय में, जो हम लोगों को हो चुके थे, अपनी अनेक अन्तःप्रेरणाओं की पुष्टि की। सतत् निराशायें, तोड़ी गई प्रतिज्ञायें और हमारी समस्याओं के प्रति बाबा की

दिखावटी उदासीनता की लम्बी अवधियों, सब हमारे लोचपन की परीक्षा करने, तथा हममें तनाव को सहन करने की क्षमता का विकास करने के प्रयोजन से थीं। बाबा माया के महान संहारकर्त्ता हैं और यदि हमारे भ्रमों में स्वयं बाबा के विषय में ग़लत विचार निहित हैं, तो बाबा इनको भी निर्दयतापूर्वक नष्ट करते हैं।

यदि शिष्य को सद्गुरु के लिए उपयोगी बनाना है, तो उसे वस्तुतः चट्टान की तरह अडिग और साथ ही साथ पानी की तरह तरल होना आवश्यक है। बाबा के शब्दों में : "तुम्हें पूर्ण शान्ति तथा आन्तरिक सन्तुलन के साथ निराशा, आलोचना, और विरोधी शक्तियों का सामना करने के योग्य होना चाहिये। और तुमको हर समय अपने को ईश्वर की मर्ज़ी के अधीन करना चाहिये।"

जो कुछ हम भोग चुके थे, और जो कुछ हमें अब भी अनुभव करना था, वह सब उस प्रक्रिया का एक अंग था जो बाबा से, अथवा **ईश्वर—पुरुष** से, हमारा सम्बन्ध और भी अधिक घनिष्ठ कर रही थी ! ठीक जिस प्रकार ईसामसीह ने कहा था : "मैं **मार्ग** हूँ" और "प्रत्येक मनुष्य मेरे द्वारा ही **पिता** के पास आता है", उसी प्रकार आज सद्गुरु मेहेरबाबा अपने को दैवी मध्यस्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो हमारी चेतना की एकता विश्व की **आत्मा** से कर देंगे।

●

एक माह तक ठहरने के पश्चात् बाबा ने 18 जनवरी 1935 ई. को हालीवुड से भारतवर्ष के लिये प्रस्थान किया, जहाँ उन्हें इस बार लगभग दो वर्ष तक रहना था। इस अवधि में वह एकान्तवास में रहे और अधिकांश समय उन्होंने पहले आबू पर्वत पर और तदनन्तर मेहेराबाद में उपवास किया। उनके लिये पहाड़ी के ऊपर बनाई गई एक नई कोठरी उनके कार्य के एक नवीन पहलू के शुरुआत की सूचक थी। पूर्वी और पश्चिमी शिष्य—मण्डलियों को एक करने के लिए नींव डाली जा रही थी।

1936 ई. की बसन्तऋतु में हमने बाबा की कुछ नई योजनाओं की दबी हुई चर्चा सुनी जिनमें अनेक पश्चिमी शिष्यों को सम्मिलित होना था; और उसी वर्ष सर्दियों में हम भारतवर्ष बुलाये गये। अन्ततः हमारे द्वारा चिर प्रतीक्षित निमन्त्रण आ गया ! हमारे आनन्द का ठिकाना न रहा। फिर हम आश्चर्य करने लगे कि हम भारतवर्ष कैसे पहुँचेंगे। हमें ज्ञात हुआ कि भारतवर्ष में हमारे प्रवेश को निश्चित करने के लिये हमें जाने और आने दोनों के लिये इकट्ठा टिकट खरीदने होंगे, अथवा साख—पत्र लेना होगा, और यद्यपि हमारा नेकटाईयाँ बेचने का धन्धा अब खूब चल रहा था, तथापि वह इतने भारी खर्च को पूरा न कर सकता था। हम जानते थे कि हमारे एक बार भारतवर्ष पहुँच जाने पर बाबा मेरे और मैलकाम के जीवनयापन के खर्च का प्रबन्ध करेंगे।

फिर भी, हमें पुनः शिक्षा मिली कि जब सद्गुरु कोई कार्य पूरा करना चाहता है तो उसके लिए वैसे साधन सदैव जुटने लगते हैं। इस बार हमारे मित्र गैरेट फोर्ट की प्रेमपूर्ण उदारता के द्वारा ईश्वरीय सहायता उतरी। गैरेट फोर्ट बाबा से उस समय मिला था जब बाबा दूसरी बार हालीवुड आए थे, और उस समय से वह उस क्षण की आशा में रहा था जब वह भी भारतवर्ष में बाबा के समीप पहुँच सकेगा। हम सबको यह जान कर आनन्द हुआ कि भारतवर्ष जाने वाली मण्डली में उसका भी नाम था और जब उसने यह सुना तो उसने तुरन्त अपनी इच्छा प्रकट की कि वह हमारे

टिकटों का प्रबन्ध करेगा। लगभग एक सप्ताह के पश्चात् बाबा के यहाँ से सन्देश आया जिसमें उन्होंने गैरेट से पूछा था कि क्या वह उसे पूरा करेगा जो उसने स्वयं स्वेच्छापूर्वक करने के लिये कहा था। हम सब इस विषय में बहुत आनन्दित थे।

22 अक्टूबर को मैलकाम और मैं न्यूयार्क गये, और कुछ दिनों के उपरान्त आठ जनों की हमारी एक टोली ने आइल डी फ्रान्स नामक समुद्री जहाज द्वारा इंगलैण्ड के लिये प्रस्थान किया। गैरेट को कुछ कार्य पूरा करना था इसलिये वह कुछ सप्ताहों के बाद काउन्टेस नाडिना टाल्सटाय सहित वहाँ आ गया।

लन्दन में हमने बाबा से पुनः मिलने के महान आनन्द का अनुभव किया। वह वहाँ हमारी टोली के पहुँचने के ठीक दो दिन पूर्व पहुँच गये थे और दो दिन के पश्चात् वह अपने पूर्वी शिष्यों सहित भारतवर्ष के लिये वापिस चल दिये। यह यात्रा उनकी अब तक की गई सभी पश्चिमी यात्राओं से छोटी थी। लन्दन में उनके ठहरने के चार दिनों का प्रत्येक क्षण भारी क्रियाकलाप से परिपूर्ण था। उन्होंने प्रेमी भक्तों को दर्जनों मुलाकातें प्रदान कीं जिनके हृदय बाबा की एक और झलक पाने के लिये लालायित थे; और नवागन्तुकों से कुछ महत्त्वपूर्ण सम्मेलन किये। उन नवागन्तुकों में अलेक्जैनडर मार्की नाम का एक लेखक, मंच तथा फिल्म डाइरेक्टर था, जिसने उस समय से अपना जीवन बाबा की सेवा में समर्पित कर दिया है।

बाबा के साथ प्राप्त हुये दो दिनों में से एक दिन सन्ध्या समय हम लोग उनके साथ ''मिस्टर डीड्स गोज़ टू टाउन'' नामक फ़िल्म में गैरी कूपर का अभिनय देखने के लिये गये। उस चल चित्र को देखकर बाबा बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि 'यह चित्र इस बात का विशेष उदाहरण है कि चलचित्रों का प्रयोग किस प्रकार मानवजाति के उत्थान के लिये किया जा सकता है, जबकि वे अत्यन्त आनंददायक मनोरंजन भी प्रदान कर सकते हैं।'

एक दिन तीसरे पहर हमने अँग्रेज़ मण्डली के एक जन के यहाँ बाबा के साथ चाय पीने का आनन्द प्राप्त किया। उस समय हँसी मज़ाक के बीच हमने अचानक बाबा का चेहरा उतरा हुआ देखा मानो उन्हें महान पीड़ा थी। मण्डली के सब लोग तुरन्त चुप हो गये, और हमने सहानुभूति में उस अज्ञात बोझ में हाथ बँटाया जो बाबा ने हमारी समझ में अपने ऊपर

ले लिया था। बाद में उन्होंने समझाया : ''यदि तुम उस सन्ताप को जानते जो इस क्षण स्पेन में हज़ारों लोग भोग रहे हैं, तो तुम मेरी पीड़ा को समझते।''

जिस समय हम लोग लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन पर बाबा को विदा कर रहे थे उस समय हुई एक घटना की स्मृति इस यात्रा की एक ऐसी याद है जो अत्यंत सुखद है। अंग्रेज़ भक्त मण्डली के दो जनों ने, विदाई के दुख को हल्का करने की इच्छा से, जिसमें बाबा अपने प्रियजनों के संग सदैव भागी होते हैं, बाबा के लिये बनफ़शा के फूलों के लगभग दो दर्जन छोटे गुच्छे छाँटकर खरीदे थे, जिससे बाबा अपने दुखी भक्तों के प्रेम का कुछ ठोस प्रमाण अपने पास रख सकें। किटी और मारग्रेट के इस कार्य को देखकर और उनके स्वार्थरहित प्रेम को पहिचान कर, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने वे गुच्छे खरीदे थे, बाबा ने उन दोनों के ऊपर जो मर्मस्पर्शी कोमल चितवन डाली वह मुझे कभी न भूलेगी। उन दोनों प्रेमियों के इस विचार पूर्ण कार्य ने विदाई के दुख को एक आनन्दपूर्ण पवित्र संस्कार में बदल दिया। बाबा अपने संवेदनशील हाथों से अपने 'दयापूर्ण प्रेम' के उन सुगन्धित प्रतीकों को धीरे से तथा कोमलतापूर्वक उठाते थे और उन्हें भक्तों को दे देते थे जिस समय वे विदाई का आलिंगन करने के लिये बाबा के पास जाते थे। कोई भी मनुष्य देख सकता था कि प्रत्येक गुच्छा देते समय बाबा का एक विशेष आशीर्वाद उसके साथ होता था। अपने शिष्यों के ऐसे सुन्दर कार्य बाबा को अत्यन्त प्रिय होते हैं।

बाबा ने आदेश दिया था कि अमरीकी भक्त–मण्डली उनके प्रस्थान करने के एक माह पश्चात् भारतवर्ष के लिए प्रस्थान करे और अँग्रेज़ मण्डली कुछ सप्ताहों के पश्चात् आवे। उसके अनुसार मैंने और मैलकाम ने लिवरपूल से ''एलीसिया'' नामक समुद्री जहाज द्वारा प्रस्थान किया और मार्सेलीज में नोरीना मचबेली, एलिज़ाबेथ पैटरसन, एस्टेलो गेली और उसकी पुत्री रानो हमारे साथ हो गईं।

पूर्व और पश्चिम का मिलन

उस यात्रा में हमने मार्सेलीज में उतर कर बगल में बने हुये बाज़ारों तथा पुराने शहर की सैर करते हुये एक आनन्दपूर्ण दिन व्यतीत किया, और तत्पश्चात् पोर्ट सैयद में उतरकर रहस्यपूर्ण 'पूर्वी जगत' से हम लोगों

ने प्रथम सम्पर्क किया। इनके अतिरिक्त हमारी यात्रा लम्बी तथा थकाने वाली प्रतीत होती थी, जो बाबा के समीप पहुँचने की हमारी उत्सुकता के कारण निःसन्देह प्रचण्ड हो गई थी। अन्ततः जब हमारा चिर–प्रतीक्षित दिन आ पहुँचा, मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो मेरे गत जीवन का सब कुछ उन अनेक सागरों में धुलकर साफ हो गया था जिनको हमने पार किया था। 8 दिसम्बर को जिस समय सूर्य नगर के गुम्बजाकार क्षितिज में अस्त हो रहा था, ठीक उसी समय हम बम्बई (अब मुंबई) पहुँच गये। रुस्तम, जिससे कुछ वर्ष पूर्व हम हालीवुड में मिले थे, हमसे जहाज़ के विश्रामस्थान में आकर मिला और हमने बाबा के प्रेमियों के रिवाज़ के अनुसार परस्पर आलिंगन किया, और अंग्रेज़ फौजी परिवारों के कठोर लोग पूर्णतया आश्चर्य चकित होकर यह दृश्य देखते रहे ! रुस्तम ने चमेली तथा लाल गुलाब के फूलों के सुन्दर हार हम लोगों को पहिनाये। तत्पश्चात् जहाज की छत के नीचे नोरीना की कोठरी में हम कुछ और बाबा–प्रेमी पुरुषों तथा स्त्रियों से मिले। महिलायें रंगीन देशी साड़ियों से सुन्दर ढँग से सजी हुई थीं। जिस समय इन दयालु तथा नम्र महिलाओं ने हम लोगों से अभिवादन किया मुझको ऐसा महसूस हुआ मानो मैं अत्यन्त प्रिय बहिनों से मिल रही थी जिनसे मैं लम्बे समय से परिचित थी। उनमें से कुछ महिलायें ही अँग्रेज़ी में बात कर सकतीं थीं, और हम उनकी भाषा में बात नहीं कर सकते थे, परन्तु बाबा के प्रति जो गहरा प्रेम हमें भारतवर्ष खींच लाया था वही हमें इन लोगों के निकट खींच ले गया और उसने सभी कृत्रिम सीमाओं को समाप्त कर दिया।

तदनन्तर, जिस समय हम जहाज़ी डाक के चुँगीघर में अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे, हमें बाबा के आध्यात्मिक परिवार के अन्य सदस्य मिले जिनमें से प्रत्येक ने हमारा वैसा ही हार्दिक तथा प्रेमपूर्ण स्वागत किया। यह सचमुच हृदयों का भोज था, जैसा कि 'पूर्व' और 'पश्चिम' के इस मिलन को देखने वाले अनेक लोगों ने सोचा होगा। चुंगी का भुगतान आश्चर्यजनक तीव्रता के साथ हो गया और हमारी टोली के सामान के साठ या सत्तर अदद मोटर ठेलों में लाद दिये गये। रुस्तम इस बात की देखभाल कर रहा था कि प्रत्येक कार्य शीघ्रतापूर्वक तथा ठीक तरह से

होवे। फिर हम उसकी मोटरकार द्वारा मैजेस्टिक होटल गये, जहाँ हम रात को ठहरे।

दूसरे दिन प्रातः जिस समय हमारा साथी हमको मोटरकार पर नगर में ले चला, हम खाड़ी के ऊपर बसी सुन्दर आबादी मलावार पहाड़ी से होकर गुज़रे। हमने पारसियों का शान्ति–स्तूप (Tower of Silence) जाकर देखा, जहाँ गिद्ध मनुष्य के शव को मीनार पर रक्खे जाने के कुछ क्षणों में ही खा जाते हैं। हम प्रमुख चलचित्र कला–भवन में रुके जहाँ रुस्तम का अभिनन्दन एक पुराने मित्र की भाँति किया गया। उसका परिवार चलचित्र थिएटरों का मालिक है। फिर हम बाजारों से होकर चले जहाँ धूल, गरमी, रंग, संगीत, गन्धयुक्त खाद्य वनस्पतियों की गन्धें, मसालों की सुगन्धियाँ, धूप में तपे लोगों के शरीर, सबके समिश्रण से एक ऐसा अविस्मरणीय बाहरी वातावरण बन रहा था जो मन को आकर्षित भी करता था और उसको बिचका कर दूर भी हटाता था। फूलदार छपी साड़ियाँ पहिने हुए महिलायें अपने सिरों पर पीतल तथा ताँबे के चमकते हुए कलश लिये हुए शाही सज धज के साथ जा रही थीं। पुरुष धोती तथा लँगोटी पहिने हुये आलस्यपूर्वक घूमते फिरते थे; गन्दगी तथा मानवीय दुर्दशा की नाना श्रेणियों में ग्रसित भिखारी लोग भिक्षा के लिये घिघिया रहे थे; अर्द्ध–नग्न बच्चे नाक में बालियाँ तथा हाथों में चाँदी के चूड़ा पहिने हुये नंगे पैर इधर उधर दौड़ते फिर रहे थे–मनुष्यों का भारी कोलाहल था, बहुत मन्द चला–फिरी थी। इस समय तक सूर्य आकाश में काफ़ी ऊँचा चढ़ आया था, और हमारे शरीरों में भी आलस्य आने लगा।

प्रातःकालीन समाचार पत्रों में हमारे आगमन का समाचार तथा हमारे फोटो प्रकाशित हो गये थे, जिसका फल यह हुआ कि जिस समय हम दुकानों में चीज़ें खरीदने के लिये जाते थे उस समय लोगों की भीड़ हमारी मोटरकार के चारों ओर लग जाती थी अथवा दूकानों के बाहर हमारी प्रतीक्षा करती थी। वह भीड़ निस्सन्देह पश्चिमी लोगों को देखने के लिए उत्सुक थी जो एक पूर्वी सद्‌गुरु के चरणों के समीप बैठने के लिये दुनियाँ को पार करके आए थे।

तीसरे पहर के अन्तिम काल में हम लोग मोटरकार द्वारा इगतपुरी गये और लगभग नौ बजे रात को हम वहाँ पहुँच गये। यहाँ हम लोगों के लिए काका तथा बाबा के भाई आदी ने प्रेम पूर्वक एक बंगला तैयार कर रक्खा था। बम्बई (अब मुंबई) की कष्टदायी गरमी में रहने के पश्चात् इस पहाड़ी प्रदेश की शीतलता तथा शान्ति में रात्रि–विश्राम पाने के लिये कृतज्ञता महसूस करते हुये, हम लोग जल्दी ही सोने चले गये।

दूसरे दिन सुबह जैसे ही हमने कलेवा समाप्त किया था, बाबा मोटरकार द्वारा आ पहुँचे और तब हमको ज्ञात हुआ कि हम सचमुच भारतवर्ष में थे ! उन्होंने हम लोगों को समझाया कि वह हमारे लिये नासिक में निवासस्थान बनवा रहे थे जिसके पूर्ण होने में अनिवार्य कारणों से कुछ देरी थी, इसलिये तब तक हम लोगों को किसी अन्य स्थान में ठहरना था। इसके लिये उन्होंने भंडारादारा चुना जो हमारे लिये अधिक शीतल तथा अधिक सुविधाजनक स्थान था। दो दिन के पश्चात् हम लोग इस सुन्दर पहाड़ी स्वर्ग में जाकर रहने लगे।

आश्रम डीलक्स

इगतपुरी में हमसे मिलते समय बाबा ने भाँप लिया था कि हम लोग भारतवर्ष में प्रचलित आधुनिक सुविधाओं के अभाव से शीघ्र सामंजस्य करने में असमर्थ थे। इसलिए हम लोगों को अधिकांशतः पुनः आश्वासन देने के लिये ही बाबा ने, हम लोगों के भंडारदारा जाने के पूर्व, नासिक में हमारे नए निवास स्थान को हमें दिखाने का प्रबन्ध कर दिया। यद्यपि उन्होंने लन्दन में हम लोगों से आश्रम के कुछ विशेष रूपों का वर्णन किया था, तथापि हम लोग यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुये कि उन्होंने हमारी आवश्यकताओं का कितना अधिक ध्यान रक्खा था, जो बाबा के आधुनिक भारतीय आश्रमों में सबसे अधिक आधुनिक इस आश्रम में सर्वत्र प्रत्यक्ष था। उसमें मल–मूत्र तथा गन्दा पानी इत्यादि निकालने की ऐसी पद्धति बनाई गई थी जिसको अपने घर में बनवाने का गर्व नासिक के तीस हजार नागरिकों में सबसे धनी नागरिक भी नहीं कर सकता था। सब कमरों में गरम तथा ठण्डे पानी के नल लगवाये गये थे और हमारे पीछे वाले प्रत्येक ओसारे के कोने में पानी को ठण्डा करने वाले छोटे स्वच्छ पात्र रक्खे थे।

सभी कमरे वस्त्र रखने की लकड़ी की आधुनिक अलमारियों और सादा मेज़ों से सुसज्जित थे। स्प्रिंगदार पलंगों पर चमकीले नीले रंग के बढ़िया महीन कपड़े के बिछावन बिछे थे और हर पलंग में मच्छरदानी लगी थी। हर कमरे की खिड़की के नीचे लिखने की एक मेज और एक कुरसी थी। दीवारों पर सफ़ेदी पुती थी और वे पीलापन लिये हुये सफेद रंग के लकड़ी के काम तथा नीली किनारियों से युक्त थीं। इस नई इमारत में, जो पूर्ण हो रही थी, मध्यम परिमाण के बारह कमरे थे और उन सबके दरवाज़ों के आगे एक लम्बा बरामदा था। हर दो कमरों के बीच में स्नान करने का एक फ़ौवारा तथा शौचालय था, और पीछे की ओर, हर दो कमरों को मिलाता हुआ, एक एकान्त ओसारा था जिसमें आराम कुर्सियाँ पड़ी थीं।

उस जायदाद पर बनी हुई पहले की इमारतें एक मनोहर बाग़ के चारों ओर बनाई गई थीं और उनमें सुन्दर नीला रंग पोता गया था। मुख्य घर में रहने के लिये एक विशाल तथा सामान्य कमरा था जो नीले वस्त्र से आच्छादित आराम कुर्सियों तथा पलंगों, एक पिआनो, और एक रेडियो से आकर्षक रूप से सुसज्जित था। भोजन करने के कमरे में एक लम्बी भोजन करने की मेज थी जो बीस आदमियों के बैठने के लिए थी। कई रसोई घर थे जो सामग्री से भली प्रकार परिपूर्ण थे। दो कमरों तथा स्नानगृह का एक सूट (Suite) हमारी पश्चिमी टोली के दो जनों के लिये निश्चित किया गया था, और एक बड़ा दोहरा कमरा तथा स्नानगृह दो अन्य जनों के रहने के लिये दिया गया था। हममें से शेष जन नई इमारत में रहते थे। पुराने बँगले से लगा हुआ बाबा का छोटा कमरा था जिसमें केवल एक लोहे की चारपाई तथा एक कुरसी थी। उससे लगा हुआ एक कमरा भारतीय शिष्यों के लिए था जिन्हें बाबा 'लड़के' कहते हैं। बंगला से अलग नौकरों के निवासस्थान थे। मुख्य घर के समीप एक छोटा घर था जिसमें रुस्तम की पत्नी फ्रेनी अपने बच्चों तथा नौकरों सहित रहती थी।

बाबा की अद्वितीय विचारशीलता का एक खास उदाहरण मुझे याद आता है। नोरीना के कमरे का द्वार कुछ नीचा था, इसलिये बाबा ने यह सोच कर कि उसका सिर उससे टकरा सकता है, आज्ञा दी थी कि उसमें

सावधानी के साथ गद्दी लगा दी जाये। ऐसा प्रतीत होता था कि बाबा के प्रेम ने प्रत्येक आवश्यकता तथा प्रत्येक आकस्मिक घटना को पहले से देख लिया था।

चाय पीने की मेज़ बाग़ में लगा दी गई थी। जिस समय हम वहाँ बाबा के साथ चाय पीने के लिये बैठे, सूर्य देदीप्यमान शोभा के साथ सुदूर पहाड़ियों के पीछे अस्त हो रहा था। फ्रेनी एक दयालु यजमानिन थी और उसका सुन्दर चेहरा बाबा के प्रति उसकी भक्ति से दीप्तिमान था जो उसके सुंदर नेत्रों से टपक रही थी। उसका सबसे छोटा बच्चा, जो उस समय पाँच वर्ष का बालक था, ईश्वर का इतना सुन्दर अंश था जैसा कभी किसी को नहीं मिल सकता। उसके विशाल काले नेत्र एक क्षण में शरारत से चमकते थे, दूसरे ही क्षण गहनता तथा गम्भीरता से परिपूर्ण होकर मनुष्य को प्रायः मोहित कर लेते थे। चायपान के अधिकाँश समय में वह बाबा की कुरसी के बराबर खड़ा हुआ उनके बाल सहलाता रहा और बाबा के गालों तथा गर्दन पर अपना छोटा कोमल हाथ फेरता रहा। थोड़ी थोड़ी देर में बाबा अपनी अत्यंत कोमलतापूर्ण चितवन उसकी ओर करते थे, और एक क्षण के लिये वह उनसे चिपट जाता था। अन्ततः बाबा ने हमको वहाँ से चले जाने का संकेत किया। हम लोगों ने उनको अनिच्छापूर्वक विदाई दी, परन्तु इस बार उनसे थोड़े ही समय का वियोग था। तीन दिन बाद उन्हें हम लोगों से भंडारदारा में मिलना था।

हम लोग भंडारदारा में दो सप्ताह रहे। उस बीच में बाबा थोड़े थोड़े दिनों बाद हम लोगों को देखने आते थे, और हर बार दो दिन ठहर कर एक–दो दिन के लिए नासिक अथवा मेहेराबाद लौट जाते थे। इसी दौरान में एक बार आने पर उन्होंने अपनी एक भारतीय शिष्या की चर्चा की जो तीन वर्ष से अधिक समय तक समाधि–अवस्था में एक कोठरी में बन्द रही थी। इस पर पश्चिमी मण्डली की एक महिला ने आश्चर्य पूर्वक कहा : ''कैसी भीषण बात !'' यह सुनकर बाबा ऊपर को देखते हुए मुस्कराये और कहा : ''भीषण बात नहीं है। आश्चर्यजनक बात है ! वह निरन्तर आनन्द का उपभोग कर रही है, परन्तु इस समय उसको बाहरी जगत का ज्ञान नहीं है। तुम सब लोग भी वही परमानन्द प्राप्त करोगे, परन्तु तुम लोगों में

से किसी में भी बाहरी जगत की चेतना का ह्रास न होगा, क्योंकि तुम लोग उस आनन्द का अनुभव 'ज्ञान' के सहित करोगे। परमानन्द का अनुभव करने वाले मनुष्य के लिए दोनों अवस्थायें एक ही समान होती हैं, परन्तु जिस अवस्था का उपभोग तुम लोग करोगे वह दुनियाँ में तुम्हारी उपयोगिता को कम न करेगी। तुम लोगों में से कुछ को परमानन्द के कुछ क्षण प्राप्त हो चुके हैं, परन्तु वे अज्ञानता के दुःख से मिश्रित थे।''

दूसरे दिन बाबा ने हम लोगों को आदेश दिया कि हम लोग अपने मनों को 'कोरा' बनाने के विचार से ध्यान किया करें। बाद में जब हम लोगों ने बाबा को सूचित किया कि हमको उसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई थी, तो उन्होंने समझाया कि चेतन प्रयास के द्वारा मन को निश्चल करना अत्यन्त कठिन है– क्रियात्मक रूप से अत्यन्त असम्भव है। तथापि केवल जिस समय निम्नतर मन स्थायी रूप से निश्चल हो जाता है तभी ईश्वर–चेतना का स्थायी साक्षात्कार हो सकता है। जब परिमित मन अपार परमात्मा के साथ अन्तिम मिलन में लुप्त हो जाता है, तब परिमित व्यक्तित्व के स्थान को 'अपरिमित' व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है। उस अवस्था में आत्मा ईश्वर–चेतना रखने के साथ–साथ उसका 'ज्ञान' रखती है, और उसका ज्ञान रखने में, अपने व्यक्तित्व को स्थिर रखती है, जिसका लोप 'नहीं' होता वरन् उसका विस्तार एक सर्वव्यापक रूप में हो जाता है।

भंडारदारा में हमारे प्रवासकाल के अन्तिम सप्ताह में नाडिना टाल्सटाय तथा हमारा मित्र गैरेट आ गये। यह जानकर कि गैरी का मन प्रश्नों से बहुत उत्तेजित हो रहा था, बाबा आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने के लिए सहमत हो गये, जिस जीवन को बाबा आदर्श में रखते थे तथा जिसकी शिक्षा देते थे :

''ईश्वरत्त्व मानवता से शून्य नहीं होता–वह पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व को ऊँचा उठाकर ईश्वर में मिला देता है; और आध्यात्मिकता में आवश्यकतया सान्सारिक क्रियाकलाप का परित्याग ज़रूरी नहीं होता है। सच्ची आध यात्मिकता का अर्थ है सान्सारिक वासनाओं का 'भीतर से' परित्याग। केवल बाहरी परित्याग–अर्थात् संन्यास–से आध्यात्मिकता प्राप्त नहीं होती। पूर्णता एक मिथ्या संज्ञा होगी यदि वह प्रकृति के द्वन्द्वात्मक

आविर्भावों से पीछे हटकर उलझन से बचने का प्रयत्न करती है। पूर्ण पुरुष को समस्त माया के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक है, चाहे वह माया कितनी ही आकर्षक और कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो। एक 'पूर्ण प्राणी' अत्यन्त व्यस्त क्रियाकलाप के मध्य में और जीवन के समस्त रूपों के सम्पर्क में पूर्ण विरक्ति के साथ कार्य करता है।''

बाद में, जब गैरेट ने बाबा के विनोदभाव के प्रति आश्चर्य प्रकट किया, तो बाबा ने उसको स्मरण दिलाया कि ''जो कुछ भी सुन्दर तथा शोभामय होता है वह सब ईश्वरत्व में निहित होता है'', और फिर उससे पूछा : ''तब तुम एक ''पूर्ण प्राणी'' के विनोद भाव से शून्य होने की कैसे आशा कर सकते हो ?''

नासिक के लिये हम लोगों के प्रस्थान करने के पूर्व, बाबा ने हम लोगों को अपने पास बुलाकर बताया कि वह अपने आगामी कार्य में भाग लेने के हेतु हम लोगों को किस प्रकार शिक्षित करेंगे। ''तुममें से प्रत्येक को अपनी व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार मेरे कार्य में सहायता करना है; और जिस सीमा तक तुम दुनियाँ में रहोगे, वह उस प्रकार के कार्य द्वारा निश्चित होगी जिसको करना तुम्हारे प्रारब्ध में है। मैं तुम लोगों को सिखाऊँगा कि तुम किस प्रकार दुनिया में चलो और फिर भी मेरे अपार अस्तित्व से निरन्तर आन्तरिक संसर्ग में बने रहो। ...अपनी शिक्षा के अंग स्वरूप तुमको नासिक की सुविधाओं और मेहेराबाद की असुविधाओं दोनों का अनुभव करना पड़ेगा।''

22 दिसम्बर को हमने भंडारदारा से प्रस्थान किया। एक अर्थ में हम वहाँ से जाने के लिये अनिच्छुक थे, और दूसरे अर्थ में हम नए निवास–स्थान में बसने के लिये उत्सुक थे जिसमें बाबा के कथनानुसार हमें पाँच वर्ष तक रहना था। यह अस्थायी प्रवास हमारे भारतीय जीवन के लिये एक सुन्दर भूमिका सिद्ध हुआ। इस स्थान का प्राकृतिक सौन्दर्य समयविहीनता के गुण से पूरित था जो केवल भारतवर्ष में पाया जाता है। हमारे सम्मुख स्थित विशाल झील के चारों ओर गगनचुम्बी पर्वत शिखर खड़े थे। बाबा ने हम लोगों को बताया था कि यह प्रदेश प्राचीन महर्षियों का निवास स्थान रहा था, और इन पर्वतों द्वारा सुरक्षित मौन में निमग्न उनको कल्पना

में देखना सरल था। समय की माया से अबाधित, वे अनन्तता के सन्तरियों की भाँति खड़े हुए, अपने ढाँचों में उन मूल रूपों का प्रदर्शन कर रहे थे जिनसे मानव जाति के एक 'महान पिरामिड' के लिए, मायाओं के एक 'गुहा मन्दिर' के लिए, एक पारथेनन (Parthenon) के लिए, अथवा एक 'अंगकोर वाट' (Angkor Vat) के लिए अपनी अन्तःप्रेरणा प्राप्त की थी।

आखिरकार नासिक आश्रम का निर्माण पूर्ण हो गया और हम लोग उसमें चले गये। लगभग एक सप्ताह के पश्चात् अँग्रेज़ मण्डली की किटी डेवी, मारग्रेट क्रैस्क, डिलिया डी–लीआन, टाम शार्मले, विल तथा मेरी बैकेट के आ जाने पर, और उसके एक सप्ताह पश्चात् रुआनो बोगिस्लाव के आ जाने पर, हम लोगों की संख्या बढ़कर पन्द्रह हो गई।

बाबा ने हमारे कमरे निर्दिष्ट कर दिये, और उन्होंने सदैव की भाँति उन लोगों को एक साथ निकट रखने में अपनी बुद्धिमत्ता दिखाई जो एक दूसरे के विकास में सबसे अधिक सहायक हो सकते थे। वह माल–गोदाम के द्वार पर खड़े हो गये जो हमारे सामान के लिए बनाया गया था, और इस बात को सावधानी से देखते हुए कि कोई भी महिला भारी सामान को उठाने में अपनी शक्ति को अत्यधिक न लगावे, उन्होंने हमारे सामान के उतारे जाने का खुद निरीक्षण किया। नासिक में इस प्रथम दिवस ही मेरा विशिष्ट शूली का मार्ग (Via Crucis) प्रारम्भ हो गया, जिसे भारतवर्ष में मेरे प्रवासकाल के आद्योपान्त ज़ारी रहना था। जो बात उस समय मुझको प्रत्यक्ष न हुई थी, परन्तु जिसे मैं अब सत्य जानती हूँ, वह यह है कि जिस समय कोई मनुष्य सद्गुरु की विशेष दयादृष्टि का पात्र बन जाता है–जैसी दयादृष्टि बाबा ने नासिक में हमारी टोली के ऊपर की थी–उस समय संस्कारों की प्रबलतायें शिष्य के ऊपर अपूर्व प्रखरता के साथ क्रियाशील होती हैं। व्यक्तिगत आत्मा ने समय के प्रवाह में की गई अपनी यात्रा में जो भी भले अथवा बुरे संस्कार संचित कर लिये हैं वे मनुष्य के चेतन ध्यान में निश्चित और कदाचित् दुःखदायी रीति से लाये जाते हैं। साहस और लोच (Resilence) के उन आध्यात्मिक गुणों का विकास करने के द्वारा जो तदनन्तर सद्गुरु की सेवा में प्रयुक्त होने के लिये शक्ति के रूप में परिणत हो जाते हैं, मनुष्य सभी नकारात्मक प्रतिक्रियाओं के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिये परिस्थिति के द्वारा विशेष रूप से बाध्य किया जाता है।

यहाँ भारतवर्ष में ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की एक टोली थी जो जीवन के अनेक भागों से लिये गये थे। वे सब के सब विभिन्न तथा पूर्णतया वाचाल सम्मतियों के 'व्यक्ति' थे, और अत्यधिक स्फूर्ति से सम्पन्न थे। उन सबमें अहंभाव विद्यमान थे जिनकी किंचित सफ़ाई नहीं हुई थी, और चूँकि बाबा की आध्यात्मिक इलाज करने की यह रीति है कि वह आत्मा में ईश्वरशक्ति के स्वतन्त्र प्रवाह को रोकने वाली अहंकारी प्रवृत्तियों को उभाड़ कर प्रकाश में लाते हैं, अतः हमारा आश्रम विस्फोटक बारूद का अत्यन्त शक्तिशाली भण्डार सिद्ध हुआ।

चूँकि मेरे कर्मफलों का बहुत सा मलवा शारीरिक बीमारी तथा कष्ट के द्वारा बाहर निकल रहा था, इसलिये मेरे लिये शारीरिक अयोग्यता की बढ़ती का अनुभव करना अनिवार्य था। मेरे शरीर का एक भाग जो उस समय तक विरोध से मुक्त रहा था अब प्रायः निरन्तर पीड़ा से व्यथित था। हद दर्जे की अयनवृत्तीय (Tropical) गर्मी से, जो अधिकांश लोगों में आलस्य अथवा निर्बलता उत्पन्न करती है, मेरे सिर में भीषण पीड़ा होने लगी जो एक समय में कई दिनों तक ज़ारी रहती थी, और बीच बीच में कुछ क्षणों के लिए मुझे चैन मिलता था।

जिस समय मैं सिर की प्राथमिक पीड़ा को पार करने का प्रयत्न कर रही थी, उस समय सन्देश मिला कि हम सब बाबा के कमरे में एकत्रित होंवें। मुझको पहले कभी भी जितनी पीड़ायें हुई थीं उन सब में इस 'सिर' की पीड़ा पर विजय पाना अत्यन्त कठिन था, क्योंकि सन्निहित मानसिक 'प्रयत्न' पीड़ा को और भी अधिक बढ़ाता हुआ प्रतीत होता था। इस कारण से मैं अधिक कठोर हो गई, अव्यवस्था में अधिक निमग्न हो गई। निस्सन्देह बाबा ने मेरी समस्या को तत्काल भाँप लिया और उन्होंने मुझको आवश्यक शिक्षायें देने के लिए इस अवसर का प्रयोग किया, जिन्हें मैंने बहुत प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार न किया।

बाबा ने हमें बताया : ''जब मन अथवा शरीर में कोई एक थकित अथवा व्यथित होता है, तब दूसरा प्रतिक्रिया करता है। केवल 'आत्मा' ही ऐसे कष्टों से दूर रहने में समर्थ होती है। इन बातों से जिसकी शान्ति भंग होती है वह परिमित 'मैं' है—अर्थात् अहंकार है। यह 'मैं' सदैव 'सुखी'

रहने का इच्छुक होता है, और इसलिये वह कष्ट के आने पर अनावश्यक रूप से अशान्त हो जाता है। वह महत्त्वहीन बातों को महत्त्वपूर्ण समझता है और महत्त्वपूर्ण चीजों को महत्त्वहीन मानता है। यद्यपि शरीर की आवश्यकतायें गौण महत्त्व रखती हैं, तथापि उनकी ओर वास्तव में अवश्य ध्यान देना चाहिए।''

बाद में बाबा ने इसी विषय पर विस्तारपूर्वक कहा : ''मैं चाहता हूँ कि तुम लोग यहाँ भारतवर्ष में सादा जीवन व्यतीत करो; फिर, जब तुम लौटकर पश्चिमी जगत में पहुँचो तो तुम वहाँ अपना अभ्यस्त जीवन पुनः प्रारम्भ कर सकते हो, तथापि तुम्हें इन दोनों प्रकार के जीवनों से अप्रभावित रहना चाहिए। इस दृष्टि से तुम लोग आश्चर्य करोगे कि मैंने तुम्हारे लिये इन सुखों का प्रबन्ध क्यों किया है। उदाहरण के लिये, यदि मैं तुम्हें फर्श पर सोने की आज्ञा दूँ, तो शरीर विद्रोह करेगा और मन के ऊपर प्रतिक्रिया करेगा। ऐसे 'आकस्मिक' तथा कठोर परिवर्तन तुम्हें मन के द्वारा सत्यता प्रदान करने में मेरे कार्य को कठिन बना देंगे। इसलिए मैं इन सुखों को धीरे धीरे तुमसे खीचूँगा और बाद में उनको तुम्हें पुनः वापिस दे दूँगा। दुनियाँ आवश्यकताओं की दास है। परन्तु आवश्यकताओं को 'तुम्हारा' दास बनना चाहिए। तुमको अपनी आधुनिक सुविधाओं का प्रयोग करना सीखना चाहिए—उनके प्रयोग में खुद न आना चाहिये।''

उन्होंने हमें यह भी चेतावनी दी कि ''प्रारम्भ में तुम घबराहट, थकान तथा अशान्ति महसूस कर सकते हो, परन्तु तुम्हें इन भावनाओं से विचलित न होना चाहिये; वे तुम्हारे मनों और शरीरों की केवल स्वाभाविक प्रतिक्रियायें पश्चिम से पूर्व को तुम्हारी संक्रांति (Transition) के प्रति होंगी। पश्चिमी जगत की क्रियाशील, चेतन, बहिर्मुखी प्रवृत्ति के विपरीत, पूर्वी जगत चेतना के उदासीन आत्मिक रूप का प्रतीक है—गम्भीरता अन्तर्मुखी है। अतः वातावरण में ऐसा आमूल परिवर्तन तुम लोगों के लिये आवश्यक रूप से विचित्र तथा अशान्त करने वाला होगा।'' प्रारम्भ में कुछ सप्ताहों तक हम लोग अपना निजी दैनिक कार्यक्रम बनाने के लिये स्वतन्त्र थे, सिवाय दो नियमों के : प्रथम, हमें भोजन के समय की पाबन्दी करना थी; दूसरे, हमें आश्रम के चौबीस एकड़ क्षेत्र की सीमा के बाहर पैर नहीं रखना था।

समय–समय पर बाबा के साथ किये गये भ्रमणों के अतिरिक्त, यह पिछली आज्ञा बाबा के जन्मदिवस 18 फरवरी तक लागू रही।

बड़े दिन को सुबह बाबा हम लोगों से अभिवादन करने के लिये बहुत जल्दी हम लोगों के कमरों में आये। इस समय बाबा से प्रेम तथा कान्ति का विशेष प्रवाह हो रहा था। बाबा उस मात्रा में प्रेम सदैव प्रदान नहीं करते। समय–समय पर वह उसे जानबूझ कर रोकते हुए प्रतीत होते हैं, जैसा कबीरदास ने कहा है :

"मेरा प्रभु अपने आप को छिपाता है,

और मेरा प्रभु विचित्र रूप से अपने को प्रकट करता है।"

परन्तु इस सौभाग्यशाली सुबह बाबा बड़े दिन के उपलक्ष्य में हम सबके ऊपर अपना आशीर्वाद बरसा रहे थे।

सुबह होते ही भक्त लोग बाबा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये आने लगे, और 10 बजे तक आश्रम का मैदान पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों की भीड़ से भर गया, जिनमें से कुछ लोग कई मील पैदल चलकर आये थे, और अन्य लोग मोटरकारों अथवा रेलगाड़ियों से आये थे, और वे प्रियतम बाबा का दर्शन करने का निश्चय लेकर आये थे। बाबा के इन उत्कट अनुयायियों से मिलने पर, और उनके गहरे प्रेम तथा श्रद्धाभाव को देखकर, जो वे बाबा को अर्पित कर रहे थे, हम को अपने अद्वितीय सौभाग्य पर अत्यंत आश्चर्य होता था कि हम लोग बाबा की घनिष्ठ देख–रेख एवं पथ–प्रदर्शन प्राप्त कर रहे थे।

दोपहर को लगभग दो मोटरकारें समाज–भवन के सामने आईं, और कुछ क्षणों के उपरान्त ही आनन्द से परिपूर्ण ध्वनियों तथा जोश से भरे हुये अभिवादनों से हमको पता चला कि अँग्रेज़ भक्त–मण्डली आ गई थीं। इस मण्डली को बाबा किमको (Kimco) शब्द से पुकारते हैं, और अपनी बच्चों जैसी स्वच्छन्दता (Spontaneity) के कारण ये अँग्रेज़ शिष्य बाबा को विशेष रूप से प्रिय हैं; और उनके प्रेमपूर्ण स्वागत में बाबा का चेहरा चमक

उठा। सन्ध्या समय हम लोग लगभग 20 व्यक्ति एक सुन्दर सजी हुई मेज के चारों ओर बैठ गये, और बाबा प्रधान आसन पर विराजमान थे। उनके सामने भेंटों के ऊँचे–ऊँचे ढेर लगे थे, जिनको हमने अपने–अपने बक्सों से तीसरे पहर निकाला था और उन्हें बाबा के वितरित करने के लिए बिना लेबल लगे हुए बन्डलों के रूप में कर दिया था। निस्सन्देह कुछ भेंटें तो विशेष रूप से बाबा के लिये चिन्हित कर दी गई थीं। वह हर बन्डल को एक क्षण अपने हाथ में लिये रहते थे, मानो वह किसी विशेष व्यक्ति के लिये उसमें बन्द भेंट तथा उसकी उपयुक्तता निश्चित कर रहे हों। फिर, अपने नेत्रों में एक जगमगाहट लिये हुये, वह उसके पाने वाले जन को चुन लेते थे। मुझे स्मरण आता है कि मेरे भाग्य में शेनेल नम्बर 5 की एक बोतल आई थी।

भोज को अत्यधिक आनन्ददायी बनाने वाली चीज़ थी काका द्वारा दिया गया एक भाषण, जिनकी हास्यमयी अंग्रेज़ी निर्माण की अवस्था में थी। भोजन का प्रत्येक क्षण आनंद तथा उत्तम विनोद से परिपूर्ण था, परन्तु काका के भाषण पर पूरा कमरा हम लोगों के अट्टहास से प्रतिध्वनित होता था। बाबा ने इस भाषण की प्रस्तावना के रूप में हम लोगों को बताया कि बाबा ने उसको कई बार पढ़ा जाते हुये सुना था परन्तु वह इसके सिवाय उसका कोई अर्थ न लगा सके कि काका स्पष्टतः अपना विवाह करने के विषय में अधिक नहीं सोचते थे ! उस दृश्य का पूर्णतया गुण–विवेचन कोई भी जन तभी कर सकता है जब वह काका को जाने, अथवा उनको भाषण देता हुआ 'सुने'। वह बाबा के मज़ाक पर सुन्दर ढँग से मुस्कराये, परन्तु वह अत्यन्त गम्भीर और अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक तथा भीषण जोर शोर के साथ, मानो वह एक बहुत भारी जनसमूह के समक्ष भाषण दे रहे हों–भाषण देते रहे जबकि बाबा और हम सब लोग हँसी के मारे लोट–पोट हो गये। हम लोग बाबा से सहमत थे कि यह जानना कठिन था कि काका का भाषण किस विषय पर था। केवल यदा कदा हमें 'विवाह' शब्द सुनाई देता था और उस पर वह जो अत्यंत जोर देते थे उससे हम अनुमान लगाते हुये समझते थे कि वह उसके विषय में संदिग्ध थे !

तत्पश्चात् जब हम नेक काका के मत्थे अपना मनोरंजन कर चुके, बाबा ने संकेत किया कि वास्तव में हम पश्चिमी देशों के जनों की यह

बहादुरी होगी यदि कुछ माह उर्दू सीखने के पश्चात् हम लोग भारतवर्ष के निवासियों को भाषण देने का प्रयत्न करेंगे ! हम इसके लिए हृदय से सहमत हो गये।

भारतवर्ष में हमारे बड़े दिन के उत्सव के इस वृत्तान्त से यह देखा जा सकता है कि बाबा के साथ जीवन कितना सादा और स्वाभाविक होता है; कदाचित् वह उन लोगों के लिये हद से ज्यादा 'सादा' होता है जिन्होंने अब भी यह नहीं सीख पाया कि बचपन की खोई हुई खुशियों को किस प्रकार से पुनः पकड़ा जाये। तथापि, प्रभु ईसामसीह के शब्दों में हमको बताया गया है कि जीवन की 'सादी' तथा शुद्ध खुशियों को स्वीकार करने के लिये मनुष्य की यह बच्चों जैसी क्षमता ही उसको आध्यात्मिक राज्य के लिये योग्य बनाती है।

भारतवर्ष में हमारे प्रवास के दौरान बाबा ने अपना समय अपने तीन आश्रमों में विभाजित कर दिया था—पश्चिमी व्यक्तियों के लिये हमारा नासिक का आश्रम, पूर्वी देशों के शिष्यों व शिष्याओं के लिये मेहेराबाद आश्रम, और राहुरी आश्रम जहाँ इस समय ईश्वरोन्मत लोग रक्खे जाते थे। आध्यात्मिक रूप से चौधियाते हुये व्यक्तियों के प्रति वह कार्य बाबा के क्रियाकलाप का एक नया पहलू है, और यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू भी है। हमारे भारतवर्ष जाने के लगभग एक वर्ष पूर्व बाबा ने इस लाक्षणिक तथा दयापूर्ण सेवा का श्रीगणेश किया था। उन्होंने अपने कुछ शिष्यों को बड़े—बड़े शहरों के बाजारों में इसलिये भेजा था कि वे मानसिक विकृति वाले विशेष प्रकार के लोगों को ढूँढ़कर लावें जिनके साथ बाबा कार्य करना चाहते थे। बाबा विशेषतः ऐसे लोग चाहते थे जिनके मन ईश्वरप्राप्ति के लिये प्रबल उत्कण्ठा, अथवा बिना पथ—प्रदर्शन के योगाभ्यास करने, के द्वारा असन्तुलित हो गये थे—अथवा, जैसा कि हम मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर जंग की परिभाषा में कह सकते हैं, वे लोग जो मूलरूप के (Archetypal) अनुभव में चूर थे। जब वे लोग बाबा के पास लाये जाते थे, तो वह तुरन्त समझ जाते थे कि वे 'ईश्वरोन्मत्त' थे जैसा कि बाबा उन्हें कहते थे, अथवा वे किसी शारीरिक रोग या अन्य मनोवैज्ञानिक कारणों से मानसिक विकृति के शिकार थे। यदि उन लोगों में से कोई इन दूसरी श्रेणियों में होते थे,

तो कुछ समय तक उनका इलाज किया जाता था, और फिर उनको नये वस्त्र तथा पैसे देकर लौटा दिया जाता था। 'ईश्वरोन्मत्त' लोगों की सेवा बाबा राहुरी में करते थे जो जंगल में स्थित शान्ति तथा सुरक्षा का एक नखलिस्तान (Oasis) है— वह उस सेवा का प्रतीक है जो बाबा पृथ्वी के अपने उन 'समस्त' बच्चों की करते हैं जो कि अचेतन मन के खतरनाक जंगलों में भ्रमित और चौंधियाते हुये इधर—उधर भटकते फिरते हैं।

इन आध्यात्मिक रूप से चौंधियाये हुये लोगों का उपचार करने की बाबा की पद्धति निराली है। सदैव की भाँति, वह उनको जो आध्यात्मिक लाभ प्रदान करते हैं उसके प्रतीक स्वरूप वह एक भौतिक माध्यम का प्रयोग करते हैं। कोई भी मनुष्य बाबा की इन 'मस्तों' को स्नान कराने, वस्त्र पहिनाने, और भोजन कराने की संस्कारिक क्रियापद्धति को देखकर यही अनुभव करता है कि उसके द्वारा कोई अत्यन्त गहरी तथा अर्थपूर्ण बात की जा रही है। बाबा इन मस्तों से व्यवहार करते समय प्रगाढ़ एकाग्रता, अपरिमित प्रेम तथा कोमलता की वर्षा करते हैं; और वे लोग छोटे बच्चों जैसे सहज पूज्यभाव के साथ बाबा की उस क्रिया का प्रत्युत्तर देते हैं। वह कभी भी उनके ऊपर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालते; और यदि वे लोग नहलाये जाने, खिलाये जाने, तथा वस्त्र पहिनाये जाने की मौज़ में नहीं होते—और उनमें से कोई भी वस्त्र पहिनने में प्रसन्न होता प्रतीत नहीं होता—तो बाबा उनके निकट बैठे हुए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहते हैं जब तक कि उनके 'आगे बढ़ने का' संकेत नहीं मिल जाता।

उन अनेक लोगों में से, जिनको यह आध्यात्मिक आशीर्वाद प्राप्त हो गया है, अधिकांश जन अपने मानसिक सन्तुलन को पुनः प्राप्त करने के पश्चात् अपने घरों को वापिस भेज दिये गये हैं। अपनी आध्यात्मिक तैयारी की मात्रा के आधार पर, वे लोग अपनी चेतना की मौजूदा भूमिका पर अपना मानसिक सन्तुलन प्राप्त करते हैं, अथवा वे खतरनाक आत्मिक उलझनों से परे और अधिक ऊँची तथा अधिक सुरक्षित भूमिका पर बाबा द्वारा पहुँचाये जाते हैं। जैसा कि कितने ही लोगों के उदाहरणों में होता है, यदि उन्होंने अपने में उच्च चेतना की अवस्था उत्पन्न कर ली थी जिसके लिए वे अपने चरित्र विकास द्वारा तैयार नहीं थे, तो बाबा उनको

साधारण कार्य–शक्ति पुनः प्राप्त करा देते थे और इस बात की देखभाल करते थे कि उनको सामान्य जीवन व्यतीत करने में सहायता मिलती रहे।

भारतवर्ष में लगभग तीन सप्ताह रह चुकने के पश्चात् हम लोग पहली बार राहुरी आश्रम को देखने के लिए गये, जो एक अत्यन्त सादा परन्तु अत्यन्त रमणीक स्थान है। विशाल वृक्षों से आच्छादित बाड़ा के एक ओर चटाई से बनी छप्परदार ठाठों वाली झोपड़ियाँ एक पंक्ति में खड़ी थीं। सुदूर कोने में स्थित बाबा का छोटा सा घर विश्व के चार महान धर्मों के चिन्हों से सुसज्जित था–पारसी धर्म, हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, और ईसाई धर्म। एक विशेष रूप से विशाल वटवृक्ष के चारों ओर सीमेन्ट का एक गोल चबूतरा बना था। उस पर कुछ लोग बैठे हुये थे जिस समय हमारी मोटरकारें पहुँचीं। बाबा के पहुँचते ही वे लोग बाबा के चारों ओर एकत्रित हो गये, और उनके चेहरे बाबा के लौटने पर प्रत्यक्षतः खिल उठे थे। वे लोग चेतना जगत में व्यापार करते हैं, इसलिए बाबा के प्रेम के प्रति सहज प्रत्युत्तर देने में उनमें कोई बौद्धिक बाधा नहीं होती। उनमें से एक मुहम्मद नाम का मस्त, जो बाबा के कथनानुसार तीसरी भूमिका का मस्त था, उस समय अपना सिर और अपनी आँखें नीचे की ओर किये हुए घण्टों बैठा रहता था, और बाबा के सिवाय अन्य किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति संवेदनशील न रहता था। बाबा के प्रति वह बच्चों जैसी खुशी से प्रतिक्रिया करता था। बाबा के आगमन से कई घण्टे पहिले वह उनके आगमन की भविष्यवाणी कर देता था, और एक वर्ष के पश्चात्, जब बाबा ने उसको यूरोप ले जाने के लिये बुलाया, तो उसने आश्रम के संरक्षक बाबा के शिष्य से एक सप्ताह पहले ही बता दिया कि ऐसा सन्देश बहुत जल्द आयेगा। जब वह अन्ततः यूरोप पहुँच गया तो हम उसमें हुये परिवर्तन को देखकर चकित हुये। वह अपने नवीन वातावरण के प्रति सचेत था, नये चेहरों तथा नई परिस्थितियों में रुचि प्रकट करता था, और अपने नये पश्चिमी वस्त्रों तथा जूतों से विशेष रूप से प्रेम करता था जिसकी ओर वह हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करता था। वह स्पष्ट रूप से एक बिल्कुल नये मनोवैज्ञानिक जगत में व्यापार कर रहा था, और जिस दशा में हमने उसको सबसे पहले देखा था उसकी अपेक्षा अब वह लगभग तीन चौथाई मात्रा में अपने वातावरण के प्रति अधिक सचेत था। वह पूर्वी शिष्यों से

अपनी हिन्दुस्तानी भाषा में बात करता था, और उसमें कोई श्रम अथवा परेशानी नहीं दिखाई पड़ती थी। केवल जिस समय वह एक शिष्य द्वारा एक प्रश्न बारम्बार पूछे जाने पर खीझ उठा, तभी उसने एक असंगत हरकत की–उसने उस शिष्य के चेहरे पर थूक दिया ! हमारे यूरोप में तीन माह ठहरने के दौरान में बाबा ने मुहम्मद को प्रतिदिन स्नान कराने, वस्त्र पहिनाने तथा भोजन कराने की अपनी दैनिक क्रिया ज़ारी रक्खी, और बाबा ने हमको बताया कि मुहम्मद की चेतना एक उच्चतर भूमिका पर पहुँचाई जा रही थी।

बाबा ने समझाया : ''मस्तों का मानसिक असन्तुलन साधारण पागल मनुष्यों के असन्तुलन से अपने मूल कारण तथा स्वभाव दोनों से भिन्न होता है। साधारण पागल मनुष्यों के मानसिक संतुलन का ह्रास साधारण प्रकार के विघटन करने वाले मनोवैज्ञानिक तथा आत्मिक कारणों से होता है। शारीरिक क्षेत्र में, किसी प्रकार का रोग उस असन्तुलन का कारण होता है, जबकि मानसिक क्षेत्र में गहरी गड़ी हुई सहज प्रवृत्तियों और मनुष्य के रूढ़िगत नियमों में तीव्र तथा स्पष्ट रूप से हल न होने वाला द्वन्द्व पागलपन का मूलकारण होता है। मस्तों के उदाहरण में उनके असन्तुलन की अवस्था ईश्वर का साक्षात्कार करने की उनकी प्रबल प्रेरणा के कारण उत्पन्न होती है। जब आध्यात्मिक जिज्ञासु ईश्वर का अनुभव करने की अपनी तीव्र अभिलाषा से आगे बढ़ता है, तो उसका मानसिक ढाँचा अपनी सामान्य प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं सहित भंग हो जाता है। इस प्रेरणा के **सफल** अन्त में साधक पूर्ण अखण्डता तथा 'परमात्मा' से सीधे साक्षात्कार की मन से परे अवस्था में प्रवेश करता है। स्वाभाविक रूप से साधारण पागल आदमी और ईश्वरोन्मत्त व्यक्ति के इलाज की पद्धतियाँ भिन्न–भिन्न होंगी। साधारण पागल आदमी के उदाहरण में चिकित्सा की सामान्य पद्धति यह होती है कि जिन भौतिक कारणों से मानसिक गड़बड़ी उत्पन्न हुई है उनको निष्फल कर दिया जाता है। यदि उसके मूल में कोई मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है, तो विशेषज्ञों द्वारा किया गया विश्लेषण मानसिक असन्तुलन उत्पन्न करने वाले गहरे जमे हुये द्वन्द्वों तथा भावना–ग्रन्थियों को उभाड़ कर चेतना के धरातल पर लाने में सहायक होता है। दुर्भाग्यवश औसत दर्जे का विश्लेषक रोगी को इन समस्याओं को

हल करने की शक्ति प्रदान नहीं कर सकता। चाहे विश्लेषक अत्यधिक धैर्य, नम्रता तथा समझ का प्रयोग क्यों न करे, किन्तु जब तक उसमें रोगी की गुप्त 'आध्यात्मिक' शक्तियों को जागृत करने की क्षमता नहीं है तब तक कोई इलाज सम्भव नहीं है।

"इससे स्वाभाविकतया यह निष्कर्ष निकलता है कि साधारण विश्लेषक से, जिसको आध्यात्मिक यथार्थताओं में कोई अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती, ईश्वरोन्मत्त व्यक्ति की सहायता करने की किंचित आशा नहीं की जा सकती है, जिसके अनुभव एवं लक्ष्य–बिन्दु खुद विश्लेषक के अनुभव अथवा उसकी कल्पना तक की पहुँच से पूर्णतया परे होते हैं। केवल चेतना का परम आचार्य ही उनको वह सहायता प्रदान कर सकता है जिसकी उन्हें अत्यन्त आवश्यकता होती है। अपनी सूक्ष्मदर्शिता द्वारा वह उनकी आध्यात्मिक लालसाओं तथा उनकी विशेष व्यक्तिगत रूकावटों दोनों का मर्म समझने में समर्थ होता है, और अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करने के द्वारा वह उनको उनके लक्ष्य की ओर अग्रसर कर सकता है, अथवा उनको स्थूल चेतना में वापिस ला सकता है, जो भी उनकी स्थिति में ज़रूरी होता है।

"मन को लाँघने की प्रक्रिया में, मनुष्य के सामने इतने अधिक विघ्न आते हैं कि जिज्ञासु अपने मन का साधारण रीति से प्रयोग करने में असमर्थ होता है, और वह दिखावे में एक पागल मनुष्य की तरह आचरण करता है। परन्तु सद्‌गुरु, जिसको मन की क्रियाओं में सीधी अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है, मस्त की विशेष मानसिक दशा के वास्तविक कारण एवं प्रकृति को जानता है। वह यथार्थतया जानता है कि असन्तुलन की यह अवस्था किस आध्यात्मिक प्रेरणा से उत्पन्न हुई है और इसलिये वह अपने ही विशेष ढँग से मस्त को अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता देने में समर्थ होता है। आध्यात्मिक रूप से चौंधियाया हुआ मनुष्य ऐसी सहायता से अन्ततः पूर्ण अखण्डता तथा लय की अति सामान्य अवस्था को प्राप्त होता है।

"साधारण मनुष्य में जो सन्तुलन दिखाई देता है वह केवल अस्थायी होता है, और वह उसकी आत्मा के संघर्षपूर्ण तत्त्वों तथा उसके वातावरण

के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की उसकी योग्यता के कारण होता है। तथापि, मन को 'सच्चा' सन्तुलन प्राप्त करने के लिये अस्थायी सन्तुलन को काफी गड़बड़ होना पड़ता है। जब ऐसा किसी सद्‌गुरु की देखरेख के बिना घटित होता है, तब उसके फलस्वरूप एक दिखावटी पागलपन की अवस्था पैदा हो जाती है।"

राहुरी आश्रम के प्रारम्भिक काल में बाबा ने इस बात का संकेत किया था कि जिन मस्तों की ओर वह अधिक ध्यान देते थे वह दुनियाँ के मुख्य राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करते थे, और मुहम्मद जिसकी ओर वह विशेष ध्यान देते थे, जर्मनी का प्रतिनिधित्व करता था। बाबा ने शिष्यों को ये संकेत यूरोप में युद्ध छिड़ने के पूर्व दिये थे।

यदि सम्पूर्ण मानवजाति की चेतना ऊँची उठाई जानी है–जिसकी भविष्यवाणी बाबा करते हैं–तो उन राष्ट्रों को भी, जो पाताल के राक्षसों द्वारा पीड़ित हो गये हैं–अथवा मनोवैज्ञानिक भाषा में, विनाशकारी आदि रूपों (Archetypes) के कब्जे में हो गये हैं–इस पुनर्जीवन में भाग लेना चाहिये। कालान्तर में इस विशेष कार्य के और भी अर्थपूर्ण पहलू हम लोगों के सामने और भी स्पष्ट हुये।

मेहेराबाद की हमारी प्रथम यात्रा हमारे लिये महत्त्वपूर्ण यात्रा थी। यहाँ हमको 'मण्डली' के अन्य सदस्यों से मिलना था, और महिलाओं को भारतीय शिष्याओं की विशेष टोली से मिलना था। दिन की यात्रा की गर्मी से बचने के लिये हमने आधी रात के थोड़ी देर बाद ही नासिक से प्रस्थान कर दिया और हम लोग तड़के ही मेहेर–आश्रम पहुँच गये। जैसे ही हमारी मोटरकारें आश्रम–भवन के पास पहुँची वैसे ही बाबा के जन आश्रम के द्वार के बाहर एकत्रित हो गये। उनमें से कुछ लोगों को हम पहले से ही जानते थे और उनसे प्रेम करते थे, क्योंकि हम उनके साथ पश्चिम में अथवा नासिक में रहे थे; और इन नये 'भाइयों' के साथ हम वही शान्त–शक्ति, वही स्वार्थरहित प्रेम, और अपने सद्‌गुरु की सेवा में वही पूर्ण

हार्दिक समर्पण महसूस करते थे जिसके कारण अन्य सदस्य हमारे लिए प्रिय हो गये थे।

उनके निवास–स्थान समतल प्रदेश के एक खुले मैदान में बने हुये थे और उनसे दूर पर्वतमाला स्थित थी। आश्रम का भवन अत्यन्त सादा था, और उसमें एक मुख्य बड़ा कमरा था जो लगभग 30 फीट लम्बा और 20 फीट चौड़ा था। यह कमरा दिन के समय में सामान्य मीटिंग के स्थान का काम देता था, और रात के समय फर्श पर बिस्तर बिछाकर आश्रमवासियों के लिये शयनागार के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था। इस कमरे के एक ओर एक छोटा कमरा भोजन पकाने व भोजन करने के लिये था, और दूसरी ओर स्नान करने की कोठरियाँ थीं तथा पास–पड़ोस के ग्रामीणों के लिये मुफ्त औषधालय था। हर वस्तु इतनी निर्मल तथा स्वच्छ थी कि देखने वाले के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता था कि उसके फर्श तक भोजन करने के लिये आरोग्यकर होंगे।

पुरुष मण्डली से थोड़े समय मिलने के पश्चात, बाबा पश्चिमी महिलाओं को सड़क के उस पार पहाड़ी के ऊपर ले गये जहाँ छः पूर्वी महिलायें कई वर्षों से अलग रक्खी गई हैं। बाबा में स्थित हमारी पूर्वी बहिनों के साथ पश्चिमी महिलाओं का यह मिलन एक स्मरणीय अनुभव था। जिस समय हम लोगों ने परस्पर आलिंगन किया, हमको महसूस हुआ–जैसा कि हमने बम्बई (अब मुंबई) में अपने आगमन के दिन नाव के ऊपर अनुभव किया था–हमारे सद्गुरु के प्रेम ने किस तरह से हमको एकता के सूत्र में गूँथ दिया था और हमको भाषा अथवा पृष्ठभूमि की बाहरी सीमाओं को लाँघने में समर्थ कर दिया था। निःसन्देह इससे अधिक प्रतिकूल प्रकारों के व्यक्ति कठिनाई से एक सूत्र में पिरोये जा सकते थे ! अँग्रेज़ शिष्य–मण्डली में थी मारग्रेट क्रैस्क जो पहले रूसी नृत्य (Balle) में एक नर्तकी थी; ऐलिज़ाबेथ पैटरसन जिसका न्यूयार्क में निजी बीमा व्यवसाय था; नोरीना मचबेली जो एक अभिनेत्री थी और जो यूरोप के अनेक विशाल नगरों में बड़े–बड़े स्वागत–गृहों की मालिक थी; डिलिया डी लिओन और रुआनो बोगीस्लाव नाम की दो अन्य अभिनेत्रियाँ; रानो गेली नामक एक कलाकार; और जीन ऐड्रियल जिसने न्यूयार्क, फिलाडेल्फिया

तथा पिट्सबर्ग की गन्दी गलियों, खैरातखानों, जेलों तथा अस्पतालों में कई वर्ष तक सामाजिक कार्य किया था। व्यावहारिक रूप से ये सब की सब ऐसी महिलायें थीं जिन्होंने बहुत देशाटन किया था और जो, सार्वजनिक भाषा में, काफी 'ज़िन्दगी' देख चुकी थीं। हम लोगों के विपरीत ये एकान्तनिवास में रक्खी गईं बाबा की भक्त पुण्यात्मा महिलायें थीं, जिन्होंने हमारे भारतवर्ष पहुँचने के समय तक एक आश्रम से दूसरे आश्रम तक ही–अर्थात् सौ मील के भीतर ही यात्रा की थी, जिस समय बाबा अपना मुख्य स्थान समय–समय पर बदलते थे। इस महिला मंडली में बाबा की बहिन थी जो हमारे मिलने के समय लगभग 18 वर्षीय एक सुन्दर युवती थी, और उससे कुछ वर्ष बड़ी दो अन्य युवतियाँ थीं। वे तीनों अपनी दस बारह वर्ष की उम्र से बाबा के साथ थीं और उस समय से उन्होंने बाबा के अतिरिक्त किसी और पुरुष को नहीं देखा था। तीन प्रौढ़ महिलायें भी, जिनमें से एक उन नवयुवतियों में से एक की माँ थी, कई वर्षों से इस एकान्त जीवन में रह रही थीं। उनमें से कोई भी हमारे क्रियाशील पश्चिमी मनों तथा बौद्धिक बोझ से नहीं लदी थी। बाबा की बहिन बहुमुखी रचनात्मक प्रतिभाओं से सम्पन्न है। वह मनमोहक सहजता तथा सुन्दरतापूर्वक लिखती है, चित्रकारी करती है, गाती है, नृत्य करती है तथा अभिनय करती है। अन्य महिलाएँ हाथ के कार्य, कसीदा करने के काम तथा अन्य स्त्री–कार्यों में निपुण हैं; और उन सबको सब ईश्वरीय देनों से बड़ी देन ईश्वरीय प्रेम प्राप्त है जो बाबा ने उनके हृदयों में जागृत कर दिया है।

मुझको महसूस हुआ कि हमको उन लोगों से बहुत कुछ सीखना था, परन्तु यह देखना कठिन था कि उनके लिये हमारी क्या देन हो सकती थीं। सामान्यतः मेरा विचार है कि पश्चिम को पूर्वी जगत के लिए एक स्पष्ट देन देना है, जिस तरह से कि पूर्वी जगत को मानवजाति के लिये अपनी अद्वितीय बपौती देना है। आगामी समय में यह एकीकरण अवश्यमेव होना चाहिए, तभी मानवजाति चेतना में आगे बढ़ सकती है। 'इच्छाशक्ति' का चेतन रूप से प्रयोग करने के द्वारा पश्चिमी जगत का मनुष्य अपने भौतिक लक्ष्यों को जिस तरह प्राप्त करता है उसका सन्तुलन पूर्वी जगत के मनुष्य की संवेदनशील 'भावनात्मक' शक्तियों के साथ होना आवश्यक है। तथापि

इसके पहले कि द्वन्द्वों की यह एकता यथार्थ बन सके, पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों जगत के व्यक्तियों को, व्यक्तियों के रूप में तथा राष्ट्रों के रूप में, अपने अस्तित्व के खोये हुये अंग की आवश्यकता का ज्ञान हो जाना चाहिये।

परन्तु वे महिलायें हमसे कुछ भी प्राप्त करने की आवश्यकता रखती हुई प्रतीत नहीं होती थीं, क्योंकि बाबा ने इन्हें बहुत समय से इस प्रकार की चेतना में पाग दिया था जो मानसिक तथा भावनात्मक दोनों गतियों से परे होती है। मेहेराबाद पहाड़ी के ऊपर बना हुआ उनका घर, जिसमें वे अपने शान्त तथा सौम्य जीवन व्यतीत कर रहीं थीं, एक बारह फीट ऊँची चहारदीवारी से घिरा था। इस चहारदीवारी के भीतर लगभग चालीस वर्गफीट का एक अहाता था जिसके भीतर दो मकान आमने–सामने बने थे। उनमें से एक बड़ा मकान उस समय केवल एक बड़ा कमरा लगभग तीस फीट लम्बा व बीस फीट चौड़ा था। उस कमरे की मुख्य चीजें थीं लोहे के छः पलंग, जिनमें से प्रत्येक में मच्छरदानी लगी थी। हर पलंग के बराबर लकड़ी का एक छोटा बक्स रक्खा था, जिसमें महिलाओं की थोड़ी सी वस्तुयें रक्खी थीं और लकड़ी की एक सीधी कुर्सी रक्खी थी। वहाँ कोई गहने नहीं थे, कोई आविष्कार नहीं थे, कोई किताबें नहीं थी। उसकी तुलना में घोर संयमपूर्ण मठ भी विलासितापूर्ण था। तथापि किसी अकथनीय ढँग से उन लोगों के जीवन से एक सुन्दर रहन–सहन का प्रभाव मन पर पड़ता था। तपोमय पृष्ठभूमि के होते हुए भी, किसी को उनमें संन्यास का कोई भाव प्रतीत नहीं होता था। और, इस घर को धन्य तथा सुशोभित करते हुए बाबा के दीप्तिमान जीवन सत्त्व की ऊष्णता में वह हो भी कैसे सकता था ?

यद्यपि बाहर से उनके जीवन कठोरता से घिरे हुए, एकरस तथा अपर्याप्त थे, तथापि उनके चेहरों पर एक अधिक सुखी तथा सन्तोषपूर्ण जीवन की निश्चित छाप थी, जो सुख और सन्तोष हम पश्चिमी लोगों ने अपने तथाकथित परिपूर्ण व रंगीन जीवनों में कभी नहीं जाना था। हमने उनमें कल्पना तथा विवाद करने की प्रवृत्ति से युक्त बुद्धि को लाँघती हुई चेतना का परिणाम देखा। जिस समय वे खामोशी से तथा सुन्दर ढँग से

अपने साधारण कार्य करती थीं, तो देखने वालों को ऐसा भान होता था कि भौतिक अथवा आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का जोश उनमें नहीं था–भले ही पहिले कभी वह रहा भी हो। उनके स्वतन्त्र तथा सहज (Spontaneous) कर्मों से विशुद्ध आत्म–शक्ति प्रवाहित होती थी। अपने ऊपर से संस्कारों का बोझ उतारने की आवश्यकता न होने से और गपशप की ओर कोई रुचि न रखने के कारण वे बहुत कम बात करती थीं। परन्तु कोई भी मनुष्य देख सकता था कि वे गम्भीरतया तथा चेतनतया जीवन व्यतीत करती थीं; और उनमें से प्रत्येक एक पृथक 'व्यक्ति' थी।

इन पवित्र महिलाओं में से एक के विषय में एक अर्थपूर्ण कहानी बताई जाती है : जब वह सात या आठ वर्ष की एक बालिका थी, तब वह बाबा के प्रथम सद्‌गुरु बाबाजान के मुख्य स्थान पूना में रहती थी। एक दिन वह चलते चलते उस वृक्ष के निकट रुक गई जिसके नीचे बाबाजान अपनी शिष्य मण्डली तथा दर्शनार्थियों के सहित बैठी थीं। वृद्ध सद्‌गुरु बाबाजान ने बहुत प्रेमपूर्वक उस बालिका का स्वागत किया, और वार्तालाप के दौरान में उन्होंने उससे पूछा कि दुनियाँ में सबसे बढ़कर उसको क्या पसन्द था। उस छोटी लड़की ने उस प्रश्न पर कुछ क्षण विचार करने के पश्चात् उत्तर दिया कि वह अपनी सवारी के लिये एक 'सफ़ेद घोड़ा' चाहती थी। बाबाजान यह सुनकर मुस्कराईं और उन्होंने वादा किया कि उसको ऐसा ही घोड़ा प्राप्त होगा, और उस घोड़े के सहित उसको देखकर हर कोई उसका सम्मान करेगा। जब वह लौटकर अपने घर पहुँची तो उसकी माता ने उसको बताया कि उसने उसके लिए एक अचरज की बात कर रक्खी थी। माता ने उस दिन बाजार से एक बरफ़ के समान सफ़ेद घोड़ा मोल लिया था जो अहाते में बँधा था।

इस घटना की आध्यात्मिक सार्थकता उस समय स्पष्ट होती है जब हम इस बात को जानें कि इस युग का अवतार प्राचीन धर्मग्रन्थों में 'श्वेत अश्व अवतार' के रूप में बताया गया है; और चूँकि वह छोटी लड़की, जो अब एक सुन्दर युवती है, बाबा की मण्डली में एक विशेष उच्च स्थान रखती है, इसलिये यह कहानी केवल बाहरी अर्थ सूचित करने की अपेक्षा एक गम्भीरतर अर्थ का संकेत करती है।

जो मनुष्य बाबा की कार्य–विधि से परिचित है उसको यह बिल्कुल सम्भव प्रतीत होता है कि इन चुनी हुई तथा सुरक्षित रक्खी हुई महिलाओं के द्वारा बाबा स्त्रीजाति की आत्मा को उसकी चिरकालीन दासता से उठाते हुए जीवन के पुरुष पहलू की ओर अग्रसर कर रहे हैं, जिससे वह निकट भविष्य में आने वाले नवयुग में पुरुष की सहकारी होने के अपने निर्दिष्ट स्थान को ग्रहण करने में स्वतन्त्र हो सके, और उसकी बुद्धि द्वारा शासित होने तथा उसकी वासनाओं की दासी बनने के लिये अब उसके अधीन न रहे।

चूँकि हम पश्चिमी जन अब भी उस चेतन आन्तरिक स्वतन्त्रता से दूर थे जो इन पवित्र महिलाओं को प्राप्त थी, इसलिये हमारे जैसे बहुतेरों को मेहेराबाद की यात्राओं में तीव्र कष्ट भोगना पड़ता था। मुझे महसूस होता था मानो एक प्रकार की मानसिक शून्यता (Vacuum) में काम करने के लिए मेरी आवश्यकता थी। वह अनुभूति अत्यन्त अपरिचित तथा अत्यन्त अजीब थी, तथापि साथ–साथ वह शान्तिपूर्ण एवं सुन्दर थी। वह एक सुन्दर देश में छोड़ दिये जाने के समान थी जहाँ न तो भाषा बोली जाती है और न पढ़ी जाती है, किन्तु जहाँ लोग शान्त तथा प्रमुदित चेहरों सहित अपने अपने कार्यों पर इधर–उधर जाते हैं, और एक दूसरे से किसी आन्तरिक साधन के द्वारा भाव प्रकट करते हैं जिसका ज्ञान मनुष्य को अब तक नहीं है।

पश्चिमी व्यक्ति का देवता, अर्थात् बुद्धि, सिंहासन से उतारा जा रहा था, और एक पश्चिमी जन होने के नाते मुझको सच्चे ईश्वर को सिंहासन पर आसीन करना था–अर्थात् अपने अन्तस्तल में संतुलित आत्म–जीवन स्थापित करना था। मेरे भीतर जो अन्तर्द्वन्द्व पैदा हो गया था उससे मेरे सिर में भयंकर दर्द बढ़ गया जो मेरे लिये प्रायः दैनिक कष्ट बनता जाता था। तथापि पहाड़ी पर स्थित इस पवित्र स्थान से प्रस्थान करने पर मुझको सदैव महसूस होता था मानो मैंने एक पवित्र तथा गम्भीर अनुभव में भाग लिया हो। सन्ध्या समय वहाँ से मोटरकार पर जाते हुए, जिस समय पूर्वी जगत का सूर्य सुदूर स्थित पहाड़ियों के पीछे अस्त होता था और आकाश को द्रव लालमणियों, पुखराजों तथा नीलमणियों से चित्रित करता था, मैं अपने को निर्मल तथा उन्नत अवस्था में महसूस करती थी, और इस प्रकार

मैं सद्गुरु की आत्मा में अन्तर्निहित अतिश्रेष्ठ सौन्दर्य तथा बुद्धिमता का मर्म समझने में अधिक समर्थ प्रतीत होती थी।

चौबीस एकड़ जायदाद के भीतर बन्द रहने के कठोर बन्धन से हमें समय–समय पर उस समय छुटकारा मिलता था, जब हम लोग बाबा के साथ मोटरकारों द्वारा आध्यात्मिक महत्त्व के स्थानों की यात्रा करते थे। वह पहले हम लोगों को नासिक नगर ले गये, जो हमारे आश्रम से लगभग पाँच मील दूर था। वह हमको पश्चिमी सभ्यता से अछूता पूर्वी जगत का एक नगर प्रतीत हुआ; अर्थात् ऐसा नगर जो अपनी समस्त गन्दगी, मसालों की गन्धों, रँग तथा जंगली शोभा को स्थापित किये था। पहले हम धीरे धीरे बाजार से होकर गये जहाँ आगे से खुली दूकानों और उनमें पालथी मारकर बैठे हुए दुकानदारों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हुआ। हम उस दिन की आशा करते थे जब हम इन रहस्यपूर्ण सड़कों पर फुरसत से चल सकेंगे और मालूम कर सकेंगे कि उन पालथी लगाकर बैठी हुई शक्लों के पीछे क्या चल रहा है। हममें से कुछ लोग अब भी 'माया' द्वारा इतने अधिक प्रलोभित थे कि इस अजीब बाह्य पूर्वी वातावरण से हमारी जिज्ञासा चैतन्य हो गई थी। परन्तु स्वयं बाबा द्वारा संचालित इस यात्रा में हमें गोदावरी नदी के ऊपर बने पुल पर पहुँचने के पूर्व कहीं भी रुकने की आज्ञा न मिली। गोदावरी भारतवर्ष की तीन पवित्र नदियों में एक है। उसके किनारे पर बने हुये प्राचीन मन्दिरों की सीढ़ियाँ पानी के पास तक जाती थीं। यहाँ सैकड़ों तीर्थयात्री नदी के पवित्र जल में स्नान कर रहे थे और किनारों पर बने हुये अनेक मन्दिरों में पूजा कर रहे थे। दूर से वह छोटी काशी की भाँति दिखाई पड़ता था।

नासिक प्राचीन काल से भारतवर्ष के पवित्र नगरों में से एक माना गया है। इसके प्राचीन नाम 'जनस्थान' (बलिदान का स्थान) का उल्लेख 'रामायण' में मिलता है, जो हिन्दुओं का एक पवित्र ग्रन्थ है। उसमें कहा गया है कि अपने वनवास के दौरान में राम व उनकी धर्मपत्नी सीता ने यहाँ निवास किया था। यहाँ हमको इस महाकाव्य की आध्यात्मिक रूप से अद्भुत कथाओं से सम्बन्धित अनेक स्मृति–चिन्ह मिलते हैं।

अपनी पुस्तक ''मेरे साथ भारतवर्ष का भ्रमण कीजिये'' में मुकर्जी ने भी उल्लेख किया है कि नासिक उन स्थानों में से एक है जहाँ यह प्रसिद्ध है कि ईसामसीह ने भारतवर्ष की अपनी पौराणिक यात्रा में निवास किया था।

पुल पर रुकने के पश्चात् हम नगर के एक अन्य भाग से होते हुए गोदावरी तीर पर स्थित गंगापुर नामक स्थान को गये, जो शताब्दियों से पवित्र तीर्थस्थान रहा है। यहाँ बाबा हमको अलग अलग बने हुये अनेक मन्दिरों के बराबर से निकालते हुए शिलाओं के नीचे बने एक स्थान पर ले गये जो एक झरने की तल–भूमि में स्थित था। वह ऐसा स्थान था जहाँ योगी लोग ध्यान लगाने में आनन्दित होते थे, और झरते हुए पानी की गर्जन तथा लय उनको मन की स्थिरता प्राप्त करने में सहायता करती थी।

बाबा ऊपर लटकी हुई चट्टान के नीचे बैठ गये और हम लोग खामोशी के साथ उनके चरणों के समीप बैठ गये, जबकि झरने का पानी कल–कल शब्द करता हुआ हमसे कुछ गज की दूरी पर बह रहा था। हम लोग योगी नहीं थे, परन्तु हम वह गम्भीर शान्ति महसूस करते थे जो बाबा के साथ शान्त क्षणों में सदैव प्राप्त होती है। मन्दिर की देख–रेख करने वाले कुछ लोग, जो बाबा को पहिचान गये थे, अपने नेत्रों में पूजा का भाव लिए हुए एक ओर थोड़ी दूर पर खड़े हो गए। वे अजनबी लोग बाबा को जो पूजा अर्पित कर रहे थे उसको देखना हमारे लिए एक नया तथा सुन्दर अनुभव था।

बाबा के साथ हमने दूसरी साहसिक यात्रा पाण्डुलेना गुफाओं की की जो नासिक से लगभग 5 मील की दूरी पर स्थित है। वह यात्रा मेरे लिए विशेष रूप से अर्थपूर्ण थी। ये 22 गुफायें एक पर्वत के शिखर के समीप स्थित हैं जहाँ से चारों ओर के प्रदेश का बहुत सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। इनमें से अधिकाँश गुफाओं को पाण्डव बन्धुओं ने पहाड़ की चट्टानी दीवारों को काट काट कर बनाया था। पाण्डव अवतार कृष्ण के शिष्य थे, जो कुछ जनश्रुतियों के अनुसार ईसा से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व अवतरित हुये थे। पौराणिक कथा के अनुसार, अखिल भारतवर्ष के तत्कालीन राजाधिराज युधिष्ठिर पाँसे के खेल में अपना राज्य हार गये थे। उसके

दण्ड स्वरूप वह और उनके चार भाई, जिनमें अर्जुन एक थे, राज्य से निकाल दिये गये थे, जिससे वे लगभग 12 वर्ष तक बिना घर के वनवासियों की तरह घूमते फिरते रहे। उन्होंने अपनी इसी वनवास की अवधि में ही ये गुफायें अपने रहने के लिए बनाई थीं। यहाँ श्रीकृष्ण तथा अन्य महान ऋषि–मुनि उनसे मिलने के लिये आते थे, और यहीं से वे श्रीकृष्ण के साथ अनेक तीर्थयात्राओं पर गये थे। निसन्देह यह वनवास कुरुक्षेत्र के मैदान में हुये उस महाभारत की तैयारी का पहलू था जिसमें अर्जुन ने श्रीकृष्ण से दीक्षा पाई थी। ऐसा प्रतीत होता है मानों हाल ही में एक विस्तृत पैमाने पर उसी प्रकार का एक नाटक खेला गया है, और कदाचित् आगामी युद्ध का बाबा का पूर्व ज्ञान एक कारण था जिससे उन्होंने हमें विशेष रूप से इन गुफाओं को दिखलाया था। पुनः, एक शिष्य–मण्डली को बहुत समय से कठोर प्रशिक्षण दिया जा रहा था, जो 'विश्व'–दीक्षा की तैयारी के एक अंग स्वरूप था जिसकी घोषणा उसके बाद होने वाला विश्व–युद्ध करता था।

पाण्डवों के समय के पश्चात् अन्य आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्यों के साथ इन गुफ़ाओं में रहते रहे और उन्होंने इनके ऊपर अपने जीवनों की छाप छोड़ी। इनमें से एक विशेषतया असाधारण गुफ़ा में, एक प्रसिद्ध जैन गुरु अठारह जनों की अपनी शिष्य–मण्डली के साथ रहे थे। गुफ़ा के चारों ओर अर्द्धवृत्ताकार में फैला हुआ छज्जा सत्रह खम्भों के ऊपर स्थिर था, जिनमें से प्रत्येक खम्भा एक विशाल शिला–पात्र के ऊपर रक्खा था। गुफ़ा के केन्द्र में एक ऊँची चौकी अथवा वेदी थी। बाबा ने हमको बताया कि केन्द्र में सीढ़ियों के ऊपर, जहाँ इस समय बाबा आसीन थे, पूर्वोक्त गुरु बैठा करते थे और उनके शिष्य नीचे सीढ़ियों पर उनके चारों ओर बैठते थे, जिस समय वह उन लोगों को आध्यात्मिक सत्य की शिक्षा देते थे। उससे लगी हुई एक गुफ़ा थी जिसमें अठारह कोठरियाँ चट्टान काट कर बनाई गई थीं। उसका प्रयोग वे ध्यान करने के लिये करते थे।

एक अन्य गम्भीरतया प्रभावकारी गुफ़ा में, पीछे की ओर एक मेहराबदार ताख में, बुद्धजी की एक विशाल मूर्ति थी जो गुफा में प्रवेश करने पर पहले दिखाई नहीं देती थी, परन्तु जब मनुष्य की आँखें

अँधेरे की आदी हो जाती थीं तब वह अचानक विशाल शिल्प में खड़ी दिखाई देती थी, मानो कोई प्रकाश उसके पीछे से रहस्यमय ढँग से मुक्त कर दिया गया हो। इस गुफ़ा में विलक्षण आध्यात्मिक शक्ति थी। इसके भीतर मनुष्य को ऐसा महसूस होता था कि वह इसमें देर तक ठहरे और उन प्रबल तरंगों के साथ एक लय में बहे जिनको युगों के संचित ध्यान—चिन्तन ने उत्पन्न किया होगा; परन्तु बाबा हमको जल्दी से दूसरी गुफ़ा में ले गये।

चूँकि इस यात्रा के पूर्व मैं बीमार रही थी, इसलिये बाबा ने मेरा हाथ पकड़े हुये पर्वत के ऊपर चढ़ने में मेरी सहायता की। जैसे ही हम गुफ़ाओं के समीप पहुँचे, मैंने मुड़कर विस्तृत मैदान को देखा जो हम लोगों के नीचे फैला हुआ था। तत्क्षण मेरे मन में 'पर्वत—शिखर' अनुभव की स्मृति एकाएक आ गई जिसका वर्णन मैंने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में किया है। यह अनुभव **सत्यता** से मेरा ऐसा सम्पर्क था जिसने मुझे बाबा से मिलने के लिए तैयार किया था। वह अनुभव अत्यन्त स्पष्ट तथा गम्भीर होने के कारण, उसने मेरे मन में स्वभावतः एक अमिट छाप छोड़ दी थी। अब जैसे मैंने नीचे घाटी पर अपनी दृष्टि डाली, मैंने वही प्राकृतिक दृश्य देखा, और नीचे के प्रदेश का उस स्थान से, जिस पर मैं खड़ी थी, वही सम्बन्ध देखा, जैसा मैंने उस अत्यन्त उत्कृष्ट अनुभव में देखा था। मैंने बाबा की ओर मुड़कर उनसे पूछा कि क्या उन्हें ज्ञात था कि वह दृश्य मुझे किस बात का स्मरण दिला रहा था। उन्होंने मुस्कराते हुए सिर हिलाकर संकेत किया कि उन्हें उसका ज्ञान था और 'पर्वत शिखर' की ओर मुझे इशारा किया। फिर एक कालरहित क्षण के लिए जिसमें अकथनीय सत्यतायें प्रदान की गईं—बाबा के नेत्र मेरे नेत्रों पर जमे रहे। विवेकबुद्धि से परे वाली रीतियों से, मैंने वर्षों पहिले दीक्षा—संस्कार के इस पर्वत—शिखर से सुर मिलाया था, और एक प्राचीन अनुभव को पुनः ताज़ा किया था और कदाचित उस अनुभव की आशा की थी, जो आने वाला था। बाद में, जिस समय हम लोग अपनी मोटरकारों में बैठ रहे थे, बाबा ने हमें बताया कि हममें से कुछ लोग किसी दिन उन गुफाओं में पुनः जायेंगे, और वहाँ बाबा के साथ थोड़ी देर ठहरेंगे।

अपने शिष्यों को उनके भूतकाल के बन्धन से—उनके अहं—केन्द्रित व्यक्तित्व से—मुक्त करने की बाबा की कला का एक महत्त्वपूर्ण अंग वह संकटकाल है जो बाबा बहुत चतुराई के साथ उत्पन्न करते हैं। बाबा से घनिष्ठ सम्पर्क प्राप्त होने के पश्चात्, जीवन की प्रक्रियायें अनिवार्य रूप से इतनी तीव्र हो जाती हैं कि मनुष्य अपने को ऐसी परिस्थितियों के बीच पाता है जो उसको कुछ गहरी आत्म—खोज करने के लिये बाध्य करतीं हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हम इस तीव्र प्रक्रिया में भाग लेने के लिए बाह्य रूप से बाबा के साथ हों। अनेक लोगों ने, जिन्होंने बाबा के साथ गहरा 'आन्तरिक सम्पर्क' स्थापित कर लिया है किन्तु जो बाबा से स्थूल रूप से नहीं मिले हैं, उनके साथ समस्वरता की उसी प्रचण्डता का अनुभव किया है। परन्तु स्थूल रूप से उनके साथ होने से आम तौर पर वह अनुभव अधिक नाटकीय तथा अधिक मर्मभेदी होता है। बाबा से घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाला कोई भी जन इस उपचार से नहीं बचता, जो दुखदाई होते हुये भी वास्तविक आत्मा से संकुचित करने वाले परदों को हटा देता है और एक भावनात्मक रूप से उफ़नते हुये जीवन के लिये मार्ग खोल देता है।

भारतवर्ष में एक महीने से कुछ अधिक समय तक रहने के पश्चात् मेरे लिए ऐसा ही संकटकाल पैदा हो गया। बाबा के चालीस दिन के उपवास का पाँचवाँ दिन था—और हमको बहुत पहले बता दिया गया था कि बाबा की किसी भी विशेष क्रिया के पाँचवें दिन कोई अर्थपूर्ण घटना सदैव घटित होती है। सचमुच मेरे लिए ऐसी ही घटना घटित हुई।

एक दिन अत्यन्त गरम तीसरे पहर के समय, जबकि अक्सर होने वाला सिरदर्द मुझे हो रहा था, मैं चाय पीने के लिए मुख्य गृह में नहीं गई थी, बल्कि एक नौकर मेरे कमरे में चाय लाया था। मैं पलंग पर पालथी लगाये बैठी थी और अत्यन्त झीने कपड़े की रात्रि की पोशाक पहने थी। उसी समय पात्र भर खौलता हुआ पानी अचानक मेरी गोद में गिर गया। जैसी कल्पना की जा सकती है, उस पानी के गिरने से मुझे अत्यन्त दुखदायी पीड़ा हुई। झुलसे हुये माँस के ऊपर लगाने के लिए मेरे पास

कुछ नहीं था और न कोई पास में ही था जिसे मैं बुला सकती। वहाँ कोई और उपाय नहीं था सिवाय इसके कि मैं इतने साहस के साथ प्रतीक्षा करती जितना मैं बटोर सकती थी, जब तक कि चाय समाप्त होने पर कोई न कोई जन हमारी इमारत में न आ जाता। लगभग 40 मिनट के बाद मैलकाम तथा अन्य लोग लौटकर अपने कमरों में आये। बाबा राहुरी में थे, परन्तु इस दुर्घटना की सूचना उनको तुरन्त टेलीफ़ोन के द्वारा दी गई। उनका पहला सवाल : ''क्या वह बहादुर थी ?'' शिष्य के आवश्यक गुण को प्रदर्शित करता है जिसकी वह ऐसे अवसरों पर आशा करते हैं। मेरे इलाज के लिये बाबा ने जिस डाक्टर की सिफारिश की वह लगभग एक घन्टे के पश्चात् आ गया।

इस अनुभव का एक विचित्र तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अंग एक स्वप्न था जो मैंने इस घटना की पिछली रात को देखा था कि मैं खूंटे से बाँध कर जलाई गई थी। स्पष्टतया मेरी अन्तरात्मा को ज्ञान था कि मैं एक तीक्ष्ण शुद्धि के लिये इस सीमा तक तैयार थी कि वह उक्त दुर्घटना के रूप में मेरे बाह्य जीवन में प्रत्यक्ष उपस्थित हो गई।

जब दो–एक दिन के पश्चात् बाबा आये, तो इस बात का इतमीनान कर लेने के बाद कि मेरी उचित देख–रेख की गई थी उन्होंने मुझे बताया कि यद्यपि वह जलना कष्टदायी था तथापि उसके उत्तम परिणाम होंगे। उन्होंने मेरे उस स्वप्न में बड़ी दिलचस्पी दिखाई।

यद्यपि तीक्ष्ण पीड़ा थोड़े दिनों के बाद चली गई, फिर भी नाड़ी मण्डल पर लगा हुआ धक्का कुछ सप्ताहों तक ज़ारी रहा। ठीक जिस समय मैं लँगड़ाती हुई अपने कमरे में इधर–उधर चलना आरम्भ कर रही थी, मैलकाम तथा एक अन्य आदमी के बीच एक कटु वादविवाद हो गया। अब सिंहावलोकन करने पर, यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि बाबा ने ही वह सब संघर्ष पैदा किया था और मेरा एक भारी आपरेशन करने के लिये मुझे उस संघर्ष में घसीट दिया था। कदाचित् वह एक आपरेशन में एकसाथ तीन का आपरेशन था, क्योंकि उस समय से समय के प्रवाह में जैसा उद्घाटित हुआ, बाद की परिस्थितियों ने हम तीनों जनों को इस संकट में अन्तर्निहित भावात्मक द्वन्द्व का सामना करने के लिये बाध्य किया है। मैं तो इसे अनेक हितों में से सबसे अधिक सहायक हित अनुभव करती हूँ जो

बाबा ने मेरे साथ किये हैं, क्योंकि उस अनियंत्रित आवेग ने ही मुझको अपने चेतन जीवन में कई गुप्त गुणों का समावेश करने के लिये बाध्य किया, जिनके बिना मैं बहुत असन्तुलित रही होती। तथापि, संकट के समय मैंने उसे इस दृष्टि से नहीं देखा था। परन्तु, जैसी कि बाबा ने उस घटना का समाचार सुनने के बाद भविष्यवाणी की थी, इस दुखदायी परीक्षा के कल्याणकारी परिणाम बहुत अधिक मात्रा में हुये हैं।

उन दो जनों के मध्य उत्पन्न हुये इस संघर्ष के विषय में मुझ से सुबह बात करने के पश्चात्, बाबा ने कहा कि उनकी इच्छा थी कि हम सब लोग एकत्रित होवें, तब सब मामला तय किया जायेगा। दूसरे जन ने नई पत्रिका के लिये एक सम्पादकीय लेख लिखा था, जिसमें कार्य करने के लिये हममें से कुछ लोग निर्दिष्ट किए गए थे। जब मैलकाम ने वह लेख पढ़ा तो वह असन्तोष प्रकट कर उठा, क्योंकि बाबा के अनुरूप न होने की जगहों में उसमें भावना की प्रधानता टपकती थी। जब मैलकाम ने इसके विषय में बाबा से बात की तो बाबा ने उसे आदेश दिया कि वह उस पर अपनी आलोचना लिखे। यद्यपि उसकी आलोचना न्यायसंगत थी और वास्तव में बाबा की आज्ञा से ही वह लिखी गई थी, तथापि दूसरा जन 'उसको ग्रहण' न कर सका। उसने एक तीक्ष्ण बौछार के साथ उसका प्रत्युत्तर दिया जिसको पढ़कर मैं सचमुच कटुता महसूस करने लगी। बाबा ने संकेत किया कि उस बौछार के प्रति मेरी प्रतिक्रिया इस तथ्य के कारण थी कि मेरे अन्तस्तल में कोई चीज़ थी—इस मनुष्य के सम्बन्ध में मेरे अन्तर में कोई बात थी—जिसने उसके कथनों का विष अपने में खींच लिया। उसके फलस्वरूप, मैं उस परिस्थिति में परोक्ष रूप से सम्मिलित थी। बाबा ने मुझको बहुत ही स्पष्ट आज्ञा दी कि जब हम सब लोग एकत्रित होवें तो मेरे मन में जो कुछ भी आवे वह मैं बिल्कुल साफ़–साफ़ कह डालूँ, और इस बात का ख्याल न करूँ कि उस कहने का उन दोनों के ऊपर अथवा खुद बाबा के ऊपर क्या सम्भावित परिणाम होगा।

उस दिन तीसरा पहर बीत चुकने के बहुत देर बाद मैं एक जन के सहारे अपने लम्बे ओसारे के सुदूर सिरे पर स्थित कमरे में ले जाई गई। वहाँ—आचार्य संचालक के रूप में विराजमान बाबा की उपस्थिति में—वह संकट घटित हुआ, स्वप्न तथा जलना जिसके पूर्व–लक्षणमात्र थे। स्वप्न तथा दुर्घटना दोनों में अन्तर्निहित सांकेतिकता पर विचार करते हुये, मुझे

इस बात में सन्देह नहीं है कि उस कमरे में हुआ अधिवेशन उस जीवन–दीक्षा के प्रारम्भ को अंकित करता था जो हम सबको अगाध गहराई के किनारे तक ले जाने के लिये निर्दिष्ट थी। मुझको तो उसने प्रेम एवं मानवीय सम्बन्धों की एक अधिक विश्वव्यापी समझ प्रदान की है जिसका अनुभव करना प्रत्येक स्त्री के लिये आवश्यक है यदि उसको अपने निर्दिष्ट प्रारब्ध को पूरा करना है।

बाबा ने दोनों जनों को उस मसले में अपनी अपनी बात कहने के लिये आदेश दिया। फिर मुझको आज्ञा दी गई कि मैं अपने विचार में उनमें से प्रत्येक को जहाँ दोषी समझूँ वहाँ मैं उसे बताऊँ। वह भावनात्मक पीड़ा जो मेरे हृदय में पैदा हुई, तात्कालिक कारण से कोई समता ही न रखती थी–जैसी कि वह चौबीस घण्टे के बाद भी प्रतीत होती थी–और यह निसंदेह उन गहरी 'अचेतन' शक्तियों का चिन्ह था जिन्हें बाबा चेतना में ला रहे थे। मुझे ऐसा महसूस होता था मानो मैं वह सब सन्ताप भोग रही थी जो स्त्री–जाति ने अपने प्रिय–पुरुष के लिये कभी भी सहन किया है। तथापि जो मैं कर रही थी वह यही था कि मैं उन दोनों जनों के चरित्रों में जो मूल दोष समझती थी वह साफ साफ कहती थी, जिनसे यह दुःखद स्थिति पैदा हो गई थी।

दुःखद वादविवाद से बचने की मेरी स्त्री सुलभ सहज बुद्धि पर अधिकार पाने के लिये मुझको बाध्य करने के द्वारा, बाबा मेरी चेतना में मेरी प्रकृति के पुरुष पक्ष की निर्भयता ला रहे थे, जो अधिकाँशतः सोई हुई थी। इस साधन द्वारा वह मुझको एक युगों पुराने बन्धन से मुक्त कर रहे थे जिसमें मैं अधिकांश स्त्री–जाति के साथ भागीदार थी–अर्थात् इस भय के बन्धन से कि उसका पति उसके हाथों से चला जायेगा, यदि वह दृढ़ मार्ग चुनती है और उसकी अहंमन्यता तथा उसके बौद्धिक प्रभुत्व की भूमिका के अनुसार कार्य करना बन्द कर देती है।

पुरुष के साथ अपने सम्पर्कों में किंचित्मात्र विरोध न करने का यह मार्ग ग्रहण करने में, स्त्री अपने को एक हीन स्थिति में गिरा देती है, और अपनी स्त्री जाति (Sex) के उच्चतर कार्य को अवरुद्ध कर देती है। वह कार्य है पुरुष के अन्तर में उसके गुप्त आत्मा–पक्ष को जागृत करना।

परन्तु वह करने के लिये उसे पुरुष को कष्ट पहुँचाना पड़ सकता है, अथवा उसकी अप्रसन्नता का खतरा इस सीमा तक उठाना पड़ सकता है कि उससे अपने घनिष्ठ सम्बन्ध तक को खो बैठे।

उपर्युक्त कथन लिखने के पश्चात, मैंने डाक्टर कन्केल द्वारा लिखित पुस्तक ''परिपक्वता की खोज में'' पढ़ी है, जिसमें मैंने उपरोक्त निष्कर्षों का समर्थन पाया है : ''....अन्ततः परिपक्वता की महान परीक्षा से हमारा सामना हो सकता है; आवश्यकतानुसार, चेतनतया तथा शुद्ध अन्तःकरण से, हमें अपने अत्यन्त प्रिय मित्रों को कष्ट पहुँचाना तथा त्याग करना पड़ सकता है।''

तथापि, केवल समय की दृश्यभूमिका ने ये बातें उद्घाटित कीं। उस संकट के मध्य तो मैं महसूस करती थी कि बाबा मुझको इस झगड़े में भाग लेने के लिये बाध्य करने में अनावश्यक रूप से निष्ठुर थे। उस झगड़े में मेरा भाग केवल एक पंच का जैसा रहा था, परन्तु बाबा ने अपनी बेधने वाली अन्तर्दृष्टि से–मुझसे अधिक अच्छा ज्ञान रखते हुये–मुझको एक अत्यंत आवश्यक शिक्षा देने के लिये इस अवसर का प्रयोग किया। पहले वह मुझसे अपने मन की बात कहने का आग्रह करके मेरी भावनाओं को उकसाते थे; फिर वह मुझको शान्त तथा पृथक होने के लिये प्रेरित करते थे। मेरी आत्मा का यह आपरेशन लगभग एक घन्टा तक ज़ारी रहा, जिसके दौरान मैंने अपने तमाम जीवन के समस्त भावात्मक संकट संक्षेप में कह डाले होंगे–और ऐसे अनेक संकट हुये थे। कदाचित् यह भावात्मक विवेचन बाबा की 'क्रीड़ा' का दूसरा अंग था–वह ऐसा अंग था जिसके लिये मुझे उस समय कोई रुचि प्रतीत नहीं होती थी।

जब अन्ततः वह समाप्त हो गया, मैं पूर्णतया चूर–चूर हो गई थी। मुझे उठाकर मेरे बिस्तर पर ले जाया गया, जहाँ मैं लेटी हुई टूटे दिल की मूर्छित अवस्था में घन्टों सिसकती रही। मुझे उस भीषण परीक्षा का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता था जिसमें बाबा ने मुझे डाल दिया था। मुझे प्रतीत होता था कि मेरे कोमल तथा प्रेमी **पिता** बाबा स्वयं **दानव** बन गये थे ! जब कुछ समय के उपरान्त उन्होंने भीतर मेरे ऊपर अपनी चितवन डाली, तो मैंने उनसे कहा कि मैं और अधिक सहन नहीं कर सकती थी;

मैं अपनी सहनशक्ति की सीमा तक पहुँच चुकी थी। फिर थकान के कारण मैं सो गई।

सुबह जागने पर मैंने अपने को ज़िन्दा होने की अपेक्षा अधिक मुर्दा महसूस किया। मेरे शरीर से जीवन निकल गया प्रतीत होता था, मेरी आत्मा आशा से शून्य प्रतीत होती थी, मेरा हृदय शून्य तथा ठण्ढा प्रतीत होता था। भारतवर्ष के सूर्य का देदीप्यमान प्रकाश जो मेरे कमरे के द्वारों तथा खिड़कियों से होकर भीतर आ रहा था मेरे आन्तरिक अन्धकार में प्रवेश करने में असमर्थ था। बाद में मैं अपनी पिछली ड्यूढ़ी में मैलकाम के साथ मौन बैठी। मैंने उसके नेत्रों में अपने प्रति सहानुभूति देखी, परन्तु मेरा हृदय उस सहानुभूति को ग्रहण नहीं कर सका। जहाँ श्रद्धा मेरी पुष्टि करती रही थी, वहीं अब नैराश्य का शासन था; जहाँ प्रेम ने मुझे खींचा तथा प्रेरित किया था, वहाँ अब बर्फीली अँगुलियाँ मेरे हाथ को जकड़े थीं। मेरे ईश्वर ने मुझे विफल कर दिया थाः मैं पूर्ण नाश की शान्ति प्राप्त करने के लिये अचेत अवस्था की विस्मृति के लिये लालायित थी, जो महान प्रलोभन आत्मा की शूली की अवस्था के इस क्षण में सबको होता है। तब मैंने गेयसेमेन के बाग़ में ईसामसीह को मिली यातना का विचार किया—कि किस प्रकार उन्होंने अपने पास से प्याला तक हटा लेने के लिए कहा था। परन्तु दूसरी ही साँस के साथ मुझको उनके उसके बाद वाले शब्द याद आये : ''तथापि, मेरी इच्छा नहीं वरन् तेरी मर्ज़ी पूरी हो।''

''मेरी इच्छा नहीं, किंतु तेरी मर्जी''; यही मेरी समस्या की कुञ्जी थी। मैंने इन शब्दों को अपनी आत्मा में गहराई तक उतारा। मेरे लिये अभीष्ट था ईश्वर के प्रति गम्भीरतर आत्मसमर्पण—अर्थात् मेरे सद्गुरु बाबा के प्रति, जो ईश्वर के अवतार हैं। जिस बात में बाबा मेरी सर्वोच्च भलाई जानते थे उसी के विरुद्ध मेरी बग़ावत मेरी अधिकाँश यातना का कारण थी। मैं कितने ही वर्षों से उनमें श्रद्धा रखती थी; उन्होंने मुझे मँझधार में नहीं छोड़ा था। मुझे जानना चाहिए कि वह अभी मुझको मँझधार में नहीं छोड़ रहे थे। अपनी आवश्यकता को मैं सम्भवतः जितनी गहराई तक देख सकती थी उसकी अपेक्षा वह उसे अधिक गहराई तक देखते थे; और वह मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानते थे कि उस आवश्यकता को कैसे पूरा किया

जाये। अपने हृदय में मैंने अपना जीवन नवीनतया उन्हें समर्पित किया जिससे वह उसका उस तरह प्रयोग करें जिस प्रकार वह सबसे अच्छा समझें। मैंने अन्धकार को स्वीकार किया, और फिर सारा बखेड़ा छोड़ा। उस क्षण बाहर खेतों में एक रोबिन चिड़िया ने अपना छोटा तरल गीत गाया : और उसके द्रवित करने वाले सुरीले गायन के साथ मेरे अन्तःकरण में एक अवरोध फूट पड़ा और मेरे हृदय में शान्ति की भारी वर्षा हो गई।

कुछ क्षणों के पश्चात्, समय की पूर्ण पाबन्दी के साथ, बाबा आ पहुँचे। वह इस क्षण के पूर्व कुछ लक्ष्य रखते हुए ही दूर रहे थे। उन्होंने अपने नेत्रों द्वारा मुझसे प्रश्न करते हुए मेरे ऊपर एक गम्भीर चितवन डाली, जिस प्रकार कोई सर्जन एक बड़ा आपरेशन करने के पश्चात् अपने रोगी की परीक्षा करता है। तब मैंने उनसे एक प्रश्न किया :

''क्या केवल आज्ञाकारिता के द्वारा ईश्वर से प्रेम करना सम्भव है, जबकि भावना का अभाव हो ?''

बाबा मुस्कराये। आपरेशन सफल हुआ था और अब रोगी जीवित रहेगा !

उन्होंने उत्तर दिया, ''वह प्रेम का सर्वोच्च रूप है।''

तदुपरान्त दिन में मैं मैलकाम की सहायता से बाबा के कमरे में उनसे यह कहने के लिये गई कि वह जब चाहें तब अपना कार्य पूरा कर सकते हैं। इस पर उन्होंने आनन्दपूर्ण सन्तोष की जो चितवन प्रदान की उसने मेरे बचे हुये दुख को भी समाप्त कर दिया।

इस प्रकार का अनुभव वह मौलिक शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त जिसको प्राप्त करने की आवश्यकता मनुष्य को होती है, 'अन्य' अनेक मूलभूत सत्यताओं का उद्घाटन करता है। अब मुझे दिखाई पड़ता है कि बाबा ने मुझको जीवन के अन्धकारपूर्ण तथा साथ ही साथ प्रकाशपूर्ण पहलू को; दानव और साथ साथ देव को; शूली पर चढ़ने और साथ साथ पुनर्जीवन को स्वीकार करने के लिए बाध्य करके मेरी कितनी अमूल्य सेवा की थी। इस संकट के द्वारा उन्होंने ईश्वर की मर्ज़ी के प्रति—बाबा के प्रति—मेरे अन्तःकरण में मुझे एक अधिक गहरे आत्मसमर्पण के लिये प्रेरित किया, जैसा मैंने अब तक नहीं किया था। मैंने अपने स्वत्व को ईश्वर को

समर्पित कर दिया था; और बाबा इस बात का निश्चय कर रहे थे कि मैं कोई छिपे हुये पाप अथवा पुण्य तो नहीं दबाये हुये थी।

पहले मैं सदैव प्रेम से दूर भाग जाती थी जब वह चोट पहुँचाता था। अब मैं पीड़ा रहते हुये भी प्रेम करना सीख रही थी; भ्रम से मुक्ति के बावजूद श्रद्धा करना सीख रही थी। अब मैं खलील जिब्रान के उन शब्दों को और अधिक अच्छी प्रकार से समझ सकती थी :

''क्योंकि जिस प्रकार प्रेम तुम्हें ताज पहिनाता है वैसे ही यह तुम्हें शूली पर चढ़ा देगा। जिस प्रकार वह तुम्हारे विकास के लिये है वैसे ही वह तुम्हें काट कर छाँटने के लिये है।....वह तुम्हें नग्न करने के लिये तुम्हें कुचलता है। .... वह तुम्हें पीस कर उज्जवल बना देता है। ....और तब वह तुमको अपनी पवित्र अग्नि में तपाता है, जिससे तुम ईश्वर के पवित्र भोजन के लिये पवित्र रोटी बन सको।''

इसमें सन्देह नहीं कि इस उभार में केवल व्यक्तिगत अर्थ नज़र आने की अपेक्षा अन्य अर्थ भी छिपे हुये थे। प्रारम्भिक काल में एक समय बाबा के एक पूर्वी शिष्य ने, बाबा की पद्धतियों से भ्रमित होकर, पूछा कि कभी कभी बाबा उन लोगों को क्यों ऐसी कठोर परीक्षाओं में डालते थे जिनके लिये वे कोई कारण नहीं पाते थे। तब बाबा ने उसको बताया कि समय–समय पर उनको अपने विश्वव्यापी कार्य के लिये भावों में स्थित शक्ति (Energy) की आवश्यकता होती है, और उसका उपयोग करने के लिये वह अपने एक या अधिक शिष्यों की भावात्मक प्रकृति को उकसाते हैं। ''यदि मैं अपने कार्य के लिये अपने ही जनों का प्रयोग न करूँ, तो और किसका प्रयोग करूँ ?''

मैंने इस व्यक्तिगत अनुभव का वर्णन यह समझाने के लिये किया है कि कोई **जीवन** का **आचार्य** कैसे कार्य करता है जब वह जानता है कि कोई आत्मा विकास के एक महत्त्वपूर्ण क़दम के लिये तैयार है। बाबा के सभी शिष्य किन्हीं अंशों में इसी प्रकार की कठोर परीक्षा से होकर गुजरते हैं, और वे सब इस बात से सहमत हैं कि उस परीक्षा के कल्याणकारी परिणाम गहरे तथा दूर तक प्रभावित करने वाले होते हैं। आधुनिक मानसिक चिकित्सक की भाँति, किन्तु अपने अनोखे तथा श्रेष्ठ ढँग से, बाबा

उसे उभारते हैं जो कुछ 'अचेतन मन' के कोनों में छिपा पड़ा होता है; दैत्य तथा देवदूत दोनों को वह अधिक रचनात्मक जीवन में प्रयुक्त होने के लिये मुक्त करते हैं; और जब परिपक्व क्षण आ जाता है तब वह उस गम्भीर परिवर्तन को, जिसको वह प्रारम्भ में पनपाते हैं, अन्ततः स्थिर कर देते हैं।

इस विशेष संकटकाल की अधिक विस्तृत शाखायें केवल अब स्पष्ट हो रही हैं। बाबा की अनुपम कलाओं में से एक कला यह है कि वह घटनाओं का एक छोटे पैमाने का नमूना, शीघ्रता से तथा नाटकीय एवं यथार्थ रूप का, तैयार करते हैं। इस साधन द्वारा मानो वह **विश्व के टाइमकीपर** के यहाँ ऐसी घटनाओं को दर्ज कर देते हैं जो, समय की बाद की तथा अधिक लम्बी अवधि में और दैनिक परिस्थितियों के माध्यम द्वारा, धीरे धीरे नाटक की क्रमबद्ध घटनाओं के पर्दे खोलता है–जिनकी परीक्षा पहिले ही कर ली गई थी–और वह नाटक के हर पहलू के लिये और अधिक समय देता है जिससे उसका एकीकरण पूर्णतया हो जाये। निश्चय ही मेरे खुद के प्रति ऐसा ही हुआ था, जैसा कि मेरे बाद के जीवन–आदर्श से सिद्ध हुआ।

भारतवर्ष में हमारे प्रवास करने के दौरान हमको जो अत्यन्त स्मरणीय अनुभव हुआ वह बाबा की वर्षगाँठ का उत्सव था, जिसकी तैयारियाँ दिसम्बर माह में हमारे पहुँचने के पश्चात् ही प्रारम्भ हो गईं थीं। जन्मदिवस के 40 दिन पूर्व एक उपवास प्रारम्भ हुआ जिसमें हम सबने भाग लिया। हम पन्द्रह जनों में से एक–एक ने बारी–बारी से प्रतिदिन दो प्याला चाय और दो प्याला दूध पीते हुये बाबा के साथ उपवास किया। पुनः जब बाबा ने दिन में बीस घन्टे पानी भी न पीकर उपवास किया तब हम सबने उसमें भाग लिया।

अपने जन्मदिवस के कुछ सप्ताह पूर्व बाबा ने अपने भारतीय शिष्यों में से प्रत्येक को निश्चित कर्तव्य निर्धारित कर दिये, परन्तु सेनानायक की भाँति, जो बाबा हैं, वह समय समय पर अपने जनों को बुलाकर उनकी

ड्यूटियों का लेखा लेते थे और इस प्रकार अपने को समस्त योजनाओं के सम्पर्क में रखते थे। उनके ब्राह्मण, महरटा (Mahratta) हरिजन, ईसाई, पारसी तथा मुसलमान सभी भक्तों को जन्मोत्सव की सूचना दी गई और जन्मदिवस के भोज में ग़रीबों को निमन्त्रित करने के विभिन्न भाषाओं में छपे हुये परचों को बम्बई (अब मुंबई) प्रेसीडेन्सी, गुजरात्, तथा दक्षिण के मैले–कुचैले प्रदेशों में वितरित करने के लिये उनकी सहायता माँगी गई। एक या दो रात ठहरने वाले भक्तों के लिये नासिक आश्रम के पड़ोस में ठहरने के स्थान सुरक्षित कर लिये गये। उनको रेलवे स्टेशन से झोपड़ियों और आश्रम के क्षेत्र तक पहुँचाने के लिये मोटर लारियाँ किराये पर तय कर लीं गईं। भक्तों को धूप तथा गरमी से बचाने के लिये 250 फीट लम्बा तथा 150 फीट चौड़ा एक विशाल पंडाल खड़ा कर दिया गया। उससे छोटा एक पंडाल रसोई के प्रयोग के लिये खड़ा कर दिया गया। ब्राह्मण रसोइये तथा सहायक तय कर लिये गये; ज़मीन में गड्ढे खोदकर और उनमें ईंट–पत्थर लगाकर भट्ठियाँ तथा चूल्हे तैयार किये गये। डेढ़ हजार व्यक्तियों के लिये भोजन पकाने तथा परोसने के लिये सभी सामान बम्बई (अब मुंबई) से मँगा लिया गया और हर चीज़ को देखने के लिये बाबा के संरक्षण में एक रसद–पार्टी बना दी गई जो कार्यक्षमता में न्यूयार्क के सर्वश्रेष्ठ भोज–प्रबन्धकों की बराबरी भली प्रकार कर सकती थी।

जन्मदिवस के अवसर पर गरीबों को देने के लिये पोटलियाँ बनाने के हेतु हजारों गज़ कपड़ा तथा मनों चावल और मसूर खरीदे गये थे। पश्चिमी शिष्य मण्डली तमाम फुरसत के समय में भोजन की इन पोटलियों को बाँधने का कार्य करती थी, जब तक कि अन्ततः बाग़ के बीच में इन पोटलियों का बारह फीट ऊँचा विशाल ढेर न लग गया। आश्रम में क्रियाकलाप की गूँज छाई रहती थी, और 15 फरवरी तक तैयारियाँ पूरी हो गईं। मेहेराबाद से बाबा के आने पर हमारी थकान सूर्य के सम्मुख कोहरे की भाँति लुप्त हो गई। यह जानते हुये कि बाबा द्वारा प्रारम्भ किया गया अथवा बाबा के संरक्षण में किया गया समस्त कर्म सांकेतिक होता है, कोई भी मनुष्य यह देख सकता है कि पश्चिमी देशों के जनों द्वारा ग़रीबों के लिये भोजन तथा वस्त्र की भेटें तैयार करने के केन्द्रीभूत प्रयास में उस कर्त्तव्य की सांकेतिक क्रिया अन्तर्निहित थी जो कि विशेषतः अमरीका को

मनुष्य के लोभ तथा शक्ति की लोलुपता द्वारा बर्बाद किये गये दुनियाँ के गरीबों को पुनः आबाद करने में अदा करना था।

बाबा के आगमन के दिन ब्राह्मण रसोइये आ गये और दूसरे दिन प्रातःकाल भोजनालय पूरी तौर से चालू हो गया। पीतल तथा ताँबे के विशाल डेगचों से भात, तरकारियों, लड्डुओं तथा चाय की महक उड़ने लगी। रसोइये नंगे बदन भोजन बना रहे थे और उनके गले में ब्राह्मण जाति के जनेऊ पड़े हुये थे। वे उत्तम प्रकृति के तथा गौरवपूर्ण व प्रतिष्ठित व्यक्ति दिखाई पड़ते थे। उनको देखते ही महान उपदेशक अथवा पुण्यात्मा पुरुष होने का धोखा हो सकता था। रसोइया होने से उनके भारतवर्ष की शासक जाति का होने के भाव में किसी प्रकार की कमी नहीं होती थी। हममें से दो जन यह देखने के प्रयत्न में कि क्या पकाया जा रहा था एक खौलते हुए पानी के डेगचे के निकट पहुँच गये। इस पर एक रसोइया ने तुरन्त ही हमको वहाँ से हट जाने के लिये कहा, क्योकि कोई भी कट्टर ब्राह्मण ऐसा भोजन ग्रहण नहीं कर सकता जो किसी अन्य जाति के पुरुष की छाया पड़ने से भ्रष्ट हो गया हो। इस बात को दृष्टि में रखते हुए यह एक हृदय स्पर्शी दृश्य था कि बाबा के ब्राह्मण भक्त अन्य जाति के बाबा–भक्तों के साथ बैठकर भोजन कर रहे थे जिसमें से अनेक लोग 'अछूत जातियों' के थे।

एक प्रौढ़ हिन्दू, जो स्वयं ब्राह्मण था, मैलकाम के पास पहुँचा जो भक्तों को भोजन करते हुए देख रहा था। उसने मुस्कराते हुये पूछा, "मैं समझता हूँ, क्या यह विश्वबन्धुत्व है ?" मैलकाम ने उत्तर दिया, "मैं आशा करता हूँ कि यह उसी दिशा की ओर एक कदम है।" फिर उस भक्त ने प्रत्युत्तर दिया, "निस्सन्देह ऐसा ही है, और ऐसे कदम को मेहेरबाबा ऐसा एक सद्गुरु ही अपने ईश्वरीय प्रेम के प्रभाव के द्वारा प्रेरित कर सकता था।"

जिस समय बाबा के ये लगभग सात सौ भक्त लम्बी कतारों में पृथ्वी पर एक साथ बैठे हुये दोपहर का भोजन कर रहे थे, तो वह एक प्रभावकारी दृश्य था। भोजन परोसे जाने के पूर्व ब्राह्मणों ने दो मिनट तक प्रार्थना की। मुसलमानों ने अपने रिवाज के अनुसार "बिसमिल्लाह" कहकर भोजन

प्रारम्भ किया। भोजन करने के पूर्व की क्रिया–पद्धति के रूप में मरहठा लोगों ने कमर तक अपने वस्त्र उतार दिये। अतिथियों द्वारा अपनी परम्परागत पूजायें कर चुकने के उपरान्त और उनके भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व, पंडाल ''श्री सद्‌गुरु मेहेरबाबा की जय'' के नाद से गूँज उठे। आने वाले अतिथि बाबा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित किये बिना एक प्याला चाय तक नहीं पीते थे।

भोजन के उपरान्त बाबा ने अपनी पश्चिमी मण्डली को बाग़ में बनी हुई फूस की अपनी छोटी झोपड़ी में बुलाया, जो बाबा के लिये विशेष विश्राम–स्थल के रूप में बनाई गई थी। वहाँ बाबा के बराबर एक प्रौढ़ हिन्दू अपने घुटने टेककर बैठा हुआ था। उसके नेत्र अत्यधिक आनन्द के कारण बन्द थे, और उसके हाथ प्रेमपूर्वक बाबा के चरणों से प्यार कर रहे थे। वह व्यक्ति एक सन्त था और इसने एक वर्ष पहले बाबा के एक भक्त के घर में बाबा की फोटो देखी थी, और तुरन्त ही उनको ईश्वर प्राप्त सद्‌गुरु के रूप में पहिचान लिया था। यद्यपि वह स्वयं अपने शिष्यों द्वारा सन्त की भाँति पूजा जाता था, जिनमें से कुछ को वह अपने साथ जन्मदिवस के भोज में लाया था, तथापि उसने अपने जागृत हृदय की पूर्ण पूजा बाबा को अर्पित की, जिस समय उसने आध्यात्मिक भावावेग के वशीभूत होकर अपना सिर बाबा के सीने में गड़ा दिया। कुछ क्षणों के बाद बाबा पंडाल से चल दिये और मण्डली उनके पीछे चल दी।

उस सन्त के एक शिष्य ने गुलाब का फूल तोड़कर उसको अर्पित किया। उस समय बाबा के सम्पर्क से भावावेग में होने के कारण, उसने फूल को सूँघा, और उसको अपने मस्तक से, अपनी आँखों से, अपने कपाल के ऊपरी तथा पिछले भाग से, और अन्ततः अपने हृदय से लगाया, फिर वह कुछ–कुछ चौंधियाई हुई अवस्था में अपने दो शिष्यों के सहारे लड़खड़ाता हुआ बड़े पंडाल की ओर चला गया।

तदुपरान्त दिन में, जिस समय पश्चिमी देशों की एक शिष्या, जो उस प्रौढ़ सन्त से झोपड़ी में नहीं मिली थी, उससे मिलाई गई, तो वह कई मिनट तक उसको देखता रहा और मुस्कराया। उसके एक भक्त ने इसकी व्याख्या करते हुये उस महिला से कहा, ''सदैव प्रसन्न रहो जैसी तुम अभी हो।'' फिर सन्त ने उस शिष्या को अपने हृदय से लगाया, और अपने एक

अनुयायी के गले से दुपट्टा निकालकर उसको दे दिया; और फिर उसके हाथ में अपना हाथ डाले हुये वह तम्बू से होता हुआ उस शिष्या को रसोईघर की ओर ले गया जहाँ उसको बाबा मिल गये। वहाँ उसने उसका हाथ लेकर बाबा के हाथ में रख दिया और फिर उसने बाबा के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। उस शिष्या को महसूस हुआ कि इस क्रिया के द्वारा वह इस बात को स्पष्ट कर रहा था कि बाबा के समान सद्‌गुरु ही उसको वह परम सिद्धि प्रदान कर सकता था जिसकी खोज में वह थी, और जो वह सन्त स्पष्टतः जानता था।

उसी दिन बाबा ने अपने एक शिष्य के अहंकारी वचनों को सुनकर एक आवश्यक शिक्षा प्रदान करने के लिये अवसर निकाला। उस शिष्य ने डींग मारते हुए कहा था कि वह घोर परिश्रम करता रहा था, उसने लम्बे लम्बे उपवास किये थे, उसने बहुत कष्ट झेले थे, परन्तु उसने किंचित् शिकायत नहीं की थी। इस पर बाबा की भृकुटियाँ टेढ़ी हो गईं। किसी भी प्रकार का अभिमान बाबा की दृष्टि में ईश्वर का शाप है। उन्होंने कहा, ''हर क्षण इस व्यक्ति में तुच्छ 'मैं' की प्रधानता है ! 'मैं कार्य करता हूँ' 'मैं उपवास करता हूँ....मैं कष्ट सहन करता हूँ' !''

फिर बाबा ने बाग़ के उस पार अपने एक अन्य जन की ओर संकेत किया। वह बाग़ की मरम्मत कर रहा था जिसे लोगों की भीड़ ने तोड़ डाला था। वह प्रारम्भिक काल में अहमदनगर में बाबा के स्कूल का विद्यार्थी रहा था, और उस समय से वह बाबा के आश्रम में रहता तथा कार्य करता आ रहा था। जनवरी में वह नासिक आ गया था और वहाँ वह चहारदीवारी बनाने में, वस्त्रों की गाँठें तथा अन्न के बोरे उतारने में, तम्बू लगाने तथा पानी के नलों की विशेष पंक्तियाँ बिछाने के कार्य में सहायता करने में, दिन रात कार्य करता रहा था। उसकी मुद्रा तथा चेष्टाओं से प्रकट होता था कि वह बिल्कुल थक गया था, परन्तु असन्तोष का एक भी शब्द उसके मुख से न निकलता था; और न वह अपने इस सब कार्य की डींग ही मारता था। बाबा ने प्रकट किया : ''वह ऐसा व्यक्ति है जो कार्य करता है परन्तु वह कभी नही कहता कि वह कार्य करता है। वही 'सच्ची' स्वार्थरहित सेवा है।''

हमको दूसरे दिन प्रातः जबकि ग़रीबों को अन्न व वस्त्र बाँटे जाने थे, 6 बजे तक पण्डाल में उपस्थित हो जाने का आदेश दिया गया। हमारी मण्डली के लोग पोटलियाँ देने में पूर्वी शिष्य मण्डली की सहायता करते थे, जबकि पश्चिमी महिलायें पूर्वी भक्तों के साथ बैठी हुई उस समारोह को देखती थीं। जब हम लोग जागे और हमने तम्बुओं की ओर देखा, तो हमें ग़रीबों की धक्कम–धक्का करती हुई भारी भीड़ दिखाई पड़ी जिसे कुछ भक्तजन तथा भारतीय पुलिस के हृष्टपुष्ट सिपाही सीमा के भीतर रोके हुए थे। पुलिस के सिपाही व्यवस्था ठीक रखने में सहायता करने के लिये नासिक से बुलाये गये थे। ठीक 6 बजे जुलूस प्रारम्भ हुआ और उस दिन सात बजे रात तक दस हजार ग़रीब लोग शिष्यों के हाथ से अन्न तथा वस्त्र की पोटलियाँ और बाबा के हाथ से मिठाइयाँ व उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हुये बाबा के सामने से गुज़रे। एक पूर्वी शिष्य ने फुसफुसाकर कहा, ''यह भारतवर्ष है। दिल्ली में वाइसराय का नवीन महल नहीं, न तो ऐतिहासिक भूतकाल के स्मारक चिन्ह, किन्तु **यही !** अस्सी फ़ीसदी से अधिक भारतीय जनता इसी दशा में है !''

मैं अमरीका के बड़े से बड़े नगरों की मैली कुचैली गलियों में सामाजिक कार्य कर चुकी थी, और मैं सोचती थी कि मैंने नीची से नीची दरिद्रता देख ली थी। परन्तु उन गन्दी गलियों में रहने वाले लोग इन गरीब प्राणियों की तुलना में राजकुमारों की भाँति वस्त्र पहिनते थे। गन्दे वस्त्र के चिथड़े–जिन्हें उन गरीबों के दादाओं ने लत्तों के रूप में पहिना होगा–उनके शरीरों को यत्र–तत्र ढके हुए थे। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि उनमें से बहुतेरे लोग सैकड़ों मील की यात्रा कर के वस्त्र का एक टुकड़ा तथा कुछ मुट्ठी अन्न लेने के लिये आये थे ! एक लड़खड़ाते हुये वृद्ध दम्पत्ति–जिनमें पुरुष बिल्कुल अन्धा था–जन्मदिवस की भेंट तथा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कई दिन पैदल चलकर आये थे। एक अन्य बालक, जिसकी एकमात्र फटी कमीज उसके खून बहते हुए आतशक (Syphilitic) के घावों को ढकने में असमर्थ थी, बाबा के शिष्यों द्वारा चिकित्सा के लिये अलग ले जाया गया। कुष्ठ रोग से पीड़ित लगभग चालिस स्त्री–पुरुषों का एक समुदाय एक सेवक समेत अन्य लोगों से

अलग कर दिया गया और उनको अलग ही भेंटों की पोटलियाँ और आशीर्वाद दिये गये। निसंदेह वहाँ कुष्ठ से पीड़ित और भी बहुतेरे लोग थे जिनकी देख–रेख के लिए कोई न था। इसलिये किसी की दृष्टि में न आने से वे जनसमूह में मिल गये थे।

ग़रीबी तथा भौतिक आवश्यकता की सभी श्रेणियों में ग्रसित ये दस हजार स्त्री, पुरुष तथा बच्चे, भोजन और पोटली के लिये अपने दुबले हाथ फैलाते हुये, घन्टों तक चबूतरे के पास से गुजरते रहे। कभी कभी जिस समय उनमें से कोई कोई जन बाबा के सम्मुख आकर उनके चरणों में सिर नवाते थे और फिर एक क्षण के लिये उनके नेत्रों में अपनी दृष्टि डालते थे, तो उनके (ग़रीबों के) नेत्रों में उस भूख के लक्षण दिखाई पड़ते थे जो भौतिक भूख से बढ़कर होती है। जिस समय बाबा अपने संवेदनशील हाथों से उनके चरण छूते थे, तो मनुष्य को यह देखकर आश्चर्य होता था कि वे बाबा का कितना अधिक ईश्वरीय प्रेम ग्रहण करने में समर्थ होते थे। निश्चय ही उनमें से अधिकांश की चितवन से झलकता था मानो वे अपनी क्रूर कंगाली के कारण उस प्रेम की धारा से पूर्णतया अछूते रहेंगे। परन्तु बाबा को, जो मनुष्यों के हृदयो में अधिक गहराई तक दृष्टि रखते हैं, निसंदेह ऐसे अनेक लोग मिले जिन्होंने उनकी आध्यात्मिक देनों को चेतनतया ग्रहण किया। एक महिला जो अत्यन्त निकृष्ट चिथड़ों से ढँकी थी, बाबा के चरणों में बैठी हुई महान आनन्द में ऐसी खो गई कि लोगों ने सहारा देकर उसे उठाया और फिर उसे जाकर भेंट की पोटली लेने के लिये प्रेरित किया। उसके परमानन्द के कारण उसके नेत्र प्रकाश से ऐसे जगमगा उठे कि उससे उसके चिथड़े तक देदीप्यमान हो गये। बाद में बाबा ने कहा, ''मैंने दिया, और मैंने पाया। बाबा के रूप में मैंने दिया; और उन बर्बाद हुये लोगों के रूप में मैंने पाया।''

तीसरे पहर के मध्य किसी ने बाबा से पूछा कि क्या उनकी कमर में पीड़ा थी। झुककर एक हाथ से दस हजार लोगों के चरण छूना, और दूसरे हाथ से दस हजार लड्डू बाँटना, और बीच–बीच में केवल क्षणिक विश्राम करना, एक सद्गुरु के शरीर के लिए भी कठिन परीक्षा थी। बाबा ने किंचित् थकान के भाव से मुस्कराते हुये कहा, ''मेरी कमर में इतनी

अधिक पीड़ा होती है कि उसमें बिल्कुल पीड़ा नहीं होती ! आज विकास की पूरी योजना मेरी रीढ़ से होकर गुजर गई। तुम जानते हो कि यह पहिला अवसर है जब मैंने उन लोगों के चरण स्पर्श किये हैं जो मुझे श्रद्धांजलि अर्पित करने आये हैं।'' हमको बाबा की इस नई बात पर आश्चर्य हुआ था, परन्तु जब हम लोगों ने बाबा से इसको और स्पष्ट करने की याचना की तो बाबा ने केवल मुस्करा दिया और कहा, ''मैंने उनमें विद्यमान ईश्वर का अभिवादन किया, जिस प्रकार उन्होंने मुझमें विद्यमान ईश्वर को नमस्कार किया।''

उस शाम को, ग़रीबों का समारोह समाप्त हो जाने के पश्चात्, हम लोगों ने बम्बई (अब मुंबई) से आये हुये गायकों के भक्तिपूर्ण भजनों के भारतीय संगीत में बाबा के साथ बैठकर सुनते हुये मनोविनोद प्राप्त किया। जिस समय हम लोग वहाँ बैठे थे, हमारा ध्यान एक नवयुवक की ओर आकर्षित हुआ जो मोटे टाट की थिगड़ी लगे हुये वस्त्र पहिने था। हमने उसे पहले दिन में भी देखा था जब बाबा ने उसे अपने सामने से निकलते हुये हज़ारों आदमियों के बीच से छाँटकर निकाला था। बाबा के प्रश्नों के उत्तर से स्पष्ट हुआ कि वह युवक दो वर्ष से मौन था, उसका कोई घर नहीं था, वह जगह–जगह घूमता फिरता था और जहाँ उसे स्थान मिलता था वहाँ सो जाता था और जो कुछ खाने को मिलता था वही खा लेता था। बाबा ने बताया कि वह आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ा हुआ व्यक्ति था किन्तु उसे विशेषज्ञ की सहायता की आवश्यकता थी जो बाबा उसे प्रदान कर सकते थे। इसलिये बाबा ने उसे हमारे आश्रम में उस समय तक ठहरने के लिये आमन्त्रित किया था जब तक कि बाबा राहुरी आश्रम के लिये प्रस्थान न करें। कुछ दिन बाद वह बाबा के साथ जंगल स्थित राहुरी आश्रम को चला गया।

अब, जैसे ही हम उसकी सुन्दर सहज लय को ध्यान से देखते थे, तो हम उसकी स्वतन्त्र चेष्टाओं से उसके महान आध्यात्मिक आनन्द को सरलता से देख सकते थे। उसको देखने वाले लोगों का उसे कोई होश न था, और उस मग्न अवस्था में वह अपने हाथ तथा अपनी भुजायें इस प्रकार चलाता था मानो वह दिव्य प्राणियों के किसी अदृश्य सामूहिक संगीत का संचालन कर रहा हो।

दिन में हमने अन्य ऐसे लोग भी देखे थे जो बहुत ज्यादा कौतुकपूर्ण थे; उनसे वे लोग धोखा खा गये होते जो पवित्रता के साज से ही प्रभावित हो जाते हैं। ऐसे लोगों में से एक लम्बे शरीर का हिन्दू था जो हरे वस्त्र पहिने हुये भीड़ के बीच में खड़ा था और एक सुन्दर आराधना–चक्र ऊँचा उठाये हुये ''ॐ ! ॐ!'' का उच्चारण कर रहा था। हमने उसके विषय में बाबा से पूछा तो बाबा ने बताया कि वह पेशेवर भिखारी तथा धूर्त था।

दो भिखारी और इन रंगीले भिक्षुकों में थे, जिन्होंने भारतवर्ष में घूम घूमकर अपने बाहरी वेष से प्रभावित होने वाले लोगों के मत्थे जीवन व्यतीत करने का अपना व्यवसाय बना लिया है। वे अपने लम्बे बालों का जटा–जूट बाँधे थे, अपने ललाटों में विचित्र तिलक लगाये थे, और अपने शरीरों में भस्म रमाये थे। अपनी सम्पत्ति वे अपनी पीठों पर लटकती हुई गठरियों में लिये थे। उनमें से एक अपने को धूप से बचाने के लिये फूस की एक विचित्र छोटी छतरी लगाये हुए था। जबकि बाबा के सैकड़ों भक्त भोजन करने के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, ये तीनों रंगे हुए भिक्षुक धृष्टतापूर्वक माँग कर रहे थे कि उन्हें 'तत्काल' भोजन कराया जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें वहाँ से तुरन्त चले जाने की आज्ञा दे दी गई!

दूसरे दिन प्रातःकाल तक अर्थात् 18 फरवरी तक, बाबा के पास आने वाले भक्तों की संख्या एक हज़ार से ऊपर हो गई थी। यह दिन पिछले दिन के बिल्कुल विपरीत था, जबकि हमने उन त्यागे हुये मनुष्यों के ऊपर बाबा के आशीर्वाद की निरन्तर वर्षा होती देखी थी। कोई भी मनुष्य बाबा से निकलते हुए उदार प्रेम तथा दया को देख सकता था तथा महसूस कर सकता था। उसके दर्शक के रूप में जमाव में बैठने मात्र से ही आत्मा में एक हलचल पैदा करने वाला अनुभव होता था जिससे द्रवित होकर हममें से कुछ लोगों के आँसू बहने लगे। जिस समय बाबा के दयालु हाथ नीचे उतर कर मानवता के क्लेश के स्तर पर आते थे, उस समय अन्धकार तथा

प्रकाश, दुख तथा सुख, मानव हृदय की गतियों की स्वरसमता से मिल जाते थे।

भेंटों का वितरण समाप्त हो जाने तथा भिखारियों के चले जाने के उपरान्त, हममें से कुछ जनों को उस रात को ज्ञात हुआ कि इस नाटक में अन्तर्निहित पीड़ा को बाबा ने कैसे ऐश्वर्य के साथ लाँघा था। लगभग आधीरात के समय–जिस समय बाबा को अपना 40 दिन का उपवास समाप्त करना था–उन्होंने हमको मुख्य गृह में बुलाया। हम पलंग के चारों ओर बैठ गये जिस पर बाबा लम्बे लेटे हुए थे। हम पश्चिमी लोगों ने उनको पहिले कभी भी इस प्रकार नहीं देखा था। जब हमने उन्हें श्वासरहित मौन में देखा, तो हममें उनकी कुछ सेवा करने की उत्कण्ठा पैदा हुई; परन्तु हम लोग उनके ऊपर अपने प्रेम की वर्षा करने के अतिरिक्त ऐसा और क्या कर सकते थे जो स्वयं बाबा नहीं कर सकते थे ? अब हमको ज्ञात हुआ कि उन्होंने उस दिन पीड़ित मानवजाति के लिये अपना कितना भीषण बलिदान दिया था। अब वह थोड़ा सा हिले। बड़ी कोशिश के साथ वह आधी दूर तक उठे, और फिर पुनः लेटकर नेत्र बन्द किये हुये थोड़ी देर और आराम करने लगे। पुनः वह उठे और इस बार पूर्णतया सीधे बैठ गये। थकित मुद्रा के साथ उन्होंने अपने नेत्रों पर हाथ फेरा, कुछ बार गहरी साँसें ली, फिर एक फीकी मुस्कान के साथ हम लोगों के ऊपर चितवन डाली। उन्होंने कहा, ''मैं आज के क्रियाकलाप के विषय में तुमसे बात करना चाहता हूँ और इस विषय में कि वह मेरे विश्वव्यापी कार्य के लिये क्या सार्थकता रखता है।''

हम लोगों ने प्रार्थना की कि बाबा इस वार्ता को अगले दिन के लिये स्थगित कर दें, जब तक उन्हें और अधिक विश्राम मिल जायेगा। परन्तु नहीं, उनके लिए स्पष्टतः वही मनोवैज्ञानिक क्षण था। उन्हें अपने पश्चिमी नये शिष्यों को आत्मा का आहार प्रदान करने का कार्य अपने थके तथा उपवास किये हुये शरीर पर उसी समय लेना आवश्यक था। आधा घण्टा तक हम लोगों के ऊपर अपने द्रवित प्रेम तथा कोमलता की वर्षा करने के बाद ही उन्होंने स्नान करके तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करके चाय और डबल

रोटी से अपना उपवास तोड़ा। लगभग 1 बजे रात को उन्होंने हमें विदा किया। प्रातः पाँच बजे वह पूर्णतया ताजे हो गये और जन्मोत्सव की सैकड़ों बातें देखने में तत्पर हो गये, जिनका संचालन वह स्वयं करते थे। मुस्कराते हुये उन्होंने अपनी वर्णमाला तख्ती द्वारा हम लोगों से प्रकट किया, ''मुझमें प्रत्येक बात का स्वयं निरीक्षण करने की वही बुरी अवतारी आदत है !''

जन्मोत्सव का दूसरा दिन महान आमोद प्रमोद का दिन था। उस दिन एक हज़ार अथवा इससे अधिक भक्तजन, जो भारतवर्ष के कोने–कोने से आये थे, बाबा के लिये अपनी पूजा लाये। वे बाबा को अवतारवत् पूजते थे। उन्हें सांकेतिक संस्कारों द्वारा अपना भक्तिभाव प्रकट करने के लिये उपयुक्त मार्ग मिला। ये धार्मिक संस्कार बाबा के चरण पखारने से प्रारम्भ हुये। महिलाओं ने पहले अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उनके जुलूस का पथप्रदर्शन बाबा की माता करती थीं।

बाबा मंच के एक किनारे पर एक कुरसी में बैठे थे, और उनके चरण चाँदी के एक पात्र में रक्खे थे। एक ओर चाँदी का एक कलश रक्खा था जिसमें दूध और शहद मिला हुआ भरा था, और एक कलश में जल भरा था। भक्त लोग थोड़ा सा दूध और शहद बाबा के चरणों पर डालते थे, और फिर थोड़ा सा जल डालते थे। कुछ पुजारी उस पात्र में से उक्त मिश्रण से भीगी हुई अपनी अँगुलियाँ अपने हृदय अथवा मस्तक से लगाते थे। इसको देखकर हमें कैथोलिक गिरजाघरों में पवित्र जल के प्रयोग तथा बपतिस्मा (Baptism) के पवित्र संस्कार का, जो पापों के धुल जाने का सांकेतिक रूप है, स्मरण आया।

बाद में बाबा ने इस क्रिया के लाक्षणिक अर्थ को इस प्रकार समझायाः ''चरण, जो भौतिक रूप से शरीर के सबसे नीचे के भाग हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे ऊँचे हैं। भौतिक रूप से चरण भली व बुरी, सुन्दर व कुरूप, निर्मल तथा गन्दी, प्रत्येक वस्तु से होकर जाते हैं, तथापि वे हर वस्तु से ऊँचे होते हैं। इसलिए, आध्यात्मिक रूप से, सद्गुरु के चरण विश्व में, जो उसके लिये धूल के समान हैं, सबकुछ से ऊँचे हैं। जब लोग सद्गुरु के पास जाकर उसके चरणों में अपना मत्था टेकते हैं, तो वे उसके ऊपर अपने संस्कारों का बोझ डालते हैं–विचार, भाव तथा कर्म के वे सूक्ष्म संस्कार जिनके बन्धन के कारण जीवात्मा को पृथ्वी में पुनः पुनः जन्म लेना

तथा मरना पड़ता है। इसी बोझ का संकेत ईसामसीह ने अपने इस कथन में किया था : 'तुम सब लोग मेरे पास आओ। तुम परिश्रम कर रहे हो और भारी बोझ से लदे हो, मैं तुम्हें विश्राम दूँगा।''

''सद्गुरु सम्पूर्ण विश्व से ये **संस्कार** बटोरता है, जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य पैदल चलने में अपने पैरो में धूल इकट्ठा कर लेता है। जो लोग सद्गुरु से गहरा प्रेम करते हैं और उसके बोझ में भरसक भाग लेना चाहते हैं, वे उसके चरण शहद, दूध तथा पानी से धोते हैं—जो विभिन्न प्रकार के संस्कारों का प्रतिनिधित्व करते हैं—और उसके चरणों में वे नारियल अर्पित करते हैं, जो उसके प्रति उनकी इच्छाओं के पूर्ण आत्मसमर्पण का संकेत होता है।''

बाबा के चरण धोने के पश्चात् उनको फूल मालायें पहिनाने तथा उनका **दर्शन** लेने का संस्कार प्रारम्भ हुआ। पुनः महिलाओं का जुलूस पहिले आया। प्रत्येक महिला बाबा के गले में चमेली तथा गुलाब के फूलों का हार पहिनाती थी, और फिर उनके चरणों में अपना मत्था टेकती थी।

बाबा के मुसलमान भक्तों ने एक अन्य सुन्दर धार्मिक संस्कार सम्पन्न किया, जिन्होंने बाबा को फूलों के एक सेहरा से ढक दिया। उसी प्रकार का सेहरा मुसलमान वर तथा वधू को विवाह के समय पहिनाया जाता है। इस उदाहरण में उपरोक्त संस्कार ईश्वर से बाबा की एकता का संकेत करता था।

इन तमाम भक्तिपूर्ण कार्यों में बाबा ने प्रेमी **पिता** की अपनी भूमिका अदा की, जो अपने बच्चों के हृदयों को प्रत्यक्ष रूप से तथा संस्कार–विधि से अपना प्रेम प्रगट करने की आवश्यकता को जानता है। पश्चिमी भक्त–मण्डली ने बाबा के चरण पखारने के संस्कार में भाग लेने की अनुमति बाबा से माँगी। जब मैं बाबा के निकट पहुँची तो वह मेरी ओर देखकर विनोदपूर्वक मुस्कराये और जब पद–पूजा कर चुकने के बाद मैंने उनकी ओर देखा तो उन्होंने एक गम्भीर तिरछी नज़र द्वारा मेरा अभिनन्दन किया, और इस प्रकार यह प्रदर्शित किया कि वह, हर व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार, कैसी निर्लिप्तता के साथ **माया** से यह खेल खेलते हैं।

बाद में, बाबा के सम्मान में भक्तों द्वारा जन्मदिवस के सन्देश गुजराती, मराठी तथा अँग्रेज़ी भाषाओं में पढ़े गये, जिसमें मैलकाम तथा विल बैकेट ने हमारी पश्चिमी मण्डली का प्रतिनिधित्व किया। तीसरे पहर का समय आध्यात्मिक गानों तथा नृत्य में बिताया गया। भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध गायक मास्टर कृष्ण ने दो घण्टे तक गाना गाया, और बम्बई (अब मुंबई), पूना तथा धूलिया से आई हुई भजन मण्डलियों ने बाबा के प्रिय गाने गाये।

उस अवसर पर आरनगाँव के सारे पुरुषों ने भोंपों, ढोलों, झाँझों तथा करतालों के साथ जो परम्परागत आध्यात्मिक नृत्य किये वे जन्मोत्सव के कभी न भुलाये जाने वाले अंग थे। ये वे ग्रामीण थे जिनकी चेतना तथा जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये बाबा ने वर्षों तक अत्यन्त धैर्यपूर्वक कार्य किया था। आज वे बाबा के प्रति पूर्णतया समर्पित हैं। उनके घरों में बाबा की फोटो सम्मानित स्थान पर स्थापित है, जिन्होंने उनकी बेहतरी के लिए निरन्तर परिश्रम किया था। खेत जोतना, सड़कों की मरम्मत करना, अथवा उत्पादित वस्तुओं को बेचने के लिए बाजार जाने इत्यादि अपने दैनिक कार्यों पर जाने के पूर्व वे इस फोटो को साष्टांग प्रणाम करते हैं; और जब कभी वे मेहेराबाद आश्रम के पास से होकर निकलते हैं, जो उनके गाँव से कुछ मील दूर है, तो वे उसको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं। अब उस गाँव का प्रत्येक पुरुष, स्त्री तथा बच्चा अपने प्रियतम **प्रभु** तथा **मित्र बाबा** के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये यहाँ जन्मदिवस के भोज में आया था।

इस दिन प्रत्येक व्यक्ति बाबा के पुनः दर्शन पाने से उत्पन्न भक्तों के उमड़ते हुये आनन्द, तथा उनका प्रेम प्राप्त करने में बाबा के आनन्द को महसूस करता था। तथापि मेरे लिये पिछला दिन अधिक अर्थपूर्ण था। कदाचित् मेरे हाल के 'संकट' से मेरी ऐसी अवस्था हो गई थी कि मुझको उस आनन्द की अपेक्षा, जिसमें क्लेश के गहरे रंग का अभाव होता है, वह आनन्द अधिकतर महसूस होता था जिसमें पीड़ा भी मिली होती थी।

आमतौर पर भक्तों के सम्बन्ध में बाबा ने कहा : ''सदैव ऐसे बहुतेरे जन होते हैं जो भक्त होते हैं, परन्तु वे आज्ञापालन नहीं करते, थोड़े से भक्त हिचकिचाहट के बाद आज्ञापालन करते हैं; और प्रायः ऐसे कोई भक्त नहीं होते जिनका प्रेम इतना प्रबल तथा पवित्र हो कि वे बिना झिझके हुये तथा सन्देह किये हुये आज्ञापालन करें।''

जन्मदिवस के भोज के आद्योपान्त बाबा के निकटतम शिष्य, सदैव की भाँति, सेवा करते हुए पृष्ठभूमि में बने रहे। ये शिष्य सचमुच स्वार्थरहित, समस्त परीक्षाओं में अचल, अपनी आज्ञाकारिता में 'क्यों' और 'क्या' न करने वाले थे। इनको बाबा कितने ही वर्षों से शिक्षा देते रहे थे; और, बाबा हमको बतलाते हैं कि इन्हीं शिष्यों के द्वारा वह एक दिन दुनियाँ को बदल देंगे, जिस प्रकार ईसामसीह ने अपने शिष्यों के द्वारा अपने समय की दुनियाँ को बदल दिया था।

जिस प्रकार जन्मोत्सव ने चौबीस एकड़ जायदाद के भीतर हमारी क़ैद का अन्त कर दिया, उसी प्रकार उसके साथ हम लोगों में से कुछ के लिए भीतरी तथा बाहरी लय में पूर्ण परिवर्तन आ गया। बाबा ने हम लोगों को नई ड्यूटियाँ दे दीं और नई दिनचर्या निश्चित कर दी। मेरे लिए यह आदेश दिया गया कि मैं बाबा का ध्यान करूँ, उनके विषय में लिखूँ तथा निरन्तर उनका चिन्तन करूँ। यह आदेश मेरे लिये अत्यन्त शुभ तथा आनन्ददायी था। अनेक वर्षों से एक गम्भीरतया अन्तर्मुखी स्वभाव की रहने के कारण, मुझे लोगों के मध्य रहने का अनुशासन प्रायः निरन्तर कष्टदायी प्रतीत होता था। अब वह समाप्त हो गया था ! मैं आत्मनिरीक्षण करने और जी भर लिखने के लिये स्वतन्त्र थी।

सप्ताह, अत्यन्त तेजी से गुजरने लगे। बाबा हम लोगों को सप्ताह में दो बार देखने के लिये आते थे, और हर दो सप्ताह में एक बार हमारी मण्डली दिन भर के लिये मेहेराबाद जाती थी। केवल एक रात हम लोगों ने उस पवित्र की गई पहाड़ी पर व्यतीत की, जहाँ आध्यात्मिक तरंगें इतनी प्रबल थीं कि मैं तो उस पवित्र रात्रि का एक क्षण भी नींद में बर्बाद न कर सकी थी।

वे दिन, जबकि बाबा हमारे साथ नासिक में थे, सदैव अधिक क्रियाकलाप तथा उन्नत चेतना से परिपूर्ण रहते थे, क्योंकि बाबा जिन लोगों से सम्पर्क करते हैं उनके जीवनों की लय अधिक तीव्र कर देते हैं।

हमको यह कभी निश्चितरूप से ज्ञात न होता था कि वह कब आवेंगे। कभी कभी वह बड़े सुबह हम लोगों के जागने के पूर्व ही आ जाते थे। ऐसे अवसरों पर हमें किसी कमरे के दरवाजे पर खट खट होने का शब्द सुनाई देता था और फिर "बाबा ! बाबा आ गये !" की पुकार पूरे बरामदे में गूँज जाती थी। हम झपटकर अपने वस्त्र उठाते थे, जिससे हम उस समय उनसे अभिवादन करने के लिए तैयार हो जावें जिस समय वह हमारा दरवाज़ा खटखटावें। तब वह प्रतीक्षित खटखटाहट आती थी और शीघ्र ही बाबा का कोमल आलिंगन प्राप्त होता था। वह प्रेम भरे हुये नेत्रों तथा प्रश्न करते हुये संकेतों से हमारे मन तथा शरीर की अवस्था के विषय में पूछताछ करते थे। यदि उनके ध्यान देने की कोई बात न होती थी, तो वह दूसरे कमरे में चले जाते थे। तदनन्तर हम सब लोग भोजन करने के कमरे में नाश्ता करने के लिये एकत्रित होते थे। हम लोगों के नाश्ता करने के बीच में ही बाबा आ जाते थे—प्रफुल्लित, कभी कभी चिढ़ाते हुये, किसी की कुरसी के पीछे चुपके से खिसकते और उसके कान में धीरे से चुटकी लेते हुए, और फिर इस क्रिया में पकड़े जाने के पूर्व वहाँ से झपट कर भागते हुये। कभी कभी वह स्वयं हम लोगों को ऐसी शिष्टता तथा गम्भीर रूप से केंद्रित एकाग्रता से भोजन परोसने लगते थे कि भोजन करने वाले को ज्ञात होता था कि उस दिन उसने भौतिक भोजन से बढ़कर कुछ और ही आहार किया था !

बाद में हम लोग बाबा के पलंग के चारों ओर बैठते थे, जबकि वह हमारे स्वप्नों का अध्ययन करते थे, क्योंकि उन्होंने हमें यह आदेश दे रक्खा था कि जब वह वहाँ रहें तो उस रात को देखे हुये अपने अपने स्वप्न सब लोग लिखें और सुबह उनको दें। सामान्यतः स्वप्न का अध्ययन करने के पश्चात् वह एकाग्रता के साथ स्वप्न देखने वाले को देखते थे, मानो वह उसको कुछ गुप्त सूचना दे रहे हों जो उसको एक दिन ज्ञात हो जायेगी। बहुधा वह प्रसन्नतापूर्वक हँसते थे और अपना सिर हिलाते थे, मानो वह कहना चाहते हों : "अभी ठहरो और देखो कि इसका क्या अर्थ है !" मुझे अपना एक स्वप्न याद आता है जिसका मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा था, क्योंकि वह बाबा से विचित्र रूप से सम्बन्धित था और उनके साथ आगामी कार्य में मेरी भूमिका का संकेत करता हुआ प्रतीत होता था। इस स्वप्न का

अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने मेरे नेत्रों में ऐसी गम्भीर चितवन डाली कि आज तक, जब कभी मैं उनके चेहरे का विचार करती हूँ, मैं अपार प्रेम के वे कुण्ड अपनी आत्मा में प्रतिबिम्बित देखती हूँ, मानो वे पुनः हमारे मध्य एक शाश्वत् सम्बन्ध स्थापित कर रहे हों। वह स्वप्न मुझको वापिस देते हुये उन्होंने मुझे उसे एक ख़ास तारीख़ को उन्हें फिर से देने का आदेश दिया। कदाचित् इन वर्षों में किसी वर्ष, उसी तारीख को, उस स्वप्न की भविष्यवाणी पूरी होगी।

प्रातः, जब हम अपने आवश्यक कर्तव्यों से निवृत्त हो जाते थे, बाबा हम लोगों को मुख्य गृह में मिलने के लिये बुलवाते थे। वहाँ उनके चारों ओर फर्श पर अथवा नीची तिपाइयों पर बैठे हुए हम लोग उनके द्वारा प्रदान किया गया आध्यात्मिक भोजन ग्रहण करते थे। अपनी वर्णमाला पट्टी के द्वारा वह **दैवी प्रेम**, आध्यात्मिक चेतना की **ऐहिक भूमिका**, ईश्वर का साक्षात्कार पर प्रवचन देते थे। कभी कभी वह अपने कार्य के किसी आगामी पहलू पर, अथवा किसी की तात्कालिक समस्या पर, वादविवाद करते थे। बहुधा मण्डली के किसी सदस्य के लिये संकटकाल उत्पन्न हो जाता था—मानो वह अकस्मात् पैदा हो गया हो, परन्तु उसमें सदैव बाबा के चतुरतापूर्ण कार्य की निश्चित छाप रहती थी।

तीसरे पहर चाय पी चुकने के बाद, जब गरमी कुछ—कुछ कम हो जाती थी, हम लोग मुख्य बरामदे में एकत्रित होते थे जबकि बाबा तथा मण्डली के कुछ जन टेबिल—टेनिस खेलते थे। इस खेल में वह पूर्णतया आनन्दित होते हुए प्रतीत होते थे, और उसे वह भारी उत्साह और एकाग्रता के साथ खेलते थे। खेल देखने वाले पर सदैव ऐसा प्रभाव पड़ता था कि बाबा खेल तथा उसके द्वारा उभाड़ी गयी शक्तियों का प्रयोग किसी प्रकार से अपने आन्तरिक क्रियाकलाप के लिये करते थे। खेल में कोई हार—जीत की गिनती नहीं रक्खी जाती थी, परन्तु उन्हें गेंद को तेजी तथा चतुराई से वापिस करना प्रिय था, और वह खुद गेंद को जोर से तथा चतुरतापूर्वक मारते थे।

कभी कभी वह इस क्रीड़ा का प्रयोग एक अत्यन्त भिन्न प्रयोजन के लिए करते थे। एक ऐसा समय आया जिसमें वह अपने विश्वव्यापी कार्य

के लिये जागृत अवस्था के दौरान में काफी समय तक अपने शरीर से बाहर रहे। उनके नेत्रों में एक सुदूर—केन्द्रित चितवन आ जाती थी, और दूसरे ही क्षण वह अपना सिर ढँक कर पलंग पर लम्बे तथा निश्चल लेट जाते थे। कुछ समय के पश्चात् वह काफी प्रयत्न के साथ उठते थे और अपने किसी साथी को पीछे आने के लिये इशारा करते हुये परिश्रम के साथ मेज के पास जाते थे। फिर, एक हाथ मेज पर रखकर अपने को साधे हुए वह धीरे धीरे तथा श्रमपूर्वक खेलने लगते थे। कभी कभी वह अपने लड़खड़ाते हुए शरीर को साधने के लिये मेज को ज़ोर से पकड़ लेते थे; और तब पुनः पीड़ामय खेल खेलने लगते थे। उनके साथ ऐसे क्षण हमारे हृदयों को चूर—चूर करने वाले होते थे क्योंकि, अपनी चेतना को अपने स्थूल शरीर में वापिस आने के लिये बाध्य करने में, वह अपने को जिस यातना में डालते थे उसको कोई भी देख तथा महसूस कर सकता था। कभी कभी वह खेलना बन्द करके अपना सिर पीछे करके तथा आँखें बन्द किये हुये पास में रक्खी कुरसी पर लेट जाते थे। तब भक्त—मण्डली खामोशी से यह देखती हुई, आश्चर्य करती हुई, सहायता करने की लालसा करती हुई, किन्तु कुछ भी कर सकने में असमर्थ, उनके समीप खड़ी रहती थी। हममें से एक या दो जन प्रेरित होकर उनकी कुरसी के बराबर घुटने टेककर बैठ जाते थे और उनके पैरों अथवा अन्य अंगों को स्पर्श करते थे। उस समय वह हमारे ऊपर कृतज्ञतापूर्ण प्रेम की जो चितवन डालते थे उससे हमें अनुमान होता था कि हमारे ऐसा करने से उनको पृथ्वी पर भौतिक चेतना रखने में किंचित् सहायता मिलती थी, जहाँ उन्होंने अपना निर्दिष्ट उद्देश्य पूरा करने के लिये ठहरने की इच्छा की है। बाद में वह मण्डली सहित बाग़ मे तेजी से टहलते थे, और भोजन के समय तक सुन्दर ढँग से सन्तुलित तथा स्थिर अवस्था में हो जाते थे। भोजन के पश्चात् वह पुनः हमको आध्यात्मिक आहार प्रदान करते थे, अथवा यदि रात काफ़ी गरम होती थी तो हम उनके साथ उस समय देदीप्यमान तारों के नीचे बाग़ में खामोशी से बैठते थे, जिस समय भारतीय ग्रीष्म ऋतु की सन्ध्याकालीन मखमली गरमी उस ईश्वरीय प्रेम के देदीप्यमान प्रभामण्डल में विलीन होती थी जो बाबा हमारे ऊपर बरसाते थे।

नौ बजने के करीब हम बाबा को खुद को समेटते हुए महसूस कर सकते थे, और यदि उनके नेत्र दिखाई पड़ते थे तो हम उनमें वह

सुदूर–केन्द्रित स्पष्टभाव देख सकते थे जो इस भूलोक के प्रतिबन्धों से उनके निकट प्रस्थान को सूचित करता था।

बाबा के साथ में जिस प्रकार के ये दिन गुज़रते थे वैसे दिन बिरले ही पुनः आते थे। यद्यपि बाबा की जड़ें अपरिवर्तनशील अनन्तता में गड़ी हैं, तो भी इस माया–जगत में उनकी सत्ता की पत्तियों का समूह निरन्तर परिवर्तनशील है। यह ऐसी सत्ता है जिसे यह ज्ञान है कि 'अच्छी' आदत नाम की कोई वस्तु नहीं है, सिवाय इसके कि वह एक श्रेष्ठतर आदत प्राप्त करने के लिये एक सीढ़ी हो सकती है। हमारे जन्मदिवस सदैव विशेष उत्सव के अवसर होते थे; और चूँकि आश्रम में हम लोग पन्द्रह जन थे इसलिए हमें बहुधा चिरकाल से आईसक्रीम तथा डबलरोटी से सम्पन्न दावतें मिलती थीं। हमारी लय को बदलने के लिये हमें चलचित्र भी दिखाये जाते थे। नासिक में बाबा के कुछ शिष्यों का प्रमुख सिनेमाघर था। वह हमको सदैव अच्छे से अच्छा स्थान बैठने के लिए देता था। उन फिल्म–प्रदर्शनों के दौरान में बाबा अपने आन्तरिक कार्य में गम्भीरता से तल्लीन हो जाते थे, जैसा कि वह ऐसे अवसरों पर पश्चिमी देशों में भी करते थे। मुझे एक चलचित्र की याद विशेषरूप से इस कारण से आती है कि बाबा ने मुझसे खासतौर से पूछा था कि मुझे उसकी कहानी कितनी पसन्द आई थी। उसका विषय एक महिला से सम्बन्धित था जिसने महान मानुषिक प्रेम का त्याग ईश्वरीय प्रेम के लिये–सद्‌गुरु के लिये–कर दिया था। मुझे याद है कि जिस समय मैंने कहानी के परिणाम के विषय में अपनी पूर्ण स्वीकृति प्रकट की तो बाबा मुस्कान सहित मेरी बात में दिलचस्पी रखते हुये दिखाई पड़ते थे, क्योंकि वह निःसन्देह जानते थे कि वह कहानी उसी सिद्धान्त को नाटक में रख रही थी जो मेरे खुद के जीवन में क्रियाशील था–अर्थात् व्यक्तिगत प्रेम का अवैयक्तिक प्रेम के लिए; मानवीय प्रेम का ईश्वरीय प्रेम के लिये प्रगतिशील परित्याग।

कभी कभी किसी सैरसपाटे की यात्रा अथवा आध्यात्मिक महत्त्व से पूर्ण किसी स्थान की यात्रा से हमारी दिनचर्या में परिवर्तन होता था। ऐसी

ही एक यात्रा में हम त्रिम्बक गये जहाँ से गोदावरी नदी निकलती है। गोदावरी भारतवर्ष की उन पवित्र नदियों में से है जो समस्त हिन्दुओं के लिये पूज्य है।

मेरी तन्दुरुस्ती अब भी पूरी तरह से ठीक नहीं हुई थी, परन्तु उस यात्रा में मेरे जाने के लिये बाबा ने मुझसे विशेष रूप से अपनी इच्छा प्रकट की। सदैव की भाँति हमने रात्रि के शीतल समय में प्रस्थान किया और हम लोग उस समय पर्वत–माला की तल भूमि पर पहुँच गये जबकि प्रभात हो ही रहा था। जिस समय हम लोग ऊषाबेला की नीरवता में मोटरकारों से उतरे, हमें एक निकटवर्ती मन्दिर में सन्यासियों द्वारा स्तोत्रों का उच्चारण सुनाई पड़ता था। वह भूतकालीन भारतवर्ष की–युगों पुरानी धार्मिक रीतियों की –एक छाप थी, और उसने हमारे हृदयों में एक गम्भीर प्रत्युत्तर जागृत किया; परन्तु हम लोग केवल एक क्षण के लिये भूतकाल में रमण करने पाये। बाबा ने हमें अपने पास बुलाने का संकेत किया। निसंदेह उन्होंने हमारा खिंचाव पीछे की ओर चेतना के एक ऐसे पहलू की तरफ महसूस किया जिसमें वह अपने शिष्यों को निमग्न नहीं होने देना चाहते थे। जहाँ तक बाबा का सम्बन्ध उनके भौतिक जन्म के कारण किसी एक मुल्क से है, वह भावी भारतवर्ष के प्रतिनिधि हैं–वह भारतवर्ष जिसकी पुनर्जीवित आत्मा एक दिन तमाम मुर्दा पद्धतियों तथा कर्मकाण्डों को लाँघेगी जिस समय वह दुनियाँ के राष्ट्रों के मध्य आध्यात्मिक नेता के रूप में अपने उचित अधिकार का प्रयोग करेगा।

जब हम बाबा के समीप एकत्रित हुये तो उन्होंने हम लोगों को कुछ आम हिदायतें दीं, और फिर हमको सात सौ चौड़ी सीढ़ियों की चढ़ाई शुरू करने की आज्ञा दी जो गोदावरी के उद्‌गम स्थान तक जाती थीं। उन सीढ़ियों तक पहुँचने के लिये हमें एक चौड़ा मैदान पार करना पड़ा। मैंने मैलकाम की बगल में रहते हुए चढ़ाई प्रारम्भ की। वह जानता था कि मुझमें कितनी कम शक्ति थी, इसलिये इतनी लम्बी चढ़ाई के लिये मेरे प्रयत्न करने से वह बहुत चिन्तित था। तथापि मैं महसूस करती थी कि यदि बाबा मुझसे उन सीढ़ियों पर चढ़ने की आशा करते होंगे तो वह उसके लिये मुझे

वैसी ताक़त देंगे। इसलिये हमने चढ़ाई ज़ारी रक्खी। परन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् हमने बाबा के एक जन की पुकार सुनी जो हम लोगों को लौटने के लिये कहता हुआ हमारे पीछे दौड़ा आ रहा था। जब मैं बाबा के पास पहुँची तो उन्होंने एक गहरी मुस्कान के साथ मेरी ओर देखा और अपनी वर्णमाला तख्ती द्वारा प्रकट किया कि उनकी इच्छा थी कि मैं एक डोली में बैठकर पर्वत के ऊपर जाऊँ। इस पर मैं भी मुस्कराई और दो बाँसों के बीच में लटकी हुई डोली में बैठ गई। इस प्रकार से मैं उस पवित्र पर्वत पर चढ़ी।

रास्ते में मन्दिरों तथा देवालयों की क़तारें थीं। उनमें से मुख्य मन्दिर ब्राह्मण पुरोहितों के संरक्षण में था जो इस बात से अत्यन्त प्रफुल्लित थे कि बाबा अपने आगमन से उनके तीर्थस्थान को धन्य कर रहे थे। यद्यपि उन लोगों ने बाबा को पहले कभी नहीं देखा था, तथापि उनमें से एक ने भविष्यवाणी की थी कि बाबा जल्दी ही वहाँ पहुँचेंगे, और वे महसूस करते थे कि बाबा का पदार्पण उनके तथा उनके मन्दिर के लिये गहरा महत्त्व रखता था।

विशाल गोदावरी अपने उद्गम स्थान में चट्टानों के बीच एक पतली धार की तरह दिखाई पड़ती थी। उसको देखने के बाद हमें एक छायादार उपयुक्त स्थान विश्राम करने के लिए मिल गया। इस समय सूर्य काफी चढ़ आया था और अन्य जनों के लिये यह चढ़ाई श्रमपूर्ण रही थी। वे आराम करने के लिये समय पाने की आशा में थे। परन्तु बाबा ने तय किया कि हम लोग तुरन्त भोजन करें। इसलिये भोजन की पिटारियाँ खोली गईं, और जब भोजन दिखाई पड़ा तो हमें मालूम हुआ कि हम बहुत भूखे थे। हमारी भूखें तृप्त हो गईं, और हम पुनः पर्वत की शीतल वायु में एक लम्बे विश्राम की आशा करने लगे। परन्तु एक घन्टे के भीतर बाबा ने हमें पुनः भोजन करने के लिए सुझाव दिया ! इस दूसरे भोजन के पश्चात् जिसमें कि बचा हुआ भोजन समाप्त हो गया, बाबा ने कहा कि चूँकि अब खाने के लिये और कुछ नहीं है इसलिये हम लोग घर लौट चलें। बाबा ने बताया कि रात्रि की शीतलता में आश्रम से हमारा प्रस्थान दोपहर की यात्रा की गरमी से बचने के अभिप्राय से था। परन्तु अब हमारे दल को पर्वत के नीचे ऐसे

समय उतरना था जबकि सूर्य सिर के ऊपर था ! इसके अतिरिक्त, बाबा ने नीचे उतरने के लिये एक सीधा मार्ग चुना जो खुले प्रदेश से होकर जाता था जिसमें रक्षा के लिये नाममात्र की भी छाया न थी जैसी छाया सीढ़ियों में हमें प्राप्त हुई थी ! मैंने पैदल लौटने के लिये अपनी इच्छानुसार प्रस्ताव किया, परन्तु बाबा ने मेरे डोली पर ही लौटने का आग्रह किया।

इस यात्रा की एक उपकथा से हमारे सामने क्लेश की ओर बाबा की उदार प्रवृत्ति प्रकट हुई। जब हम पर्वत की चोटी पर पहुँचे एक बेचारा दुबला कुत्ता झाड़ियों से निकल कर हमारी ओर लँगड़ाता हुआ आया। उसका चेहरा किसी रोग ने प्रायः भक्षण कर लिया था। उसने दुखपूर्वक कराहते हुये अपनी एकमात्र दृष्टिगोचर आँख से हम लोगों की ओर करुणाजनक भाव से देखा। इस पर दो एक नवयुवतियाँ हिचकियाँ भरकर चिल्ला पड़ीं और अनायास उससे दूर हट गईं। बाबा तत्क्षण बढ़कर आगे आये और उन्होंने झुककर अपना हाथ कोमलतापूर्वक उसके घावों के ऊपर फेरा। कुत्ता अपने पिछले पैरों के बल बैठ गया और अपना चेहरा बाबा की ओर किया। वह स्पष्टतः उस चंगा करने वाले शीतल स्पर्श के लिये कृतज्ञ था जिसकी वर्षा बाबा उसके ऊपर कर रहे थे। जिस समय ईश्वर–पुरुष के हाथ ने उसकी असहनीय पीड़ा को हर लिया, उसकी दुख भरी कराह सन्तोष की गहरी श्वास में बदल गई। मण्डली की ओर मुड़कर बाबा ने कहा : ''यदि तुम क्लेश में कोई सहायता नहीं दे सकते, तो अपने आवेगों द्वारा उसे बदतर भी न बनाओ।''

इस यात्रा की आध्यात्मिक गूढ़तायें उन लोगों के लिये पर्याप्तरूप से स्पष्ट हैं जो सांकेतिकता में पारंगत हैं और उन्हें व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। बाबा ने इस भ्रमण का प्रयोग हमारी आध्यात्मिक यात्रा के एक पहलू को सांकेतिक रूप में प्रकट करने के लिये किया था। निम्नस्थ मन के अज्ञान के पर्दे से अब भी ढँके हुये, हम रात्रि के अन्धकार में यात्रा करके पवित्र सरिता–**जीवन सरिता**–के उद्गम स्थान पर पहुँचे थे। अपने लक्ष्य पर पहुँच जाने पर, हमको **सद्गुरु** ने **जीवन का आहार**–अर्थात् आध्यात्मिक जीविका–प्रदान किया। उतरने का सीधा मार्ग ईश्वर–साक्षात्कार की दिव्यचेतन अवस्था के पश्चात्, जो मूलस्थान तक पहुँच तथा आहार

प्राप्ति द्वारा सूचित होती है, सामान्य चेतना तथा व्यापार की अवस्था में अधिक तीव्रता से वापिस आने का संकेत करता हैं। हम लोग सद्गुरु के सेवकों के रूप में अपने प्रारब्ध–कर्म को पूरा करने के लिये पुनः माया की घाटी में उतर आये। कुछ माह पहले बाबा ने पान्डुलेना गुफ़ाओं में जो प्रक्रिया प्रारम्भ की थी वह कदाचित् अब पूरी की गई थी। अपनी निजी प्रवर्तक शक्ति द्वारा पर्वत शिखर पर चढ़ने और उतरने के बजाय वाहकों द्वारा मेरी चढ़ाई तथा उतराई मेरे लिये विशेष टेकनीक की आवश्यकता का संकेत करती है जो **सद्गुरु** की कृपा ने मुझे प्रदान की।

फरवरी के आरम्भ में, बाबा ने भविष्यवाणी कर दी थी कि अप्रैल माह से **दैवी–जीवन** में अधिक गंभीरता से निमग्न होने की अवधि का सूत्रपात होगा, और परम सौभाग्यवश यह हममें से कुछ जनों के लिए सही सिद्ध हुआ। मैं बाबा की आत्मा से इतने घनिष्ठ रूप से एकरस अनुभव करती थी कि मैं उनको हर वस्तु में देखती तथा महसूस करती थी। स्वाभाविकतया इस उच्च्य दर्शन के साथ गम्भीर शान्ति तथा आनन्द प्राप्त होते थे। मुझे ऐसा अनुभव होता था मानो मेरा जीवन अमरीका में बाबा के प्रथम आगमन के प्रारम्भिककाल से पुनः गुजर रहा था। मई माह के शुरू से अन्त तक यह चेतना जारी रही; फिर वर्षा के प्रारम्भ के साथ साथ बाबा ने हमारे आश्रम में हर सप्ताह आना बन्द कर दिया और ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्होंने अपनी शारीरिक उपस्थिति हटाने के साथ साथ अपना आन्तरिक सम्पर्क भी हटा लिया था। उस गम्भीर 'परिवर्तन' को, जिसे उन्होंने प्रेरित किया तथा पनपाया था, अब स्थिर होना था। परन्तु 'उस समय' मैं इसे नहीं जान पाई थी। जो कुछ मैं जान सकी वह यह था कि अन्धकार का एक पर्दा मुझे उनके आन्तरिक सम्पर्क से अलग करता हुआ प्रतीत होता था।

इस विचित्र अन्धकार ने अपनी बाह्य प्रतिछाया मेघों से छाये हुये आकाश में पाई जो अब हफ़्तों तक हम लोगों के ऊपर छाये रहते थे।

भारतवर्ष की वर्षाऋतु मनुष्य के ऊपर सचमुच एक अशान्तिकारी प्रभाव डालती है। वह प्रचण्ड तनाव, जो भौतिक शरीर भीषण अयनवृत्तीय (Tropical) गरमी में सहन करता रहता है, अब मुक्त हो जाता है। मानवप्राणी, पशु तथा स्वयं पृथ्वी ताज़ा कर देने वाली वर्षा के लिये कृतज्ञ होते हैं–उस वेगपूर्ण बौछार के लिये जो कभी भी बन्द होती प्रतीत नहीं होती। पहले तो मनुष्य परवाह नहीं करता कि सूर्य पुनः कभी निकलेगा या नहीं, क्योंकि उस समय उसको भीषण गरमी से मिली हुई राहत अत्यन्त आनन्ददायी लगती है। परन्तु जैसे जैसे दिन गुजरते हैं वैसे ही वैसे निरन्तर मूसलाधार वर्षा तथा मेघों से ढँका आसमान मनुष्य की आत्मा को पीड़ित करते हैं। मूसलाधार वर्षा के साथ साथ निश्चयात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रचण्ड शक्तियों का अवरोहण आता हुआ प्रतीत होता है, जो भूतकाल को मिटाती है जिस प्रकार कि वर्षा का जल–विस्तार कल के वादे के समस्त चिन्हों को मिटाता हुआ प्रतीत होता है। शेष जीवन से अलगाव की भावना मुझमें व्याप्त हो गई, और मुझे अपने साथियों के अत्यन्त दयालु प्रस्तावों का भी प्रत्युत्तर देना कठिन मालूम होता था।

जून के प्रारम्भ से लेकर जौलाई के अन्त में यूरोप के लिए प्रस्थान करने के समय तक हम बाबा से केवल दो बार मिले। कदाचित् वह हम लोगों को अधिक लम्बे वियोग के लिये तैयार कर रहे थे जो बाद में आने वाला था। हमारे आश्रम से बाबा के प्रस्थान करने के पूर्व ही एक बड़ा संकट पैदा हो गया जिसमें हमारा पूरा दल चपेट में आ गया और जिससे बाबा को नासिक आश्रम समाप्त कर देने के लिये 'हथियार' मिल गया। एक या दो दिन तक उन्होंने हम लोगों से दूसरा स्थान चुनने के सम्भावित उपायों पर वादविवाद किया। उन्होंने भारतवर्ष के कुछ भागों का सुझाव दिया जहाँ की जलवायु अधिक स्वास्थ्यप्रद होगी, और फ्रान्स अथवा इटली के कुछ स्थानों का सुझाव दिया। टोली के अनेक जन इटली के लिंग्यूरियन समुद्रतट पर पोर्टो फीनो वापिस जाना चाहते थे जहाँ वे बाबा के साथ में ऐसा ही आनन्दपूर्ण समय व्यतीत कर चुके थे; किन्तु उनके सुझाव का विरोध न करते हुये बाबा ने वादविवाद का रुख फ्रान्सीसी रिवीरा पर स्थित केन्स की ओर किया। बाबा ने यह कभी भी प्रकट न किया कि उन्होंने यह विशेष स्थान क्यों पसन्द किया था, परन्तु इस चुनाव

में कई प्रकार की सम्भावनाओं का संकेत मिलता है। युद्ध के शीघ्र ही उभरने वाले साँचे में इसकी सामरिक महत्त्वपूर्ण स्थिति उनके फैसले को निश्चित करने वाली बात रही होगी; अथवा वह उस भूमि को स्पर्श करना चाहते थे जो ईसामसीह, मेरी मेंगडलीन, अरामेथिया के जोसेफ तथा अन्य शिष्यों के उपाख्यानों से भरी पड़ी है; अथवा हो सकता है कि यह चुनाव एक जन के साथ आत्मिक संसर्ग रखने के लिये था जिसके प्रारब्ध में भविष्य में बाबा का पूर्ण परायण भक्त बनना था।

यद्यपि बाबा ने पश्चिम में अपना अधिकाँश क्रियाकलाप चल चित्रों की ओर किया था, तथापि उसके परिणाम अधूरे ही थे जब तक कि वह आखिरकार एक खास आदमी के सम्पर्क में न आये। हमारे कुछ मित्र न्यूयार्क निवासी अलेक्ज़ेन्डर मारकी को बाबा के क्षेत्र में ले आये थे जो बाबा के कार्य के फ़िल्मी पहलू का भार अपने ऊपर लिये थे। उसे एक फ़िल्म की पटकथा (कहानी) लिखने के लिये तैयार किया गया था जिसमें कुछ ऐसे मौलिक आध्यात्मिक विषय सम्मिलित हों जिनकी रूपरेखा बाबा ने बना दी थी। गत वर्षों में अन्य अनेक लोगों को ऐसी पटकथा लिखने के लिये तैयार किया गया था। अन्य अनेक पटकथायें बाबा के समक्ष उपस्थित की गईं थीं, परन्तु उनके लिये बाबा ने केवल शिष्टाचार के लिये 'धन्यवाद' प्रकट किया था और अपनी न्यूयार्क की मण्डली को 'दूसरा लेखक खोजने' का आदेश दिया था। पटकथा लिखना प्रारम्भ करने के पहिले जब इस व्यक्ति का नाम बाबा को तार द्वारा सूचित किया गया, तो बाबा ने तार द्वारा उत्तर दिया : ''मारकी ही उचित व्यक्ति है।'' जब मारकी की लिखी पटकथा बाबा के पास भेजी गई, तो बाबा ने उसे स्वीकार कर लेने की सूचना तार द्वारा भेजी और उस दिन से बाबा ने अन्य सिनेमा लेखकों की खोज बन्द कर दी।

कई माह बाद अलेक्जैन्डर मारकी बाबा से लन्दन में मिला जिस समय कि पश्चिमी भक्त–मण्डली भारतवर्ष के लिये प्रस्थान कर रही थी। बाबा से उस मिलन को वह अपने जीवन में महान परिवर्तन का क्षण मानता है। वह कहता है कि 'अधिकांशतः अन्धकार में' आध्यात्मिक खोज करने तथा टटोलने का जीवनकाल व्यतीत करने के पश्चात् उसे इस महान आत्मा मेहेरबाबा के क्षेत्र में खिच आने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो मनुष्य द्वारा सदैव से अनुमानित उसके अन्तिम तथा सर्वश्रेष्ठ सत्व (Self) के साक्षात् अवतार हैं। बाबा से मिलने के बहुत पहले ही मारकी बाबा के कार्य तथा उनके व्यक्तित्व से गम्भीर रूप से प्रभावित हो चुका था, परन्तु इस प्रभाव की प्रकृति को बुद्धि से नापना, अथवा उसके कारण को जानना उसे असम्भव मालूम हुआ। उसका मन इसके प्रभाव को अस्वीकार करता रहा, तथापि उसके एक अत्यन्त क्रियाशील जीवन के मध्य एक धुँधला आग्रहपूर्ण पूर्वाभास उसको बराबर होता रहा कि कोई असाधारण बात घटित होने वाली थी।

फिर उसके जीवन में रहस्यपूर्ण तथा चकित करने वाली घटनाओं का एक ताँता लग गया। उस समय वे पूर्णतया असम्बद्ध प्रतीत होती थीं, बहुधा बिना स्पष्ट अर्थ के होती थीं, और कभी कभी विश्वास न करने योग्य होती थीं। अन्ततः असंख्य घटनाओं के फलस्वरूप उसे ईश्वर की ओर से निमन्त्रण आया जिसमें उसे एक फिल्म के निर्माण का निरीक्षण करने के लिये लन्दन बुलाया गया था। उस समय वह अमरीका में बड़े बड़े क्रियाकलापों में इतना अधिक फँसा था कि उसे उस निमन्त्रण को स्वीकार करना बिल्कुल असम्भव मालूम पड़ता था, और उसका अधिक रुझान ऐसा ही करने की ओर था। परन्तु रात भर में, मानो किसी जादू से, हर चीज़ बदल गई, और कुछ ही दिनों में उसने 'क्वीन मेरी' नाम के समुद्री जहाज द्वारा ब्रिटिश द्वीप समूह के लिये प्रस्थान कर दिया।

इँगलैन्ड में उसके सामने एक बिल्कुल नया तथा अप्रत्याशित घटनाचक्र आया, जो उसके लन्दन के बुलावे से कोई वास्ता न रखता प्रतीत होता था, और जिसका मूल कारण 'आकाश' में विलीन हो गया जहाँ से कि बुलावा आया था। उसके तर्कपूर्ण मन में इन घटनाओं का कोई अर्थ उस महत्त्वपूर्ण दिवस तक समझ में न आया जबकि उसे समाचार मिला कि मेहेरबाबा भारतवर्ष से लन्दन आ गये थे और उससे मिलना चाहते थे।

पत्रकार तथा सम्पादक के रूप में उसको दुनियाँ के कुछ प्रसिद्ध तथा अत्यन्त कौतुकपूर्ण व्यक्तियों से मुलाकात करने का अवसर प्राप्त हुआ था, और उसको कभी भी उन सबको अपने चक्कर में ले आने में कोई कठिनाई

न हुई थी। मुकुटधारी व्यक्ति, साहित्य तथा कला जगत के महान पुरुष, तानाशाह, सब उसकी सम्पादकीय चक्की में पिस चुके थे। परन्तु जिस समय वह उस द्वार पर खड़ा हुआ जिसके पार मेहेरबाबा उसका इन्तज़ार कर रहे थे, उसने अपने को ''एक हक्काबक्का छोटे बच्चे की भाँति'' महसूस किया। वह स्वीकार करता है कि अपनी याद में पहली बार वह ''ऐसा घबड़ा गया था कि उसे समझ में न आता था कि वह किस प्रकार का व्यवहार करे, क्या करे, क्या कहे।'' यह एक आश्चर्यजनक अनुभूति थी और वह बिल्कुल चकित था।

फिर दरवाजा खुला और वह कहता है, ''मैंने अपने को मनुष्यरूप में विद्यमान पवित्रता की अत्यन्त श्रेष्ठ मूर्ति के सन्मुख पाया जैसी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी।''

वह न तो इसका अनुभव कर पाया और न उसके लिये चेतनतया इच्छा कर पाया था, कि बाबा ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। 'वे दोनों चिरकाल से खोये हुये दो भाइयों की भाँति इस तरह मिले जैसे उन्होंने अनन्तकाल तक यातनापूर्ण खोज करने के बाद अन्त में एक दूसरे को पुनः पा लिया हो।' और उस परम श्रेष्ठ क्षण में मारकी की सब शंकायें, सब बौद्धिक प्रश्न तथा सब भ्रम दूर हो गये, जिस प्रकार धूप के प्रेमपूर्ण स्पर्श से बर्फ पिघल जाती है। अब उसको चीजें एक ऐसे प्रकाश में दिखाई पड़ती थीं जैसा प्रकाश उसे पहले कभी प्राप्त न था, मानो जादू के एक स्पर्श ने उसकी दृष्टि के चश्मे के शीशों का मेल बैठा दिया हो। अपने अन्तर में उसे ज्ञान हो गया कि उसके लन्दन आने का असली कारण वही क्षण था और इसके पहले घटित होने वाली विचित्र रंगरंगीली घटनाओं को मौन सद्गुरु के मौन आदेश ने इसी आयोजन के लिये पहले से ही आश्चर्यजनक रूप से व्यवस्थित किया था। बिजली की ऐसी एक चमक में उसने पूरी योजना की सुन्दरता तथा पूर्णता को साफ साफ देखा जिसकी चरम सीमा अब उसके जीवन के इस परम श्रेष्ठ मिलन में हुई थी। पहली बार उसने उस गलाने वाले ईश्वरीय तत्त्व की पूरी लहर का अनुभव किया जिसके विषय में हम बहुत सुनते हैं और बहुधा जिसकी चर्चा करते हैं, किन्तु जिसका अनुभव इने–गिने लोगों को ही होता है; अर्थात् **प्रेम** जो मानवीय परिस्थितियों से परे होता है; **प्रेम** जो विश्व में व्याप्त है। और, मारकी यह स्वीकार करने के लिये भी किंचित् अनिच्छुक नहीं है कि उस

अनुभव के अकथनीय आनन्द के कारण उसके आँसुओं की धारा बह रही थी। बाबा के कमरे के भीतर पग रखने और उसके बाहर आने के बीच के समय में उसके लिये एक नई दुनियाँ पैदा हो गई थी। वह अनुभव इतना प्रबल था कि उसके प्रभाव में मारकी 'अपार आनन्द में मस्त' रात भर लन्दन की सड़कों में घूमता रहा और उसको देश, काल तथा नींद जैसी पुरानी आदतों की याद बिल्कुल न थी। वह कहता है कि उस अनुपम घटना के समय से उसके जीवन में उसके लिये एक बिल्कुल नवीन अर्थ तथा प्रवर्तक शक्ति का संचार हो गया था।

मैं अमरीका लौटने के कुछ माह बाद ''जैन्डर'' से मिली। ''जैन्डर'' मारकी का उसके मित्रों में प्रचलित नाम हैं। उसने बाबा के साथ अपने अनुभव का एक और मनोरंजक अध्याय मुझको बताया। जिस समय हम, एक वर्ष बाद, भारतवर्ष से प्रस्थान करके केन्स आ रहे थे, जैन्डर को जो उस समय पेरिस में था एक खास ड्रामा लिखने का कार्य शुरू करने की प्रबल प्रेरणा हुई जो बहुत समय से उसके दिमाग़ में घूम रहा था। उसको लिखने के लिये दुनियाँ के सब स्थानों में से जो आदर्श स्थान उसने तय किया था, वह स्थान केन्स में एक होटल था, जो भूमध्य सागर के तट पर स्थित था। लन्दन में बाबा से उस महत्त्वपूर्ण मिलन के समय से वह बाबा अथवा हमारी टोली के किसी भी जन से सम्पर्क में नहीं रहा था, इसलिए बाबा के कार्यक्रम जानने के लिये उसके पास कोई उपाय न था। अपना सामान बाँधकर वह केन्स पहुँचा, और उसको आश्चर्य होता था कि उसने केन्स को क्यों चुना था। वहाँ पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि एक बेतार का तार उसका इन्तजार कर रहा था। वह पेरिस के मार्ग द्वारा लन्दन से भेजा गया था और वह बाबा ने हिन्द महासागर के किसी स्थान से भेंजा था। उसमें बाबा ने जैन्डर को केन्स जाने के लिये कहा था क्योंकि बाबा कुछ माह के लिए केन्स जा रहे थे और वहाँ उसको अपने समीप रखना चाहते थे। तत्काल जैन्डर को ज्ञात हुआ कि वह क्यों अन्दर के खिंचाव से खिंचकर उस स्थान में ठीक उसी समय समय के भीतर पहुँचा था ! जो लोग बाबा से गम्भीरतापूर्वक एक लय में हैं उनको खींचने की बाबा की शक्ति का यह नमूना है, और सम्भवतः यह एक कारण हो सकता है जिससे बाबा ने यूरोप में केन्स को उस समय अपना केन्द्र स्थान चुना था।

भारतवर्ष से विदा होने पर, जिस समय मैं वहाँ के जीवन से सम्बन्धित मर्मभेदी क्षणों की याद करती थी, मेरे हृदय में शोक और चैन की विरोधी भावनायें जागृत होती थीं। मैं अकेले तथा बाबा की किसी भी प्रत्यक्ष सहायता का सहारा पाये बग़ैर, अपने स्वभाव के मैले रूप का सामना करने के लिये बाध्य होने के कठोर अनुशासन की तीव्र व्यथा अब भी भोग रही थी। मुझको प्रतीत होता था कि इस अनुशासन का एक पहलू समाप्त होने वाला था और इस हेतु मुझे चैन की एक सच्ची भावना का अनुभव होता था, हालाँकि उसका अर्थ भारतवर्ष से प्रस्थान करना था। जिस समय मैंने नासिक आश्रम से प्रस्थान किया तो मुझे यह भी प्रतीत होता था कि मैं कई वर्षों के बाद ही वहाँ लौट सकूँगी। मेरे हृदय में हर्ष तथा विषाद एक विचित्र लय में एक साथ नाचते थे। मेरे आत्म का वह भाग जो अब भी बन्धनमुक्त न था, महान पीड़ा के स्थल को छोड़ने में खुशी मानता था। मेरे आत्म का उच्चतर भाग इस बात पर आँसू बहाता था कि बाबा के संग मेरे जीवन का एक पहलू समाप्त हो गया था। मैं महसूस करती थी कि हमारी यूरोप की यात्रा के पश्चात् मैं कुछ समय के लिये बाबा से अलग हो जाऊँगी। परन्तु बाबा ने कृपा करके मुझे यह ज्ञान न होने दिया कि यह जुदाई बहुत वर्षों तक चलेगी।

हिन्द महासागर तथा लाल सागर के मध्य अगस्त माह की गरमी में हमारी यात्रा हरेक के लिये बहुत कष्टदायी सिद्ध हुई, खासकर मेहेराबाद पहाड़ी की अलग रक्खी गई महिला मण्डली के लिये। बाबा उस मण्डली के एकान्तवास को सांकेतिक रूप से इस लम्बी समुद्री यात्रा में भी ज़ारी रखना चाहते थे। उसको पक्का रखने के लिये कुछ महिलायें गहरे रंग के चश्मे पहिने थीं जिनके दोनों बग़ल फीते लगे थे, जिससे कि जहाँ तक सम्भव हो सके इस दुनियाँ के विचलित करने वाले दृश्य उनकी दृष्टि से दूर रहें। कुछ महिलायें लोगों के पास से निकलते समय अपने स्कार्फ़ से अपने सिर तथा आँखें ढँक लेती थीं। इस लादे हुये अन्धेपन के कारण,

उनको कुछ पश्चिमी महिलायें यात्रा में हर जगह रास्ता बतलाती थीं। यह उस कर्तव्य का संकेत करता था जिसका पालन करते हुए जागृत महिलाओं को अपनी अन्धी बहिनों को उनके सच्चे प्रारब्ध की सिद्धि की ओर ले जाना है। इस कथन के द्वारा सचमुच मेरा यह संकेत करने का लक्ष्य नहीं है कि ये खास पूर्वी महिलायें आध्यात्मिक रूप से जागृत न थीं, किन्तु मेरे कहने का केवल यह अर्थ है कि बाबा उनका इस्तेमाल उस आन्तरिक उद्धारक कार्य के प्रतीकों के रूप में कर रहे थे जो कार्य वह उनके द्वारा सारी दुनियाँ की स्त्री जाति के लिये कर रहे थे। आँखें बन्द रखने वाली महिलाओं की यह यात्रा वर्षों से जैसे उस विश्वास को भी प्रदर्शित करती है जो सद्गुरु की मरज़ी के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण करता है और उसके पथप्रदर्शन के अतिरिक्त उससे और कुछ नहीं माँगता। जहाज में वे हर समय अपनी कोठरियों में ही रहती थीं, और केवल सूरज निकलने के पहले उन्हें, जहाज के अफ़सर द्वारा किये गये विशेष प्रबन्ध से, बाबा तथा पश्चिमी महिलाओं के साथ जहाज की एक पहले दर्जे के मुसाफिरों की छत पर टहलने की आज्ञा मिलती थी। उस छत पर दूसरे मुसाफिर नहीं जा सकते थे। बाबा ने दो पश्चिमी महिलाओं को इन पूर्वी महिलाओं की देखरेख करने के लिये, अर्थात् बाहरी लोगों को उनकी कोठरियों में जाने से रोकने के लिये तथा उनकी सेवा करने के लिये, नियुक्त कर दिया था। यात्रा के विषम भाग में इस नियुक्ति के कारण उन्हें एक साथ परिचारिका तथा गृहदासी का पार्ट अदा करना आवश्यक हो गया। एक रात को, जब बाबा ने पूर्वी महिलाओं की सम्भावित परेशानी को पहले से देख लिया था, उन्होंने नोरीना को आज्ञा दी कि वह महिलाओं की कोठरी के दरवाजे के बाहर फर्श पर सोवे। उस दरवाजे को हवा के आने–जाने के लिए खुला रहना था। जिस समय नोरीना वहाँ सो रही थी, वह एक आदमी के अपने ऊपर टकरा जाने से अचानक चौंक पड़ी जो कोठरी में घुसने का प्रयत्न कर रहा था। वह आदमी कठघरे में बहुत समय तक रहने के बाद अपनी कोठरी में वापिस जा रहा था, और अपने मन की भ्रमित अवस्था में उसने ग़लत रास्ता पकड़ लिया था। इस प्रकार बाबा की पूर्वदृष्टि और एक पश्चिमी महिला की भक्ति से वे तपस्वी महिलायें एक दुखद अनुभव से बच गईं।

जिस समय हमारा जहाज हिन्द महासागर और लाल सागर में चल रहा था, मैं अपने 'अचेतन मन' में मौजूद नकारात्मक छायाओं की पूरी टक्कर का सामना करने के लिये मज़बूर हो गई। निस्सन्देह इस 'अचेतन मन' का सांकेतिक रूप समुद्र है। वह उलटी धारा, जो बाबा ने अपने को हमारे आश्रम से समेटते समय भारतवर्ष में चालू कर दी थी, अधिक और अधिक तेज़ होती जाती थी। यहाँ तक कि जहाज में सवार होने के पहिले भी मेरे भीतर का अन्धकार मुझको बाबा अथवा टोली के सीधे सम्पर्क से अलग रखता हुआ मालूम पड़ता था। मैं, जो बाबा के हृदय के अत्यन्त निकट रही थी, अब अपने को एक बिल्कुल अजनबी की तरह महसूस करती थी। जहाज के ऊपर बाहरी परिस्थितियों ने अजनबीपन की इस भावना की पुष्टि की। जो कोठरी हम लोगों को दी गई थी वह जहाज के भीतरी भाग में थी जिसमें हवा के आने–जाने की कोई सम्भावना न थी। भाप निकलने के छेद बन्द कर दिये गये थे, क्योंकि वे पानी की सतह के नीचे हो गये थे। हमारी कोठरी के दरवाजे से कुछ गज की दूरी पर जहाज का वह भीतरी भाग था जिसमें आस्ट्रेलिया से लादी गई भेड़ों की खालें बदबू करती हुई सूख रही थीं !

बस एक बार कोठरी को देख लेना, यह विश्वास दिलाने के लिये काफ़ी था कि उसमें सो सकना हमारे लिये असम्भव था। मैलकाम बहुत परेशान था, खासकर मेरे लिये, क्योंकि मेरे शरीर की हालत अब भी सामान्य अवस्था में न थी। जब बाबा को हम लोगों के लिये स्थान की व्यवस्था के विषय में बताया गया तो उन्होंने कई सुझाव दिये। उनमें से एक सुझाव यह था कि मैं एक पहले दर्जे की कोठरी ले लूँ–क्योंकि दूसरे दर्जे की कोई कोठरी उपलब्ध न थी–और बाबा उसका बढ़ती किराया चुकाने का प्रबन्ध कर देंगे। स्वाभाविक रूप से मैंने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया। जब हमारे 'सद्‌गुरु' बाबा दूसरे दर्जे में यात्रा कर रहे थे, तो मुझे पहले दर्जे में सफर करने की इच्छा न थी। बाबा ने मेरे पास फिर से सन्देश भेजा कि उनकी इच्छा थी कि मैं पहले दर्ज़े की कोठरी स्वीकार कर लूँ, परन्तु मैंने फिर से इनकार कर दिया। मैंने बाबा के पास सन्देश भेजा

कि मैं ऐसी आज्ञा का पालन नहीं कर सकती थी। बाद में मुझे बाबा का सन्देश मिला कि वह मेरे इस निर्णय से बहुत प्रसन्न थे। कुछ दिनों बाद जब मैं उनसे मिली तो मैंने हँसते हुये संकेत किया कि कभी कभी स्पष्टतः ऐसी भी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जबकि मनुष्य बाबा की बाहरी आज्ञा को न मानने के लिये मज़बूर हो जाता है यदि वह आज्ञा उसकी अन्तरात्मा के विरुद्ध होती है। बाबा ने स्वीकार किया कि यह वैसा ही दुर्लभ अवसर था। अन्त में यह व्यवस्था की गई कि हम अपनी चौकियों से गद्दे हटाकर उन्हें जहाज की छत पर बिछाकर सोवें; और मुझको पहले दर्जे के स्नानघर व शौचालय का इस्तेमाल करने की आज्ञा दे दी गई, जिससे मेरा सीढ़ियाँ चढ़ना और उतरना बच गया। मैं बहुत बीमार और कमज़ोर थी इसलिये यह नया प्रबन्ध मेरे लिये भारी वरदान स्वरूप था। दिन में दो बार मैलकाम थोड़ी देर के लिये हमारी कोठरी में आकर हमारे गद्दे तथा रात को पहिनने के कपड़े ऊपर पहुँचा देता था और सुबह उन्हें कोठरी में रख जाता था।

हिन्द महासागर में आगे बढ़ने के साथ साथ मैं शरीर से अधिक अस्वस्थ और मन से अधिक निराश होती जाती थी। बाबा से, जो निरन्तर दूसरे लोगों पर नज़र किये थे, मैं केवल दो बार मिली; एक बार यात्रा के प्रारम्भ में और एक बार उस समय जोकि मैंने उनसे उस भयंकर घृणा के सम्बन्ध में मिलने की आज्ञा माँगी जो मैं हर मनुष्य तथा हर वस्तु के प्रति अनुभव कर रही थी। मुझे याद है कि उन्होंने मुझसे पूछा था, ''क्या तुम जानती हो कि तुममें ऐसी भावनायें **क्यों** आ रही हैं ?'' मैंने उत्तर दिया, ''मैं एक बहुत दुष्ट व्यक्ति होऊँगी।'' किन्तु बाबा के सिर हिलाने से प्रकट हुआ कि मेरा यह उत्तर अधिक विवेकपूर्ण न था। अब निस्सन्देह मैं अनुभव करती हूँ कि मेरा सामना उस भीतरी अन्धकार से कराया जा रहा था जो हर मनुष्य के अन्तर में रहता है, परन्तु उस समय मुझे इस मनोवैज्ञानिक आवश्यकता का ज्ञान न था। फलतः मैं अनजान में इस 'छाया' को ईर्ष्या, द्वेष, कटुता और आत्मग्लानि के नकारात्मक भावों के रूप में अपने बाहर हर व्यक्ति तथा हर वस्तु पर डालती थी। मन की ऐसी अवस्था में मैं स्वाभाविक रूप से अपने को **सत्यता** के संसर्ग से बिल्कुल अलग महसूस करती थी। मैं एक अन्धेरी, बन्द दुनियाँ में क़ैद हो गई थी और वह अत्यन्त

सूक्ष्म दुनियाँ थी। मुझको आराम अथवा सहारा दे सकने वाली सभी चीज़ें लुप्त हो गई थीं; यहाँ तक कि आशा भी लुप्त हो गई थी। यद्यपि मेरे स्थूल नेत्र खुला थे, तथापि वे मुर्दा शक्लों के अलावा और कुछ न देखते थे। मेरे कान केवल मेरे हृदय की कराह को सुनते थे। पुनः मैंने और अधिक गहराई से आत्म–समर्पण करने की कोशिश की, परन्तु अब कुछ भी ऐसा न था–कोई भी ऐसा न था–जिसके प्रति मैं आत्मसमर्पण करती। आख़िरकार मैं इस ज़िन्दा मौत को स्वीकार करने के लिये मज़बूर हो गई, परन्तु मैंने उसे उस महान वीरता के साथ स्वीकार न किया जो सन्तजन अपने अन्धकारपूर्ण क्षणों में प्रदर्शित करते हैं बल्कि एक ऐसे मनुष्य की दयनीय स्वीकृति के साथ स्वीकार किया जिसकी आत्मा अब भी सद्‌गुरु के स्पर्श से दूर भागती है। अब मुझको ज्ञान है कि इस विरोध के पीछे मेरे शरीर के लिये मेरे अनजाने में मेरा भय था। मेरे बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं देह–चेतना से 'छुटकारा' न पाती थी जिसको यह यात्रा तथा भारतवर्ष में हुआ मेरा अधिकाँश दुखद अनुभव आगे ला रहे थे, जिससे कि मैं उसका सामना करके उसको लाँघ जाऊँ। ऐसा सामना करना तथा लाँघना शिष्यता के मार्ग में आवश्यक है, क्योंकि जब तक शरीर के लिये भय रहता है तब तक आत्मा के लिये 'साक्षात्कार' नहीं हो सकता।

इस 'संकट–मार्ग' में दो चीजें घटित हो रही थीं। जैसे जैसे कर्मसंस्कार आत्मा के गढ़ के ऊपर केन्द्रित होते थे चेतना के समस्त अप्रधान केन्द्र–वे केन्द्र तक जिनको मनुष्य साधारणतया अच्छे व उचित समझेगा–बन्द हो रहे थे। उसी समय बाबा 'व्यक्तिगत' जन्जीरों को ढीला कर रहे थे जो मुझको उनसे बाँधे थीं। शिष्यता का युवाकाल समाप्त हो रहा था। बाबा मुझको अधिक परिपक्व कर्त्तव्य के लिये तैयार कर रहे थे जिसमें मेरे लिये अन्तर्दृष्टि की अधिक गहराई और ज़िम्मेदारी की पूर्ण–हार्दिक स्वीकृति अन्तर्निहित होगी; और जो अन्ततः मेरी चेतना को बाबा की विश्वव्यापी **आत्मा** में विलीन कर देगा। यथार्थ में ये एक ही विधि के दो पहलू हैं–एक आवश्यक विधि आत्मा के लिये, जो अपने ईश्वर–स्वरूप से मिल कर एक होने की चाह करती है। परन्तु बाद में केवल आत्म–खोज करने से ही मुझको यह समझ प्राप्त हुई। अधिक से अधिक जो मैं कर सकती थी वह यह था कि मैं इस परीक्षाकाल को

भरसक सहनशीलता के साथ सहन करती, और मैं मानती हूँ कि उस दिशा में मेरा प्रयास बहुत तुच्छ रहा। बाबा ऐसे चतुर दिव्य मनोवैज्ञानिक हैं कि वह मनुष्य की शूली पर चढ़ने की अवस्था में भी उसको अपने क्लेश पर शेखी करने की जगह नहीं छोड़ते। जो मनुष्य ऐसे अनुभव को मन तथा अन्तरात्मा में चोट खाये बग़ैर सही सलामत पार कर जाता है वह उसके खुद के वीरतापूर्ण प्रयत्नों की अपेक्षा बाबा की कृपा से अधिकतर सम्भव होता है, यद्यपि यह कृपा उसको उस समय महसूस नहीं होती।

जिसे हम मनोवैज्ञानिक भाषा में 'Abyss' (अथाह गड्ढा) कहते हैं, वह वही दशा है जिसे रहस्यवादी लोग ''आत्मा की अँधियारी रात'' कहते हैं। ये दोनों संज्ञायें स्पष्ट रूप से उस मानसिक अवस्था को चित्रित करती हैं जिससे होकर प्रत्येक मनुष्य को दिखावे में अवश्य गुज़रना पड़ता है, जबकि उसके स्वार्थरत जीवन का परिवर्तन ईश्वर–परिपूर्ण जीवन में होता है।

The Spiral Way (दी स्पाईरल वे) नामक पुस्तक में जीन कोरडेलियर लिखता है :

''ईश्वरीय प्रेम कभी निष्क्रिय नहीं रहता, क्योंकि वह हमें 'शूली के मार्ग' का अनुसरण करने के लिये बाध्य करता है। वह कठोर तथा कोमल 'प्रेम' हमारे ऊपर दबाव डालता हुआ, हमारे अन्तस्तल में प्रवाहित होता हुआ ...'जीवन' को उसकी पूर्णता की खोज में आगे को ठेलता हुआ, अपने बच्चों को एकमात्र उसी यात्रा की ओर बाध्य करता है जो 'घर' तक पहुँचाती है। वह अन्य सब रास्ते रोक देता है....हमको अकथनीय कठोरता के एक मार्ग पर ले जाने के लिये, जो ऐसा प्रतीत होता है कि हमको मौत के स्थान को ले जाता है, फिर भी जो हमको, यदि हम उसका विश्वास करें, आत्मा के एकमात्र प्रदेश को ले जायेगा।....वह हमारे जीवन का ही उपभोग करना चाहता है, जिससे 'वह' उसको अपने ही जीवन में बदल देवे। ....जब वह हमारा पूरा भक्षण कर लेता है, तभी 'वह' हमें 'अपने आप' को प्रदान करता है।...''

मैं भारतवर्ष में प्रारम्भ हुये 'संकटकाल' के उस पहलू में अब प्रवेश कर चुकी थी, जिसमें मैं बाबा से, ईश्वर से, बिल्कुल अलग महसूस करती

थी; और चूँकि 'फ़िल्म' का यह 'उलटा' खुलाव अपनी 'मन्द चाल' में मन्द से मन्द था इसलिये वह समय बहुत दूर था जबकि घास के मैदान में उस पार सुनाई देने वाला लाल पक्षी का संगीत मेरी आत्मा में पुनः ईश्वरीय शान्ति जागृत करता। स्पष्टतः मुझे अभी इतना एकीकरण करने की आवश्यकता थी; तुच्छ अहं का इतना भाग नष्ट करने को शेष था। फिर भी, अब सिंहावलोकन करने पर मैं इस समुद्री यात्रा की दुःखद यादों को सदैव रहने वाले एक अकथनीय आनन्द से पगा हुआ पाती हूँ, जो मुझे विश्वास है कि मुझको वहाँ निरन्तर मिला होता यदि मेरे मार्ग उसका अनुभव करने के लिये काफ़ी साफ़ रहे होते। अब मैं बाबा के नीचे लिखे हुये शब्दों की सत्यता को समझ सकती हूँ, ''जिसे कोई स्वार्थ नहीं है, उसके लिये 'नर्क' भी 'स्वर्ग' है।''

भारतवर्ष से प्रस्थान करने से पूर्व जब हमने बाबा के एक पूर्वी शिष्य से इच्छा प्रकट की कि वह हमारे साथ यूरोप चले, तो वह मुस्कराया और सिर हिलाकर इनकार करते हुए उसने कहा : ''मैं बाबा के साथ यात्रा कर चुका हूँ और उनके साथ की यात्रा कभी सैरसपाटे की नहीं होती !'' यदि बाबा के साथ यात्रा करने में आने वाले उलट–फेर केवल यदा कदा आवें, तो हम उन्हें दैवयोग से आये हुए कह सकते हैं; परन्तु जब वे बाबा की यात्राओं में सदैव घटित होते हैं, तो हम उनका कोई कम अचानक घटित होने वाला कारण ढूँढते हैं। जब कभी बाबा यात्रा करते हैं तब अभावात्मक और साथ ही साथ भावात्मक शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं। परन्तु, हमें बहुधा अभावात्मक अथवा 'छाया' पक्ष का अधिक भान इसलिए होता है कि हमारी अहंकारी खुदी तकलीफ़ व नापसन्दगी से इतना अधिक वास्ता रखती है कि वह उस 'प्रकाश' को नहीं देख पाती जो मैं अब महसूस करती हूँ कि ऐसे अवसरों पर मौजूद रहता है।

केन्स में हमारे स्थापित हो जाने के कुछ सप्ताहों के बाद बाबा के एक जन ने, जो हमारे साथ नाव पर रहा था, मुझको बताया कि बाबा उनको रोज़ सुबह 3 या 4 बजे जहाज की छत पर ले जाते थे जहाँ मैं सोती थी और वह खामोशी से मुझको ध्यानपूर्वक देखते हुए कुछ क्षणों तक खड़े

रहते थे। इसलिये बाबा ने मुझको इतना अधिक नहीं त्याग दिया था जितना मैं अपने को समझती थी !

केन्स में हमारे पहुँचने से पूर्व अँग्रेज़ मण्डली के एक जन ने एक घर हमारे ठहरने के लिये ले रक्खा था। जब हम लोग वहाँ पहुँचे तो बाबा ने उसे अपनी भारतीय महिलाओं के लिये अपर्याप्त पाया जिनका एकान्तवास चालू रहना था। एक या दो दिन में कुछ मील की दूरी पर एक और मकान किराये पर ले लिया गया और उसमें पूर्वी महिलायें अपनी कुछ पश्चिमी बहिनों के साथ रहने लगीं। बाबा अपना अधिकाँश समय वहीं व्यतीत करते थे, और हमारे घर में सुबह केवल मुलाकातों के लिये तथा मुख्य 'मस्त' मुहम्मद को स्नान व भोजन कराने के लिये आते थे। मुहम्मद को केन्स में हमारे पहुँचने के कुछ समय पश्चात् कुछ भारतीय शिष्य बाबा की आज्ञा से यूरोप ले आये थे।

एक कमरा छोड़कर दूसरे कमरे में कई बार जाने के पश्चात्, जिसका वर्णन आरम्भ में किया जा चुका है, मैलकाम और मैं मुख्य घर में एक बड़े कमरे में ठहर गये। उसके सामने वाले बाग़ के विशाल तथा लहलहाते हुए खजूर के वृक्षों के बीच से भूमध्यसागर का सुन्दर दृश्य दिखाई देता था। भौतिक दृष्टि से हमारा वातावरण आदर्श था। जलवायु हम लोगों में से उनके लिये अत्यन्त हितकर थी जो भारतवर्ष की अयनवृत्तीय (Tropical) गर्मी का कष्ट भोग चुके थे। मेरे अन्तर में भौतिक नवजीवन का संचार होने लगा। परन्तु मेरे हृदय तथा मन की अशान्त अवस्था में इसका अधिक महत्त्व न था। बाबा मुझसे अपना भीतरी तथा बाहरी अलगाव ज़ारी किये थे। वह मुझे बहुत कम दिखाई पड़ते थे, और जब वह मुझे दिखाई भी पड़ते थे तो वह अधिकांशतः एक सुदूर तथा आकस्मिक अभिनय धारण कर लेते थे। इस परीक्षा में मैलकाम और मेरे बीच में बढ़ती हुई तनातनी आकर मिल गई थी, जिसका सूत्रपात भारतवर्ष में प्रारम्भ हुये 'संकटकाल' से हुआ प्रतीत होता था। इस समय वह बाबा द्वारा दिये गये अनुशासन के आधीन था कि वह दिन में एक बार भोजन करते हुये और पूर्ण मौन रखते हुये हमारे ही कमरे के अन्दर रहे। यद्यपि यह अनुशासन उसके लिये निसंदेह

कठिन था, तथापि इससे उसको कुछ सच्चा आनन्द प्राप्त होता था, क्योंकि इससे उसके स्वभावतः विचारशील स्वभाव को गम्भीरतर आत्मनिरीक्षण करने का अवसर मिलता था।

यदि कोई मानवीय सम्बन्ध अत्यन्त अधिकारपूर्ण, एक दूसरे के ऊपर अत्यंत निर्भर होता है, तो वह ईश्वरीय जीवन के स्वतन्त्र प्रवाह में गम्भीर रुकावट डालता है और इसलिये उसका भंग तथा सुधार होना आवश्यक होता है। बस इसी प्रक्रिया को बाबा ने चालू कर दिया था। 'अचेतन मन' से भीषण प्रतिमायें मुक्त की जा रही थीं, और यद्यपि मैलकाम पूर्ण मौन रखने के अनुशासन में था—तथापि उसके अन्तर में जो अन्धकारपूर्ण तथा दबी हुई भावनायें उकसाई जा रहीं थीं वे सब मुझको प्राप्त करनी पड़ रहीं थीं। इसमें सन्देह नहीं कि उसको मैं, उसके मिजाज़ को उकसाने वाली प्रतीत होती थी, ठीक उसी प्रकार से वह मुझको बहुत मानसिक सन्ताप देने वाला प्रतीत होता था। मैं ऐसी प्रेममयी 'माता' कम थी जो उसके मिजाज़ का पोषण करती; और वह मेरी निर्बलताओं में मुझको बल प्रदान करने वाले, सान्त्वनादायक 'पिता' की अधिक और अधिक विपरीत प्रतिमा था। यदि वह मुझसे दग़ा करता हुआ प्रतीत होता, तो निश्चय ही मैंने उसके साथ भी वही किया होता। चूँकि हम दोनों में अत्यधिक अचेतन लालसा तथा युवाकालीन उत्कण्ठा थी जिसे हम लोग एक दूसरे के द्वारा तृप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, इसलिये यह अनिवार्य था कि बाबा इन गुप्त शक्तियों को मथकर इन्हें चेतना के प्रकाश में लाते, जिससे हम उनका सामना करके उनमें निहित शक्ति को हजम करते।

परन्तु केन्स में निवास करने के उन दिनों में मैं शरीर तथा भावनाओं दोनों से इस समस्या के अत्यन्त निकट थी, जिससे मुझको उसकी अधिक समझ प्राप्त थी। अपने कमरे के तूफ़ानी वातावरण से बचने के लिये मैंने पहाड़ियों के ऊपर दिन बिताना शुरू कर दिया। कुछ कच्ची गाजरें व मिठाई का एक टुकड़ा, खाका बनाने का पैड तथा रंगने की पेन्सिलें लेकर मैं प्रातः पहाड़ियों पर चढ़ जाती थी जहाँ से नगर तथा निरन्तर लुभाने वाला समुद्र दिखाई पड़ता था। जो दबाव मैं अनुभव करती थी उसको कुछ अलग करने के लिये मैं पूर्ण विरक्त भाव के साथ नाचती और गाती थी, जिस समय मैं अपने को घरों तथा लोगों से काफ़ी दूर पाती थी। मेरे लिये

यह एक ईश्वरीय सेफ्टी—वाल्व सिद्ध होता था, क्योंकि इस अवधि में मैं मानसिक विश्लेषण की हद के इतने पास आ जाती थी जितना कोई आ सकता है और मैं फिर भी कुछ सन्तुलन बनाये रख पाती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि बाबा पर्दे की आड़ से ध्यान से देखते तथा पथप्रदर्शन करते थे जैसा कि उस समय मैं भी महसूस करती थी, परन्तु जो मैं अब अधिक स्पष्ट रूप से देखती हूँ। एक रात को भोजन करने से ठीक पहले मैं निराशा की ऐसी सीमा तक पहुँच गई कि मैं घर छोड़कर पुनः पहाड़ियों पर चढ़ गई। जंगली भाग से पैदल जाते समय हमारे परिवार के कुछ जनों की विशाल सर्पों से मुठभेड़ हो चुकी थी जो विषैले बताये जाते थे; इसलिये इस भाग में मैं यह आशा करती हुई और यह प्रार्थना करती हुई जाती थी कि कोई दयालु सर्प मुझको इस ज़िन्दगी की और अधिक ज़िम्मेदारी से छुटकारा दिला दे। चूँकि बहुत अन्धेरा हो गया था और मैं चढ़ते चढ़ते थक गई थी, इसलिये मैं जंगल में बैठ गई और इस विचार का आनन्द लेने लगी कि इस शीतल अन्धेरी रात में यदि अचानक मेरी मौत आ जाये तो वह मुझको कितनी मीठी लगे। ''आधी रात को बिना क्लेश के मर जाना'', अथवा क्लेश के साथ ही मरना, उस रात को सबसे अधिक इच्छित कल्पना मालूम पड़ती थी। इस विचित्र जागरण के लगभग दो घन्टे बाद मुझे किसी आन्तरिक शक्ति ने उठकर घर वापिस जाने के लिये बाध्य किया। किसी प्रफुल्लता के भाव से नहीं किन्तु इस अनुभव से कि एक नीची बाढ़—सीमा पार की जा चुकी थी, एक नये आत्मसमर्पण की गहराई नापी जा चुकी थी, मैं पैर घसीटती हुई घर की ओर चल दी। मैंने सोचा कि जीवन 'व्यतीत' करना चाहिये, उसे बुज़दिली से अस्वीकार न करना चाहिये। आत्मा के सन्ताप के बावजूद; सब कुछ के बावजूद, मुझे दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ना चाहिये। इस दृढ़ विश्वास के साथ मैं घर को चली। जैसे ही मैं अपने स्थान के निकट पहुँची, तो मुझे मेरी खोज करने वाले दलों के शब्द सुनाई दिये जो मुझे पास—पड़ोस में जल्दी जल्दी ढूँढते फिर रहे थे। अपना गर्व चूर हुआ तथा अपने को लज्जित अनुभव करती हुई मैं टोली के किसी भी जन से मुठभेड़ किये बग़ैर पीछे की एक गली से होकर मुँह छिपाकर निकल गई। रसोईघर में रुककर मैंने भोजन के समय गैरहाज़िर रहने के लिए अपने गृहस्वामी से क्षमा माँगी।

दूसरे दिन सुबह जब मैं बाबा से मिली तो उन्होंने आँख की एक पलक तक से यह प्रकट न किया कि वह मेरे पहाड़ी पर चले जाने को जानते थे। परन्तु मुझे भान था कि वह चेतना में मेरे साथ हर क्षण मौजूद रहे थे और मेरे उस धृष्ट आचरण के प्रेरक कारणों को मेरी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते थे। उस दिन तीसरे पहर जब मैं उनसे पुनः मिली, और जैसे ही मैं उनके पलंग के बराबर झुकी, तो उन्होंने मेरा सिर अपने दोनों हाथों के बीच में पकड़ लिया और उसके ऊपर ऐसी शान्तिदायक वर्षा की कि मेरा अधिकाँश सन्ताप नष्ट हो गया। पुनः उन्होंने अपने को चेतना का 'स्वामी' सिद्ध कर दिया जो मनुष्य को टूटने की सीमा तक ले जाता है, परन्तु उस सीमा के बाल भर भी आगे नहीं ले जाता जिसे मन सुरक्षापूर्वक सहन कर सकता है।

इस अवधि के बीच में उन्होंने मुझसे एक बार कहा, ''तुम सोचती हो कि मैं निर्दयी हूँ।'' मैं बग़ावत का भाव महसूस करती हुई चिल्ला पड़ी, ''हाँ, आप निर्दयी हैं !'' उन्होंने उत्तर दिया, ''मुझे स्थायी रूप से दयालु होने के लिए क्षणिक रूप से निर्दयी होना आवश्यक है।'' फिर कुछ क्षणों तक मुझको दयापूर्ण चितवन से देखते हुए उन्होंने कहा, ''वह दिन आयेगा जबकि इस पीड़ा की यादें भी उस सर्वभोक्ता आनन्द के द्वारा पूर्णतया मिटा दी जायेंगी जो तुम्हारी आत्मा में उमड़ पड़ेगा।'' जब मैंने उनसे हुज्जत की कि **'रात्रि'** बहुत लम्बी है, तो उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि दिन का प्रकाश आने पर वह सब कुछ जो मैंने सहन किया था, हजारगुना महत्त्वपूर्ण दिखाई पड़ेगा।

आत्माओं के साथ अपने व्यवहार के एक और रूप को समझाते हुये, बाबा ने यूरोप की यात्रा के अन्तिम समय मुझसे कहा : ''मैं तुम्हें अपने से दूर ढकेल देता हूँ, फिर मैं तुम्हें अपने निकट खींच लेता हूँ; पुनः मैं तुम्हें दूर ठेल देता हूँ और फिर तुम्हें और भी निकट खींच लेता हूँ; अब मैं तुमको बहुत दूर ढकेलता हूँ और अबकी बार जब मैं तुम्हें अपने पास खीचूँगा तो तुम मेरी **विश्वव्यापी आत्मा** के साथ सदैव एक रहोगी।''

इसमें सन्देह नहीं कि अन्धकार की जिस अवधि का वर्णन मैंने किया है वह उस प्रक्रिया का दूर ढकेलने वाला भाग था। वह अत्यन्त दुःखदायी

था, परन्तु अब मैं समझती हूँ कि वह कितना आवश्यक तथा कल्याणकारी था। उसके द्वारा मेरे अन्तर में ईश्वर से एकता प्राप्त करने के लिये आत्मा की अभिलाषा की महानतर प्रचण्डता उत्पन्न हो गई थी।

यूरोप की यात्रा की सबसे विचित्र और कदाचित सबसे महत्त्वपूर्ण उपकथा बाबा की पेरिस की यात्रा थी जो उन्होंने अपनी कुछ पश्चिमी शिष्याओं तथा एकान्त में रक्खी गई समस्त भारतीय महिला मण्डली के साथ की थी। यह यात्रा मोटरकारों द्वारा की गई थी जिनको दो पश्चिमी शिष्यायें चलाती थीं, और इसमें पूर्वी महिला मण्डली की एकान्तता को सुरक्षित रखने के लिये दृढ़ नियमों का पालन किया गया था। जब वे पेरिस पहुँचे तो वहाँ बाबा के भक्त कानसूलो साईड्स ने उनकी अगवानी की, जिसका सुन्दर मकान सीन नदी के बायें किनारे के सामने स्थित है। कदाचित पेरिस के पूरे इतिहास में, अथवा दुनियाँ के किसी नगर के इतिहास में, ऐसी विचित्र पर्यटन टोली ने उसके प्रदेश को गौरवान्वित नहीं किया था। तीन दिन के भ्रमण में बाबा ने मोटरकार द्वारा अपने दल सहित सीन नदी की घाटी के ऊपर और नीचे यात्रा की; नगर तथा पास पड़ोस के स्थानों की सैर की। भारतीय महिलायें बाबा का आदेश पाने पर ही ऊपर अथवा बाहर देखती थीं। उनके दृश्यरहित दृश्य–निरीक्षण का मुख्य अंग एक रात्रि को ईफेल टावर की यात्रा थी, जिसमें बाबा ने चेतना की छठवीं और सातवीं भूमिकाओं के सन्तों व सद्गुरुओं के साथ अपनी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'आन्तरिक मीटिंग' की। यदि मेरी यह कल्पना सही है कि स्त्रीजाति की चेतना उस विशेष कार्य द्वारा ऊँची की जा रही है जो बाबा इन भारतीय महिलाओं के द्वारा कर रहे हैं, तो पेरिस की महिलाओं को–जिनके लिये प्रसिद्ध है कि जीवन की एक अधिक आध्यात्मिकतापूर्ण कल्पना की आवश्यकता है–उस रात को एक विचित्र तथा अपरिचित तरंग की गति का अनुभव हुआ होगा। यह कल्पना भले ही मनमौजी प्रतीत हो, परन्तु यह फ्रान्स के युद्ध के बाद की नई सरकार के आश्चर्यजनक कार्य से किसी हद तक सत्य सिद्ध होती प्रतीत होगी। उस सरकार ने वेश्यावृत्ति तथा फूहड़पन को ग़ैर कानूनी कर दिया है, और फ्रांस के इतिहास में प्रथम

बार फ्रान्स की महिलाओं को पुरुषों के साथ समान अधिकार दिये हैं। ये दोनों कार्य महिलाओं के प्रति फ्रांस के रूख में मौलिक परिवर्तन प्रकट करते हैं।

बाबा और उनका दल सन्ध्या समय केन्स वापस पहुँच गये और दूसरे दिन सुबह बाबा हमारे कमरे में आये। जिस समय वह कमरे में घुसे मैंने तुरन्त देख लिया कि वह प्रायः पूर्णतया अतीचेतन (Super Conscious) अवस्था में थे, इसलिये मैं उनका हाथ पकड़कर उन्हें खटिया तक पहुँचाने के लिये दौड़ी। मैं उनके बराबर बैठ गई और मैलकाम हमारे सामने खड़ा हो गया। किसी अकथनीय अलौकिक सौन्दर्य से चौंधियाते हुये, एक छोटे बच्चे जैसी मुद्रा के साथ बाबा ने पहिले एक को और फिर दूसरे को देखा।

मैंने पूछा, ''प्रिय बाबा, यह क्या है ?''

मेरे ऊपर इस प्रकार चितवन करते हुये गोया कि मुझे मालूम होना चाहिये, उन्होंने वर्णमाला तख्ती द्वारा प्रकट किया :

''क्या तुमने 'मीटिंग' के विषय में नहीं सुना था ?''

उनके नेत्र सन्ताप मिश्रित आनन्द सहित इतनी स्पष्टतया भाव प्रकट कर रहे थे कि मैं अपने अन्तःकरण में उनके मौन शब्दों की शोकाकुल ध्वनि सुन सकती थी। यह उनकी बच्चों जैसी अवस्था का सुन्दर क्षण था।

मैंने उत्तर दिया, ''प्रिय बाबा, नहीं, मैंने 'मीटिंग' के विषय में नहीं सुना था।''

तब उन्होंने हमको बताया कि ईफेल टावर में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'मीटिंग' की गई, और उसी समय से उनको अपने स्थूल शरीर में रहना कठिन हो रहा था। वह कुछ क्षणों तक अपना सिर मेरे कन्धे पर रक्खे रहे, और इस बीच उन्होंने अपने कभी न रुकने वाले दैनिक कार्य के अगले पहलू को चालू करने के लिए अपनी शक्तियाँ बटोरीं। आख़िरकार, उनके संकेत पर, हमने उन्हें सहारा देकर दरवाज़े तक पहुँचाया, जहाँ उनके दो भारतीय भक्तजन उनकी सहायता करने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब मैंने बाबा को एक घण्टा पश्चात् देखा तो वह कष्टदायी परिवर्तन पूरा हो चुका

था। वह अपनी सामान्य गतिशील अवस्था में आ गये थे, और विश्व की शक्तियों के साथ पुनः अपनी ऐहिक लीला कर रहे थे।

केन्स में हमारे प्रवास के समय यूरोप के सभी देशों के लोग बाबा से मिलने आये। बहुधा भोजन अथवा चाय पान के समय राष्ट्रसंघ का कोई न कोई दल हमारी लम्बी मेज़ के इर्द–गिर्द आ बैठता था। फ्रान्स, इटली, जर्मनी, स्पेन, पुर्तगाल, रूस, स्विटज़रलैंड, स्कैण्डीनेबिया के लोग, भारतवर्ष के विभिन्न भागों के लोग तथा अँग्रेज़ लोग बोलने की प्रधानता के लिए एक दूसरे से स्पर्धा करते थे। परन्तु इन लोगों का उद्देश्य बहुत भिन्न था ! उनमें से अधिकांश लोग शेष हम लोगों के विश्वास से सहमत थे कि राष्ट्रसंघ के मूल विचार में अन्तर्निहित विश्वव्यापी भाईचारा के आदर्श केवल मानवजाति की चेतना के परिवर्तन द्वारा ही अस्तित्व में आवेंगे। ये पुरुष तथा स्त्रियाँ, जिनमें अनेक कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, तथा कला, विज्ञान, व धर्म के अपने अपने विशेष क्षेत्रों के नेता थे, बाबा के पास बैठने के लिए विनम्र भाव से आते थे, जिनके हाथों में उनके विश्वास में दुनियाँ की समस्याओं की कुञ्जी थी–अर्थात्, स्वार्थरहित प्रेम का दैवी खज़ाना था। बाबा से उनकी मुलाकात हो जाने के उपरान्त, कोई भी मनुष्य उनसे बात करने पर उनकी आँखों में देख सकता था कि बाबा का जीवन प्रदान करने वाला खमीर उनकी आत्माओं में पहिले ही एक विशुद्धतर प्रेम जागृत कर रहा था और उनके भीतर दैवी–शक्ति के काम करने के लिए अधिक अच्छे माध्यम बनने की परोपकारी महत्त्वाकांक्षा जागृत कर रहा था।

इन मिलने वालों में से एक अलेक्ज़ेण्डर मार्की था जो रोज़ बाबा के चरणों के समीप बैठकर बाबा के लिए आध्यात्मिक दैवी–ज्ञान सम्बन्धी तथा शिक्षात्मक चलचित्रों के प्रोग्राम का खाका बनाया करता था। बाबा कहते थे कि ये चलचित्र किसी दिन चलचित्रों में एक बिल्कुल नई धारा का आधार बनेंगे।

पेरिस की यात्रा के पश्चात् हमको योजनाओं के परिवर्तन का आभास मिलने लगा, और लगभग एक सप्ताह में हमको बताया गया कि अक्टूबर में बाबा कुछ मण्डली के साथ भारतवर्ष लौट जायेंगे, और हममें से अन्य लोगों को अपने घरों को लौट जाने का आदेश दिया गया। मेरे स्वास्थ्य में बराबर सुधार होता रहा था, परन्तु बाबा ने कहा कि मैं अब भी भारतीय जलवायु को सहन करने के लिए अयोग्य थी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मैं इस समय भारतवर्ष लौट कर चलूँगी तो वास्तव में मेरा शरीर छूट जायेगा, और बाबा यह नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा कि उन्हें अपने भविष्य के कार्य के लिए मेरी आवश्यकता थी।

आरोग्य–प्रद क्रिया, जो कर्मों को मिटाने की क्रिया का स्वाभाविक भाग थी, हमारे केन्स पहुँचने के पश्चात् शीघ्र ही प्रारम्भ हो गई, और उसका श्रीगणेश बाबा द्वारा आदेशित दो रीतियों से हुआ। उनमें से एक में प्रतिदिन एक घण्टा तक ये शब्द लिखना होते थे : ''जीन शरीर नहीं है, जीन आत्मा है।'' इस अभ्यास को कुछ दिन करने के उपरान्त मैं इसी कथन की पुष्टि अपने मुख से करती हुई रोज सुबह जागने लगी; और फिर वह कथन दिन भर अपने आप चलता रहता था। धीरे–धीरे मुझको अपने अन्तस्तल में तथा जीवन की सभी क्रियाओं में आत्म–गुण की अधिकाधिक चेतना आने लगी। यह उस आत्मिक–शल्य क्रिया (operation) का आरोग्य–प्रद पहलू था जिसको बाबा कई महीने से करते आ रहे थे। यह उस मानसिक प्रवृत्ति का द्योतक था जो शिष्य को अपने शरीर के प्रति प्राप्त करनी चाहिए।

दूसरी रीति से चंगा करने वाली क्रिया का संस्कार सम्बन्धी रूप समझा जा सकता है, जिसका लक्ष्य था नश्वर को अमर बनाना–शारीरिक चेतना के ऊपर सदैव के लिए विजय प्राप्त करना। एक दिन बाबा मेरे लिये एक छोटी शीशी लाये जिसमें आलपीन के सिर के बराबर छोटी छोटी गोलियाँ भरी थीं। उन्होंने मुझे बताया कि ये गोलियाँ सोना, मोती और चाँदी के भस्मों तथा कुछ दुर्लभ भारतीय बूटियों से बनी थीं। उन्होंने इसे

मेरे स्वास्थ्य सुधार के लिए भारतवर्ष से चलने के पूर्व विशेषरूप से तैयार कराया था। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मैं एक गोली रोज़ नाश्ता करने के पहिले मक्खन के साथ खाया करूँ, और किसी भी परिस्थिति में गोली खाना न भूलूँ। प्रायः तत्काल ही मेरी तन्दुरुस्ती में सुधार होने लगा। इस स्वास्थ्य सुधार की क्रिया में मेरी मानसिक स्वीकृति ने जो भूमिका आवश्यक रूप से अदा की उसका ज्ञान यद्यपि मुझको उस समय था, तथापि फिर भी मैंने बाबा की गोली तथा मक्खन के क्रिया–कौशल के सांकेतिक अर्थ को अमेरिका लौटने के कुछ वर्ष बाद ही समझा।

प्रोफेसर जंग की स्वप्न व्याख्या के अध्ययन से, जिसमें मैं उस समय लगी हुई थी, मैं 'रसायनशास्त्र' के रहस्यों को ढूँढने के लिए प्रेरित हुई। इस स्थल पर मैंने यूनान के महान आचार्य हरमीज़ की मूल सामग्री में पाया कि उन गोलियों में अन्तर्निहित गुण तथा मक्खन जिसके साथ में वे खाई जानी थीं, उस विधि का लाक्षणिक संकेत करते थे जिससे होकर मनुष्य को अमरत्व प्राप्त करने के लिए गुज़रना पड़ता है। वास्तव में, मोती चेतनारूपी अमूल्य रत्न है जो मनुष्य को अपनी आत्मा के सबसे भीतरी कोने में मिलता है जिस समय वह अपनी दृष्टि ईश्वरोन्मुख करता है। स्वर्ण भावात्मक जीवन–तत्व, अर्थात् आध्यात्मिक सूर्य का लक्षण है, और चाँदी मानवीय आत्मा में ग्राही चन्द्रमा–तत्त्व का सांकेतिक लक्षण है। उनके एक साथ मिलने से आत्मिक–चक्र का निर्माण होता है जिसका प्रयोग मनुष्य को अवश्य करना होता है यदि उसको ईश्वर–चेतना प्राप्त करनी है। बूटियाँ शरीर में ग्रन्थियों का वह सन्तुलन उत्पन्न करती हैं जो आत्मा की गाड़ी को अमर करने के लिए आवश्यक होता है। मक्खन, जिसके साथ छोटी गोलियाँ खाई जानी थीं, मथे हुए दूध की उपज है जिसका प्रसंग हमें महाभारत खण्ड 1, अध्याय 15 में मिलता है। ''देवता तथा स्वर्ग की समस्त तेजस्वी आत्माएँ युगों से ऊँचे उठे हुए तथा अमूल्य रत्नों से चमकते हुए इस ऊँचे पर्वत की चोटी पर चढ़कर गम्भीर देव–सभा में बैठे हुए अमृत प्राप्त करने का विचार कर रहे थे। उस सभा में देव नारायण भी उपस्थित थे। जिस समय देवतागण इस प्रकार विचार–विनिमय कर रहे थे, तो देव–नारायण ने ब्रह्मा से कहा, 'जब सुर और असुर मिलकर विशाल महासागर, अर्थात् दूध के पात्र, का मन्थन करेंगे और जिस समय विशाल

महासागर का मन्थन हो जायेगा, उस समय अमृत प्राप्त होगा। वे प्रत्येक जड़ी–बूटी और प्रत्येक अमूल्य वस्तु एकत्रित करते जायें। वे समुद्र का मन्थन करें और उन्हें अमृत मिलेगा।'.... उन्हीं वृक्षों तथा पौधों से निकाले गए रसों की दूध सदृश धारा और उसमें पिघले हुए स्वर्ण के मिश्रण से ही देवताओं ने अपना अमरत्व प्राप्त किया था। समुद्र का पानी अब इन रसों से एकीभूत हो जाने के कारण, दूध के रूप में बदल गया और उस दूध से तत्काल ही एक प्रकार का मक्खन पैदा हो गया।''

सांकेतिकता तथा प्रोफेसर जंग के मनोविज्ञान के विद्यार्थियों को यह स्पष्ट होगा कि क्षीरसागर का मन्थन 'अचेतन मन' के जल के गम्भीर मन्थन का संकेत करता है। मक्खन उस वैयक्तिक ईश्वर–ज्ञान का संकेत करता है जो 'अचेतन मन' के जल के मन्थन से प्राप्त होता है।

अमेरिका लौटने के समय से, शरीर और मन में होने वाले तीव्र परिवर्तनों का भान मुझको परिस्थितियों के द्वारा होने के कारण मुझे सन्तोष है कि बाबा के गोलियों के नुस्खे ने मुझमें एक ऐसी प्रक्रिया चालू कर दी जो अब फलीभूत हो रही है।

बाबा से जुदाई अत्यन्त दुःखपूर्ण थी। उनसे विदा होने के समय मैंने उन्हें उनके साथ भोगे हुए जीवन के सभी सुख तथा दुःख के लिए धन्यवाद दिया। उसके उत्तर में बाबा ने मुझसे कहा, ''मुझे केवल कष्ट के लिए धन्यवाद दो।'' अब कितने ही वर्षों के बाद मैं इन शब्दों में भरे हुए ज्ञान को पूर्णतया समझती हूँ। 'बढ़ती हुई पीड़ा' कथन आध्यात्मिक जीवन के लिए ठीक उतना ही लागू होता है जितना कि वह भौतिक जीवन के लिए लागू होता है। और इसके बिना मनुष्य के लिए कोई भी विकास सम्भव नहीं है। आत्म–पुनर्जीवन की प्रक्रिया में आत्म–बहाना तथा आत्म–दया के सभी पर्दों को दुःख और अपमान के बारम्बार होने वाले अनुभवों के द्वारा छिन्न–भिन्न होना आवश्यक है। यदि हम अहंकार तथा आत्म–इच्छा से मुक्त होवें तो हमारा आध्यात्मिक विकास गुलाब की कली के खिलने के समान ही प्रयत्न तथा वेदना–रहित होगा। फिर भी मनुष्य को 'चेतन' विकास की समस्या के साथ व्यापार करना पड़ता है जिसके लिए एक 'केन्द्र–बिन्दु' अभीष्ट होता है, जैसे कि अहंकार, जिसके चारों ओर उसके

संस्कार केन्द्रित किए जा सकते हैं; परन्तु वह केवल एक क्षणिक केन्द्र होने के कारण, किसी दिन उसका परित्याग सच्चे ईश्वर–केन्द्र के पक्ष में करना आवश्यक होता है। जब वह समय आता है, तब कष्ट और प्रयत्न दोनों उसके लोप में आवश्यक रूप से अन्तर्निहित होते हैं। अहंकार द्वारा पनपाये गये अज्ञान के कारण हम अपनी आत्मा में होने वाली ईश्वरीय क्रिया का विरोध करते हैं, जिस समय कि ईश्वर हमको हमारी स्वार्थपूर्ण तथा शरीर–चेतना से सम्बन्ध रखने वाली सीमितताओं से मुक्त करना प्रारम्भ करता है। यदि हमको इतना काफी प्रकाश प्राप्त हो कि हम बग़ावत न करें बल्कि ईश्वर की मरज़ी को पूर्णतया स्वीकार करें जैसी कि वह हमारे जीवन में प्रकट होती है, तो हमारी आन्तरिक प्रतिक्रिया आनन्दपूर्ण होगी। एक महात्मा ने इसको नीचे लिखे अनुसार प्रकट किया है : ''हमको पीड़ा के हर दूत के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए जो हमारी कमज़ोरी तथा हमारी आत्मा दोनों का एक साथ उद्घाटन करता है।''

चूँकि अपने सिंहावलोकन में मैं उस समय में पुनः विचरण करती रही हूँ जो मैंने बाबा के साथ भारतवर्ष तथा यूरोप में व्यतीत किया था, मुझे यह अधिकाधिक अनुभव होता है कि उस समय जो क्षण मेरी अन्धकारमय अवस्था में अत्यन्त तीक्ष्ण सन्ताप से पूर्ण थे वे अब अनेक पर्दों के हट जाने के बाद मुझको अत्यन्त निर्मल आनन्द प्रदान करते हैं। मुझे आनन्द की ऊँची लहरों का भी ज्ञान है जो बाबा से जुदा होने के दुःखपूर्ण समय में भी मौजूद थीं। ईश्वरीय प्रेम के 'गम्भीरतर' रहस्य केवल पीड़ा की पतीली के माध्यम से ही जाने जा सकते हैं।

मुझको अन्तर्ज्ञान द्वारा महसूस हुआ कि पश्चिमी जगत में स्थित अपने घरों को लौटने वाले हम लोग अनेक वर्षों के बाद ही अपने भौतिक शरीरों से बाबा से पुनः मिल सकेंगे; और इस बीच में हमारे व्यक्तिगत जीवनों में तथा विश्व की परिस्थिति में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जायेंगे। सचमुच मेरा कोई भी अन्तर्ज्ञान कभी भी इतना ज़्यादा सही सिद्ध नहीं हुआ जितना कि यह अन्तर्ज्ञान हुआ।

मेरे ही उदाहरण में, वह नाटकीय क्रम जो भारतवर्ष में प्रारम्भ हो गया था–अथवा जिसका मुझे पहिले से ज्ञान हो गया था–कई वर्षों तक धीमी गति से खुलता रहा। मेरे अन्तस्तल में इतना अधिक अन्धकार छिपा

था जिसका सामना तथा एकीकरण करने की आवश्यकता मुझे थी। मेरी चेतना का कोई भी कोना छिपा हुआ, मलिन, तथा भद्दा न रहने पाया।

मैलकाम और मैंने मोटर बस द्वारा केन्स से पेरिस की यात्रा की, और फिर वहाँ से 'क्वीनमैरी' जहाज द्वारा अमेरिका की यात्रा की। इन यात्राओं ने हमारी आत्मा की कसौटी करने वाली अनेक 'पट–उघारक' परिस्थितियाँ प्रदान कीं, जिनका संचालन बाबा पर्दे के पीछे से कर रहे थे। कैलिफ़ोर्निया पहुँचने तक के लिए मेरा पति अब भी मौन रहने तथा दिन में एक बार भोजन करने के नियम में बँधा था, इसलिए टिकट खरीदने, सब प्रबन्ध करने और आमतौर पर यात्रा का निरीक्षण करने में टोली के मुख्य जन की भाँति कार्य करना मेरा कर्तव्य हो गया था। इससे हमको कोई कठिनाई नहीं होती थी। कठिनाई केवल उन परिस्थितियों में होती थी जहाँ कि मैलकाम की सुन्दर फ्रान्सीसी भाषा से हमारा बढ़िया काम निकलता परन्तु मेरे केवल अँग्रेज़ी भाषा जानने के कारण ऐसे स्थानों में प्रत्यक्ष रूप से असुविधा होती थी।

केन्स में एजेन्ट ने मुझको बताया था कि हमारे टिकटों में लीआन्स में ठहरने तथा होटल में स्थान मिलने की सुविधा कर दी गई थी, जहाँ कम्पनी ने हमारे लिये स्थान सुरक्षित कर दिया था। उसने यह भी बताया था कि लारी हमें होटल में छोड़ेगी। परन्तु जब हम रात्रि के समय नगर के एक सुदूर भाग में लीआन्स पहुँचे तो यात्रा का प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी ने, जिसने उस दिन शाम को खूब शराब पी थी और खूब भोजन किया था, कहा कि हमें होटल तक जाने के लिए टैक्सी का किराया अलग से देना होगा। हमको सन्देह हुआ कि यह एक प्रसिद्ध चाल थी जो वहाँ के रिश्वतखोर निवासी सीधे–सादे पर्यटकों के साथ खेला करते थे। चूँकि न तो हम उसके लुटेरेपन को प्रोत्साहित करना चाहते थे और न हम वास्तव में अधिक अभाव के कारण ऐसा करने में ही समर्थ थे, इसलिए हमने आग्रह किया कि वह उस ठेके को पूरा करे जो मैंने कम्पनी के साथ केन्स में किया था।

इन उलझनों के कारण हमारे भावों में पहिले ही भीषण मन्थन हो चुका था। मैलकाम फ्रान्सीसी भाषा जानता था परन्तु उसको बोलने की आज्ञा न थी, और मुझे, जो कि केवल अँग्रेज़ी जानती थी, इच्छानुसार बोलने की स्वतन्त्रता थी, किन्तु उससे कोई लाभ न था ! मैलकाम के पास एक छोटी वर्णमाला तख्ती थी जो किसी समय बाबा के प्रयोग में रही थी, और इस तख्ती के द्वारा मैलकाम कुछ परिश्रम के साथ मुझसे अपनी बात प्रकट कर सकता था; परन्तु जब उसने उस तख्ती के द्वारा उस कर्मचारी से अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया तो उसने शब्दों की एक ऐसी बौछार की जो अच्छी खासी फ्रान्सीसी गाली मालूम पड़ती थी ! तब मैलकाम ने लिखकर अपनी बात प्रकट करने का प्रयत्न किया। यह उससे भी बुरा सिद्ध हुआ, क्योंकि मैलकाम के घनिष्ठ मित्र तक स्वीकार करते हैं कि मैलकाम का लेख एक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति ही पढ़ सकता है ! और, वह कर्मचारी स्पष्टतः ऐसा मनोवैज्ञानिक न था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह मैलकाम के मौन को एक भद्दे प्रकार का मज़ाक तथा फ्रान्सीसी भाषा बोलने की मेरी असमर्थता को अपना व्यक्तिगत अपमान समझता था। आखिरकार मैलकाम के अनेक स्पष्ट भावों और असन्तोष प्रकट करने वाली आवाजों से तथा मेरी विनयपूर्ण चितवनों से हमने उसको राह में आने के लिए बाध्य कर दिया। परन्तु होटल में हमको और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वहाँ के एजेन्ट ने हमको बताया कि सुबह लारी हमको लेने के लिए होटल न आवेगी, और हमको टैक्सी द्वारा नगर को पार करके लारी तक जाना होगा। चूँकि केन्स में की गई व्यवस्था में यह भी तय हो गया था कि मोटर लारी यहाँ होटल आकर हमको ले लेगी, इसलिए हमने फिर से आग्रह किया कि वे तय हुई बात को पूरा करें। इस समय तक मैलकाम तथा इस आदमी के बीच वाद–विवाद अपनी चरमसीमा तक पहुँच गया था। तब एजेन्ट ने अपनी उत्तेजित अवस्था में अपना हाथ मेरे कन्धे पर रख दिया। मैलकाम के लिए यह असहनीय था। उसने उस आदमी के कालर को अपने हाथ से पकड़ लिया। मैलकाम मौन तो बना रहा, परन्तु जब अपनी संगिनी की रक्षा करने की मूल प्रेरणा उमड़ आई तो उसके ऊबे हुए भावों को प्रकट करने के लिए पशुबल ही स्पष्टतः काफी था। यह दाँव ठीक बैठा। वह आदमी प्रातः हमको होटल से लारी पर लेने

के लिए तैयार हो गया। अब होटल के भीतर हमको एक और समस्या का सामना करना पड़ा। होटल वालों ने कहा कि हमारे लिए कोई स्थान सुरक्षित नहीं किया गया था, और न कोई कमरा खाली था। बहुत हाथ हिलाते हुए, भौंहें चढ़ाते हुए, लिखते हुए और वर्णमाला तख्ती द्वारा फ्रान्सीसी भाषा में अपने विचार प्रकट करते हुए, मैलकाम का मौन नाटक पुनः प्रारम्भ हो गया, जिसके अन्त में केवल यह मालूम हुआ कि मेज पर बैठी हुई महिला अँग्रेज़ी समझती थी ! हमने जो कुछ कहा अथवा किया वह अवश्य भयानक रहा होगा, क्योंकि वह महिला बिना रिश्वत लिए हुए, जिसके लिए कि वह भी प्रत्यक्ष रूप से जाल फैला रही थी, हमको अन्त में एक कमरा देने के लिए राजी हो गई।

पेरिस में व्यतीत किये गये दस दिनों के वर्णन में एक किताब लिखी जा सकती है। हम वहाँ फ्रान्सीसी रेशम खरीदने के लिए गये थे। उन रेशमी कपड़ों से मैलकाम को पुरुषों के लिये नेकटाइयाँ बनाने तथा बेचने का व्यवसाय फिर से चालू करना था। अपने हालीवुड के ग्राहकों के सामने, बड़े दिन के एक माह पूर्व, चारवेट, रोडियर तथा विआनशीनी रेशम की बनी हुई बढ़िया नेकटाइयाँ प्रस्तुत करना हमारे आर्थिक रूप से पुनः स्थापित होने के लिए शुभ मार्ग प्रतीत होता था। हमारा यह विचार बढ़िया सिद्ध हुआ, यद्यपि मुझे विश्वास है कि रेशम की इन दूकानों के क्लर्कों को आश्चर्य हुआ होगा कि इस दुनियाँ में एक गूँगा आदमी बेचने का कार्य कैसे कर सकता था ! फ्रान्सीसी भाषा के अपने अपर्याप्त ज्ञान के साथ मैलकाम को पेरिस घुमाना, ट्रामगाड़ियों में अपने कार्य सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना, भोजनालयों में अपने भोजन की व्यवस्था करना, दूकानों में खरीदारी करना, जबकि मैलकाम मौन घबराहट प्रकट करते हुए मेरे पास खड़ा रहता था, हमारे लिए एक अत्यन्त अनोखा अनुभव था जिसका आयोजन केवल सद्‌गुरु ही हमारे अहंकारों का नाश करने के लिये कर सकता था।

'क्वीन मैरी' जहाज पर अपनी जन्मभूमि की ओर हमारी यात्रा भी भद्दी, हास्यास्पद परिस्थितियों से रहित न थी। मैलकाम 24 घण्टे में एक बार दोपहर के समय भोजन करने का नियम चालू किये था। एक दिन मेरे

भोजन के समय, जब मैं अकेले ही खा रही थी, उस मार्ग से निकलने वाला एक नवयुवक मेरी मेज़ के पास आया। जहाजी यात्रियों की सामान्य आपसी घनिष्ठता के साथ उसने मुझसे मेरे पति के गूँगेपन के 'क्लेश' के लिये अपनी संवेदना प्रकट की। उसने पूछा, "क्या यह जन्म से ही गूँगे हैं ?" इसके उत्तर में मैंने उसको विश्वास दिलाया कि मैलकाम की स्वरतन्त्रियों की यह खराबी केवल थोड़े ही समय से थी।

उसने फिर पूछा, "यह बहुत कम भोजन करते हैं—क्या यह इनके इलाज का एक अंग है ?"

उसके इस उत्तर के लिये मैं उसकी कृतज्ञ थी ! मैंने कहा, "हाँ, उपवास इनके इलाज का एक अंग है।" इस पर उसने अपना सिर हिलाकर अपनी सहानुभूति प्रकट की। वह ऐसा सोचता हुआ प्रतीत होता था कि मेरे लिये वह एक गम्भीर परिस्थिति थी और मैं बहुत बहादुर थी। कभी—कभी ऐसे भी क्षण आये जब मैंने भी ऐसा ही सोचा।

न्यूयार्क में जहाज से उतरने के दिन—जब हम पासपोर्ट इन्सपेक्टर के पास लाइन में खड़े थे— पहले मैंने जाकर उसको अपना संयुक्त पासपोर्ट दिया। उसने पासपोर्ट देखा और वही सामान्य प्रश्न पूछे : "क्या आप अमेरिकी नागरिक हैं," इत्यादि। मेरे उत्तरों से वह सन्तुष्ट हो गया, इसलिए अब उसने अपना मुँह मैलकाम की ओर किया जो मेरे पीछे खड़ा था। मैलकाम ने केवल सिर हिलाकर उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। इन्सपेक्टर ने उससे दुबारा प्रश्न पूछे, और पुनः मैलकाम ने अपना सिर हिलाकर उत्तर दिया। तब बहुत क्रोधित होकर इन्सपेक्टर ने कहा : "मुझे आपकी बात नहीं सुनाई पड़ी !"

उस अफसर के पास ही जहाज का एक सेवक खड़ा हुआ था जो जहाज में मैलकाम के सम्पर्क में आ चुका था। उसने इन्सपेक्टर के कान में फुसफुसाकर कहा, जो लाइन में खड़े हुए सब लोगों को सुनाई दिया: "वह गूँगा है— बोल नहीं सकता !"

वह हमारे लिये चिन्ता का समय था जबकि उस अफसर ने मैलकाम को ऊपर से नीचे तक देखा। इसका कारण यह था कि ऐलिस द्वीप में इससे कम बात पर ही सीधे सादे यात्री डाक्टरी परीक्षा होने तक के लिये

बन्दी कर दिये गये थे। मैंने तेजी से अपने मन में वाद–विवाद किया कि मैं क्या कहूँगी यदि मुझसे पता लगाने वाले प्रश्न पूछे जायेंगे। उनको सच्चा कारण बताने से स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता था। कोई पासपोर्ट कर्मचारी उस आदमी के विषय में क्या समझेगा जो किसी आध्यात्मिक गुरु के आज्ञापालन में नहीं बोलता ? वह सोच सकता था कि इस मौन के पीछे कोई विनाशकारी कार्य का उद्देश्य छिपा था। अथवा, यदि मैं यह कहती कि मैलकाम को यह रोग विदेश में हो गया था–क्योंकि उसके पासपोर्ट में इस बात का कोई संकेत न था कि अपना देश छोड़ने के समय वह 'गूँगा' था–तो इन्सपेक्टर इस नतीजे पर पहुँच सकता था कि न्यूयार्क में प्रवेश करने के पूर्व उसकी डाक्टरी परीक्षा आवश्यक थी। परन्तु मेरी क्षणिक चिन्ता बहुत ही जल्द दूर हो गई। स्पष्टतः यह सोचते हुए कि मैलकाम बहरा और गूँगा दोनों था, उसने चिल्लाकर उससे पुनः वही प्रश्न पूछे। उसी समय पूरी लाइन के दयालु वृद्ध स्त्री–पुरुष मेरे प्रति इन शब्दों में दयाभाव प्रकट करते हुए सुनाई देते थे : ''बेचारी नवयुवती ! कैसे शोक की बात है कि इसे बहरा तथा गूँगा पति मिला है।''

मैलकाम के पिता हमको जहाजों के रुकने के स्थान पर मिले। यदि हम यह कहें कि उनको अपने पुत्र के मौन अभिवादन से धक्का लगा, तो यह उनकी प्रतिक्रिया को बहुत कम करके बताना होगा। यद्यपि वह एक दयालु तथा सज्जन पुरुष थे, तो भी जिस समय मैंने उन्हें बताया कि मैलकाम को कैलिफोर्निया पहुँचने से पहले बोलने की आज्ञा नहीं थी तो उनके क्रोध का बाँध लगभग फूट पड़ा। वह बोले : ''तो तुम्हारे कहने का यह अर्थ हुआ कि वह मुझसे बातचीत किये बग़ैर दूसरे सप्ताह में मुझसे मिलेगा ?''

मेरे समझाने से उनकी व्याकुलता शान्त न हुई !

यद्यपि मैलकाम का यह मौन ज़ाहिर में एक साधारण सी बात थी, तो भी उससे अत्यन्त आश्चर्यजनक उलझनें पैदा हुईं जिनके फलस्वरूप हममें से एक अथवा दोनों हास्यास्पद अथवा दया के पात्र दिखाई पड़ते थे। यह सब कुछ हमारे अहंकारों को और भी नष्ट करने के हेतु बाबा की चक्की के लिए सचमुच ही पीसने की सामग्री थी।

●

नवम्बर 1937 ई. में, ठीक जिस समय हम लोग न्यूयार्क पहुँचे, उसी समय बाबा अपने दल समेत बम्बई (अब मुंबई) में जहाज से उतरे। उनके साथ पूर्वी शिष्यायें, पूर्वी शिष्य तथा तीन पश्चिमी शिष्यायें थीं। तीन अन्य पश्चिमी शिष्याओं को कुछ समय अपने परिवारों के साथ रहकर बाद में भारतवर्ष पहुँचना था। उनके भारतवर्ष आ जाने के तीन सप्ताह बाद बाबा ने कुछ पूर्वी शिष्यों तथा दो पश्चिमी शिष्याओं के साथ अपने अनेक भक्तों के कस्बों तथा नगरों की 9 दिन की यात्रा की।

पहिला पड़ाव पूना में बाबा के जन्म–स्थान में किया गया। वहाँ उनकी माता ने उन सबको पूरा मकान दिखाया जिसने बाबा को उनके बचपन में आश्रय दिया था और मनुष्य देह में ईश्वर के महत्त्वपूर्ण अवतरण के लिये अड्डा प्रदान किया था, और इस प्रकार उन्होंने एक दयालु यजमानिन का पार्ट अदा किया। अपनी सहानुभूतिपूर्ण कल्पना में टोली ने उन महीनों के दैवी आनन्द तथा कष्टकारी पीड़ा में किंचित् प्रवेश किया, जिस समय बाबा अपनी मानवीय आत्मा को बाध्य कर रहे थे कि वह अपने आप को स्थूल शरीर में सन्तुलित करके अपने दैवी प्रारब्ध को पूरा करे।

बाबा की माता महान प्राकृतिक सौन्दर्य तथा भारी उत्साह वाली महिला हैं। उनकी मुखाकृति तथा उनकी ठुड्ढी से उनका दृढ़ संकल्प प्रकट होता है, और उनके जगमगाते हुये नेत्रों में अब भी युवा अवस्था का तेज तथा उत्साह है।

अपने सबसे प्रिय पुत्र के जीवन में असाधारण विकास महसूस करके बाबा की माता के हृदय में जो प्रतिक्रियायें हुईं उनकी कुछ दिलचस्प कहानियाँ हमको भारतवर्ष में सुनने को मिलीं। बहुधा जब बाबा अपने दूसरे गुरुदेव उपासनी महाराज के साथ रहने के लिये चले जाते थे, तो उनकी माता बाबा को महाराज से वापिस माँगने के लिये महाराज की गद्दी साकोरी जाया करती थीं।

वहाँ वह महाराज से आग्रहपूर्वक कहा करतीं थीं, ''आपने मेरा सबसे अच्छा बेटा मुझसे छीन लिया है। उसे मुझको वापिस दे दीजिये !''

एक बार उपासनी महाराज ने बाबा को बुलाकर उन्हें उनकी माता के आग्रह के विषय में बताया और उन्हें माता के साथ घर वापिस जाने की आज्ञा दे दी, किन्तु बाबा वहाँ से भाग खड़े हुए।

दूसरी बार माताजी बाबा की प्रथम गुरु हज़रत बाबाजान के पास गईं और उन पर बाबा को छीन लेने का अभियोग लगाते हुये उनसे चिल्लाकर कहने लगीं : ''मेरा बेटा उपासनी महाराज के पास रहने के लिये चला गया है और यह सब तुम्हारा दोष है ! उसको मेरे पास वापिस बुलवा दो।''

बाबाजान ने अपने महान हृदय की गहराई से माताजी के ऊपर करुणापूर्ण दृष्टि डाली और कहा, ''परन्तु मेहेरवान तो अब तुम्हारे ही साथ है ! क्या वह तुम्हें दिखाई नहीं देता ?'' फिर उन्होंने पुकारा, ''आओ, मेहेरवान ! आओ,'' और फिर उत्सुक माता की ओर मुँह करते हुए उन्होंने पूछा : ''क्या वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता ? वह यहाँ मौजूद है। वह सर्वत्र विद्यमान है !''

एक अन्य अवसर पर, जब वह बाबा के घर लौटने से कुछ समय पहिले उपासनी महाराज के पास गईं, उन्होंने महाराज से अपनी इच्छा प्रकट की कि वह उनके बेटे को ऐसी आज्ञा दे देवें कि वह अपनी माताजी की हर आज्ञा का पालन करे। उपासनी महाराज माताजी के मन की बात जानते हुए मुस्कराये और उन्होंने उत्तर दिया कि, ''जब तक बाबा घर पर रहेंगे तब तक वह एक बात को छोड़कर और सब आज्ञायें मानेंगे; और वह बात यह है कि वह कभी अपना विवाह नहीं करेंगे, क्योंकि विवाह उनके प्रारब्ध में नहीं है।'' यह सुनकर माताजी बहुत झुँझलाईं क्योंकि उनके मन में बाबा के विवाह की ही बात थी जिसकी हामी वह महाराज से भराना चाहती थीं !

इस समय तक वह सद्गुरुओं की कठोर रीतियों से कुछ कुछ परिचित हो गईं थीं इसलिये उनको अपनी इस लालसा को त्याग देना पड़ा, और कुछ समय के उपरान्त बाबा के पुनः घर आ जाने पर उन्हें सान्त्वना प्राप्त हुई। एक दिन एक पड़ोसी माताजी से मिलने आया।

उन्होंने बाबा के पुनः घर लौट आने पर अपनी खुशी उससे प्रकट की और उससे शेखी बघारते हुए कहा कि 'मेरा बेटा मेरी हर आज्ञा को मानता है जिसका वादा उपासनी महाराज ने मुझसे किया था।' उस पड़ोसी मित्र को माता की इस बात में कुछ सन्देह रहा इसलिये उसने व्यक्तिगत प्रदर्शन के रूप में बाबा को कई आज्ञायें माताजी से दिलवाईं। बाबा ने उन सब आज्ञाओं का पालन प्रसन्नतापूर्वक तथा अविलम्ब किया। तब उस पड़ोसी ने माताजी के कान में फुसफुसाकर कहा : ''परन्तु ये बहुत मामूली बातें हैं। उसे कोई कठिन चीज़ करने के लिये कहो, जैसे नंगे होकर घर के चारों ओर घूमना।'' उसकी यह बात सुनकर माताजी की आँखें तमतमा उठीं और उन्होंने कहा, ''मैं इस बात का विचार तक नहीं कर सकती। यदि मैं उसे ऐसी आज्ञा दूँगी तो वह बिना किसी आपत्ति के तुरन्त उसका पालन करेगा !'' इस प्रकार पूर्ण आज्ञापालन के उस प्रदर्शन का अन्त हुआ।

जैसे जैसे समय व्यतीत होने लगा और बाबा के शिष्यों का दल तैयार होने लगा जो बाबा को **ईश्वर–पुरुष** के रूप में पूजते थे, बाबा की माताजी की पिछली अधिकारपूर्ण प्रवृत्ति में परिवर्तन हो गया। यद्यपि अब भी वह कभी–कभी उस असाधारण प्रारब्ध के कारण व्याकुल हो उठती हैं जो जीवन ने उनके तथा उनके पुत्र के लिये निश्चित कर दी है, तथापि अब वह बाबा की उन भक्त शिष्याओं में से हैं जो बाबा के प्रति ऐसी हार्दिक निष्ठा रखती हैं जैसी ईश्वरीय अवतार के प्रति होनी चाहिये।

बाबा की टोली का दूसरा पड़ाव तालेगाँव में हुआ जहाँ बाबा के अनुयायियों ने सदैव की भाँति उत्साहपूर्ण तथा प्रेममयी भक्ति के साथ बाबा का अभिनन्दन किया। कुछ भक्तों के घर में, जहाँ कि बाबा का दल रात्रि–विश्राम के लिये ठहरा था, दो भाइयों के बीच में, जो व्यापार में साझीदार थे, एक जटिल परिस्थिति पैदा हो गई थी। कोई भी कठिनाई जो बाबा के शिष्यों के जीवन से मार्मिक सम्बन्ध रखती है, बाबा के ध्यान के लिये महत्त्वहीन नहीं होती, चाहे वह दिखाव में कितनी ही लौकिक अथवा तुच्छ क्यों न हो। एक प्रेमी पिता की भाँति वह उन लोगों की सहायता करने में, जो अब भी माया के जाल में फँसे हुये हैं, स्वतन्त्रतापूर्वक अपना

ज्ञान, अपना प्रेम तथा खुद अपने आप को प्रदान करते हैं। इसलिये बाबा ने उन लोगों के बीच उलझी हुई गुत्थियों को तुरन्त ही सुलझाना प्रारम्भ कर दिया। उनमें से एक भाई बाबा के निर्णय के सामने आत्मसमर्पण करने की प्रतीक्षा में बाबा के द्वार पर रात भर बैठा रहा। चार बजे सुबह बाबा ने पश्चाताप करने वाले उस भाई के लिए अपना द्वार खोल दिया जो अब अपनी ज़िद तथा परिवार में अपने पद के घमण्ड को त्यागने के लिये तैयार था। इस प्रकार उस घर में पुनः एकता तथा शान्ति स्थापित करने के बाद बाबा ने दिन में बम्बई (अब मुंबई) के लिये प्रस्थान किया।

बम्बई (अब मुंबई) में दरिद्र तथा भूखे लोगों के समूह ने बाबा के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुये बाबा को खुद उनके द्वारा प्रेरित किया गया प्रेम अर्पित किया। साथ ही उन्होंने बाबा के उस स्पर्श तथा बाबा की उस चितवन को प्राप्त करने की कामना की जिससे उनको उनके परीक्षामय जीवन का सामना करने के लिये बल प्राप्त होता, क्योंकि उनमें से कुछ लोगों के चेहरों से प्रकट होता था कि उनको वह परीक्षामय जीवन असह्य प्रतीत हो रहा था।

एक सुन्दर पारसी माता अपने दो सप्ताह के बच्चे को लाई जिसको ऐसे प्रचण्ड रोष की ऐंठने उठती थीं कि उसको देखने वालों को क्लेश होता था। बाबा को इसकी सूचना मिलने पर, बाबा ने जानबूझ कर उससे मुलाकात स्थगित रक्खी, और इस प्रकार उन्होंने माता के हृदय में महानतर आशा उत्पन्न की तथा शिशु की अवचेतना में महानतर ग्रहण–शक्ति तैयार की। उस प्रतीक्षाकाल के बीच में नन्हा, गुड़िया के समान शिशु, स्पष्टतः बाबा की अलख सहायता की मर्मज्ञ रसायनविद्या की प्रतिक्रिया स्वरूप, चुप हो गया और अन्ततः सो गया। थोड़े ही समय के बाद बाबा ने माता तथा शिशु को बुलवाया। जैसे ही बाबा ने शिशु को अपने हाथों में लिया वैसे ही उसकी आँखें खुल गईं और बाबा की शक्तिशाली केन्द्रीभूत चितवन से मिल गईं। जिन लोगों ने यह मौन नाटक देखा था वे बतलाते हैं कि उस नन्हें शिशु के मुख पर एक निश्चित मुस्कानमयी शान्ति छा गई थी। बाबा की चितवन ने उस बच्चे के प्रति जो उद्धारक कार्य किया था उसका भान उसकी माता को भी हो गया था। कमरे से बाहर जाते समय

वह शिशु को अपने सामने ऊँचा उठाये हुए ले गई, मानो वह उसे उस उच्चतर जीवन के प्रति समर्पित कर रही थी जो वह महसूस करती थी कि उसकी चेतना में जागृत कर दिया गया था।

बाबा से मुलाकात करने वालों में एक ऐसा भक्त था जो बहुत समय से बाबा के सम्पर्क में था। उन लोगों में आपस में एक असाधारण रूप से उत्तेजनापूर्ण तथा प्रबल वाद–विवाद एक हिन्दुस्तानी भाषा में हो गया। इस पर बाबा ने अपनी वर्णमाला तख्ती पर अपना कथन प्रकट करते हुए उसे अपने एक शिष्य द्वारा जोर से पढ़वाया जिससे सब लोग उसे सुन सकें :

''जो मनुष्य अपने कर्म को नियन्त्रित नहीं रख सकता वह मनुष्य नहीं है !'' बाबा अपने जनों का आत्मपरिपोषण किंचित् सहन नहीं करते।

मुलाकातों के दौरान में मण्डली को ज्ञात हुआ कि बाबा से एक लम्बे वियोग के द्वारा मण्डली के एक अन्य जन की और भी कसौटी होनी थी। इस कसौटी के लिए चुने गये व्यक्ति को बाबा ने निम्न संदेश भेजा : ''अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में मैं अकथनीय यातना भोगता हूँ, जिसमें तुम्हें अवश्य भागी बनना चाहिये। यह अन्तिम पहलू है। जब तुम मुझसे पुनः मिलोगे, तब तुम मुझको मेरे सच्चे **विश्वव्यापी स्वरूप** में देखोगे।'' तब बाबा ने आदेश दिया कि वह शिष्य भिक्षा माँगते हुए एक यात्रा करे। बाबा ने उसको बताया कि यह यात्रा उसके लिए बहुत कठिन होगी, क्योंकि बहुत से लोग उसको गालियाँ देंगे और ताने कसेंगे, किन्तु वह उन सबको बहादुरी से सहन कर लेगा।

23 दिसम्बर को उन्होंने रेलगाड़ी द्वारा नवसारी के लिये प्रस्थान किया, जहाँ उन्हें देसाई परिवार से मिलना था। रेल पर यात्रा करते हुये, बाबा ने मण्डली के कुछ जनों के काल्पनिक विचारों को शान्त करने के लिये स्वार्थरहित सेवा के विषय में बताया :

''ईश्वर को अपने **निपट** ईश्वरीय रूप में मनुष्य होने की चेतना नहीं होती और न मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में ईश्वर होने की चेतना होती है। केवल **ईश्वर–पुरुष** को ही ईश्वर और मनुष्य **दोनों** होने की चेतना होती है; इसलिये **ईश्वर–पुरुष** विश्व का स्वामी और सेवक दोनों होता है। समस्त आत्माओं को **सत्यता** के मार्ग पर आगे बढ़ाने में सहायता करने की

क्षमता रखने के कारण, वह प्रभु अथवा मालिक होता है। वह इस अर्थ में सेवक होता है कि वह मानवजाति के भार को निरन्तर वहन करता है। जो 'सबकी' सेवा करता है उसकी सेवा करना विश्व की सेवा करना है।

"स्वार्थरहित सेवा और प्रेम ईश्वरत्व के जुड़वाँ गुण हैं। जो प्रेम करता है केवल वही सचमुच सेवा कर सकता है। जिस समय तुम अपने प्रियतम ईश्वर–पुरुष की सेवा करते हो उस समय तुम अन्य सब 'आत्माओं' में स्थित खुद अपनी **आत्मा** (Self) की सेवा करते हो।

"सद्‌गुरु जो सेवा तुमसे लेता है वह तुम्हारे ही आध्यात्मिक कल्याण के लिए होती है; परन्तु यह सेवा स्वतःप्रवर्तित, स्वेच्छानुसार, हार्दिक, बिना शर्त की, तथा प्रतिफल की आशा से रहित होनी चाहिये। उसकी सेवा करने से शरीर, मन तथा आत्मा की कसौटी पर रखने वाली भीषण परीक्षा हो सकती है। परन्तु, यदि सेवा करना आसान और मनुष्य की सुविधा के अनुसार होवे, तो फिर सेवा करने की पूर्णता कहाँ होगी ? तथापि शारीरिक कष्ट तथा मानसिक सन्ताप के बावजूद, स्वार्थरहित सेवक की 'आत्मा' वास्तविक सन्तोष के आनन्द का अनुभव करती हैं। जो मनुष्य बिना किसी आपत्ति अथवा बिना प्रतिफल के विचार के **ईश्वर–पुरुष** की सेवा करता है, केवल वही सचमुच सेवा करता है। सेवा करने में कोई भी अन्य प्रवृत्ति मज़दूरी के लिये किये गये परिश्रम से बढ़कर नहीं होती।"

देसाई परिवार, जिसके यहाँ बाबा का दल नवसारी में ठहरा था, बड़ौदा रियासत में भारी जमींदार है। वे कितने ही वर्षों से बाबा के भक्त हैं। सोराबजी देसाई विविध विषयों पर लगभग सौ पुस्तकों के लेखक थे। उन लेखों में सामाजिक, धार्मिक तथा दार्शनिक विषय सम्मिलित हैं। 'ईश्वर के एक सौ एक नाम' शीर्षक पुस्तक उन्होंने बाबा के आन्तरिक पथ–प्रदर्शन में लिखी थी, और बाद में उसको बाबा की बाह्य पुष्टि प्राप्त हुई। जिस दिन उसका अन्तिम प्रूफ बाबा की स्वीकृति के लिए उनके सामने पेश किया गया उस दिन एक दिलचस्प घटना हुई। बाबा उस पुस्तक को हाथ में लिये हुये उसमें दिये गये एक चार्ट पर ईश्वरीय अस्तित्व में सर्वोच्च बिन्दु–ईश्वर–की ओर संकेत कर रहे थे कि बाण के आकार का एक देदीप्यमान प्रकाश बाबा के सिर से निकलकर एक

जगमगाते हुये चक्करदार प्रकाश के रूप में बदल गया, जिसके कारण पूरे कमरे में सुनहला प्रकाश भर गया। उस प्रकाश को वहाँ मौजूद सब लोगों ने देखा, जिसके फलस्वरूप उन सबमें स्वर्गीय 'एकता' की भावना संचारित हो गई।

अब, बाबा के वहाँ पदार्पण के समय, देसाई–परिवार जीवन और मरण की दो महान सार्वलौकिक शक्तियों के आमने–सामने लाया जा रहा था। कुछ ही दिनों के भीतर एक पुत्री का विवाह होना था और कुटुम्बियों तथा मित्रों के भारी जमाव के लिये भारी तैयारियाँ की गईं थीं। इसके साथ–साथ सोराबजी देसाई किसी भी क्षण भौतिक मृत्यु के महान नाटक का अनुभव करने वाले थे, यद्यपि उसका ठीक समय केवल बाबा जानते थे–और वास्तव में वह समय–नियन्त्रक (Time-Keeper) की भूमिका अदा करते हुए प्रतीत होते थे। वहाँ पहुँचने के दूसरे दिन सुबह बाबा ने सोराब जी के कमरे में जाने के बाद आज्ञा दी कि कोई और आदमी रोगी को देखने न जावे, और घर वालों को आदेश दिया कि वे तीन दिन बाद होने वाले विवाह के लिये आमन्त्रित तीन सौ मेहमानों के निमन्त्रण वापिस कर लेंवे और केवल थोड़े से निकट सम्बन्धियों तथा मित्रों को आमन्त्रित करें।

इसके पश्चात् तीसरे पहर, जबकि मण्डली के जन बाबा के चारों ओर बैठे हुये एक भारतीय आरकेस्ट्रा का संगीत सुन रहे थे, सोराबजी का सन्देश आया कि उनकी अन्तिम अभिलाषा बाबा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने की थी। थोड़ी ही देर बाद, परिवार के दो सदस्यों का सहारा लेकर मानवातीत प्रयास करते हुये आकर वह बाबा के सामने खड़े हो गये, और फिर सहारा लेने वाले हाथों को हटाकर वह घुटनों के बल बाबा के चरणों में गिर पड़े। इस प्रकार उन्होंने अपनी अन्तिम आहुति बाबा को दे दी, जिनसे वह चिरकाल से प्रेम करते थे तथा चिरकाल से जिनकी सेवा करते आ रहे थे। अचानक बाबा ने आज्ञा दी कि उनको वापिस ले जाकर चारपाई पर लिटा दिया जाये।

दूसरे दिन सुबह मण्डली के लोगों को सुनने में आया कि रोगी को बहुत कम नींद आई थी। बाबा उसको अन्तिम बार देखने के लिये भीतर गये और अपने महान आनन्द तथा अपनी महान शक्ति का आशीर्वाद उसको प्रदान किया। प्रयाण करने वाली आत्मा को प्रसन्नता हुई कि

उसके सान्सारिक जीवन का अन्त बाबा के आशीर्वाद के साथ हो रहा था, और वह इस ज्ञान के आ जाने से सन्तुष्ट था कि वह शीघ्र ही आत्म–जीवन के एक नये पहलू में प्रवेश करेगा।

कुछ समय पश्चात् बाबा और उनकी टोली ने बम्बई (अब मुंबई) के लिये प्रस्थान किया और दूसरे दिन उन्होंने नागपुर की यात्रा की। नागपुर में बाबा को वह तार मिला जिसकी वह नवसारी से आने की बराबर प्रतीक्षा कर रहे थे, और जिसके द्वारा यह सूचना प्राप्त हुई कि विवाहोत्सव समाप्त होने के ठीक बीस मिनट बाद सोराबजी देसाई ने शरीर छोड़ दिया था। इस प्रकार 'जीवन' और 'मरण' के स्वामियों ने सुन्दरतापूर्वक अपने अपने कर्त्तव्य पूर्ण किये। तार को पढ़ते समय बाबा प्रसन्न दिखाई पड़ते थे, और उन्होंने अपनी वर्णमाला तख्ती द्वारा प्रकट किया : ''शाबाश।''

नागपुर यात्रा की प्रमुख घटनाओं में से एक घटना बाबा की एक उन्मत्त लड़के से मुलाकात थी। वह सात वर्ष की आयु का था, और बाबा ने कई सप्ताह पूर्व से यह आज्ञा दे रक्खी थी कि बाबा के नागपुर पहुँचने के समय वह ढूँढकर उनके पास लाया जावे। यद्यपि वह लड़का आमतौर पर अत्यन्त लज्जाशील था, तथापि जैसे ही उसने बाबा को देखा वैसे ही वह उछलकर उनकी गोदी में चढ़ गया और अपने छोटे छोटे हाथ बाबा के गले में डालकर चिपट गया। नागपुर के प्रवासकाल में बाबा रोज़ उस बच्चे को स्नान कराते थे और वस्त्र पहिनाते थे, जिस प्रकार वह राहुरी में मस्तों को–ईश्वरीय प्रेम के नशे में चूर आत्माओं को–स्नान कराया करते थे और कपड़े पहिनाया करते थे। इस क्रिया के द्वारा बाबा बच्चे के शरीर को साफ करने और कपड़े पहिनाने के साथ–साथ उसके मन को भी निर्मल तथा नवीन बनाते थे। वहाँ से प्रस्थान करने के पूर्व बाबा ने उसके पिता को आदेश दिया कि वह उसको आगामी अप्रैल माह में मेहेराबाद लावे, क्योंकि उसी समय बाबा को उस बच्चे के प्रति अपना उद्धारक कार्य पूरा करना था।

यह समाचार दावानल की भाँति फैल गया कि बाबा प्रत्येक ऐसे मनुष्य से मिलेंगे जिसका जीवन निराश्रित, दोषपूर्ण अथवा निराशापूर्ण होगा। इसके फलस्वरूप रोगी और दुखी लोगों का भारी ताँता बाबा का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये उनके सामने लग गया। उन लोगों में कई

छोटे बच्चे भी थे। उनके सन्तप्त सिरों के ऊपर अपने पवित्र हाथ रखते हुये बाबा ने उनके ऊपर आध्यात्मिक राहत की वर्षा की जो चंगा करती है और जीवन को गति प्रदान करती है।

दूसरे दिन सन्ध्या का समय उन लोगों के लिये रक्खा गया था जो बाबा का दर्शन अथवा आशीर्वाद चाहते थे। घर के बाहर प्रतीक्षा करती हुई भीड़ के बीच से रास्ता बनाने के लिये पुलिस को बुलाना पड़ा था। एक विशाल कमरे के बीच में बाबा एक सुन्दर आसन पर बैठे थे जो उनके भक्तों द्वारा अर्पित की गई तकियों, दुशालों और दरियों से सुसज्जित किया गया था। पुनः भारतीय संगीत प्रारम्भ हुआ जिसने आत्मा को स्पन्दित करने वाले अपने आलाप से वातावरण को गुँजा दिया।

दूसरे दिन पुनः आत्मपिपासा रखने वाले सात हजार मनुष्यों की भारी भीड़ एक क़तार में खड़ी हुई बाबा के दरस–परस के लिये घण्टों तक प्रतीक्षा करती रही। फिर बाबा के कृपालु यजमानों से विदा होने का समय आया। बाबा ने उनको अपने गले से लगाया, जिस प्रकार से प्रेमी पिता अपने बच्चों को गले लगाता है, उनके चेहरों पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरा, और उनके नेत्रों में अपनी गम्भीर चितवन डाली मानो वह उनके ऊपर एक अलख देन की छाप छोड़ रहे थे। उनमें से कुछ को उन्होंने ठोस भेंटें भी प्रदान कीं। उन्होंने नोरीना की जेब से एक रूमाल निकाला और कुछ क्षण तक उसे अपने हाथ में लिये रहने के बाद उसे उस परिवार के एक सदस्य को दे दिया। एक बच्चे को वह कोमलतापूर्वक अपने हाथों में लिये रहे। इन सभी साधारण मानवीय चेष्टाओं के साथ–साथ उनके मुखड़े पर उस क्लेश की झलक थी जिसका अनुभव वह उन उत्सुक तथा चिन्तित आत्माओं की वेदना तथा बोझों को अपने ऊपर लेकर कर रहे थे।

कुछ समय के उपरान्त जिस समय बाबा स्टेशन पहुँचे तो वहाँ हजारों आदमी उनको विदाई देने के लिये इन्तज़ार कर रहे थे। जैसे ही रेलगाड़ी छाये हुये अन्धकार में प्रवेश करने लगी वैसे ही उस भारी भीड़ की श्रद्धापूर्ण जयध्वनि बाबा की मण्डली को सुनाई देने लगी–''श्री सद्गुरु मेहेरबाबा महाराज की जय''। यह वही जयध्वनि थी जिसने बाबा के जन्मोत्सव के समय नासिक में वायुमण्डल को भर दिया था।

प्रातः बड़े तड़के वे एक रेलवे स्टेशन पर पहुँचे जहाँ से मेहेराबाद के लिये कुछ घन्टों की यात्रा थी। वहाँ पर बाबा का एक जन मोटरकार लिये हुये उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। जिस समय वे धूल–धक्कड़ वाली सड़क पर चले जा रहे थे, बाबा ने अचानक प्रकट किया कि वे भूखे थे, इसलिए उन्होंने एक बरगद के वृक्ष की सघन छाया में रूककर भोजन निकाला जो नागपुर के परिवार ने उनके लिए तैयार कर दिया था। छक कर भोजन कर चुकने के बाद बाबा ने सबको थोड़ा सो लेने की सलाह दी, किन्तु वे अधिक समय तक विश्राम न कर सके क्योंकि बाबा खेलने तथा विनोद करने की मौज में थे। जिस समय वह उन लोगों के साथ एक खेल खेल रहे थे उसी समय एक आदमी सड़क पर दिखाई दिया जो देखने में बहुत गरीब था और अपने सिर पर एक बहुत भारी बोझ लिये जा रहा था। उसको देखते ही बाबा ने पुनः भोजन खुलवाया, और उनकी आज्ञानुसार समोसा, मक्खन, रोटी तथा फलों का बढ़िया भोजन बाबा द्वारा बोले गये नीचे लिखे शब्दों के साथ उस आदगी के सामने प्रस्तुत किया गया, ''इस भोजन को देने वाले श्रीसद्‌गुरु मेहेरबाबा हैं।'' इस पर उस मनुष्य ने गम्भीर परन्तु स्वाभाविक रीति से उत्तर दिया, ''यह मेरा सौभाग्य है कि वह मुझको भोजन करा रहे हैं।''

जो लोग बाबा के आध्यात्मिक मुलाकातों के कार्यक्रमों से अभ्यस्त हैं, जो बहुधा बाबा की यात्राओं के दौरान में सामने आते हैं, उनके लिए यह स्पष्ट था कि यह आदमी बाबा का आध्यात्मिक एजेन्ट था और बाबा जानते थे कि वह उनको उस स्थान और उस समय पर मिलेगा।

इस टोली में एक सदस्या रुआनो बोगिस्लाव ने, जो दिसम्बर 1934 ई. में बाबा के साथ हालीवुड गई थी, एक ऐसे ही 'कार्यक्रम' का वर्णन किया था। जिस समय उनकी रेलगाड़ी न्यू मेक्सिको के ऐलबुक़र्क स्थान में आध घण्टे के लिये रुकी, रुआनो बाबा के साथ–साथ रही जिस समय वह ईंटों के बने लम्बे प्लेटफार्म पर इधर से उधर घूमते फिर रहे थे। वह वर्णन करती है कि उस समय बाबा अचानक रुक गये और उसकी ओर मुँह करते हुये उन्होंने अपनी हथेली में शब्द 'इण्डियन' लिखा। यह सोचकर कि बाबा कुछ अमेरिकन इन्डियन्स से मिलना चाहते थे, रुआनो

ने चारों ओर देखते हुये 'एक वृद्ध हबशी स्त्री' को देखा जो एक दूकान के सामने बैठी थी। रुआनो ने उस स्त्री की ओर इशारा किया, परन्तु बाबा का भीतरी ध्यान कहीं और था। उन्होंने अपने चार भारतीय शिष्यों को इशारे से बुलाया और रुआनो के हाथ में अपना हाथ डालकर तेजी के साथ लम्बे प्लेटफार्म के सिरे की ओर चल दिये। वहाँ से वह एकबारगी बाई ओर घूम गये और एक सड़क पर आगे बढ़ते गए मानों वह निश्चितरूप से जानते थे कि उन्हें कहाँ जाना था। रुआनो बाबा की विचित्र रीतियों की अभ्यस्त न थी और अब भी उसमें वह मानसिक स्थिति न आई थी जो सब कुछ सद्‌गुरु के ऊपर छोड़ देती है, इसलिये उसे आश्चर्य हो रहा था कि वे अमेरिकन इन्डियन्स की खोज में इतनी दूर चले जा रहे थे ! रेलगाड़ी छूट जाने की सम्भावना थी, किन्तु फिर भी वे आगे बढ़ते ही गये। कुछ दूर चलने के बाद, रुआनो ने दो इन्डियन्स देखे जो दूसरी सड़क के कोने पर खड़े थे। उनको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई, और जैसे ही वे लोग उन व्यक्तियों के पास पहुँचे वैसे ही उसने बाबा की ओर मुड़कर कहा, ''बाबा! यह हैं आपके अमेरिकन इण्डियन्स।'' उनमें से एक नाटे क़द का था और धनुष व बाण बेच रहा था। वह इस टोली के वहाँ पहुँचते ही चला गया। दूसरा व्यक्ति ऊँचा तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला पुरुष था और अपने सिर में लाल पगड़ी बाँधे था। उसके सामने जाकर बाबा रुक गये। कुछ क्षण तक बाबा और वह एक दूसरे को एकाग्रता के साथ देखते रहे। रुआनो ने मन्द स्वर में कहा, ''मुझे आश्चर्य होता है कि क्या वह अँग्रेज़ी बोलता है ?'' परन्तु उसकी बात की ओर किसी ने ध्यान न दिया। बाबा के भारतीय शिष्य मौन खड़े थे। एकबारगी बाबा लौट पड़े और पुनः रुआनो का हाथ पकड़ कर तेजी से स्टेशन की ओर चल दिये। जिस समय वे स्टेशन पर पहुँचे तो रेलगाड़ी छूटने ही वाली थी। बाद में रुआनो ने बाबा से पूछा कि क्या वह उस खास इण्डियन से उस समय वहीं मिलने की आशा करते थे। बाबा ने अपना सिर हिलाकर उसे स्वीकृति सूचक उत्तर दिया और अपनी वर्णमाला पट्टी द्वारा उसको बताया, ''वह व्यक्ति मेरा आध्यात्मिक एजेन्ट था।''

ये घटनायें साधारणतया पश्चिमी जगत के मनुष्यों के लिये बहुत ही विचित्र हैं, परन्तु बाबा के शिष्यों को वर्षों से इस प्रकार के अनुभव बारम्बार

होने के कारण वे इन घटनाओं को सही मानते हैं। बाबा हमको बताते हैं कि इन 'एजेन्टों' में से अनेक को उनके 'मेहेरबाबा स्वरूप' का ज्ञान नहीं होता, जब तक कि बाबा का बाह्य मिलन उनसे नहीं होता जैसा कि अमेरिका में इन्डियन्स से हुआ और भारतवर्ष में उस भारतीय एजेन्ट से हुआ था। ऐसे बाह्य–मिलन के पूर्व उनका सम्पर्क पूर्णतया आन्तरिक लोकों पर रहता है, जहाँ नामों से व्यक्तियों के बजाय कार्यों का संकेत होता है।

मार्च सन् 1938 ई. में बाबा पूरे 'परिवार' को पंचगनी ले गये, जहाँ उस प्रसिद्ध गुफ़ा का दृश्य है जिसका उल्लेख इस गाथा के प्रारम्भ में किया जा चुका है। इस स्थान परिवर्तन के दो प्रयोजन थे। एक प्रयोजन था पश्चिमी महिलाओं को मेहेराबाद की अयनवृत्तीय (Tropical) गर्मी से बचाना जिसे सहन करने की आदत उन्हें न थी, क्योंकि मेहेराबाद नीचे धरातल पर होने के कारण बहुत गरम रहता है। दूसरा प्रयोजन बाबा के कुछ विशेष आन्तरिक कार्य के लिये था। चीता–घाटी (Tiger-valley) के सीमाप्रान्त में एक विशाल बँगला किराये पर लिया गया। उसमें पूर्वी और पश्चिमी महिलायें रहीं, और उससे कुछ फ़ासले पर एक छोटे घर में टोली के पुरुष सदस्य ठहर गये, क्योंकि पूर्वी शिष्याओं का एकान्तवास अभी भी चालू था। प्रत्येक व्यक्ति के लिये सुविधाजनक स्थान निश्चित करके बाबा ने अपने लिये एक छोटा भण्डारगृह चुना जो रसोईघर से लगा हुआ था। उसकी छत बहुत नीची थी और लकड़ी के पुराने जर्जर द्वार के सिवाय हवा के आने–जाने का और कोई रास्ता न था, और वह कोठरी बहुत ही जीर्ण–शीर्ण अवस्था में थी। फिर भी पुरुष मण्डली तेजी से जुट गई और उन्होंने उसे शीघ्र ही एक स्वच्छ छोटी कोठरी के रूप में परिवर्तित कर दिया। मुख्य मस्त मुहम्मद के लिये भी एक विशेष कमरा सुरक्षित कर दिया गया था। उसको रोज़ स्नान कराने, वस्त्र पहिनाने तथा भोजन कराने की सांकेतिक क्रिया बाबा ने ज़ारी रक्खी।

पंचगनी के प्रवास के दौरान में बाबा थोड़े–थोड़े समय के लिये कई बार मैसूर के बंगलौर तथा हैदराबाद के बेलगाँव स्थानों को गये। उन

यात्राओं का अभिप्राय यह था कि बाबा इन प्रदेशों में अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक केन्द्र स्थापित करने के लिये स्थान खोजना चाहते थे। मैसूर के स्वर्गीय महाराजा व उनके योग्य दीवान सर मिर्ज़ा इस्माइल की भारी दिलचस्पी और सहयोग और साथ–साथ मैसूर राज्य की केन्द्रीय स्थिति व स्वास्थ्यप्रद जलवायु मैसूर के मुख्य नगर बंगलौर के पक्ष में जोरदार कारण थे। इसलिये कुछ महीनों के बाद बंगलौर में ही इस अद्वितीय संस्था की नींव डाली गई। बाबा ने भविष्यवाणी की कि इस संस्था का निर्माण पूरा हो जाने पर सारी दुनियाँ के स्त्री–पुरुष इसकी ओर आकर्षित होंगे, और उनमें जीवन के सभी विभागों की महान आत्मायें होंगी।

इस केन्द्र में लगभग एक हज़ार व्यक्ति रह सकेंगे, और बाबा का इरादा इसमें छः विभाग रखने का है। उनमें से एक विभाग होगा 'आध्यात्मिक विद्यापीठ'–जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थहीनता तथा एकता के लिये विश्व की आवश्यकता की बौद्धिक व्याख्या करने के हेतु पुरुष तथा स्त्रियाँ तैयार किये जावेंगे। दूसरा विभाग होगा 'उन्नत आत्माओं का गृह'– जिसमें स्त्री–पुरुष क्रियात्मक रहस्यवादी बनने के लिये तैयार किये जायेंगे, जो अपनी उच्चतर चेतना को अपने दैनिक जीवन के व्यवहार में रक्खेंगे। तीसरा विभाग होगा 'सन्त निकेतन'–जिसमें ऐसे स्त्री–पुरुष तैयार किये जावेंगे जो अज्ञानी लोगों के अन्तस्तल में इस अनुभव की ज्योति जगायेंगे कि केवल ईश्वर ही सत्य है और अन्य सब कुछ माया है। चौथा 'मस्त विभाग'–मस्तों (ईश्वरीय प्रेम के नशे में चूर जनों) की सेवा–सुश्रूषा करेगा, जिनका सन्तुलन चेतना की भीतरी भूमिकाओं को पार करने में बिगड़ गया है। पाँचवाँ विभाग होगा 'ध्यान करने के लिये एकान्त स्थान'–यह उन लोगों को अवसर प्रदान करेगा जिनका आध्यात्मिक विकास सद्गुरु के पथप्रदर्शन में किये गये लम्बे ध्यान के द्वारा और भी आगे बढ़ सकता है। छठवाँ, 'पीड़ित लोगों के लिये विश्राम–स्थल'– यह विभाग सब प्रकार के पीड़ितों की देखरेख करने और उनके क्लेश को कम करने की ओर ध्यान देगा, और पुरुष तथा स्त्रियों को स्वार्थरहित सेवा के जीवन के लिये शिक्षित करेगा। ये सब विभाग सीधे बाबा के संरक्षण में रहेंगे। इस आध्यात्मिक केन्द्र में लोगों की भर्ती केवल बाबा और उनके द्वारा नियुक्त किये गये जनों के द्वारा की जायेगी।

इसमें प्रारम्भिक साधक तथा अत्यन्त उन्नत योगी और सन्त सब भर्ती हो सकेंगे। इस भर्ती के लिए मुख्य अभीष्ट बात होगी ईश्वर का प्रेम और उससे मिलने की उत्कण्ठा। इस केन्द्र के शिलान्यास के समय दिये गये बाबा के सन्देश के कुछ अन्श निम्नलिखित हैं:–

''...एक विश्वव्यापी जागृति का समय निकट है। उसका एक महत्त्वपूर्ण रूप यह सार्वभौम आध्यात्मिक केन्द्र होगा जिसकी नींव आज यहाँ डाली गई है। मैसूर किसी दिन अपने इस अद्वितीय सौभाग्य का अनुभव करेगा कि वह अन्य अनेक प्रगतिशील चीज़ों का स्वामी होने के साथ–साथ विश्व की 'आध्यात्मिक राजधानी' भी है। मैं तुम सबको आध्यात्मिक पुनर्जीवन की इस सबसे बड़ी अभूतपूर्व योजना में आशीर्वाद देता हूँ, जिसका शिलान्यास आज तुमने देखा है। यह सार्वभौम आध्यात्मिक केन्द्र भूमण्डल पर मेरे ईश्वरीय उद्देश्य के लक्षण का प्रतीक है।''

इसी समय बाबा ने यह भी घोषित किया कि बाबा के मौन खोलने तथा अपना सार्वजनिक कार्य यथाविधि प्रारम्भ करने के पहिले, भारतवर्ष में छः केन्द्र और स्थापित करना होंगे। मेहेराबाद, नासिक, मद्रास व टोका में पहिले ही चार केन्द्र स्थापित हो चुके थे और मध्यप्रान्त में नर्वदा के तट पर मण्डला स्थान में एक और केन्द्र की नींव डाली जा चुकी थी। अन्य छः केन्द्रों के स्थान उस समय विचाराधीन थे। इस प्रकार कुल बारह केन्द्र स्थापित होना थे।

उनके मेहेराबाद लौटने के कुछ सप्ताहों के पश्चात् पुरुषों के आश्रम में दो सौ अतिथियों की उपस्थिति में एक असाधारण नाटक खेला गया। यद्यपि केवल बाबा ही इस आश्चर्यजनक नाटक के पूरे अर्थ को जानते हैं, तथापि हम लोग नीचे दिये हुए वर्णन से थोड़ा सा अध्ययन कर सकते हैं और बाबा द्वारा नाटक के प्रयोग का एक और प्रमाण देख सकते हैं–चाहे वह नाटक यथार्थ हो अथवा काल्पनिक–कि किस प्रकार बाबा उसके द्वारा विशेष शक्तियों को गतिमान करते हैं जो अपने को आवश्यकतानुसार सार्वलौकिक अथवा व्यक्तिगत रूप से प्रकट करती हैं।

यह नाटक ईश्वरोन्मत्त लोगों द्वारा प्लीडर के संचालन में खेला गया था। प्लीडर बाबा का वह शिष्य है जिसकी कठिन कसौटी तथा ट्रेनिंग का वर्णन पहले किया जा चुका है। नाटक का विषय था 'राजा गोपीचन्द'। राजा गोपीचन्द एक राजा था जिसने ईश्वर की खोज में अपना राजसिंहासन त्याग दिया था। जब हम सोचते हैं कि नाटक खेलने वाले मस्तों में से अधिकांश मस्त बिना गड़बड़ किये हुये एक क्षण के लिये भी एक स्थान में खड़े नहीं रह सकते थे, और उनमें विचारों की समस्वरता किंचित् भी न थी, तो भी उनके अभिनयों में प्रदर्शित उनकी भावना तथा एकाग्रता को देखकर हमें अत्यन्त आश्चर्य होता था। दो घण्टे के नाटक प्रदर्शन में इन मस्तों ने अपनी भूमिका के वार्तालाप व गाने सही सही स्मरण रखने के साथ–साथ अपनी भूमिका उत्साह तथा सच्ची समझ के साथ खेली। इसमें सन्देह नहीं कि इसका अधिकाँश श्रेय प्लीडर के बुद्धिमत्तापूर्ण संचालन तथा बाबा के अनवरत निरीक्षण को था; तथापि, एक दर्जन अथवा उससे अधिक उन्मत्त जनों का उस संचालन में इतने विचित्र ढँग से फिट बैठ जाना ही एक अभूतपूर्व कार्य था।

उनकी भूमिकाओं के ठीक–ठीक अभिनय में एक जगह ग़ल्ती हुई, जबकि उनमें से एक मस्त नाटक में अन्तर्निहित विषय से स्पष्टतः अत्यन्त प्रभावित होकर अपने अभिनय के दौरान में चिल्ला पड़ा जिस प्रकार एक आत्मा अपने **ईश्वरीय स्वरूप** के प्रति सहज रूप से चिल्ला उठती है :

''मैं तुम्हारे चरणों पर गिरता हूँ; मैं तुम्हें अपना जीवन अर्पित करता हूँ; मैं तुम्हारे लिये प्राण देता हूँ !''

बाबा ने इस नाटक के सफल प्रदर्शन को बहुत महत्त्व दिया, जो दुनियाँ के 'पागलपन' के ड्रामा के, जिसमें कि दुनियाँ निमग्न होने वाली थी, अन्तिम सफल परिणाम का लक्षण था। अब यह देखने को रह जाता है कि व्यक्तियों तथा राष्ट्रों की स्वार्थपरता व स्वार्थ–दर्शिता को सच्चे सदाचार की खोज के द्वारा लाँघने में–जैसा कि नाटक में दिखाया गया था–कितना समय लगेगा।

इस नाटक के प्रदर्शन के कुछ समय पश्चात् स्त्री रोगियों के लिये एक अस्पताल पहाड़ी के ऊपर खोला गया। एक महिला डाक्टर उस अस्पताल में रक्खी गई और काउन्टेस नाडिना टाल्सटाय, बाबा की अन्य

पूर्वी तथा पश्चिमी शिष्याओं की सहायता से, उस महिला डाक्टर के नीचे अस्पताल की निरीक्षिका का कार्य करती थी। यह अस्पताल भौतिक चिकित्सा का स्थान होने के अलावा कुछ और भी था। बाबा के प्रेम के अनवरत आशीर्वाद के द्वारा, जो पीड़ितों को जीवन तथा सेवा करने वालों को स्फूर्ति प्रदान करता था, वह स्थान बहुतेरे जनों के लिये कृपा व शरण प्रदान करने वाला स्वर्ग बन गया। एक ग़रीब पागल स्त्री के पहला बच्चा पैदा हुआ। उस स्त्री को उसके घर वालों ने त्याग दिया था और उसको बाबा के कुछ जन एक दिन मेहेराबाद से लगभग 25 मील की दूरी पर स्थित एक स्थान से ले आये थे। सबसे पहले बाबा ने उस बच्चे के रोने का शब्द सुना, और वह तुरन्त ही उसको देखने तथा अपना आशीर्वाद देने के लिये अन्दर गये। उन्होंने उसकी देखरेख के लिये खास हिदायतें दीं, और बहुधा खुद जाकर बाबा उसका लाड़–प्यार किया करते थे।

सब रोगियों में, औषधियों से बढ़कर बाबा की मौजूदगी ही उनकी शिथिल आत्माओं को पुनर्जीवन प्रदान करती थी और आत्मा का वह इलाज करती थी, केवल जिसके द्वारा ही स्थायी शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। बाबा की इस कृपा को पाने वाले केवल रोगी ही न थे। अस्पताल में सेवा करने वाले वो जन, बाबा की कृपा से सच्ची, स्वार्थरहित सेवा की अमूल्य शिक्षा पाते थे, जो (सेवा) बाहरी मलिनता के नीचे छिपी हुई पीड़ा से जीर्ण–शीर्ण तथा शोक से लदी संतप्त आत्मा को देखती है। वे बाबा के नीचे लिखे शब्दों में भरे हुये ज्ञान की शिक्षा पा रहे थे :

''यह मत सोचो कि दूसरों की सेवा करने में तुम उनके ऊपर कृपा कर रहे हो, बल्कि तुम इस बात पर आनन्द मनाओ कि उन्होंने तुमको सेवा करने का अवसर प्रदान करके तुम्हारे साथ अनुग्रह किया है।''

बाबा स्वयं ऐसी स्वार्थरहित सेवा का नमूना निरन्तर सामने रखते हैं। परम सेवक होने की इस विशेषता से ही सद्‌गुरु की सच्ची महानता का निर्णय करना चाहिये। उसका निरन्तर कृपा की वर्षा करना; आशीर्वाद देने तथा उद्धार करने के लिये मनुष्यों के सिर पर अपना हाथ रखना; ईश्वर के अपार प्रेम में भाग लेने के लिये सदैव अपना हृदय खुला रखना; सहज सेवा के वे निश्चित मानवीय कर्म सच्चे 'ईश्वरत्व' के लक्षण हैं, और ये गुण बाबा सादगी, शोभा व सुन्दरता के साथ धारण करते हैं।

मेहेराबाद वापिस आने पर महिलाओं को मालूम हुआ कि जिस एक खण्ड की इमारत में पूर्वी शिष्यायें कई वर्ष तक रही थीं उसके ऊपर दूसरा खण्ड बना दिया गया था। इस ऊपरी खण्ड में लगभग आठ पश्चिमी महिलायें रहती थीं और उनके शयनागार छींट के परदे लगा– लगाकर अलग कर दिये गये थे। पहले के नासिक आश्रम के सुखपूर्ण जीवन की तुलना में यह जीवन बिल्कुल विपरीत था ! तथापि भारतवर्ष से एक अँग्रेज़ महिला ने लिखा है कि यद्यपि नासिक आश्रम के सभी सुख– साधन हटा लिये गये हैं तो भी उन लोगों को उनका अभाव महसूस नहीं होता। वह अपना विश्वास प्रकट करती है कि सचमुच वे सुख–साधन अनेक भीषण कठिनाइयों के कारण थे, जो हमारे वहाँ रहने के समय पैदा हुई थीं।

इसमें सन्देह नहीं कि इस नई व्यवस्था के प्रारम्भ में एकान्तता के अभाव से, जिसकी वे सब आदी थीं, उनके सामने कितनी ही भावात्मक अड़चनें आई होंगीं। परन्तु मुझको पत्र लिखने वाली इस महिला का कहना है कि उनका जीवन सब बातों को देखते हुये शान्त व आनन्दमय था। इसमें दो कारण सहायक थे : वे उस दुर्लभ वातावरण में रहती थीं जो कितने ही वर्षों तक बाबा का सदर मुकाम रहा था; और उन्हें बाबा के दैनिक निरीक्षण तथा प्रेमपूर्ण प्रोत्साहन का सौभाग्य प्राप्त था।

एक विचित्र किन्तु मनोवैज्ञानिक ढँग से समझने योग्य विभाग एक जन्तुशाला थी, जिसका उद्‌घाटन बाबा ने किया था। दो पश्चिमी शिष्याओं को रोज़ एक गधा, एक बन्दर, एक ऊँट, एक साँप, एक बकरी तथा कुछ कुत्तों को दो बार भोजन कराना पड़ता था, और उनके बाड़े अथवा पिंजड़े साफ रखना पड़ते थे। एक समय बाबा ने आज्ञा दी कि बन्दर–जो उस समय एकमात्र नोरीना के संरक्षण में था–उसके बिस्तर में सुलाया जाये। इस प्रकार बाबा मनोवैज्ञानिक सत्यों को नाटकीय रूप देते तथा उन्हें अत्यन्त सत्य स्वरूप में रखते हैं, जिनकी मीमान्सा पश्चिमी देशों के मनोवैज्ञानिक लोग बुद्धि द्वारा करते हैं। निस्सन्देह बाबा उन विशेष नैसर्गिक शक्तियों को जानते हैं जो विभिन्न पशुओं में मूर्तिमान होती हैं, और वह यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि उन शक्तियों का सदुपयोग तथा रूपान्तर किस प्रकार किया जाये।

बाबा के साथ भारतवर्ष वापिस जाने वाली अँगरेज़ शिष्या किटी डेवी ने बाबा के साथ 'पहाड़ी' पर व्यतीत किये गये प्रारम्भिक दिनों का अंतरंग चित्रण किया है। उसने संघर्षों, कठिनाइयों, संकटकालों के विषय में बताया है और दिखाया है कि किस प्रकार बाबा उन सब पर अपनी दृष्टि रखते थे और उनको उनकी सीमित खुदी से निकालकर अपने विश्वव्यापी जीवन की ओर अग्रसर करते थे। कदाचित् कोई शिष्य दूसरे से नाराज़ हो गया है। उसके अहंकार को चोट पहुँची है और वह भीतर ही भीतर उत्तेजित हो रहा है। ऐसी स्थिति में बाबा, जो इन बातों को भाँप लेते हैं, तत्काल ही दोनों दलों को बुलाते और प्रेम के अभाव के लिये उनको डाँटते हैं। ''यदि तुम आपस में प्रेम नहीं कर सकते तो तुम एक दूसरे के प्रति झुकना ही सीखो। जब तुम्हारे भीतर द्वेष और क्रोध बढ़ता हुआ मालूम पड़े तब तुम नाचने लगो अथवा हँसने लगो, अथवा एक क्षण के लिये बाहर चले जाओ जब तक कि तुम्हारा मन और भावों का वेग काबू में न आ जायें। इनको किसी भी कीमत पर नियन्त्रण में लाना चाहिये।''

चिन्ता तथा आत्मग्लानि ऐसी दो बातें हैं जिनको बाबा ज़ोर देकर हतोत्साहित करते हैं, क्योंकि ये उन लोगों को, जो इनके वशीभूत हो जाते हैं, आध्यात्मिक जीवनप्रवाह से पूर्णतया अलग कर देती हैं। वे विश्व की समस्त आत्मकेन्द्रित (Self-centered) शक्तियों के लिये नकारात्मक संचालकों का कार्य करती हैं।

ईर्ष्या अहंकार के बन्धन में जकड़ने वाली एक अन्य कड़ी है जिसे उभाड़कर बाबा ऊपर लाते हैं; और फिर एक भुलाई न जा सकने वाली रीति से वह उसके भद्देपन तथा उसकी स्वार्थपरता को प्रकट करते हैं। अब दोषी जन का सामना एक दुखद समस्या से हो जाता है जिसे किसी प्रकार से हल करना उसके लिये आवश्यक होता है, क्योंकि आत्मनियंत्रण (Self-mastery) के द्वारा ही व्यक्तिगत जीवात्मा का विकास होता है। अन्ततः मनुष्य को अनुभव होता है कि केवल एक 'प्रिय जीवन' है, जिसमें कोई खण्ड नहीं है, पृथकता का कोई भाव नहीं है। इस अनुभव की ओर सद्गुरु अपने बच्चों को एक–एक कदम, धीरे–धीरे अग्रसर करता है, और अपने आप को **मार्ग** बनाता है जिसके द्वारा वे लोग समस्त जीवन की 'एकता' को देख सकें और उसमें भागी बन सकें।

यदि कोई जन धन अथवा जायदाद में आसक्त होता है, तो बाबा ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर देते हैं जो उसकी इस प्रवृत्ति को स्पष्ट कर देती हैं, और साथ–साथ वह इस परिमितता को पार करने के लिये भी पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं। जिन भक्तों ने बाबा को अपनी सब सांसारिक सम्पत्ति समर्पित कर दी है, उनके प्रति बाबा कहते हैं : ''तुमने अपना सर्वस्व प्रेम के लिये दे डाला है। अब मेरा सर्वस्व तुम्हारा है। तुम मेरे ही हो; और मैं उन सब की देखभाल करूँगा जो मेरे हैं।''

'वस्तुओं' से आसक्ति मनुष्य के जीवन को सीमित करती है; और कर्मों के फलों से हमारी आसक्ति जीवन के नैसर्गिक प्रवाह में रुकावट डालती है।'' इस अहंकारी प्रवृत्ति के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए बाबा सलाह देते हैं कि हमारे सभी कर्म सेवा करने के प्रयोजन से ही होने चाहिये : ''उदाहरण के लिये, यदि तीन बिल्लियों की जान बचाने के लिये एक कुत्ते को मार डालने की ड्यूटी तुम्हारे ऊपर आ पड़े तो तुम्हारे विचार बिल्लियों की सहायता करने के होना चाहिये। प्राण लेने के कर्म में तुम्हारी आसक्ति नहीं होनी चाहिये।''

पुनः बाबा सलाह देते हैं : ''न तो हिंसा से आसक्ति रक्खो और न अहिंसा से। लड़ो यदि तुम्हें लड़ना ही पड़े, किन्तु तुम्हारा उद्देश्य केवल सहायता करने के लिये हो। अपने अन्दर विद्यमान 'दैवीजीवन' की सेवा करने के लिये ही भोजन करो, न कि भोजन का आनन्द लेने के लिये। केवल इसी प्रकार से तुम सब वासनाओं से मुक्त हो सकते हो और केवल 'प्रेम' में लिप्त हो सकते हो।''

उन लोगों के लिये, जिन्हें अपनी चेतना को ईश्वर के मौजूदा देहधारी अवतार से जोड़ने के ऊँचे मूल्य का ज्ञान है, बाबा सलाह देते हैं–जैसा कि कृष्ण ने प्राचीनकाल में शिक्षा दी थी–''अपने सब कर्मों में तुम निरन्तर मेरा चिन्तन करते रहो; तब धीरे–धीरे तुम्हें अनुभव होगा कि मैं ही तुम्हारे द्वारा सब कुछ कर रहा हूँ। 'मैं', अर्थात् कर्त्ता के रूप में ईश्वर–न कि तुम। तब तुम्हें कर्मों के फलों से वास्ता रखने की क्या आवश्यकता रह जाती है ?''

अपने प्रियजनों के संग व्यतीत किये जाने वाले अपने दैनिक जीवन में बाबा सैकड़ों प्रकार से उन्हें ईश्वरीय प्रेम की गम्भीरतर समझ की ओर ले जाते हैं, यहाँ तक कि अन्त में वे सेवा में पूर्ण तथा अपनी निष्ठा में आत्मभाव से रहित होकर इतने अधिक बाबा के अंग बन जाते हैं कि उनमें खुदी का कोई विचार शेष नहीं रह जाता। चेतना में 'ईश्वर–पुरुष' से एक होकर, वे अपने ही सच्चे 'केन्द्र' पर पहुँच जाते हैं।

सद्‌गुरु की सेवा करने में शिष्य को जो सबसे महान सौभाग्य प्राप्त होता है वह यह है कि उसे उसके विश्वव्यापी क्लेश में किंचित् भाग लेने का अवसर मिलता है। तथापि उस क्लेश के समय बहुत कम शिष्य उसमें आनन्द मनाने तथा उसे एक रचनात्मक अनुभव बनाने में समर्थ होते हैं। फिर भी बाबा क्लेश से पीछे हटने की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति की निन्दा कभी नहीं करते। परन्तु वह एक खेदपूर्ण मुस्कान के साथ ऐसे जन के ऊपर अपनी दया बरसाते हुये कहते हैं : ''तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने अपने बोझ का बिल्कुल थोड़ा सा हिस्सा तुम्हारे ऊपर रक्खा, परन्तु तुमने उसको नहीं समझा।''

यूरोप से भारतवर्ष लौटने के बाद बाबा ने अपना अधिकांश बाहरी ध्यान उन लोगों की ओर लगाया जिन्हें वह 'ईश्वरोन्मत्त' कहते हैं। ऐसी आत्माओं को खोजने और फिर उन्हें अपनी दयापूर्ण सेवाओं के प्रति समर्पित करने के लिये तैयार करने के मुख्य उद्देश्य से बाबा ने तमाम भारतवर्ष में लम्बी और विस्तृत यात्रायें कीं, जिनमें दिसम्बर 1938 ई. से दिसम्बर 1945 ई. तक उनका काफ़ी समय लगा।

भारतवर्ष से हाल ही में प्राप्त एक सन्देश में बाबा ने इन आत्माओं के प्रति अपने कार्य के उद्देश्य को और भी स्पष्ट किया है। उनका उद्देश्य उन लोगों की चेतना को सन्तुलित करना ही नहीं है बल्कि उन्हें उस महत्तर उत्तरदायित्व के प्रति जागृत भी करना है जो उन्हें विश्वव्यापी जागृति के विशाल कार्य में अपने ऊपर लेना आवश्यक है। केवल हैदराबाद के

प्रवासकाल में ही बाबा ने इन ईश्वरीय नशे में चूर 125 आत्माओं से सम्पर्क किया और भारतवर्ष के अन्य भागों में कई सौ मस्तों से सम्पर्क किया।

इन मस्तों को, जो अपनी आनन्दमयी दृष्टि में लीन थे, उनकी चुनी हुई 'गद्दी' अथवा सदर मुकाम से, जहाँ वे वर्षों से रह रहे थे, एक क्षण के लिए भी हटने के लिये तैयार करना कोई आसान बात न थी। यदि खुद बाबा इन लोगों से सीधे जाकर मिलते तो यह काम अपेक्षाकृत आसान होता। उनके आध्यात्मिक तरंगों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होने के कारण उन्होंने बाबा से प्रवाहित होने वाले प्रेम को तत्क्षण अनुभव किया होता और स्वेच्छापूर्वक बाबा के आदेश को माना होता, जैसा कि वे सब एक बार बाबा के सामने आ जाने पर करते थे। परन्तु बाबा का यह तरीका नहीं था। वह यह कार्य अपने खास शिष्यों को सौंपते थे, और उन शिष्यों को इन ईश्वरीय प्रेम के नशे में चूर प्राणियों को अपने साथ चलने के लिये राजी करने के तरीके ढूँढ़ने में अपनी युक्ति पर हद दर्जे का ज़ोर लगाना पड़ता था ! उनका कार्य इस बात से और भी अधिक जटिल हो जाता था कि बाबा अपना परिचय गुप्त रखना चाहते थे। बहुधा लोगों की भीड़ उन शिष्यों के चारों ओर यह जानने की जिज्ञासा से लग जाती थी कि वे बढ़िया वस्त्र धारण किये हुये लोग चिथड़े पहिने हुये परित्यक्त लोगों को अपने साथ ले जाने के लिये क्यों चिन्तित हैं, क्योंकि अधिकांश 'मस्त' इसी वेष में थे। बाबा का नाम खोल देने से अधिकांश मस्तों की संवेदनशील हृदयतन्त्री ही झंकृत न हो जाती, बल्कि उसके साथ साथ सदैव की भाँति लोगों की भीड़ बाबा का आशीर्वाद लेने की इच्छा से उनके पास अनिवार्य रूप से एकत्रित हो गई होती।

कभी कभी इन लोगों में ऐसे लोग भी होते थे जो 'मस्त' को जानते थे और उसको आध्यात्मिक पथप्रदर्शक की भाँति पूजते थे। जब बाबा के शिष्य उनके उस पवित्र व्यक्ति को उन लोगों के बीच से अलग ले जाने लगते थे तो वे लोग उसे न ले जाने देने के लिये उन पर आक्रमणशील हो बैठते थे। किसी भी मूल्य पर जनसमूह से बचना पड़ता था, और फिर भी बाबा के जनों को बाबा की आज्ञा को पूरा करना होता था। यह एक नाजुक कार्य होता था जिसमें अत्यन्त धैर्य, अध्यवसाय तथा चतुरता की आवश्यकता होती थी; परन्तु अन्त में शिष्यों का उद्देश्य पूरा हो जाता था।

इन 'ईश्वरोन्मत्त' जनों में से एक हजारों लोगों द्वारा सन्त की भाँति पूजा जाता था। बाबा ने उसकी आध्यात्मिक स्थिति की पुष्टि की। बाबा के पास उसको एक मतवाला ताँगेवाला लाया जो किराये पर ताँगा चलाता था और जिसे बाबा के शिष्यों ने मस्तों को इकट्ठा करने में उनकी सहायता करने के लिये बुलाया था ! यह ख़ास चकित मस्त नम्र प्रकार का था, और वह केवल उसी समय विरोध अथवा आगा पीछा करता था जबकि आज्ञा का संघर्ष किसी प्रकार से उसकी उच्चतर चेतना से हो जाता था जिसमें वह निमग्न था। जिस समय ये आत्मायें अपने आध्यात्मिक आनन्द में लीन होती हैं उस समय यदि उनसे कोई ऐसी बात करने के लिये कहा जाये जो उनकी चेतना को नीचे खींचकर पृथ्वी पर लाती है, तो वे महान अशान्ति का अनुभव करती हैं और बहुधा चिल्ला पड़ती हैं। जो मस्त कम उन्नत अवस्था में होते हैं वे अपनी नाखुशी प्रकट करने के लिये अधिक असभ्य तरीके इस्तेमाल करते हैं, जैसा कि मुहम्मद ने यूरोप में भारतीय शिष्य के मुँह पर थूक कर किया था। इसी कारण से बाबा कड़ाई के साथ यह आज्ञा देते हैं कि मस्तों के साथ कभी भी किसी भी प्रकार के दबाव अथवा बल का प्रयोग न किया जाये, क्योंकि वह उनकी नाजुक मानसिक क्रियाविधि का ध्यान रखते हैं। वह शिष्यों को हिदायत देते हैं कि वे मस्तों की देखरेख ध्यान से करते रहें और पूर्ण धैर्य के साथ उनकी सेवा करें, जैसी खुद बाबा करते हैं। यदि किसी कारण से मस्त हठ पकड़ जाते हैं तो बाबा चुपचाप प्रतीक्षा करते हुये बैठे रहते हैं जब तक कि वे अपने आप बाबा को अपना सेवाकार्य ज़ारी रखने के लिये अपनी स्वीकृति प्रकट नहीं करते।

एक और मस्त जिस समय बाबा के पास लाया गया तो उसने अत्यन्त आनन्दित होकर गाना प्रारम्भ किया : ''मैंने 'एक' को अपना हृदय दे दिया, परन्तु 'एक' गायब हो गया। ...मैं वर्षों से उसकी तलाश करता रहा हूँ। अब मैं उसे पा गया हूँ। ... मैंने 'आज यहाँ' उसको पाया !'' बाद में उसने गायाः ''प्रेम उनके लिये है जो शूरवीर हैं, जिनमें साहस व धैर्य हैं, जो कष्ट सहन कर सकते हैं। ...प्रेम यथार्थ वस्तु है !''

एक महिला सन्त बाबा के एक शिष्य के द्वारा कई दिनों तक मनाने के पश्चात् अन्त में बाबा के पास जाने को राज़ी हुई। वह बहुत कम बोलती

थी। कई मिनट तक बाबा को एकटक देखने के बाद उसने केवल एक बार अपनी भावनाओं को प्रकट किया। ''ईश्वरत्व के महासागर से, जो आप हैं, आप मुझको पानी की कुछ बूँदें क्यों नहीं प्रदान करते ?''

अपनी आध्यात्मिक भावनाओं को प्रकट करने वाले अनेक मस्तों में से एक मुसलमान मस्त था। उसको बाबा ने जैसे ही प्यार के साथ छुआ वैसे ही वह चिल्ला उठा—''मेरा दिल बहुत जल रहा है—तुमने मेरे आग लगा दी है !'' ऐसा कहकर वह ईश्वरीय प्रेम की अग्नि का संकेत कर रहा था जो बाबा ने उसके हृदय में प्रज्वलित कर दी थी। बाद में, जिस समय बाबा उसको भोजन करा रहे थे किसी ने उससे पूछा 'तुम कहाँ हो और तुम्हें कौन खिला रहा है ?'' उसने उत्तर दिया, ''मैं अल्लाह के दरबार में आया और 'उसके महल' में भोजन किया !''

इसी प्रकार इन ईश्वर के प्रेमियों ने बाबा की आध्यात्मिक महत्ता को स्वीकार करते हुये अनेक अवसरों पर अपने आनन्दपूर्ण उद्गार प्रकट किये थे। एक बार जब बाबा अपने कुछ शिष्यों के साथ अजमेर की सड़कों पर मोटरकार से जा रहे थे, तो एक मस्त उनको देखकर महान आनन्द से चिल्ला उठा, ''देखो ! यह शंकर जी हैं ! दौड़ो, जल्दी करो ! भगवान का आशीर्वाद लो !''

एक समय पंचगनी में एक ऊँचा मस्त आनन्द में मग्न एक भक्तिपूर्ण गाना गा रहा था। बाबा को अपने पास आता देखकर वह अचानक रुक गया और चिल्ला पड़ा : ''आप महान 'अवतार' हैं !'' बाद में बाबा से जुदा होते समय उसने कहा, ''यहाँ आपको कोई नहीं जानता परन्तु मैंने आपको तुरन्त पहिचान लिया। आपसे मिलकर मेरे जीवन की अभिलाषा पूरी हो गई। विष्णु भगवान की जय !'' इस प्रकार प्रत्येक मस्त बाबा को परमात्मा के अपने ही इष्ट स्वरूप में देखता था।

इन ईश्वर—प्रेमियों के आनन्द के ऐसे विस्फ़ोटों के बारे में बताते हुए बाबा ने समझाया, ''वे बाबा के संग आनन्द का अनुभव इसलिए करते हैं क्योंकि वे बाबा के यथार्थ स्वरूप को देखते और जानते हैं, जिसको तुम केवल अपनी इन्सानी आँखों से नहीं देख सकते। वे विशेष चक्षु जो बाबा के ईश्वरीय रूप को देखते हैं मानवीय नेत्रों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। अपने स्थूल नेत्रों से तुम 'माया' का खिलौना देखते हो—मेजें, कुर्सियाँ, पलंग। 'आन्तरिक' नेत्र इन सब चीजों के द्वारा ईश्वर को देखते हैं।''

बाद में बाबा ने कहा : ''मैं ईश्वर के इन प्रेमियों से प्रेम करता हूँ। वे दुनियाँ का कुछ भी नहीं जानते; वे अपने शरीर की आवश्यकताओं के प्रति भी आनन्द के साथ उदासीन होते हैं। जबकि सारी दुनियाँ माया के खिलौनों की लालसा करती है; जबकि मानवप्राणी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये एक दूसरे का गला घोंटने को झपटते हैं, ये आत्मायें ईश्वर के प्रति अपने प्रेम में लीन रहती हैं।''

इस टोली की एक अमरीकी सदस्या एलिज़ाबेथ पैटरसन इन यात्राओं में बाबा के साथ रही थी। वह लिखती है कि उसने देखा था कि ये थकी हुई तथा यातनायें भोगी हुई आत्मायें सांकेतिक 'स्नान' के बाद अपने चेहरों पर नवीन जीवन का निश्चित भाव लेकर बाबा से विदा होती थीं। ''वे दिव्य वर्षा से पवित्र तथा देदीप्यमान हुये मानवता के एक बाग़ के समान थीं।''

बाबा के 'स्पर्श' से उनको इतनी प्रसन्नता होती थी कि उनका आनन्द छिपा नहीं रहता था। वह उनके अस्तित्व के प्रत्येक अणु से फूट कर निकलता था।

बाबा के संग की गई अधिकांश यात्राओं के समान, भारतवर्ष के विस्तृत महाद्वीप के पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक की गई ये यात्रायें नाना प्रकार की कठिनाइयों तथा खुशियों से परिपूर्ण थीं। उनमें आत्म–त्याग के पर्याप्त अवसर मिलते थे, और बाबा के प्रति, जिन्हें इन पुरुषों और स्त्रियों ने अपने जीवन समर्पित कर दिये थे, प्रेम व सम्मान गहरा करने के क्षण बारम्बार आते थे। और, उस गम्भीर सम्मान को देखकर, जो ये सन्त आत्मायें बाबा को अर्पित करती थीं तथा यह देखकर कि वे बाबा की आध्यात्मिक सर्वश्रेष्ठता को निश्चित रूप से तत्क्षण स्वीकार कर लेती थीं, बाबा के प्रति इन लोगों की श्रद्धा भी दृढ़ होती थी।

इन यात्राओं में लगभग तीस पूर्वी और पश्चिमी स्त्री व पुरुष बाबा के साथ रहे। एक भारी मोटर लारी टोली की आवश्यकताओं की दृष्टि से

विशेषरूप से तैयार कराई गई थी। ड्राईवर की सीट के पीछे एक या दो सीट का बन्द विभाग भारतीय शिष्याओं के लिये बनवाया गया जो अब भी एकान्त में रहती थीं।

भारतीय शिष्यों के लिये, जो आपस में बातचीत न कर पाने पर कुछ नहीं रहते, यह यात्रा एक विचित्र रूप से कठोर अनुशासन वाली रही होगी! इस बात का इतमीनान करने के लिये कि भारतीय शिष्याओं को कोई शब्द न सुनाई पड़े बाबा ने शिष्यों को आदेश दिया था कि जब वे मोटर लारी पर बैठें हों अथवा भारतीय शिष्याओं से इतनी दूर पर हों जहाँ से उनकी आवाज उन महिलाओं को सुनाई पड़े, तो वे केवल फुसफुसाकर बात करें।

सब सामान–जिसमें मस्तों को स्नान कराने के लिये बर्तन व तसले, स्टोव व बालटियाँ और तीस यात्रा के सामान के थैले व बिस्तरों के पुलिन्दे इत्यादि थे–मोटर की छत पर लाद दिया गया था। अपनी छः पहियों वाली लारी पर प्रस्थान करने का क्षण टोली के लिये काफी हँसी तथा उत्तेजना का अवसर प्रदान करता था। बाबा सब चीजों का निरीक्षण सावधानी से करने के बाद, आमतौर पर अन्त में मोटर लारी पर चढ़ते और लारी के आगे जाकर बैठते थे। इसका अर्थ यह होता था कि बाबा के आगे निकल जाने के समय तक रास्ते की सीटें खाली रखनी होती थीं। इन सीटों पर बैठने वाले शिष्य बाबा को रास्ता देने के हेतु अपने स्टूलों को पीछे खींच कर एक ओर खड़े हो जाते थे। दूसरे ही क्षण बाबा अपनी अँगुलियाँ चटका कर दरवाज़ा बन्द करने का संकेत करते थे। फिर दरवाज़ा बन्द होने के पूर्व वह खिड़की के ऊपर खटखटाकर ड्राईवर को चल देने का संकेत करते थे। जिस प्रकार बाबा दैनिक जीवन की परिस्थितियों को तीव्र करते हैं, उसी प्रकार वह अपने शिष्यों की चेतना को भी तेजी से अग्रसर करते हैं। और, प्रस्थान करने के ये क्षण बाबा को उनके इस तीव्रता के कार्य के लिये सदैव काफी अवसर प्रदान करते थे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि शिष्यों की जिन गुप्त त्रुटियों का सामना कराने की आवश्यकता होती थी उनको उभाड़ कर ऊपर लाने, अथवा किसी उपेक्षा की गई सत्यता को हृदय में पैठाने, के अवसर को बाबा कभी न चूकते थे। मण्डली की एक शिष्या ने वर्णन किया है कि एक

अवसर पर एक कस्बे में उसको एक ही स्थान पर लगातार कई दिन सुबह मोटरकार में प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। वहाँ रोज एक दुखी और आश्रयविहीन भिखारी, जैसा कि एक भारतीय भिक्षुक ही हो सकता है, उससे घिघियाकर भीख माँगने आता था। पहिले उसने उसको कुछ भिक्षा दे दी, परन्तु जब वह रोज़ माँगने आने लगा तो वह खीझ उठी और उसको अपने पास आता हुआ देखकर सोने का बहाना कर लिया। बाद में जब उसने बाबा को उस खिझाने वाली घटना के विषय में बताया तो उसने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि वह क्यों आग्रह करके 'रोज़' मेरे पास आता है।" उसकी ओर गम्भीरता से देखते हुये बाबा ने उत्तर दिया, "उसको रोज़ भूख लगती है।"

किन्हीं किन्हीं रातों को, तीन सौ मील की यात्रा करने के बाद, मण्डली के लोगों को विश्राम के लिये केवल एक खाली बँगला मिलता था, और यदि उन्हें सुबह बड़े तड़के प्रस्थान करना होता था तो वे कभी कभी अपने बिछौने तक न खोलते थे, बल्कि अपने कोटों के भीतर सिकुड़ कर कड़े फर्श पर सो रहते थे अथवा यदि बँगले में कुर्सियाँ व मेजें हुईं तो उन पर सो रहते थे। दूसरी रात को कदाचित् उन्हें किसी महाराजा के महल में ठहरने को मिलता था, जहाँ वे नर्म बिस्तरों पर चैन से सोते थे। इस प्रकार बाबा उन्हें आराम अथवा तपस्या की उनकी आसक्ति से और उनकी रुचियों तथा अरुचियों से विरक्त करते थे। साधारण दशाओं में ऐसी कठिन परीक्षा असहनीय प्रतीत हो सकती थी, परन्तु पथप्रदर्शक के रूप में बाबा के आवश्यकतानुसार प्रोत्साहन देने तथा किसी को और अधिक प्रसन्न मुद्रा में लाने के हेतु उसे कोमलतापूर्वक चिढ़ाने से बड़ी से बड़ी कठिनाई सुन्दरता से सुशोभित हो जाती थी और बाबा के महान हृदय से निकलने वाली ईश्वरीय ज्योति से अत्यन्त अन्धकारपूर्ण क्षण बदल जाते थे। पश्चिमी मण्डली की एक सदस्या रानो गेली इन यात्राओं में बाबा के साथ रही थी। उसने लिखा है : "बाबा के प्रति हमारा प्रेम सब बाधाओं के ऊपर विजय प्राप्त करता है। सद्गुरु के प्रेम में सर्वस्व दे देने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि देने वाला देता कुछ नहीं है और पा सब कुछ जाता है।"

बाबा की यात्रायें वर्षों से ज़ारी रहीं हैं, और उन यात्राओं का कम से कम एक उद्देश्य था ईश्वरीय प्रेम के नशे में चूर आत्माओं को खोजना। बाबा ने कहा है कि उनके अपना मौन खोलने तथा अपना सार्वजनिक कार्य प्रारम्भ करने के पहिले इन ईश्वरोन्मत्त आत्माओं में प्रति दस में कम से कम सात से सम्पर्क करना उनके लिये आवश्यक है। यह औसत अब लगभग पूरा हो गया है, जो इस बात का एक और संकेत हो सकता है कि चिरकाल से प्रतीक्षा की गई विश्व–जागृति निकट है।

इन यात्राओं में बाबा और उनके शिष्य रेगिस्तान व पर्वतों को पार करते हुए हजारों मील चले हैं; उन्होंने भयानक जंगल तथा दुर्दान्त नदियाँ पार की हैं; उन्होंने मोटर लारी द्वारा मूसलाधार वर्षा तथा झुलसाती हुई धूप में लंका के मन्द सौन्दर्य से लेकर विषय वैभवपूर्ण हिमालय तक की यात्रा की है।

एक तूफ़ानी दौरा विशेष रूप से कठोर था, जो बाबा व उनके दो शिष्यों ने इन ईश्वरोन्मत्त आत्माओं की खोज में किया था। उन्होंने अठहत्तर घन्टे में पाँच सौ मील की यात्रा की थी। इस दौरान में उनमें से न कोई सोया था और न किसी ने स्नान किया था, और वे दिन में केवल एक बार थोड़ा सा भोजन करते थे। पाँच दिन बाद इसी प्रकार की एक और यात्रा की गई, परन्तु इसमें केवल यह अन्तर था कि यह बैलगाड़ी द्वारा की गई थी ! भारतवर्ष की ऊबड़–खाबड़ सड़कों पर ऐसे साधन द्वारा यात्रा करना उनके लिये बहुत कठिन सिद्ध हुआ होगा, किन्तु उस पर भी प्रकृति ने उनको वर्षा से भिगोकर और उनके बिछौनों को बिल्कुल तर करके इस्तेमाल के लिये असम्भव बनाकर उनकी असुविधा को और भी बढ़ा दिया।

ऐसे अनुभवों के विपरीत यह महान आनन्द था जिसका अनुभव मण्डली को ऋषिकेश देखने में हुआ था। यह स्थान सदियों से सन्तों तथा

योगियों का निवास स्थान रहा है। बाबा उन लोगों को उस प्रदेश के एक एक कोने में ले गये, और उन्हें उस पहाड़ी तीर्थस्थान में बसने वाली अनेक आत्माओं में से कुछ बहुत ख़ास आत्माओं को विशेष रूप से दिखाते गये। वे एक जंगल के आश्रम को देखने गये जो उस घाटी के सुदूर कोने में स्थित है जिससे होकर पवित्र गंगा नदी की धारा बहती है। अचानक वे एक मनुष्य के पास पहुँचे जो सूर्य की ओर मुँह किये हुये नदी के पथरीले पाट में नंगा और अचल खड़ा हुआ था। बाबा ने समझाया कि सात दिन तक लगातार बिना आसन बदले हुये सूर्य से सम्पर्क स्थापित रखने की यह ड्यूटी देना उस व्यक्ति का कार्य था; उसके बाद एक दूसरी उन्नत आत्मा उसको दो दिन के लिये इस काम से छुट्टी दे देती थी। ऐसे तरीकों से दुनियाँ की महान आध्यात्मिक शक्तियाँ ब्रह्माण्ड के नियमों के साथ अपना तालमेल स्थापित करती हैं और उनके संचालन तक में सहायता करती हैं। इस सन्त को देखने से एक विशाल बलूत के वृक्ष की छाप मन में उतरती थी जिसकी चोटी की पत्तियाँ धूप में चमकती हैं और जिसकी शक्तिशाली जड़ें पृथ्वी के अन्धकारपूर्ण गर्भ में गहराई तक जाती हैं।

तत्पश्चात् वे एक जंगल से होकर निकले जहाँ दस उन्नत आत्मायें बारी बारी से समाधि लगा रहीं थीं। उनमें से एक जन एक लम्बे चादर से ढँका हुआ, अपनी समाधि में मग्न तथा बाहरी चीज़ों के प्रति विस्मृत अवस्था में बैठा हुआ था। फिर भी, स्पष्टतः उसको बाबा की दैवी उपस्थिति का अनुभव हुआ, क्योंकि लौटते हुये जैसे ही मण्डली इस ढँके हुये व्यक्ति के पास से निकली और जैसे ही बाबा उसके पास पहुँचे वैसे ही वह अपना चादर फेंक कर उछल पड़ा और 'पवित्र आत्मा' बाबा को साष्टांग प्रणाम किया।

इस भूखण्ड के लोकप्रिय तीर्थस्थानों में वह विशाल पर्वत है जो अठारह हजार फीट की ऊँचाई तक जाकर सनातन बर्फ के प्रदेश में पहुँचता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि भगवान कृष्ण ने यहाँ पर अपना पवित्र शरीर त्यागा था। इस ऊँचे धरातल तक निर्भय तीर्थयात्री सरकते हुये तथा चढ़ते हुये आते हैं, और उनमें से अनेक लोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने जीवन बलिदान कर देते हैं।

केवल भारतवर्ष की पवित्र भूमि में ही ईश्वर के लिये ऐसा उत्कट प्रेम पाया जा सकता है; और इस परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भौतिक जीवन को बलिदान करने की ऐसी आकांक्षा पाई जाती है, जो जीवन आमतौर पर मनुष्य की सबसे मूल्यवान वस्तु मानी जाती है। भारतवर्ष में ऋषिकेश का भूखण्ड अद्वितीय है। बाबा कहते हैं कि लोग यहाँ केवल ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिये आते हैं। वे सब छोटे लक्ष्यों को त्याग कर यहाँ आते हैं। इससे ऋषिकेश को स्वभावतः दुनियाँ में अत्यन्त आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त होता है।

इस यात्रा के समय के अधिकांश भाग में बाबा कठोर उपवास तथा एकान्वास कर रहे थे, और वह केवल अपनी मण्डली के घनिष्ठ लोगों से मिलते थे अथवा ईश्वरोन्मत्त लोगों से मिलते थे जिनके साथ वह रोज कार्य करते थे। 1937 ई. में भारतवर्ष लौटने के कुछ समय बाद उन्होंने अपने अन्य भक्तों के साथ, जिनको सदा बाबा के पास पहुँचने की स्वतन्त्रता रहती थी, बाहरी सम्पर्क कम कर दिया था, जिन नगरों व कस्बों में बाबा के कुछ भक्त रहते थे, बाबा के वहाँ से निकलने पर उनका आवागमन नितान्त गुप्त रखा जाता था। तब मार्च 1943 ई. में समाचार प्राप्त हुआ कि बाबा ने अपना लम्बा एकान्तवास समाप्त कर दिया था। अधिक सार्वजनिक जीवन में पुनः प्रवेश करते ही वह तीन बड़े कस्बों शोलापुर, वारसी व आकलकट को गये। उनके आगमन का समाचार उन स्थानों में दावानल की भाँति फैल गया, जिसके फलस्वरूप, जहाँ वे जाते थे, वहीं विशाल जनसमूह उनका दरश–परश प्राप्त करने और यथासम्भव उनका आशीर्वाद प्राप्त करने की प्रतीक्षा करता हुआ मिलता था। एक शहर में बाबा के पहुँचने के लिये शोर मचाते हुये पचास हजार लोगों की भीड़ के कारण वहाँ का आवागमन ऐसा अस्तव्यस्त हो गया कि उस भीड़ को काबू में रखने के लिये पुलिस को रिज़र्व पुलिस बुलानी पड़ी। वह जनसमूह एक जुलूस के रूप में परिणत हो गया था जिसने गाते हुये तथा आगे बैण्ड बजाते हुये नगर में साढ़े चार घण्टे तक बाबा के साथ फेरी लगाई।

इस यात्रा की दो मनोरंजक घटनायें बताई जाती हैं। एक कस्बे में एक आदमी सचमुच बाबा के पैरों से चप्पलें चुराकर ले गया। सौभाग्यवश, चुराई हुई चप्पलों की जगह नई चप्पलें रख जाने का विचार पहिले से ही करके, उसने ऐसा किया था ! एक और स्थान में बाबा की एक ऐसे प्रबल प्रशंसक से रक्षा करनी पड़ी जिसने अश्रु धारा बहाते हुये बाबा को कसके पकड़ कर हिला दिया ! भारतीय लोग सन्तों के प्रति कभी कभी ऐसे विकट जोश के साथ अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं।

जनता के मध्य आने के इन अवसरों पर बाबा ने कुछ सन्देश दिये जिनमें उन्होंने अपने विश्वव्यापी उद्देश्य का मूलरूप बताया, और जो भक्तों को पढ़कर सुनाये गये तथा उनको वितरित किये गये। प्रस्तावित सन्देश में उन्होंने कहा था कि यही समय है जबकि मनुष्य 'सत्यता' का यह नवीन दृष्टिकोण प्राप्त करे कि समस्त जीवन 'एक' है। ''ईश्वर के लिये ही जीवित रहना उचित है; और ईश्वर के लिये ही मरना भी श्रेयस्कर है; शेष सब कुछ मायावी मानकों के पीछे व्यर्थ तथा खाली दौड़ना है।''

एक अन्य सन्देश मानवजाति की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। उसमें बाबा ने कहा कि यद्यपि दुनियाँ विविध प्रकार की स्वतन्त्रता की बात करती है और उसके लिये लड़ रही है, परन्तु मौलिक स्वतन्त्रता आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है—और वही एकमात्र ऐसी स्वतन्त्रता है जो यथार्थ मूल्य रखती है। ''स्वतन्त्र जीवन की सभी बाहरी शर्तें पूरी तथा संरक्षित हो जाने पर भी, मनुष्य की आत्मा फिर भी दुखमय बन्धन में जकड़ी रहेगी यदि उसे आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं होती। ...आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है समस्त चाहों (Wanting) से स्वतन्त्रता। इच्छा ही जीवन को बन्धन में जकड़ती तथा आत्मा को दास बनाती है। जब आत्मा वासना की कड़ियों को तोड़कर छिन्न–भिन्न कर देती है, तब वह अपने को शरीर, मन और अहंकार के अपने बन्धन से मुक्त करती है। यही आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है जो अपने साथ समस्त जीवन की एकता की अन्तिम सिद्धि लाती है और समस्त शंकाओं व चिन्ताओं का अन्त कर देती है। ... आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की देन से बढ़कर और कोई देन नहीं है और उस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने में दूसरों की सहायता करने से बढ़कर

महत्त्वपूर्ण और कोई कार्य नहीं है। उन सब लोगों के लिये, जो मनुष्य के पुनरुत्थान में सहायता करना चाहते हैं, समय आ गया है कि वे अपनी सेवायें मनुष्य को आध्यात्मिक मार्ग पर चलने में सहायता करने के मेरे उद्देश्य में अर्पित करें, जिस मार्ग पर चलने से ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त होता है। मानवजाति के लिये आध्यात्मिक स्वतन्त्रता लाने वाला यह कार्य ईश्वर द्वारा इच्छित, दैव द्वारा निर्धारित तथा पहिले से ही निर्दिष्ट है। इस कार्य में हाथ बँटाने वाले लोगों को जानना चाहिये कि उनसे हर प्रकार का कष्ट सहने तथा त्याग—यहाँ तक कि भौतिक शरीर के त्याग की भी—आशा की जा सकती है। ...तथापि उनकी अथक क्रियाओं द्वारा मानवजाति स्थायी शान्ति और गतिशील एकता, अजेय श्रद्धा और अक्षय आनन्द, अमर माधुर्य और भ्रष्ट न हो सकने वाली पवित्रता, उत्पादक प्रेम एवं अपार समझ, के नवीन जीवन में प्रवेश करेगी।''

●

बाबा का भारी प्रभाव उन हजारों लोगों की ज़िन्दगियों पर पड़ा है, जिनका उनसे भीतरी अथवा बाहरी घनिष्ठ सम्पर्क था। किन्तु अभी तक उनके जीवन का क्रियाकलाप अधिकतर तैयारी के रूप में रहा है, क्योंकि उनकी सार्वजनिक अभिव्यक्ति अब भी होने को है। हममें से अनेक लोगों का विश्वास है कि उनका सार्वजनिक रूप से प्रकट होना उनके 'अवतार' होने के दावे को प्रमाणित करेगा। कोई भी पक्षपातरहित मनुष्य, जो उनके जीवन के तथ्यों से परिचित है, उनके सद्गुरु होने के दावे को अस्वीकार नहीं कर सकता; और यदि हम समझ जायें कि अवतार के पार्ट से क्या अर्थ ध्वनित होता है, तो हम इन तथ्यों में से अनेक में ऐसे लक्षण भी देख सकते हैं कि बाबा का यह दावा भी सत्य है।

चूँकि पश्चिमी जगत में ऐसा साहित्य नहीं है जो ईश्वर के मनुष्यरूप में बारम्बार अवतारवत् आने के विचार का विवेचन करता हो, इसलिये इस विषय में प्रकाश प्राप्त करने के लिये हमें भारतवर्ष के महान तथा उच्चकोटि के पवित्र ग्रन्थ भगवद्गीता की ओर अपनी दृष्टि करनी चाहिये। उसमें हमको एक ऐसी नाटकीय स्थिति मिलती है जो मनुष्य की मौजूदा दशा से बिल्कुल मिलती है। उस समय, जैसा कि इस समय हो रहा है, एक भयंकर युद्ध पुरानी व्यवस्था का, उसके समस्त गुण और दोषों सहित, नाश कर रहा था, जिसका वर्णन महाभारत में किया गया है। उस समय दुनियाँ के मनुष्य और राष्ट्र दोनों उस स्थल पर पहुँच गये थे जहाँ सभी बौद्धिक, नैतिक व भावात्मक माहात्म्य ढेर हो गये थे और मनुष्य आध्यात्मिक दिवालियापन एवं निपट किंकर्तव्यविमूढ़ता की अवस्था को पहुँच गया था। कर्मवीर अर्जुन अपने आपसे पूछ रहा था, जिस प्रकार आज हम भी अपने आप से पूछ रहे हैं, कि क्या खून खच्चर द्वारा स्थायी मूल्य की कोई भी चीज़ कभी भी प्राप्त की जा सकती है ? क्या रक्तपात कदाचित् शक्ति–सन्तुलन को एक जनसमुदाय अथवा राष्ट्रसमुदाय के हाथों में रखने के बजाय दूसरे के हाथों में रखने में ही सहायक नहीं होता ? तथापि, अर्जुन के साथ

उसके अत्यन्त प्रिय मित्र व सलाहकार कृष्ण थे जिनके प्रति अर्जुन के हृदय में गम्भीरतम प्रेम और सम्मान था, और जो पर्दे के पीछे से युद्ध का सञ्चालन कर रहे थे। निपट निराशा, लाचारी और अपने सभी पुराने माहात्म्यों में सन्देह, के समय वह अपने बुद्धिमान मित्र एवं पथप्रदर्शक कृष्ण की ओर मुड़कर उनसे वह स्पष्ट आचरण पूछता है जिसको पकड़कर वह दृढ़ विश्वास के साथ चल सके।

यह व्यक्ति अर्जुन अपने युग का प्रतिनिधि व्यक्ति है जिसने, मौजूदा युग के मनुष्य की भाँति, नैतिक, सामाजिक एवम् मानव–दयावादी आदर्शों तथा व्यावहारिक सुधारों की प्राप्ति के लिये ईश्वर और आध्यात्मिकता का बहिष्कार कर दिया है। व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों रूपों से 'गीता' का यह पुरुष तथा आज का पुरुष अपनी आत्मा की सबसे बड़ी आवश्यकता के क्षण तक पहुँच गया है–जहाँ उसे अपनी ही अयोग्यता का सामना करना अनिवार्य है। इस समय तक कृष्ण की सहायता अधिकतया यही रही है कि उन्होंने अपने सखा को विरोध करने वाले शत्रु के विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा करने में निष्काम कर्म करने के लिये प्रोत्साहित किया है। यह विपक्षी बाहरी शत्रु है जो वस्तुतः अन्तस्तल की प्रत्यक्ष मूर्ति है। परन्तु अब अर्जुन अपने खुद के अहंकारी कर्म के अन्त तक पहुँच जाने के कारण, निराश होकर कृष्ण की ओर मुड़ता है और उनसे सहायता की याचना करता है। उसके मन में यह शंका उठने लगती है कि उसका यह अत्यन्त प्रिय सखा मानवीय मित्र से बढ़कर है, केवल साधारण मनुष्य नहीं है। वह उनसे अपना यथार्थ स्वरूप तथा अपनी वास्तविक प्रकृति दिखाने की प्रार्थना करता है। और, चूँकि अर्जुन की आत्मा–प्रायः मौजूदा युग के मनुष्य की आत्मा के समान–यातना के द्वारा पर्याप्त रूप से अनुकूल कर दी गई है; क्योंकि उसकी अहंकारी आत्मनिर्भरता पंचर हो चुकी है, इसलिये कृष्ण आत्मा की आवश्यक इच्छा को पूरा करने के लिये सहमत हो जाते हैं। वह उसको अपना विश्वव्यापी उद्धारक अथवा अवतारवत् स्वरूप दिखलाते हैं, और अब वह अर्जुन का पथप्रदर्शन चेतना की उच्चतर अवस्था की ओर करते हैं जिसके लिये वह अर्जुन को तैयार समझते हैं।

कृष्ण के व्यक्तित्व में हम वह आत्मा पाते हैं जिसमें कि शाश्वत दैवी प्रकृति पूर्णतया चैतन्य है, अतः जिसको मानवजाति का आध्यात्मिक नेता

होने के अपने 'प्रारब्ध' का पूरा भान है और उस चेतना में वह मनुष्यों व राष्ट्रों के प्रारब्धों का संचालन करता है। निकट शिष्यों के एक सीमित समुदाय के लिये ही नहीं, वरन् अखिल मानवजाति के लिये ईश्वर का अवतार होने के अपने निजी अधिकार में वह अखिल सृष्टि की चेतना को ऊँचा उठाता है, क्योंकि उसकी दिव्य बाँसुरी का जादू पशुओं के हृदयों में भी अनुकूल प्रतिक्रिया पैदा करता है–यह बाँसुरी आत्मा में ईश्वर की अप्रतिहत (जिस पर काबू पाना संभव न हो) आकर्षणशक्ति का प्रतीक है। कृष्ण को भी मालूम होता है कि प्राणीमात्र का पथप्रदर्शक तथा जगाने वाला होने की उनकी वह भूमिका है जिसे वह मानवता के उदयकाल से सदैव पूरा करते आये हैं।

बाबा ने स्वयं स्वीकार करके तथा लोगों के प्रति अपने व्यवहार में, इसी चेतना के असंख्य संकेत दिये हैं। एक बार जबकि एक प्रश्नकर्ता ने बाबा से पूछा कि वह कैसे जानते थे कि वह ईसामसीह थे, तो उन्होंने उत्तर दिया : "सृष्टि के पहिले से ही मुझको यह ज्ञात था" जो शायद यह कहने का दूसरा ढँग है : "अब्राहम के अस्तित्व से पहले, मैं हूँ," अथवा "सृष्टि के आदि में "नाद"था, और "नाद" ईश्वर के साथ था, और "नाद" ही ईश्वर था।"

कृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को जो उपदेश दिया है उसमें हमको मूलरूप से जीवन की वही प्रक्रिया मिलती है जो बाबा आज अपने बीसवीं सदी के शिष्यों को प्रदान करते हैं। उनके आन्तरिक विकास के किसी क्रम में वह उनको अपनी यथार्थ प्रकृति तथा उद्देश्य की एक झलक प्रदान करते हैं, और फिर वह उनको अपनी मरज़ी–अपने पथप्रदर्शन–के प्रति पूर्ण आत्म–समर्पण करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। वह उनको सिखलाते हैं कि किस प्रकार दुनियाँ में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहा जाये; किस प्रकार अपने को हृदय में विद्यमान ईश्वर के कर्म का माध्यम सोचते हुये, फल की आसक्ति से रहित समस्त कर्म किया जाये। वह उनको 'जीवन' का एक 'नवीन' नियम प्रदान करते हैं जिसके द्वारा कर्मबन्धन में पड़े बग़ैर कर्म किया जा सकता है और फिर भी वह ईश्वर अथवा 'अवतार' की मरज़ी को प्राप्त करने के लिये काफ़ी शक्तिशाली होता है। वह उनको अनन्त संघर्षों एवं जटिलताओं से परिपूर्ण द्वन्द्वों की भूमिका से ऊँचे उठाकर

यथार्थ ज्ञान, शान्ति तथा आनन्द के केन्द्र में–अर्थात् दैवी आत्मा में–ले जाता है। कृष्ण की तरह बाबा भी पहिले प्रियतम मित्र, पिता तथा साथी के रूप में अपने शिष्य का पथ–प्रदर्शन करते हैं। फिर, परिपक्व समय आने पर, वह अपने को आत्मा के "मुक्तिदाता" के रूप में प्रकट करते हैं, अर्थात् अमर ईश्वर के रूप में, जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास करता है, जबकि ठीक उसी समय वह मनुष्य रूप में अवतार लेता है। कृष्ण के समान बाबा भी कहते हैं : "तू मेरी शरण में आ जा, क्योंकि तू मुझको अत्यन्त प्रिय है। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर; तू चिन्ता न कर।"

कृष्णावतार के पुरातन काल की भाँति आज हम निश्चय ही मनुष्य के विकास में एक कठिन स्थिति को पहुँच गये हैं। वह खुद अकेले अपने भौतिक अस्तित्व की रक्षा करने में भी शक्तिहीन प्रतीत होता है। यही मनोवैज्ञानिक क्षण है जबकि मनुष्य को सहायता प्राप्त करने के लिये एक बार फिर से ईश्वर की ओर मुड़ना चाहिये। अभिमानी अर्जुन की तरह कम से कम गूढ़वादी मनुष्य के लिए यह बात स्पष्ट होनी चाहिये कि जब तक मनुष्य को उसके लोभ, स्वार्थ तथा भय को पार करने में, उसकी सहायता करने के लिये कोई दैवी साधन नहीं मिलता, तो यह सभ्यता तेजी से पतित होकर चेतना की जंगली अवस्था को प्राप्त हो जायेगी, अथवा किसी युद्धोन्मत्त मनुष्य या राष्ट्र के बटन दबाने से बिल्कुल नष्ट हो जायेगी। युद्ध ने स्पष्टतः हमें यह शिक्षा नहीं दी कि मानवजाति 'एक' है। युद्ध यह शिक्षा कभी नहीं दे सकता। केवल जिस समय मनुष्यों को समस्त जीवन की आधारभूत एकता का ज्ञान हो जायेगा, उस समय राष्ट्र विश्वबन्धुत्व की भावना से परस्पर सहयोग देने और मानवजाति की भावी आध्यात्मिक उन्नति को आश्वासन देने में समर्थ होंगे।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य की चेतना में ऐसे विकास के लिये किसी प्रकार के दैवी हस्तक्षेप की कल्पना करनी पड़ेगी। मनुष्य न तो बौद्धिक साधनों से, और न 'चेतनतया इच्छा करने से', अपने सजातीय मनुष्य से रंग, धर्म अथवा जाति के भेदभाव के बिना प्रेम करना सीख सकता है। इसके लिये अचेतन मन की रचनात्मक शक्तियों का मुक्त होना आवश्यक है। मानवजाति के सौभाग्य से "मेहेरबाबा" के रूप में एक "ईश्वरीय

शक्ति'' है जिसे 'प्रकाश' की इन गुप्त शक्तियों को जगाने की शक्ति प्राप्त है; और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि उनको उस शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है, जिसकी पुष्टि उनकी इस जीवन–गाथा में वर्णन की गई अनेक उन्नत आत्माओं व सन्तों की साक्षी ने की है। केवल ''नेता'', अर्थात् 'अवतार', ही जानता है कि दैवी शक्ति कब अपनी शक्ति से परिपूर्ण शब्द का उच्चारण करेगी और मनुष्य के लिये उसकी गम्भीर रूप से आवश्यक आध्यात्मिक जागृति प्रदान करेगी। तथापि, बाबा हमको बतलाते हैं कि हम, यह स्वीकार करते हुये कि केवल दैवी सहायता मानवजाति को सर्वनाश से बचावेगी, ईश्वर की मरज़ी के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण करने के द्वारा इस जागृति के आगमन में तेज़ी ला सकते हैं। बाबा कहते हैं कि जब मानवजाति अपनी सबसे बड़ी आवश्यकता के समय अपने खुद के साधनों का अन्त देख लेगी, तब वह अपना मौन खोलने के द्वारा अपना सार्वजनिक कार्य प्रारम्भ करेंगे।

बाबा के लम्बे समय से चल रहे मौन का यह बाईसवाँ वर्ष है। यह मौन अनेक लोगों के लिये एक पहेली रहा है, और बाबा का इसके खोलने को लगातार टालते जाना अन्य अनेक लोगों को ठोकर देने वाला सिद्ध हुआ है। उन्होंने अपना मौन खोलने के लिये कितनी ही बार तारीखें निश्चित की हैं और फिर स्पष्टतः अपना विचार बदल दिया है। अविश्वासी पुरुष यह मानता है कि बाबा की बोलने की शक्ति समाप्त हो गई है, अथवा वह अपने मौन का प्रयोग अपने प्रचार के एक नवीन विशेष माध्यम के रूप में कर रहे हैं। एक बार भारतवर्ष में जब मैंने बाबा से इसके विषय में बात की, तो उन्होंने कहा कि वह वास्तव में प्रारम्भ से ही यह ठीक ठीक जानते थे कि वह कितने समय तक मौन रहेंगे–और इसलिये वह जानते थे कि उनका मौन बहुत वर्षों तक चलेगा। यदि प्रारम्भिक काल में उन्होंने अपने शिष्यों को बता दिया होता कि उनका मौन कितने समय तक चलेगा और इसलिये उनके शिष्यों की परीक्षा का समय कितने समय तक रहेगा (क्योंकि उनकी पूर्णतया परिपक्व शिष्यता बाबा के बोलने पर निर्भर थी),

तो उनमें से अनेक शिष्यों का दिल टूट गया होता, और वे अत्यधिक हतोत्साहित हो गये होते। इसलिये एक बुद्धिमान पिता के समान वह अपने शिष्यों को, अपना मौन खोलने के एक क्षण में ही उनको मुक्ति प्रदान करने का वादा करने के द्वारा, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने की उनकी क्षमता का विकास करते हुये, वर्ष प्रतिवर्ष अग्रसर करते रहे।

यद्यपि बाबा के मौन से कई प्रयोजन सिद्ध होते हैं जो मेरी मौजूदा समझ से परे हैं, फिर भी उसका एक प्रयोजन उन शिष्यों के ऊपर पड़ने वाले उसके प्रभाव में देखा जा सकता है, जिनको वह कल की दुनियाँ में आध्यात्मिक नेता के रूप में अपना स्थान ग्रहण करने के लिये शिक्षित कर रहे हैं। अपने शिष्यों के प्रति बाबा की टेकनीक (क्रियाविधि) का सबसे विशेष रूप वह साधन है जिसका प्रयोग वह मानसिक तनाव को सहन करने तथा धैर्य रखने का अभ्यास करने की उनकी क्षमता का विकास करने के लिये करते हैं। प्रायः प्रत्येक वस्तु जो वह अपनी शिष्य मण्डली के सम्बन्ध में करते हैं, किसी न किसी रीति से मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य एवं परिपक्वता के लिये इन आधारभूत आवश्यकताओं के प्रति सहायक होती है।

वह पहिले शिष्य के सम्मुख एक लक्ष्य रखते हैं जिसको प्राप्त करना देखने में असम्भव प्रतीत होता है, और वास्तव में बिना सहायता के उसको प्राप्त करना असम्भव होता है। फिर वह सहायता देने का वादा करते हैं, परन्तु केवल अपना मौन खोलने की किसी कल्पित तिथि को। जब हम चेतना को तीव्र करने वाली और अनन्त परमात्मा के लिये तड़प को प्रचण्ड करने वाली उनकी गतिशील शक्ति का विचार करते हैं, और साथ साथ यह अनुभव करते हैं कि किस प्रकार से वह सदैव 'कल, अगले सप्ताह, अगले वर्ष' का वादा करके मनुष्य को ललचाते हुये उस वांछित लक्ष्य को जानबूझकर उसकी पहुँच से बाहर रखते हैं, तो हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतीक्षा करने का मानसिक तनाव प्रायः कैसा असह्य हो जाता है। अनेक लोगों ने बाबा के विरुद्ध नकारात्मक प्रतिक्रिया करके और उनसे विमुख होकर वस्तुतः उनका खेल खेलने से इनकार कर दिया है। उन

लोगों का यह कार्य समझ में आता है। किन्तु इस चकित करने वाली कार्य–पद्धति को देखने का रचनात्मक ढँग भी है।

मेरी समझ में आया है कि अपनी अद्वितीय कार्यपद्धति द्वारा बाबा 'शिष्यों के अहंकार का नाश करते हैं।' पहिले तो शिष्य अपने ऊँचे लक्ष्य तक पहुँचने में लगातार देरी होने के खिलाफ़ बग़ावत करता हैं। अपने अन्तःकरण में वह अपने आप को उस समय ऐसे महत्त्वपूर्ण क़दम के लिये अयोग्य तथा अनुद्यत (तैयार नहीं) जानता हैं। परन्तु उसकी तीव्र अभिलाषा उसके अन्तस्तल में इस विश्वास का पोषण करती है कि सब कुछ सम्भव है। और, बाबा सितारों तक इस पहुँच को जानबूझ कर प्रोत्साहित करते हैं। परन्तु जैसे जैसे समय व्यतीत होता है और बाबा अपना मौन ज़ारी रखते हैं और शिष्य की प्रतीक्षा ज़ारी रहती है, वैसे ही वैसे शिष्य की उत्कण्ठा थोड़ी–थोड़ी करके ठण्डी और अन्तर्हित (गुप्त) होती जाती है और उसका अहंकार कम तकाज़ा करने वाला हो जाता है, समय की आवश्यकताओं के प्रति अधिक झुकने वाला हो जाता है, सद्‌गुरु की मर्ज़ी के प्रति अधिक समर्पित हो जाता है। इस प्रकार से जिस किसी भी आत्मप्रकाश के लिये शिष्य की आत्मा तैयार होती है उसके लिये वह अधिक सम्पन्न एवं परिपक्व हो जाता है। जैसा कि 'परिपक्वता की खोज में' नामक पुस्तक में डाक्टर फ्रिट्ज कन्केल ने कहा है : ''अहंमन्यता अहं–केन्द्रित ego-centricity का सबसे अधिक विनाशकारी रूप है समय के खिलाफ उसकी बग़ावत। समय का पालन करने का अर्थ है धीरे–धीरे तथा धैर्यपूर्वक अधिक अनुभवी एवं अधिक परिपक्व होना। इसमें रचनात्मकता की आवश्यकता होती है, अथवा कम से कम लचीलापन तो होना ही चाहिये।''

जैसे जैसे शिष्य अधिक परिपक्व तथा अधिक तरल होता है, जैसे जैसे वह अपनी भावना की प्रगाढ़ता में कोई कमी लाये बग़ैर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करना सीखता है, तो अन्त में वह उस स्थल पर पहुँच जाता है जहाँ

वह अपने को छोड़ देता है–अर्थात् अपने को ईश्वर अथवा सद्‌गुरु की मरज़ी पर पूर्णतया छोड़ देता है। उसकी भावना की प्रगाढ़ता अब वर्तमान समय के विचार की ओर मुड़ जाती है। वह अपने आप को अपने वर्तमान रूप में स्वीकार करता है; उसको वर्तमान काल की आश्चर्यजनक क्षमताओं का ज्ञान हो जाता है और वह केवल भविष्य के ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित रखना बन्द कर देता है। बाबा जो मीठा बेर उसकी आँखों के सामने लटकाये रहे हैं उसकी इच्छा से अब उसके मुख में पानी नहीं आता। 'अब' वह आध्यात्मिक अर्थ व माहात्म्य मालूम करने में अत्यन्त प्रवृत्त होता है। सद्‌गुरु ने उसके अन्तस्तल में जो अनुभूतियाँ जागृत कर दी हैं उनका एकीकरण करना उसके लिये एक महान, महत्त्वपूर्ण, निरन्तर विद्यमान साहसिक कार्य बन जाता है। धीरे धीरे उसका जीवन अधिक गम्भीरतया पूर्ण तथा सद्‌गुरु के हृदय व मन से अधिक चेतनतया एक लय में हो जाता है।

यह जीवनगाथा लिखने के समय से मुझे हाल ही में प्राप्त हुये बाबा के कुछ प्रवचनों से इस अन्तर्ज्ञान की पुष्टि हुई है कि कुछ समय तक वह जानबूझ कर मन की उस प्रवृत्ति को पुष्ट करते हैं जिसे वह अन्ततः शिष्य से पार कराते हैं। ''सत्य की अनन्तता'' शीर्षक अपने लेख में वह कहते हैं : ''यदि 'सत्य' भूत अथवा वर्तमान में न लिखकर केवल भविष्य में मिलता है, तो वह अनन्त न होगा; वह समय में अपना उद्‌भव रखने वाली एक घटना के रूप में अपने आप सीमित होगा। यदि वर्तमान को किसी आगामी प्राप्ति का एक साधनमात्र माना जाता है, तो जीवन में जो कुछ अन्तर्निहित है वह सब अपनी स्वाभाविक सार्थकता से वंचित हो जाता है। यह निश्चित रूप से एक ग़लत दृष्टिकोण है...वर्तमान को भविष्य के किसी उद्देश्य के अधीन करके उसे सब महत्व से वंचित करना उचित नहीं है। केवल साफ और शान्त मन के द्वारा ही आध्यात्मिक अनन्तता की यह वास्तविक प्रकृति समझ में आती है कि वह भविष्य में प्राप्त करने की कोई चीज़ नहीं है, वरन् ऐसी चीज है जो पहिले सदैव सनातन आत्म–सिद्धि रही है, अब है और सदैव रहेगी। जब हर क्षण शाश्वत सार्थकता से परिपूर्ण हो जाता है, तब न तो मृत भूतकाल से दृढ़ लगाव रहता है, और न भविष्य

के लिये आशापूर्ण उत्कण्ठा रहती है, वरन् 'अनन्त वर्तमान' में एक अखण्ड जीवन रहता है।

बाबा के साथ मुझे अनुभव हुआ है कि भावना की इस दोहरी प्रचण्डता में—अर्थात, एक ओर ईश्वर के लिये प्रचण्ड अभिलाषा और दूसरी ओर एक प्रकार की दैवी निराशा—वह किसी जन के अन्तर में ऐसी तीव्र और इतनी असह्य उत्कण्ठा पैदा कर देते हैं कि वह अन्त में 'आत्मसमर्पण करने' के लिये 'बाध्य' हो जाता है। मन में किसी अहंकारी विचार के प्रवेश किये बग़ैर, हम जिस सीमा तक आत्मसमर्पण करने में समर्थ होते हैं, उसी सीमा तक हमें बाबा—अर्थात् सत्य का—ज्ञान यहीं और अभी हो जाता है, न कि सुदूर भविष्य में किसी दिन। यदि निर्मल हुई चेतना का यह भाग्यशाली क्षण अन्तिम क्षण न भी हो, और यदि हम अपने को और भी अधिक सहजतया 'आत्मसमर्पण करने के लिये' पुनः विवश पाते हैं, तो भी हमारे सत्यता के ज्ञान को ढँकने वाले माया के पर्दों के हटाये जाने की प्रक्रिया में हमें आनन्द और दिलचस्पी प्राप्त होती है।

शिष्यों के इस मूलभूत तथ्य को खुद अनुभव करने के पूर्व, यदि बाबा इस यथार्थता को उन्हें 'बता देवें', तो वह सर्वोच्च मनोवैज्ञानिक होने की अपनी भूमिका को झूठा सिद्ध करेंगे। वह जानते हैं कि मनुष्य की आत्मा की तह में एक ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिये जिससे उसका पूरा अस्तित्व—अर्थात् उसके मन की चेतन व अचेतन दोनों सतहें, उसकी भावात्मक प्रकृति की पूरी बैटरी—स्वयं लादे हुये सब प्रतिबन्धों के खिलाफ बग़ावत करे, और फिर सब ईश्वर के हाथ में छोड़ देवे और ईश्वर को भार ग्रहण करने देवे। इस सत्यता को बुद्धि द्वारा समझने मात्र से, अधिक से अधिक, हमें एक अस्थायी एवं आंशिक मुक्ति ही प्राप्त होगी। केवल एक गम्भीर 'आवश्यकता' ही मनुष्य को अपने मौजूदा असज्जित व लज्जाविहीन रूप में अपना सामना करने तथा अपने को स्वीकार करने का आवश्यक आकर्षण प्रदान कर सकती है। यह आवश्यकता बाबा निश्चित रूप से पैदा करते हैं। उनकी शिक्षा अथवा जीवन की विधि मूलरूप से वही है जो ज़ेन बुद्धमत की है; और सभी सच्ची शिक्षा सार रूप से यही है, चाहे ईश्वर तक पहुँचने के लिये जो भी धार्मिक मार्ग हो। इसकी पुष्टि एलन वाट की ''दी

मीनिंग आफ हैपीनेस'' नामक पुस्तक से होती है जिसमें उसने 'ज़ेन बुद्धमत' के सार का वर्णन इस प्रकार किया है : ''पूर्ण स्वीकृति, जो बन्धन का एक प्रत्युत्तर प्रतीत होती है, यथार्थ में स्वतन्त्रता की एक कुञ्जी है, क्योंकि जब तुम वह स्वीकार करते हो जो तुम अभी हो, तो तुम वह होने के लिये स्वतन्त्र हो जाते हो जो तुम अभी हो; और इसी कारण से जब मूर्ख अपने आप को मूर्ख बनने के लिये स्वतन्त्र कर देता है तब वह महात्मा बन जाता है।''

हाल ही में किसी ने कहा है कि जो नया 'मसीहा' आवेगा उसे मनोविज्ञान का आचार्य होना पड़ेगा; और जो लोग बाबा को अच्छी तरह जानते हैं वे उन्हें निश्चय ही इस श्रेणी में रक्खेंगे। हम लोग, जिनका निकट सम्पर्क बाबा से रहा है, मानते हैं कि आत्माओं के प्रति बाबा की क्रियापद्धति में मानसिक चिकित्सा का समावेश रहता है, और वह क्रियापद्धति उससे भी बहुत परे जाती है। उदाहरण के लिये, स्वप्न देखने वाले मनुष्य की 'अचेतन' (Unconscious) अवस्था से परिचित होने के लिये उन्हें उस मनुष्य के स्वप्नों को जानने की आवश्यकता नहीं है। और, न तो बाबा को शिष्य के एक स्वतन्त्र तथा अधिक सम्पन्न जीवन के मार्ग में बाधक रोड़ों को खोजने के लिये 'स्वतन्त्र साहचर्य' (Free association) की किसी क्रियापद्धति का सहारा लेने की आवश्यकता है। अपनी अलौकिक अन्तर्दृष्टि से वह केवल वे तथ्य ही नहीं देखते जिससे व्यक्तिगत आत्मा इस जीवन में बन्धन में जकड़ गई है, बल्कि वह यह भी देखते हैं कि पूर्वजन्मों की कौन सी चीज़ों से वह आत्मप्रकाश की मौजूदा सीमा अथवा रुकावट को प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त, बाबा उस अन्धकूप से (आत्मा को मुक्त करने की अपेक्षा व्यक्तित्व का नाश करने की विधि का अधिक ज्ञान रखना) बचा देते हैं जिसमें अनेक विश्लेषक फँस जाते हैं, क्योंकि व्यक्तिकरण (Individuation) के मार्ग के हर क्रम पर बाबा सच्चे व्यक्तित्व का समाकलन करते हैं और साथ—साथ अहंकारी तथ्यों का नाश करते हैं जो आत्मा को उसकी 'वास्तविक' प्रकृति नहीं देखने देते। पूर्ण

कौशल के साथ वह मनुष्य को भंग होने की सीमा तक ले जाते हैं, परन्तु कभी उससे बाल भर भी आगे नहीं ले जाते।

बाबा ने लिखा है : ''आधुनिक मनोविज्ञान ने अन्तर्द्वन्द के मूलों को उद्घाटित करने के लिये काफ़ी प्रयास किया है; परन्तु सर्वोपरि दृष्टि से उसे अब भी आत्मस्फूर्ति जागृत करने की पद्धतियाँ ढूँढ़ निकालनी हैं अथवा मन व हृदय को कोई गतिशील वस्तु प्रदान करने की रीतियाँ खोजनी हैं, जो जीवन को रहने योग्य बनावे। मानव जाति के उद्धारकों के सामने वास्तव में यह रचनात्मक कार्य है।''

बाबा स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्य की यातना तथा दुख का कारण जीवन के विषय में उसका अहंकार पूर्ण दृष्टिकोण है। इसलिये इसको अवश्य समाप्त होना चाहिये। ''जीवन की नवीन तथा अनिवार्य लहरों द्वारा मनुष्य पुनः पुनः अपने मायावी आश्रयों से हटा दिया जायेगा; और वह अपने अलगाने वाले अस्तित्व को निकल भागने के द्वारा बचाने का प्रयत्न करके अपने ऊपर नये प्रकार की यातनायें आमन्त्रित करेगा। किन्तु जीवन अहंकार के कठघरे में स्थायी रूप से बन्दी नहीं रक्खा जा सकता; वह किसी समय 'सत्य' की ओर अवश्य लालायित होगा। विकास की परिपक्वता में यह महत्त्वपूर्ण आविष्कार होता है कि जब तक जीवन को अहंकार की धुरी पर घुमाया जाता है तब तक वह पूर्णतया समझ में नहीं आ सकता और न पूर्णतया प्रस्तुत किया जा सकता है। इसलिये मनुष्य अपने खुद के अनुभव के तर्क के द्वारा, अनुभव का 'सच्चा' केन्द्र ढूँढ़ने के लिये तथा अपने जीवन को वहाँ पाये हुये 'सत्य' के आधार पर पुनः संगठित करने के लिये, प्रेरित होता है।''

वह इसका हल प्राप्त करने का मार्ग इन शब्दों में बतलाते हैं : ''यदि चेतना को अपनी सीमाओं से मुक्त होना है और उसे वह मूल प्रयोजन पूरा करना है जिसके लिये उसका अस्तित्व हुआ था–अर्थात्, ईश्वर का साक्षात्कार करना–तो उसको अपनी निर्देशक प्रवर्त्तक शक्ति अहंकार से नहीं बल्कि किसी और सिद्धान्त से प्राप्त करनी चाहिये। पूर्णता के केन्द्र के रूप में अहंकार का त्याग अवश्य होना चाहिये और एक नया केन्द्र प्राप्त होना चाहिये।''

जिस अर्थ में ईसामसीह ने कहा था, ''मैं 'मार्ग' हूँ'', उसी अर्थ में बाबा कहते हैं कि जो शिष्य सद्गुरु के प्रति पूर्ण हार्दिक निष्ठा रखता है उसके लिये सद्गुरु–जिसकी चेतना ईश्वर के साथ एक होती है–पूर्णता का नवीन केन्द्र बन जाता है। चूँकि सद्गुरु समस्त जीवन की एकता की सजीव पुष्टि होता है, इसलिये उसके प्रति निष्ठा अहंकार की पृथक करने वाली प्रवृत्तियों को धीरे धीरे नष्ट कर देती है। बाबा स्पष्ट रूप से बतलाते हैं कि सद्गुरु के प्रति आत्मसमर्पण करने में शिष्य 'अनन्त एवं विश्वव्यापी सत्य' की साक्षात मूर्ति के प्रति आत्मसमर्पण करता है, 'न कि दूसरे सीमित, संकुचित अहंकार के प्रति।' इसलिये शिष्य की चेतना अज्ञान के बन्धन से मुक्त हो जाती है, और वह और भी बन्धन में नहीं पड़ती; और भी अधिक बन्धन में तो वह तब पड़ेगी यदि शिष्य दूसरे 'सीमित मन' से अपने को जोड़ लेता है।

''जब अहंकार का लोप हो जाता है, तो 'सच्ची खुदी' का ज्ञान हो जाता है; तब मनुष्य को शाश्वत एवं अनन्त 'मैं हूँ' अवस्था की चेतना होती है, जिसमें कोई अलगपन नहीं होता और जिसमें अखिल जीवन का समावेश होता है।''

तथापि बाबा को उन गहरी जड़ों वाली कठिनाइयों का पूर्ण ज्ञान है जो जीवन और कर्म के केन्द्रवत् अहंकार के इस त्याग के सामने आती हैं। किसी भी उपाय से साधक को ''मैं यह करता हूँ'', ''मैं वह करता हूँ'' का भाव रक्खे बग़ैर कर्म करने का मार्ग ढूँढ़ना चाहिये। फिर भी उसे निपट निश्चेष्टता की अति से भी बचना चाहिये। उसे एक रास्ता ढूँढ़ना चाहिये जिसके द्वारा वह सृजनात्मक कर्म से परिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके, और फिर भी वह अहंकारी जीवन के बन्धनों में न फँसे। बाबा कहते हैं कि एक ओर अकर्म (Inaction) से और दूसरी ओर कर्म के अभिमान से बचने के लिये आध्यात्मिक साधक को यह आवश्यक है कि वह 'एक अस्थायी एवं क्रियाशील अहंकार' का निर्माण करे 'जो पूर्णतया सद्गुरु के अधीन हो।'

''कुछ भी प्रारम्भ करने से पहिले, साधक को सोचना चाहिये कि कार्य करने वाला 'वह' नहीं है बल्कि 'सद्गुरु' उसके माध्यम से कार्य कर रहा है; और जब कार्य समाप्त हो जावे तो उसे उस कार्य के फलों का दावा

या उपभोग न करना चाहिये, वरन् उन्हें सद्‌गुरु को समर्पित करके त्याग देना चाहिये। ऐसी भावना से अपने मन को शिक्षित करके साधक एक नया अहंकार पैदा करता है, जो 'अस्थायी' होते हुये भी विश्वास एवं उत्साह की भावना प्रदान करता है और वह प्रेरक–शक्ति रखता है जो सच्चे कर्म द्वारा अवश्य प्रकट होती है। चूँकि यह अहंकार अपना जीवन और अस्तित्व सद्‌गुरु से प्राप्त करता है जो अपार स्वतन्त्रता का प्रतिनिधि होता है, इसलिये यह हानि रहित होता है, और उपयुक्त समय आने पर लिबास की भाँति उतार कर फेंका जा सकता है। ऐसे अहंकार का निर्माण–जो पूर्णतया सद्‌गुरु के अधीन होता है–आध्यात्मिक उन्नति की गतिविद्या में अनिवार्य होता है।''

सद्‌गुरु के साथ शिष्य के ऐसे विलीनीकरण को मूर्तिपूजा के ग़लत अर्थ में न लेना चाहिये, जिसका जन्म बहुधा सम्बन्धों में होता है जहाँ एक पक्ष दूसरे के अनेक अचेतन और इसलिये अव्यक्त गुणों को मूर्तिमान करता प्रतीत होता है। ये अभिक्षेप (Projections) मनुष्य को उसके सीमित अहंकारी जीवन से मुक्त करने में सहायक नहीं होते, भले ही कुछ समय के लिये वे चेतना का क्षणिक प्रसार कर देवें। यह बात बाबा के नीचे दिये गये शब्दों से प्रकट होती है कि उनको एक गौण सीमित केन्द्र से तादात्म्य होने के इस खतरे का पूर्ण ज्ञान है : ''जब हमारा तादात्म्य जीवन के एक संकुचित समुदाय अथवा वर्ग से हो जाता है, अथवा किसी सीमित आदर्श या व्यक्ति से हो जाता है, तो हमें अलगाने वाली खुदी के सचमुच विलीन होने का अनुभव नहीं होता, बल्कि केवल एक 'मिथ्या' विलीनीकरण का अनुभव होता है। विश्वव्यापी जीवन के महासागर में सीमित खुदी के वास्तविक विलीनीकरण में पृथक अस्तित्व के 'सब' रूपों के पूर्ण आत्मसमर्पण का समावेश होता है।... सद्‌गुरु के प्रति अन्तिम एवं पूर्ण आत्मसमर्पण समस्त पृथक चेतना के त्याग के तद्रूप होता है और वह अनिवार्य रूप से 'सत्य' की प्राप्ति कराता है, जो समस्त आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।''

जिन लोगों की आवश्यकता उनको अपने में ही पूर्णता का सच्चा केन्द्र तलाशने के लिये बाध्य करती है, उनको सद्‌गुरु की चेतना के साथ उनकी चेतना के इस जोड़ से उनके लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सबसे तेज़

एवं अचूक साधन प्राप्त होता है। इसका यह ग़लत अर्थ न लगाना चाहिये कि ऐसा भक्त अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं करता। यह सही है कि वह किसी विशेष आत्मिक सिद्धि अथवा दीक्षा की मात्रा के लिये प्रयास नहीं करता जैसा कि निगूढ़ शिक्षा अपने विद्यार्थियों के लिये प्रस्तुत करती है। तथापि वह अपने चिन्तनों एवं दैनिक जीवन में अधिक गम्भीर रूप से अपने सद्‌गुरु की चेतना की लय में होने का निरन्तर प्रयत्न करता है। सद्‌गुरु दैवी प्रेम का वह केन्द्रीय 'सूर्य' होता है जिसकी दीप्तिमान ऊष्णता समस्त अहंकारी चेतना की जमी हुई परत को गला देती है।

अपने सद्‌गुरु के प्रति शिष्य की प्रवृत्ति अचेतन झुकाव की प्रवृत्ति नहीं होती बल्कि 'चेतन अन्तःपरावर्तन' की होती है। प्रसिद्ध 'सूफी' महिला सन्त राबिया ने कहा है कि यदि ईश्वर हमारी ओर मुड़ेगा, तो हम उसकी ओर मुड़ेंगे। इस प्रकार, शिष्य का अन्तर्मुखी होना वास्तव में 'सद्‌गुरु' की आन्तरिक क्रिया है, जो शिष्य की चेतना को उसके अस्तित्व के केन्द्र बिन्दु की ओर खींचते हुये, 'आत्म' के नीचे से किये गये खिंचाव के समान है।

सुपरिचित लघुता तथा श्रेष्ठता ग्रन्थियों का विन्यास करने की बाबा की पद्धति यह प्रकट करती है कि किस प्रकार से बाबा प्रायः एक ही समय में मिथ्या व्यक्तित्व का नाश करते हैं और शिष्य की सच्ची प्रकृति का पुनः निर्माण करते हैं। अहंकार के दो मुख्य पर्दों–लघुता और श्रेष्ठता–का शीघ्रता से अन्त करने के लिए बाबा इन दोनों भावना ग्रन्थियों को बारी–बारी से उकसाते हैं। यदि शिष्य हिम्मत हारने और आध्यात्मिक खोज त्यागने के किनारे पर होता है, तो बाबा उसके अन्तस्तल में गहरा आत्मविश्वास पैदा कर सकते हैं। यदि वह अनुचित रूप से अहंकारी होने की सीमा पर होता है, तो बाबा ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करके, जिनमें शिष्य अपनी ही अयोग्यता अथवा निरर्थकता स्वीकार करने तथा समझने के लिए विवश हो जाता है, अहंकार के इस आचरण को नष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार बाबा शिष्य के ऊपर अपना प्रभाव उन स्थितियों को जल्दी से पैदा करने के लिये प्रयुक्त करते हैं जिनसे होकर गलते हुये अहंकार को अन्ततः समाप्त होने के पूर्व अवश्य गुजरना पड़ता है। बाबा आध्यात्मिक अहंकार को भी भंग होने की आवश्यकता से अलग नहीं करते। ''जब अहंकार आध्यात्मिक विचारों और कर्मों की बाढ़ से पराभूत हो जाता है, तो वह उतना

ही बन्धनकारी होता है जैसा कि अधिक अपरिपक्व अहंकार होता है जो कोई ऊँचे आध्यात्मिक दावे नहीं करता।''

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि बाबा खतरनाक हैं, और उनका कहना सच है। जो कोई भी उनके प्रभाव में आता है उसकी आत्मा में वह आध्यात्मिक विध्वंसक (dynamite) के रूप में स्थित होते हैं। वह उसको उसकी रक्षा करने वाले खोल से बाहर फेंक देते हैं; वह अभिमान तथा आत्म–तुष्टि की सावधानी से बनाई गई खाइयों को नष्ट कर देते हैं; वह हमारे पोषित पूर्वद्वेषों तथा विचारों का विस्फोट कर देते हैं; वह मनुष्य को झकझोर कर उसे उसके सदाचारों से बाहर उतने ही निश्चयपूर्वक निकाल देते हैं जिस प्रकार से वह उसके गहरे से गहरे पापों को खोलकर बाहर कर देते हैं। यह किसी प्रकार से भी उनकी कोई सुखद क्रियापद्धति नहीं है, बल्कि वह क्रिया है जो व्यक्तित्व को उसकी खुद अपने ऊपर लादी हुई दासता से बाहर निकाल कर अन्ततः उसे बन्धन–रहित दिव्य–जीवन प्राप्त करा देती है। बाबा के शब्दों में : ''प्रियतम' से अपने वियोग के कारण तुम खुद हो। जो तुम्हारी 'खुदी कहलाती है' उसका नाश कर दो और ऐसा करने से तुम्हारा मिलन 'सच्ची खुदी' से हो जायगा।''

बाबा से प्रश्न करने वाले एक व्यक्ति का यह खयाल था कि आस्था ऐसी चीज़ है जो दबाव डालकर पैदा की जा सकती है। उसको बाबा ने जो उत्तर दिया वह उनकी ढीली–रस्सी वाली प्रणाली को स्पष्ट करता है जिसकी सिफारिश वह अपने अनुयायियों के लिये करते हैं। ''सदैव वही करो जो करने का रुझान तुम्हारे अन्तस्तल में हो रहा हो; यदि आज तुम्हें मुझमें–अर्थात् ईश्वर में–आस्था रखने का रुझान महसूस होता है, तो तुम मुझमें आस्था रक्खो; और यदि कल तुम्हें इसके बिल्कुल विपरीत महसूस होवे –तुम मुझमें विश्वास न करो।''

मनुष्य के आचरण के कृत्रिम स्तरों के घेरे को लाँघने वाले सचमुच महान 'उपदेशकों' के अलौकिक दृष्टिकोण तथा जीवन पर कुछ आलोचक टीकाटिप्पणी करते हैं। ऐसे आलोचकों के प्रति बाबा कहते हैं :

''अनेक रूढ़ियों में मायावी माहात्म्यों का समावेश होता है और वे मायावी माहात्म्य प्रकट करती हैं, क्योंकि उनका अस्तित्व लोकमन की

क्रिया के फलस्वरूप हुआ है जिसे आध्यात्मिकता का ज्ञान नहीं है... रूढ़ि से मुक्ति, जो बहुधा आध्यात्मिक साधक अथवा सद्गुरु के जीवन में प्रकट होती है लौकिक स्तरों अथवा जीवन के ऊपरी मार्ग के खिलाफ किसी जानबूझ कर की गई बग़ावत के कारण नहीं होती, बल्कि सारासार–निर्णयकारी विचार का प्रयोग करने के कारण होती है। जो लोग नीति एवं आचरण की किसी बाह्य संहिता के पालन के स्तर को लाँघना और 'सत्यता' की अन्दरूनी दुनियाँ का अनुभव करना चाहते हैं उन्हें, मनुष्य की बनाई हुई रूढ़ियों को एक ओर रखकर, मिथ्या व सच्चे माहात्म्यों को पहिचानने की क्षमता का विकास अवश्य करना चाहिये। यद्यपि इस प्रकार का बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय परम महत्त्वपूर्ण होता है, तथापि नए ज्ञात हुए माहात्म्य तभी सफल होते हैं जब वे दैनिक, व्यावहारिक जीवन में आचरित किए जाते हैं।

''उन पर अमल होना चाहिये–उन्हें रचनात्मक बनाना चाहिये। आध्यात्मिक जीवन में सिद्धान्त का महत्व नहीं है बल्कि आचरण का महत्त्व है।''

ऐसे उपदेशों तथा आचरण के कारण स्वाभाविक रूप से बाबा की यह आलोचना की जायेगी कि वह और उनकी शिक्षा खतरनाक हैं। बाबा कहते हैं : ''आध्यात्मिक जीवन के गम्भीरतर रहस्य उन लोगों को 'उद्घाटित' होते हैं जो 'खतरे' उठाते हैं और जो जीवन के साथ साहसपूर्ण प्रयोग करते हैं। वे निर्बल मनुष्यों के लिए नहीं होते जो हर पग पर गारन्टी चाहते हैं। जो व्यक्ति समुद्र के किनारे पर खड़ा हुआ ही महासागर के विषय में कल्पना करता है, वह केवल महासागर की सतह का ही ज्ञान कर पावेगा; यदि वह महासागर की गहराई जानना चाहता है तो उसे 'उसमें डुबकी लगाने के लिये' अवश्य तैयार होना चाहिये।''

यदि यह खतरनाक है, तो यह गहरी बुद्धिमत्ता भी है और यह हमें चेतना की वह अवस्था प्राप्त कराता है जिसमें प्रेमी अपनेआप को 'प्रियतम' के अस्तित्व में खो देता है और उसको यह ज्ञान होता है कि वह अपार परमात्मा के साथ एक है।

इसी दिव्य जीवन में बाबा मानवजाति के साथ भाग लेंगे, जब वह उसे ग्रहण करने के लिये तैयार हो जायेगी।

वह लिखते हैं : '''प्रेम' के हाथ में सब समस्याओं के हल की कुञ्जी है, क्योंकि 'प्रेम के विधान' के अन्तर्गत अपार परमात्मा का साक्षात्कार सदैव के लिये, जीवन के हर मार्ग में हो जाता है—विज्ञान में, कला में, धर्म अथवा सौन्दर्य में।''

वह आगे कहते हैं कि 'अनन्त प्रेम' की यह वर्षा मानवजाति के ऊपर उस समय की जायेगी जब वह आध्यात्मिक मोड़ के स्थल पर पहुँच जायेगी। हर व्यक्ति—पहिले उसका दृष्टिकोण चाहे जो भी रहा हो—नवजीवन की लहर में भागी होगा। उस समय चेतना की जो गम्भीर हलचल होगी उससे भौतिकवादी लोग भी प्रभावित होंगे। दुनियाँ में रहने वाले तथा सांसारिक दृष्टिकोण रखने वाले लोगों को वह सलाह देते हैं कि वे एक बुद्धिमत्तापूर्ण तैयारी के रूप में, अपने सांसारिक जीवन एवं कर्त्तव्यों की ओर यथावत् ध्यान देते रहें परन्तु प्रत्येक दिन किसी समय वे भौतिक जीवन से परे किसी वस्तु की अभिलाषा किया करें। यह क्रिया उन्हें धीरे धीरे भौतिक चीज़ों पर उनकी निर्भरता से अलग कर देगी और उनको 'दैवी जीवन' की उच्चतर लहर ग्रहण करने के लिये तैयार करेगी।

जिन लोगों के लिये किसी प्रकार की कला उनका 'योग' है, उनको बाबा समझाते हैं कि कला महान मार्गों में से एक है जिसके द्वारा आत्मा अपने को प्रकट करती है और दूसरों को आत्मस्फूर्ति प्रदान करती है। परन्तु कला को स्पष्ट रूप से प्रकट करने के लिये, मनुष्य के गम्भीरतर भावों को पूर्णतया मुक्त होना चाहिये। ''अपनी कला से प्रेम करो, और वह कला तुम्हारे लिये 'आन्तरिक जीवन' खोल देगी। उदाहरण के लिये, जब तुम चित्रकारी करते हो, तब तुम अपनी चित्रकारी के अलावा सब कुछ भूल जाते हो। जब तुम्हारा ध्यान सूक्ष्मता से उस पर एकाग्र होता है, तो तुम उसमें खो जाते हो; और जब तुम उसमें खो जाते हो, तो तुम्हारा अहंकार कम हो जाता है, 'अपार प्रेम' प्रकट हो जाता है; और जब ऐसे 'प्रेम' का

अनुभव हो जाता है तो ईश्वर प्राप्त हो जाता है। इसलिये तुम देखते हो कि किस प्रकार कला मनुष्य को 'अपार परमात्मा' की प्राप्ति करा देती है।''

सभी समयों के महानतम रहस्यवादी लोग इस दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत रहे हैं कि 'प्रेम' के द्वारा ईश्वर का ज्ञान अत्यन्त शीघ्र एवं पूर्ण होता है। हमारे ही समय और देश में एक महान रहस्यवादी, स्वर्गीय विलियम जेफरीज़ लिखता है : ''अन्तिम पग में जो 'मिलन' (Union) है, ईश्वर अपनी अन्तिम प्रकृति में उन लोगों को प्रकट होता है जो उससे प्रेम करते हैं; और ईश्वर का पूर्ण ज्ञान केवल उसके सर्वोपरि लक्षण 'प्रेम' में ही हो सकता है।''

अपनी पुस्तक ''जब शब्द जीवन बन जाते हैं'' (When Words Become Life) में वह यह भी कहता है : ''और भी आगे, हर कदम, हर कर्म, तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में एक दूसरे के साथ साहचर्य का प्रत्येक क्षण, वह दिन निकट और निकट ला रहा है जबकि सम्पूर्ण मानवजाति को ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा। हम धर्मों तथा जीवन के विषय में बहुत बात करते हैं। एक अन्तर्भूत एकता है जिसके अन्तर्गत हम कह सकते हैं कि 'आखिरकार सब धर्म **सजीव प्रेम** में अपनी एकता प्राप्त करेंगे।' सन्त पाल का कथन है कि यही वस्तु सदैव स्थिर रहेगी।''

समस्त धर्मों का ऐसा सजीव समन्वय करना बाबा का स्पष्ट प्रयोजन है। वह मानवजाति को एक नये धर्म में परिवर्तित नहीं करना चाहते। तथापि वह मनुष्य के हृदय में 'सत्य' का अनुभव जागृत करना चाहते हैं जो सब सच्चे धर्मों का आधार है। वह अपने प्रयोजन को संक्षिप्त रूप में नीचे लिखे हुए शब्दों में प्रकट करते हैं : ''मैं सब धर्मों और सम्प्रदायों को एक धागे में पिरोये हुये मोतियों के समान एक साथ गूँथ दूँगा, और उनको व्यक्तिगत एवं सामूहिक आवश्यकताओं के लिये पुनर्जीवन प्रदान करूँगा।''

वह धर्म के 'सार' को, न कि उसके रूढ़िवादी रूप को पुनर्जीवित करेंगे। इसका उदाहरण उनके इस कथन से मिलता है कि यही समय है

जबकि धर्म को जाना चाहिये और ईश्वर को आना चाहिये। स्पष्टतः धर्म को अनन्यता की अपनी भावना को लाँघना है, जैसा कि जातियाँ और राष्ट्र करेंगे।

एक बार बाबा से पूछा गया कि क्या उनके विचार से ईसामसीह (Christ), एकमात्र अद्वितीय नबी (Prophet) थे, तो बाबा ने उत्तर दिया : ''अपनी चेतना की अवस्था के दृष्टिकोण से वह वास्तव में निराले थे। परन्तु वह एकमात्र नबी न थे। हर धर्म अपने नेता के लिये यह दावा करता है। परन्तु ऐसे दावे करने से तुम्हें ईसामसीह को जानने में सहायता नहीं मिलती। उसको 'जानने' के लिये मनुष्य को 'उसका जीवन चरितार्थ करना होता है। सब ईसामसीह हैं, परन्तु बहुत कम लोग ईसामसीह (Jesus) बन सकते हैं।''

ऊपर दिये गये कथन में बाबा की शिक्षा का सार तथा उनके जीवन का तत्व भरा हुआ है। वह मनुष्य को अपने ईश्वरत्व (Christhood) का ज्ञान कराने के लिये आते हैं। वह मनुष्य को खुदी के बन्धन से मुक्त करने के लिये और उसको अस्तित्व की उच्चतर भूमिका पर पहुँचाने के लिये आते हैं। वह अपने को 'सजीव मार्ग' बनाकर अपने बच्चों के लिये ईश्वर का प्रेम नये सिरे से प्रदर्शित करने को आते हैं। उन लोगों के लिये जिनमें उनको पहिचानने की आध्यात्मिक क्षमता है (क्योंकि आध्यात्मिक पूर्णता केवल आध्यात्मिक रूप से ही देखी जा सकती है) वह सर्वोच्च अवस्था के प्रतिनिधि हैं जिसको प्राप्त करने की क्षमता हरेक में है।

युगयुगान्तर में 'सनातन ईसामसीह' ईश्वर के व्यक्तिगत रूप की सजीव मूर्ति के रूप में आता है, और हमें ईश्वर के इसी मानवरूप से सम्पर्क करना चाहिये यदि हम उसके निराकार एवं विश्वव्यापी रूप में पूर्णतया प्रवेश करना चाहते हैं। ऐसा ही कुछ विचार ईसा के मन में रहा होगा जब उन्होंने पूछा था : ''यदि तुम मुझसे प्रेम नहीं कर सकते जिसको तुमने देख लिया है, तो तुम उस 'परमपिता' से कैसे प्रेम कर सकते हो जिसको तुमने नहीं देखा ?''

इस 'पूर्ण–पुरुष' ने प्रारम्भ में मनुष्य के सांसारिक जीवन के आदिकाल में अवतार लिया था और वह बराबर लेता रहेगा जब तक विकास–क्रम में

पृथ्वी पर अवतार की साकार उपस्थिति के द्वारा समय समय पर चेतना की जागृति ज़रूरी होगी। यह 'पुरुष' हर बार पूर्णता के अधिक विस्तृत समन्वय के साथ प्रकट होता है, वह सदैव अपने ही युग का वही सर्वोच्च सद्‌गुरु होता है; वह सदैव आत्माओं को जगाने वाला वही दिव्य–पुरुष होता है। स्वयं ईसा का इसके अतिरिक्त और क्या तात्पर्य रहा होगा जब उन्होंने कहा था कि वह 'पुनः आवेंगे'?

कुछ ऐसे लोग हैं जो यह कहते हैं कि ईसा के कहने का यह तात्पर्य नहीं था कि वह भौतिक शरीर में पुनः आवेंगे, बल्कि उनका यह तात्पर्य था कि वह मनुष्यों के हृदयों में ही आवेंगे। किन्तु जब तक वह मानव–चेतना की खतम हुई बैटरी को फिर से चार्ज करने के लिये पुनः 'मनुष्य रूप' में नहीं आते तब तक वे हृदय उनके अनोखे स्पन्दन को ग्रहण करने के लिये कैसे जागृत होंगे ? क्या हम ईमानदारी से कह सकते हैं कि धर्मसंघ– अर्थात् ईश्वर–प्राप्ति के लिये माना गया मार्ग–मनुष्यों के हृदयों को अधिक स्वार्थ–रहित बना रहा है, अधिक पवित्र बना रहा है, ईश्वर और उसके प्राणियों के प्रति प्रेम से अधिक परिपूर्ण बना रहा है ? क्या लालच, शक्ति की लालसा, समुदायों और राष्ट्रों के बीच युद्ध, ईश्वर की भव्य आत्मा के साक्षी हैं ? क्या धर्म के अधिकारी आत्म–विनाश की आधुनिक प्रचण्ड ज्वाला के वेग का रुख बदलने में समर्थ हुये हैं ? हममें से सबसे अधिक अज्ञान से अंधे लोग भी यह स्वीकार करेंगे कि आज मानवजाति को एक महान आध्यात्मिक पथप्रदर्शक की तीव्र आवश्यकता है यदि उसको अपनी मूर्खता और अज्ञान से बचना है।

मानवजाति की चेतना में परिवर्तन करने की बाबा की शक्ति का कदाचित सबसे विचित्र संकेत उन लोगों द्वारा प्रकाश में आता है जिनको बाबा से साक्षात् मिलने का अब भी अवसर नहीं मिला, परन्तु जिनके जीवन बाबा की आत्म–जागृति प्रदान करने वाली आत्मा द्वारा बदल गये हैं। जो लोग बाबा से बाह्यरूप से नहीं मिले उनके ऊपर बाबा के प्रभाव के विषय में अनेक कहानियाँ कही जा सकती हैं। उनमें से कुछ बाबा की हृदय को

आकर्षित करने की शक्ति को जितनी अच्छी तरह स्पष्ट करतीं हैं उतना अमरीका के सर्वोत्तम सिम्फ़ोनी आरकेस्ट्रा संगीत में एक वायलिन बजाने वाले का अनुभव नहीं करता।

फ्रेडरिक नाम का एक मित्र, जिसका हृदय बाबा का भीतरी सम्पर्क प्राप्त करके तरंगित हो चुका था, एक दिन तीसरे पहर सूर्य के देदीप्यमान प्रकाश में कैलिफोर्निया के कारमेल स्थान में समुद्रतट पर बैठा था। यद्यपि वह सूर्यास्त की शोभा से अत्यन्त प्रभावित था और वह केवल उसके सौन्दर्य में निमग्न हो जाना चाहता था तथापि उसको उसके पास बालू पर बैठे हुये एक आदमी से बात करने की प्रबल प्रेरणा हुई।

बातचीत करने पर, फ्रेडरिक को मालूम हुआ कि वह मनुष्य कठोर मानसिक एवं भावात्मक दबाव का शिकार था, जिसकी सही सही प्रकृति उसने प्रकट नहीं की। फ्रेडरिक ने सोचा कि कदाचित "साईलेन्ट रेवेलेशन्स आफ़ मेहेरबाबा" नाम की पुस्तिका, जो फ्रेडरिक अपनी जेब में डाले था, उस आदमी की आवश्यकता को पूरा कर देगी। यद्यपि फ्रेडरिक पुस्तिका को छोड़ना नहीं चाहता था, तथापि उस व्यक्ति से अलग होते समय उसने वह पुस्तिका उसको दे दी।

दूसरे दिन तीसरे पहर के समय उन दोनों को उसी स्थान पर मिलना था परन्तु निश्चित समय आने पर उसका वहाँ कोई पता न था। और न वह कारमेल में ही उस पते पर मिला जो वह फ्रेडरिक को दे गया था। इससे मेरा मित्र चक्कर में पड़ गया और उसने अगले सप्ताह लास ऐन्जिल्स लौटने पर उसको वहाँ ढूँढ़ने का संकल्प किया।

संयोगवश जिस दिन फ्रेडरिक उस नगर में सन्ध्या समय पहुँचा उसी समय वह संगीत–मण्डली, जिसमें वह व्यक्ति वायलिन बजाता था, अपने वाद्यसंगीत का प्रदर्शन कर रही थी। दो टिकट खरीद कर फ्रेडरिक और उसका एक मित्र थियेटर के भीतर गये और बालकनी की आगे वाली सीटों पर बैठ गये। एक खास संख्या के बीच संगीत मास्टर अकेले बाजे का राग बजाने के लिए उठा। यह वही आदमी था जो कारमेल से आया था, और उसने आत्मस्फूर्ति से प्रकाशित व्यक्ति की भाँति बाजा बजाया। जैसे ही उसने बाजा बजाना बन्द किया वैसे ही श्रोताओं ने चारों ओर से उसके ऊपर प्रशंसा की वर्षा की। फ्रेडरिक को उस व्यक्ति के परिवर्तन को

देखकर आश्चर्य हुआ कि कहाँ वह समुद्रतट पर उससे बात करते समय निराशा से कुचला हुआ एक व्यक्ति था और अब वह बदल कर एक गतिशील, रचनात्मक कलाकार था।

दो दिन बाद जब उन दोनों ने साथ–साथ भोजन किया, तो उस आदमी ने फ्रेडरिक को अपनी कहानी बताई : यद्यपि अपने कौशल और अपनी कलाकारी के कारण उसने इस महान संगीत–मण्डल (Orchestra) में सर्वश्रेष्ठ वायलिन बजाने वाले का स्थान प्राप्त कर लिया था, फिर भी कुछ वर्षों से उसके संचालक ने उसके किसी भी प्रदर्शन की प्रशंसा नहीं की थी जैसी कि उसने अन्य व्यक्तियों की की थी। वह व्यक्ति जानता था कि उसकी कला में जान डालने वाली किसी चिनगारी का अभाव था और वह यह नहीं जान पाता था कि वह उसे किस प्रकार पैदा कर सकता था। वह महीनों से इस पर विचार करता रहा था, यहाँ तक कि उस दिन कारमेल में समुद्रतट पर वह निराशा की चरम सीमा पर पहुँच गया था। आत्महत्या करने का एक उपाय ही उसके लिये रह गया था, ऐसा उसने तय कर लिया था। परन्तु उस दिन शाम को फ्रेडरिक से मिलने के बाद उसने बाबा की छोटी पुस्तक खोली जिसके मुखपृष्ठ पर बाबा की फोटो छपी थी। सहसा प्रकाश की एक लहर उसके अन्तस्तल में प्रवेश करती हुई प्रतीत हुई। उससे उसका निराशापूर्ण संकल्प तुरंत दूर हो गया और दूसरे दिन सुबह वह आरकेस्ट्रा में पुनः अभ्यास प्रारम्भ करने के लिये नगर को लौट गया। अब वह जानता था कि अकेले बाजे का राग बजाने की जो भूमिका उसको दी गयी थी—और जिसने वह संकट पैदा कर दिया था—उसको वह किसी प्रकार से सराहनीय ढँग से पूरा करेगा। तथापि उसको यह अनुभव किंचितमात्र न था कि उसका भार ईश्वर ले लेगा और उसके द्वारा वायलिन पर राग बजावेगा। वह कहता है कि बाद में मिले हुये अभ्यास के दिनो में उसको बाबा की सहारा देने वाली शक्ति का निरन्तर भान रहता था; और जब वह संगीतशाला में अकेला अपना राग बजाने के लिये उठा, तो उसे अपनी आँखों के सामने बाबा के दीप्तिमान चेहरे के अलावा और कुछ न दिखाई पड़ता था। उसका पूरा अस्तित्व बाबा की चेतना से प्रकाशित प्रतीत होता था। भाव और शक्ति का एक स्रोत, जैसा उसने पहिले कभी अनुभव नहीं किया था, उसके अन्तर में प्रवाहित हो गया था और वह उसकी सुग्राही अँगुलियों तथा उसके समान रूप से सुग्राही

वायलिन से स्वर की ऐसी प्रचुरता एवं भाव की ऐसी गहराई के साथ प्रवाहित हो रहा था कि वह उसके प्रत्येक श्रोता के हृदय में प्रवेश कर गया, जैसा कि श्रोताओं की प्रचण्ड, सहज हर्षध्वनि से प्रकट होता था।

संगीत प्रदर्शन के उपरान्त उसके संचालक ने इस व्यक्ति की ओर आश्चर्यचकित होकर देखते हुये उसके सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन की हार्दिक प्रशंसा की। परन्तु वह अब भी बाबा के नेत्रों में अपनी चितवन लगाये था; वह बाबा की उपस्थिति का स्पर्श महसूस कर रहा था। अब उसको किसी अन्य आश्वासन की आवश्यकता न थी।

खुद अपने ही जीवन में बाबा की मुक्तिकारी क्रिया का सिंहावलोकन करने का प्रयत्न करने पर मुझे मालूम होता है कि वह दो श्रेणियों में विभाजित होती है—प्रथम, एक निर्मल एवं शुद्ध करने वाली प्रक्रिया जिसने क्रूरतापूर्वक मेरा सामना खुदी से कराया और मन एवं शरीर में गम्भीर परिवर्तन किये; दूसरे, विचार एवं भाव की संकुचित करने वाली आदतों से क्रमशः मुक्ति, यहाँ तक कि अब मेरी चेतना में सुविस्तृत निर्मलता एवं शान्ति छा गई है। मुझ जैसी एक महिला के लिये, जो बहुत प्रेम करती थी और जिसका जीवन प्रायः उसकी भावात्मक प्रकृति से नियन्त्रित था, अब अधिक गम्भीरता एवं अधिक ईमानदारी से प्रेम करते हुए भी अपने को उस भावात्मक बन्धन से मुक्त पाना एक ऐसी सिद्धि है जो आत्मा के परम 'सद्‌गुरु' (Master) के पथप्रदर्शन में ही सम्भव है।

इसके अतिरिक्त, यदि ऐसी महिला बाबा की कृपा के पथप्रदर्शन में निर्बलता से उबर कर शक्ति को प्राप्त हुई है, भीरुता तथा आत्मभावना से उबर कर दैवी आश्वासन एवं जीवन—अभिव्यक्ति की महानतर शक्ति को प्राप्त हुई है, तो वह जानती है कि उसके जीवन में बाबा की क्रिया कितनी अधिक दयापूर्ण रही है। यदि उसकी अपनी चेतना को ढँकने वाले पर्दों के हटने का, दैनिक जीवन के शूलों से नष्ट न होने वाले आनन्द का तथा उसकी आत्मा में उमड़ते हुये, व्यक्तियों से स्वतन्त्र प्रेम का ज्ञान हो गया

है, तो वह और भी अधिक गम्भीरता से जानती है कि उसके तमाम जीवन का यह अन्तर्ज्ञान कितना सही था कि देहधारी ईसामसीह से पुनः मिलना और उसकी शिष्या बनना उसके भाग्य में था।

प्रारम्भिक जीवनकाल में, जब मेरा जीवन परिवर्तनशील अनुभवों की भूलभुलैया से होकर गुज़र रहा था जो (अनुभव) विभिन्न प्रकार के तीव्र एवं असम्बद्ध थे, तो उसमें मुझको कोई प्रमुख आदर्श नहीं मिलता था। पुनः पुनः अनुभव का लंगर सूर्य से प्रकाशित पर्वत शिखर से सबसे अन्धेरी घाटी के मध्य झूलता था; और ये दोनों अनुभव मेरे चेतन नियन्त्रण से स्पष्टतया परे थे। तथापि, बाबा के आगमन के साथ मेरी चेतना सन्तुलन के मध्यबिन्दु की ओर अधिकाधिक झुकती गई। अब मेरा जीवन दो चरमसीमाओं पर व्यतीत नहीं होता—आज आनन्द की लहरें, और कल सन्ताप की पीड़ायें। जो पहिले मुझको पागलपन से भरा हुआ, थिगड़ियों की जुड़ाई जैसा कार्य मालूम होता था वही अब मुझको भारी प्रतिकूलताओं से परिपूर्ण एक जीवन—आदर्श के रूप में दिखाई देता है, और यह दिखाई देता है कि वे प्रतिकूलतायें बाबा की सामंजस्यकारी शक्ति से एक में गुंथी हुई हैं, जो मेरे उनसे बाह्यरूप से मिलने के वर्षों पहिले से मेरे जीवन एवं प्रारब्ध का संचालन पर्दे के पीछे से करते रहे थे। मेरे अन्तस्तल में अब यह ज्ञान है कि 'सत्य' की जो झलकें मुझको समय—समय पर प्राप्त होती रही थीं वे बाबा की चेतना के 'वेदीगृह' से आई हुई देनें थीं, जिन्होंने मेरी आत्मा को 'घर की ओर' लौटने के लिये प्रलोभित किया।

'दैवी चुम्बक'—बाबा—मुझको दृढ़तापूर्वक एवं निश्चित रूप से अपने निकट और निकट खींचता रहा है, जिससे कि वह मुझे इस जीवन में तथा अनन्तकाल तक अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल कर सकें। उन्होंने प्रेमपूर्वक, दृढ़ता के साथ तथा धैर्यपूर्वक मेरा पथप्रदर्शन अन्धकारपूर्ण क्षणों एवं प्रकाश के बीच से, निर्बलता एवं शक्ति के बीच से, प्रेम के अपूर्ण रूपों के बीच से तथा दैवी उत्कण्ठा के बीच से किया है, यहाँ तक कि अब उनके हृदय तक पहुँचने का मेरा मार्ग रोड़ों और कूड़ा—करकट से साफ़ हो गया है।

सद्‌गुरु शिष्य के अन्तःकरण में जो मुक्तिकारी कार्य करता है उसकी ओर शिष्य की जो एकमात्र सम्भव स्थिति मैं मानती हूँ उसका सारांश विलियम ब्लेक ने कुछ पंक्तियों में दिया है :

"मैं विनाश और मृत्यु का आलिंगन करूँगा
जिससे ऐसा न हो कि अन्तिम दुन्दुभी बजने के क्षण मैं
अनष्ट बना रहूँ
और मैं अपनी ही आत्मा के निर्णय के लिये दे दिया जाऊँ।"

सब आत्मायें ईश्वर को खोज रही हैं, चाहे उनको इसकी चेतना हो या न हो। उनकी इस खोज में उनकी सहायता करने के लिये अब सद्गुरु मेहेरबाबा उस प्रेम और बुद्धिमत्ता के 'पूर्ण आविर्भाव' के रूप में आ गये हैं जिसके लिए मनुष्य की आत्मा लालायित है। उनके शब्द मार्ग प्रकाशित करते हैं :

"आत्मा का प्रवास एक रोमांचकारी दैवी कल्पित कहानी है जिसमें प्रेमी को–जिसको प्रारम्भ में केवल शून्यता, नैराश्य, कृत्रिमता तथा बन्धन की छीलने वाली जन्जीरों का ही ज्ञान होता है–क्रमशः प्रेम की निरन्तर बढ़ती हुई अधिक पूर्ण तथा अधिक स्वतन्त्र अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। अन्त में उसके पृथक् सत्व (Self) का लोप हो जाता है क्योंकि वह 'दैवी प्रियतम' में विलीन हो जाता है। प्रेमी और 'प्रियतम' के इस मिलन में ईश्वर के परम एवं सनातन सत्य का अनुभव 'अपार प्रेम' के रूप में होता है।"

।। समाप्त।।